CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

G11
BA-D

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अबुलफ़ज़्ल-ए-मुबारक-ए-अल्लामी

कृत

आईने-अकबरी

State Museum Library Lucknow

भाषान्तरकार तथा संपादक

रामलाल पाण्डेय

State Museum Library Lucknow

संवत् १९९१ विक्रमी
सन् १९३५ ईसवी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकाशक—
विद्या-मन्दिर,
कानपुर ।

सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक—
जाब प्रेस,
कानपुर ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

954.02

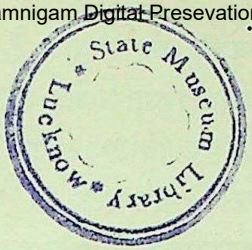

अबुलफ़ज़ल की भूमिका।

परमात्मन्[१] !

हे[२] रहस्य मय ! माया पट में छिपे तुम्हारे भेद अनन्त,
कैसा था आरम्भ तुम्हारा नहीं जानता है यह अन्त।
आदि अन्त भगवन् ! दोनों हैं इस प्रकार से तुम में लीन,
अविनाशी साम्राज्य तुम्हारा दोनों उसमें चिह्न विहीन।

वाणी मेरी मूक हुई है, और हुई जिह्वा पाषाण,
कानन है विस्तीर्ण, पंगु मैं, पा न सका उसका परिमाण[३]।
चिन्ता शक्ति चकित है मेरी यही आपका है गुणगान,
आपे में मैं नहीं नाथ हूँ यही आपकी है पहिचान।

१—आईने-अकबरी में "अल्लाहो-अकबर" पाठ है, जिसका शाब्दिक अर्थ "ईश्वर महान है" या "महान-ईश्वर" होता है। भाषान्तर में इसी का भावार्थ द्योतक संबोधनात्मक "परमात्मन्" शब्द प्रयोग किया गया है।

२—फ़ारसी की मौलिक रचना इस प्रकार है :—

ऐ ! हमा दरपर्दा निहां राज़े-तो ;
बेख़बर अंजाम ज़ि आग़ाज़े-तो।
दर तो हम आग़ाज़ो हम अंजाम गुम ;
हर दो बशहरे-क़िदमत नाम गुम।
पाय-सख़ुन लंगो ज़बाँ संगलाख़ ;
बाले-क़दम तंगो बियाबां फ़राख़।
हैरते-अन्देशा सिपासे-तो बस ;
बे ख़ुदेयम रुए शनासे-तो बस।

३—"पा न सका उसका परिमाण" यह चरणांश मूल रचना में नहीं है। अशक्यता के स्पष्टीकरण एवं "कानन है विस्तीर्ण, पंगु मैं" चरण की पूर्ति के लिए जोड़ दिया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उस ईश्वर को पहचानने-योग्य वह मनुष्य है, जो मौखिक बन्दना को छोड़कर व्यावहारिक रूप से उसके गुणगान में दत्त-चित्त हो, और सृष्टिकर्ता के कुछ अद्भुत चरित्र लिखकर अक्षय सौभाग्य प्राप्त करे, साथही लिखते समय अपनी मनोवृत्ति को लेखनी के छेद से मिलाये रक्खे[1]। आशा है कि ऐसा करने से, उसके राजत्व का तेज लेखक पर आभासित हो और इस प्रदीप्त ज्ञान द्वारा उसके सागर के कुछ बूंद तथा गहन बन की धूल का कोई परमाणु ग्रहण करके वह चिरस्थायी आनन्द प्राप्त करे और वाणी एवं कर्म के खण्डहर को समृद्धशाली बनावे।

मुबारक-सुत अबुलफ़ज़्ल के ध्यान में—जो कि ईश्वर का धन्यवाद, राज-स्तुति की भांति गान करता है और नृपोचित मणियों को वर्णन के सूत्र में पिरोता है—यह बात नहीं है कि वह उस विचित्र संसार को नया रंग देने वाले तथा मणिमय सृष्टि को भूषित करने वाले (अकबर) के यशस्वी कार्यों तथा श्रेष्ठ गुणों को प्रकट करे। यह बुद्धिमानी भी नहीं है कि वह प्रत्यक्ष बातों को प्रदर्शित करे और निज को ज्ञानवानों का उपहास्यास्पद बनावे। वह (अबुलफ़ज़्ल) केवल अपने ज्ञान-मणि को संसार-हाट में उपस्थित करता है और इस कार्य को हाथ में लेने पर अपने हृदय को आत्म-प्रशंसा में तत्पर करता है। ऐसे गुरुतर कार्य को—जिसको स्वर्गस्थ भी कठिनता से पूरा कर सकते हैं—करने का साहस करना अपनी प्रशंसा करना नहीं, वरन् अशक्यता और संकल्प की तुच्छता का प्रकट करना है। इस ग्रंथ की रचना में लेखक का अभीष्ट यह है कि वह इस शुभ समय के अन्वेषकों के हृदय में, ज्ञान-क्षेत्र के सजग विचरणकर्ता एवं सांसारिक और ईश्वरीय रहस्यों के ज्ञाता (सम्राट्) की बुद्धि की महत्ता, साहस-विशालता तथा कर्मों की श्रेष्ठता स्थिर करे और संसार की भावी संतति के लिए एक श्रेष्ठ उपहार प्रस्तुत करे। साथ ही जीवन, कृतज्ञता प्रकाशन से भूषित हो जाय और परलोक यात्रा का संबल प्रस्तुत हो जाय। आशा है कि इस जिज्ञासा के तृष्णा बन (संसार) में—जिसमें प्रकृतियाँ नाना प्रकार की, वासनाएं अगणित, न्याय दुर्लभ और पथप्रदर्शक दुष्प्राप्य हैं—लोग इस ज्ञान-विधान द्वारा कर्तव्य कर्म जान लेंगे और ज्ञान तथा कर्म के असीम अस्तव्यस्त कानन में भटकने से मुक्ति पा जांयगे। इसी उद्देश्य से सम्राट् के कुछ आईन लिखता हूँ और दूर तथा निकट वर्तियों के लिए नीति-शास्त्र उपस्थित करता हूँ। यतः पूर्णतया विचार यह

---

१ अर्थात् जो बात अन्तःकरण में हो, वही लिखे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है कि सम्राट की व्यवस्थाएं लिखूं इस लिए अनिवार्यतः उसके उच्च पद की महिमा वर्णन करनी पड़ेगी और इस श्रेष्ठ पद के सहायकों का हाल चित्रित करना पड़ेगा।

अद्वैत न्यायकारी (ईश्वर) की दृष्टि में पादशाही से उत्कृष्ट पद और कोई नहीं है; और सभी कार्य कुशल उसके ऐश्वर्य के सोते से तृप्त होते हैं। राजत्व का, जन समूह की राजद्रोहिता का उपचार होना एवं जनता को शासन में रखना ही, उसकी (बादशाही की) आवश्यकता के सम्बन्ध में प्रमाण चाहने वालों के लिए सबूत है। शब्द 'पादशाह' का अर्थ भी इसी कथन का समर्थक है; क्योंकि 'पाद' के अर्थ स्थायित्व और अधिकार के हैं, तथा 'शाह' असल और स्वामी को कहते हैं। अतएव पादशाह स्थायित्व और अधिकार का मूल स्वामी है। यदि शासन का आतंक न हो तो कलह का उपद्रव कैसे दबे और अपना बनाव चुनाव कैसे हो, मनुष्य जाति लोभ और क्रोध के बोझ से विनाश-कुंड में गिर जाय; समस्त संसार शोभा रहित हो जाय, और थोड़े ही समय में समृद्ध जगत उजाड़ हो जाय। राजा के न्याय के प्रकाश से अनेक जन-समूह प्रफुल्ल वदन तथा हर्षपूर्वक आज्ञा पालन का मार्ग ग्रहण करलेते हैं, और बहुत लोग उसके दंड के भय से अपने अत्याचारों के हाथ खींच कर विवश होकर सत्पथ पर चलते हैं। 'शाह' उसे भी कहते हैं जो अपने समकक्ष पदस्थों में श्रेष्ठ हो, जैसे 'शाह सवार[१]' और 'शाह राह'। लोग दामाद के लिए भी शाह शब्द प्रयुक्त करते हैं। संसार रूपी पत्नी सम्राट् से वैवाहिक सम्बन्ध जोड़ती है और यह मनमोहनी उसकी दासी होती है।

सरल चित्त और अदूरदर्शी मनुष्य, सच्चे राजा को स्वार्थी शासक से पृथक नहीं कर सकते। वे करें भी कैसे, क्योंकि परिपूर्ण कोष, सेना की अधिकता, योग्य सेवक, आज्ञाकारी प्रजा, बुद्धिमानों की विपुलता, गुणियों का बाहुल्य और सुख सामग्री की प्रचुरता दोनों के पास होती है। परन्तु सूक्ष्मदर्शी सत्यनिरीक्षकों पर उनका भेद प्रकट होता है। उपरोक्त वस्तुएं पहले शासक के पास स्थायी रूप से रहती हैं और दूसरे के पास से शीघ्र नष्ट हो जाती हैं। सच्चा राजा अपने चित्त को उस सामग्री के बन्धन में नहीं फंसने देता है; उसका पूर्ण उद्देश्य अत्याचार के लक्षण-उन्मूलन करना तथा मनुष्य की योग्यताओं[२] को काम में

---

१ सवारों में प्रधान सवार; मार्गों में राज मार्ग।

२ अर्थात् वह ऐसे साधन उपस्थित करता है कि जिनके द्वारा मनुष्य का मानसिक विकाश हो और उसकी योग्यता प्रकट हो सके।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लाना होता है। शाँति, सुख, पवित्रता, न्याय, शील, वचन-निर्वाह, (वफ़ा) सत्यता और निष्कपटता का आधिक्य, इत्यादि उसके परिणाम होते हैं। पिछला (स्वार्थी शासक) दिखावटी काम करने, अपने बनाव चुनाव, जनता को दास बनाये रखने और भोग विलास में संलग्न रहता है; परिणाम स्वरूप (उसके राज्य में) भय, अशांति, उपद्रव, अत्याचार, विश्वासघात और चोरी का बाज़ार गर्म होता है।

राजत्व, अनुपम न्यायकारी ईश्वर का प्रकाश, विश्वभास्कर सूर्य[1] का आलोक, सिद्ध-शास्त्रों की सूची और सर्व गुणों की खानि है। प्रचलित भाषा में इस प्रकाश को **फ़र्र-इ-एज़दी** (ईश्वरीय तेज) कहते हैं, और पुराने लोगों की बोल चाल में **कियान ख़ोरा** (अत्युत्कृष्ट दीप्त मंडल)। मनुष्य बिना किसी विचवानी के कहे सुने बादशाह की सहायता करने में अपना हाथ लगा देते हैं और सब लोग उसके दर्शन करते ही अपनी वन्दना का मस्तक उसकी सेवा-भूमि पर झुका देते हैं। इसके अतिरिक्त उससे अनेक श्रेष्ठ गुण प्रकट होते हैं। **१–मानव पितृत्व**–भांति भांति के मनुष्य उसकी कृपा से सुख पाते हैं; सम्प्रदायों के विरोधी होने पर भी द्वेष की धूल नहीं उठती। श्रेष्ठबुद्धि शासक समय का हृदय पहिचानता है और उसके अनुकूल आचरण करता है। **२–हृदय विशालता** बुरी बातें देखकर वह भड़क नहीं उठता, और अज्ञान का उपद्रव उसके चित्त को फांस नहीं लेता। शूरता उसके पैर जमा देती है। ईश्वर प्रदत्त धीरता से, उसकी अपराधी को दंड देने की शक्ति, प्रौढ़ हो जाती है, और दोषी की भीषणता उसे उसकी पूर्ति (दंड देने) से नहीं रोकती। उसकी उदारता से छोटे बड़े अपना मनोरथ सिद्ध करते हैं और किसी की अभिलाषा प्रतीक्षा की तंग गली में पड़ी नहीं रहती। **३–दिन दिन ईश्वर विश्वास वृद्धि**—प्रत्येक काम करने में, वास्तविक कार्यकर्ता ईश्वर को जानता है और इसी से कारणों के विरुद्ध होने पर भी व्यग्र नहीं होता। **४–ईश्वरोपासना**—कार्य की सफलता से असावधान नहीं होता और असफलता उसे भिक्षा वृत्ति के लिए व्यग्र नहीं करती। इच्छा की बाग डोर का सिरा बुद्धि के हाथ में रखता है और वासनाओं की चौड़ी सड़क पर उतावली से नहीं दौड़ता तथा अनावश्यक पदार्थों के उद्योग में अपना मूल्यवान समय नष्ट नहीं

---

१ अकबर सूर्य को ईश्वर का दृश्यमान प्रतिनिधि मानता था और इसी लिए उसकी उपासना करता था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

करता। वह, निरंकुश अन्ध-क्रोध को ज्ञान के अधीन रखता है और अन्ध-कोप को बलात् नहीं उठने देता तथा हलकेपन को अटकल से बाहर नहीं होने देता। वह मेल के शिखर पर विराजमान होता है। कुटिलों को सुमार्ग पर वापस लाने का साधन बनता है तथा उनकी निर्लज्जता का पट फटने नहीं देता है (अर्थात् उनके कुकर्म जनता के सम्मुख नहीं आने देता)। न्याय करने में वह अपने को ऐसा ज़ाहिर करता है कि मानों वह स्वयम् तो प्रार्थी है और वादी ही, न्यायकारी है। इच्छुकों को प्रतीक्षा के पथ पर नहीं बिठलाता। सृष्टिकर्ता के आज्ञापालन में सृष्टि की समृद्धि चाहता है। लोगों को प्रसन्न करने के लिए बुद्धि के विरुद्ध आचरण नहीं करता। वह सदा सत्यवादियों की टोह में रहता है, और उनके कड़ुवे मालूम होने वाले बचनों से, जिनका फल मीठा हो, असन्तुष्ट नहीं होता। वक्ता की श्रेणी और उसकी सूक्ति कोटियों पर ध्यान रखता है। इसी पर सन्तोष नहीं करता कि स्वयं अत्याचार न करे, वरन् वह चाहता है कि उसके राज्य भर में कहीं अन्याय न हो।

वह सदा संसार-शरीर की स्वास्थ्य रक्षा का ध्यान रखता है और उसके नाना प्रकार के रोगों का उपचार करता है। जैसे तत्वों के सम्मिश्रण से प्राणियों का प्राकृतिक-सामंजस्य उत्पन्न होता है, उसी प्रकार वर्गों की तुल्यता से मनुष्यों के हृदयों में अनुकूलता उत्पन्न हो जाती है; और एक मनोवृत्ति तथा एक पक्षता के प्रकाश से बहुत से लोग एक देह हो जाते हैं।

संसार के मनुष्य चार वर्गों से अधिक नहीं होते:—१—**योद्धा**—ये संसार शरीर में अग्नि के तुल्य होते हैं। इस समूह की सकोप बुद्धि-ज्वाला से दुर्भागी उपद्रवियों की षड़यंत्र रचना का कूड़ा-करकट भस्म हो जाता है[1] और उपाधि-मय जगत में सुख का दीपक जलता है। २—**शिल्पकार तथा व्यापारी**—ये वायु के स्थान पर हैं। इस समुदाय की कार्य परायणता तथा पृथ्वी पर्यटन से सार्व-भौमिक ईश्वरीय प्रसाद उपलब्ध होता है और आनन्ददायिनी वायु जीवन के गुलाब-वृक्ष को बढ़ाती है। ३—**विद्वान**—जैसे दार्शनिक, वैद्य, गणितज्ञ, रेखागणित-विशारद और ज्योतिषी, ये जल के समान हैं। इस सचेत वृन्द की लेखनी और बुद्धि-सरितों से, संसार के दुर्भिक्ष काल में जल उमड़ आता है और सृष्टि-उद्यान को उसकी सिंचाई से विशेष शीतलता प्राप्त होती है।

१—यह विवरण "शाहनामा", "अख़लाक़े-मोहिसनी", "अख़लाक़े-जलाली" और "अख़लाक़े-नासिरी" में भी विद्यमान है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

४–कृषक और श्रमजीवी—यह वर्ग पृथ्वी के सदृश है। इन्हीं के उद्योग से जीवन की सामग्री पूरी होती है और इन्हीं के परिश्रम करने से बल और सुख प्राप्त होते हैं। अतएव शासक के लिए आवश्यक है कि वह इनमें से प्रत्येक को उपयुक्त स्थान पर लगाकर संसार को समृद्धशाली बनाने में दत्तचित्त हो और प्रत्येक का उसकी कार्यपटुता के अनुसार सम्मान करे। इसका परिणाम यह होगा कि संसार की आपदाएं नष्ट हो जांयगी और सृष्टि का संयोग समता पर हो जायगा।

जैसे लोक शरीर मनुष्यों के चार वर्गों से समता—सौन्दर्य प्राप्त करता है, उसी प्रकार राज्य की पवित्र मूर्ति भी चार प्रकार के श्रेणी भेद द्वारा, सुप्रबन्ध का उबटन अपने मुखमण्डल पर मलती है :—

१–राज्य के श्रीमन्त—जो अपने सामर्थ्य पर विश्वास करके प्रत्येक कार्य उत्तमता से संचालित करते हैं। रणस्थल को उत्सर्ग के सुकीर्ति-प्रदीप्तमण्डल से प्रकाशित करके प्राणाहुति देने से नहीं हिचकते। आतङ्क-पूर्ण राजसभा के ये भाग्यवान पुरुष अग्नि के स्थान पर हैं, हृदय-प्रकाशक भी और शत्रु-दाहक भी। इस वर्ग का अध्यक्ष **वकील** है, जो अपनी बुद्धि की प्रखरता से सद्भक्ति[१] के चार पदों पर पहुँच कर मुल्की और माली नायब होता है। पवित्र मन्त्रणा-सभाएं उसके ज्ञान के प्रकाश से प्रदीप्त होती हैं और राज्य के महान कार्य उसी की सूक्ष्म दृष्टि से दुरुस्ती पाते हैं। पद-वृद्धि, पदच्युत्ति, नियुक्ति और पृथक्ता उसके मतानुसार होते हैं। उसे ज्ञानवान, चिन्ताशील, उच्च-साहसी, पीठ पीछे भलाई कहने वाला, धीर, उदाराशय, मिलनसार, प्रफुल्लवदन, अपने और पराये के साथ एकसी वृत्ति रखने वाला, मित्र और शत्रु से सम व्यवहार करने वाला, तुली बात कहने वाला, समस्याएं सुलझाने वाला, सत्यवादी, प्रतिष्ठित, गंभीर, सम्मति लिए जाने योग्य, विश्वासपात्र, चतुर, दूरदर्शी, राज-काज विज्ञ, राज-रहस्य-ज्ञाता, काम न रोक रखने वाला, कार्य की अधिकता से न ऊबने वाला होना चाहिये। दूसरों के मनोरथ पूरे करने में एहसान अपने ऊपर रक्खे, और लोगों के पद-ज्ञान का ध्यान रख कर कार्य संचालन करे। सब से दिल मिलाने को प्रिय समझ कर अपने से छोटों का

---

१ अकबर कहा करता था कि पूर्ण सद्भक्ति (इख़लास) निम्नलिखित चार चीज़ों के त्याग पर निर्भर है—जान, माल, दीन और वैयक्तिकमान। जो अकबर को आध्यात्मिक बातों का भी पथ प्रदर्शक मानते थे, उनको उक्त सद्भक्ति प्रकट करने का बचन देना पड़ता था। उसके बाद वे दीन इलाही में सम्मिलित किये जाते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्मान करे। अनुपयुक्त बातें न करे और कुकर्मों से अपने को बचाये। यद्यपि वह दफ़्तर का स्वामी नहीं होता तथापि दफ़्तरों के अध्यक्ष उससे सम्पर्क रखते हैं, और वह दूरदर्शिता से आवश्यक बातों की सूची अपने पास रख लेता है। **मीरमाल**[१], **मोहरदार**[२], **मीरबख़्शी**[३], **बारबेगी**[४], **क़ोरबेगी**[५], **मीरतुज़क**[६], **मीर बह्र**[७], **मीर बर्र**[८], **मीर मंज़िल**[९], **ख़्वान सालार**[१०], **मुंशी**[११], **क़ोशबेगी**[१२], **अख़्ता बेगी**[१३], इस वृन्द में सम्मिलित हैं। इनमें से हर एक को चाहिये कि दूसरे का काम जाने।

२ विजय के सहायक—धनादि संचय कर्ता तथा आय-व्यय विभाग के रक्षक—शासन-शरीर में वायु के सदृश हैं, चित्त पोषक मन्द वायु भी और प्राण-घातक लूक भी। इस वर्ग का प्रधान **वज़ीर** होता है, इसे दीवान भी कहते हैं। वह सम्राट का माली नायब होता है। राजकोषों की रक्षा करना और हिसाब-किताब का प्रबन्ध रखना उसके कार्य हैं। लोग उसको राजकर के धन का सर्राफ़ और उजड़े हुये संसार का आबाद करने वाला समझते हैं। उसे ईश-सेवक[१४], उत्तम गणितज्ञ, निर्लोभी, सावधान, परम मित्र, संयमी, कार्य-साधक, कुशल निबंधकार, स्पष्ट लेखक, सत्यवादी, सत्यशील, शिष्ट एवं परिश्रमी होना चाहिये। वह आय-व्यय विभाग का प्रधान अधिकारी है। मुस्तौफ़ी (नायब दीवान) के कार्य में जो कठिनाई उपस्थित होती है, उसकी दूरदर्शिता से दूर

---

१ सम्भवतः सम्राट् के जेब ख़र्च का हिसाब रखने वाला अधिकारी (ब्लाकमैन) परन्तु नवलकिशोर की मूल पुस्तक में 'दारोग़ाय खज़ायन' अर्थात् कोषों का अध्यक्ष अर्थ है।

२ शाही मोहर रखने वाला।

३ वेतनाध्यक्ष।

४ जो दरबार में लोगों को सम्राट् के सम्मुख उपस्थित करे और उनकी अर्ज़ियां सुनावे इसे मीर अर्ज़ भी कहते हैं।

५ शाही अस्त्र-शस्त्रों और निशानों का प्रधान अधिकारी।

६ समस्त रीति रिवाजों और पर्वादि का अध्यक्ष। (ब्लाकमैन) शाही उत्सवों, दरबारों तथा लश्करों का प्रबंधक एवं सरदार (न० कि०)।

७ बंदरगाहों का अध्यक्ष।

८ शाही जंगलों का अध्यक्ष।

९ दरबार अथवा शयनागार का प्रधान प्रबन्धक।

१० भोजनालयाध्यक्ष।

११ बादशाह का मोहर्रिर।

१२ शिकार ख़ाने का दारोग़ा।

१३ अस्तबलों का प्रधान अधिकारी।

१४ दीन इलाही का सदस्य (ब्लाकमैन) मूल में "इलाहीबन्दा" पाठ है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हो जाती है; और जो समस्या उससे भी नहीं सुलझती वह वकील के सामने हल होजाती है। **मुस्तौफ़ी**[१], **साहबे-तौजीह**[२], **अवारज़ा-नवीस**[३], **मीर सामान**[४], **नाज़िरे-ब्यूतात**[५], **दीवाने-ब्यूतात**[६], **मुशरिफ़े-मंजूर**[७], **वाक़या-नवीस**[८], **आमिले-ख़ालसा**[९] उसके अधीन हैं। ये सब अधिकारी वज़ीर के बुद्धिबलानुसार कार्य करते हैं। कुछ शासक वज़ारत को वकालत का एक अंग मानते हैं और राज्य मंदिर के इन दो स्तम्भों के कार्यों को ऐसे एक ही व्यक्ति से कराते हैं, जो दोनों विभागों के श्रेष्ठ कार्यों को जानता हो। कभी वकील के दुष्प्राप्य होने पर, एक ऐसे व्यक्ति को, जिसमें उसके (वकील के) गुण पाये जाँय, **मुशरिफ़े-दीवान** बनाते हैं। उसका पद दीवान से ऊँचा और वकील से नीचा होता है।

३–**संगी साथी**—जो अपने ज्ञान के प्रकाश, तीव्र-दृष्टि की आभा, काल-ज्ञान के सामर्थ्य, मानवीय प्रकृति की भीतरी परख की अधिकता, निष्कपटत्व और ओजस्वी भाषण से राज सभा को भूषित करते हैं; और अपने धार्मिक विश्वास तथा शुभ चिन्ता की विशेषता से राज्य के बाज़ार में सद्गुणों के सहस्रों भाण्डार खोल देते हैं। विशुद्धमत और यथार्थ विचार द्वारा, वे कलह पूर्ण जगत में तृष्णा का अवरोध करके क्रोध की चिनगारियों को, अपनी चतुराई की वर्षा से बुझा देते हैं। लोगों ने इस सौभाग्यवान वृन्द को राज्य-शरीर में जल का स्थान दिया है। जब ये लोग शुद्ध-हृदय होते हैं तो मनुष्यों के चित्त से वैर और कपट की धूल मिटा देते हैं, जिससे सभा-उद्यान नवीन और हरा-भरा होजाता है। परन्तु यदि ये समता की सीमा उल्लंघन कर जाते हैं तो संसार को आपत्तियों के प्रलय-प्रवाह में डुबो देते हैं, और सभी चराचर आपदाओं की बाढ़ से, विनाश की धारा में पड़ जाते हैं। इस वर्ग का अध्यक्ष हकीम[१०] है। जो अपने ज्ञान और कर्म की सहायता से अपने चरित्र की सभ्यता प्रदर्शित करके संसार के सुधार में कटिबद्ध

---

१ नायब दीवान, जो दफ़्तर का अध्यक्ष होता है।

२ सेना का हिसाब रखने वाला।

३ सम्राट का दैनिक व्यय-लेखक।

४ दरबार के सामान का अधिकारी।

५ शाही कारख़ानों का अध्यक्ष।

६ शाही कारख़ानों का हिसाब रखने वाला।

७ मोहर्रिर (ख़ज़ांची का)

८ घटनाओं का प्रधान लेखक।

९ ख़ालसा भूमि का प्रधान अधिकारी।

१० तत्ववेत्ता, दार्शनिक।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होता है। **सद्र**[१], **मीर अद्ल**[२], **क़ाज़ी**[३], **तबीब**[४], **मुनज्जिम**[५], **शायर**[६], **रम्माल**[७] और इसी प्रकार के लोग इस समुदाय में रहते हैं।

४—**सेवक**—जो राज दरबार में सम्राट् की सुश्रूषा के लिए आवश्यक होते हैं। संसार की राज-व्यवस्था में यह समुदाय पृथ्वी के स्थान पर है। ये लोग परिचर्या के राजमार्ग में पड़े रहते हैं और सम्राट् के निकटवर्ती-भयस्थान के तुच्छ रजःकण होते हैं। यदि ये छल छिद्र से रहित होते हैं तो शरीर के लिए पौष्टिक रस का काम देते हैं, अन्यथा मनोरथ के मुखमण्डल पर धूल हो जाते हैं। **ख़वास**[८], **क़ोरची**[९], **शरबत दार**[१०], **आबदार**[११], **तोशकची**[१२], **करकराक़**[१३] तथा ऐसे ही और लोग इस वर्ग की लड़ी में पिरोये हुये हैं। जब प्रारब्ध और सौभाग्य से ये सेवक गण आपस में मिल जाते हैं तो राज्य-उद्यान गुलदस्ता बन जाता है। राजा, जिस प्रकार लोक शरीर को श्रेणीबद्ध करके सुव्यवस्थित करे, उसी प्रकार राज्य-मूर्ति को भी इन चार वर्गों के सुधार द्वारा सुप्रबन्ध से सुशोभित करे।

प्राचीन काल के बुद्धिमान वर्ग ने शासन के चार मुख्य अधिकारियों का इस प्रकार उल्लेख किया है :— पहला कर्मशील **आमिल**[१४] जो कृषकों का रक्षक, प्रजा की चौकसी रखने वाला, देश की उन्नति करने वाला और कोष की पूंजी बढ़ाने वाला हो। दूसरा **तीमार दारे-सिपाह**[१५] जो बिना एहसान जताये काम पूरा करने वाला हो। तीसरा **मीरदाद**[१६] जो तृष्णा और स्वार्थपरता से रहित होकर सूक्ष्मदर्शिता और दूरदर्शिता के शिखर पर विराजमान हो, और केवल साक्षी और शपथ पर निर्भर न रह कर, तरह तरह की पूंछताछ करके लक्ष पर पहुँच जाय।

१—इसे सद्र-इ-जहां भी कहते हैं। प्रधान विचार-पति तथा प्रधान-शासक।

२—३ काज़ी न्याय करता है और मीर-अद्ल सज़ा का हुक्म देता है।

४—वैद्य।

५—गणित ज्योतिष का विद्वान।

६—कवि।

७—फलित ज्योतिषी।

८—सम्राट को भोजन कराने वाला।

९—रक्षा वर्ग का शस्त्रधारी प्रधान सेवक।

१०—११ शरबत और पानी के प्रधान सेवक।

१२—१३ वस्त्रालय और बिछौने के प्रधान सेवक।

१४—कलेक्टर और मजिस्ट्रेट।

१५—सेना की रक्षा करने वाला, सेनापति।

१६—न्यायाधीश।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चौथा **जासूस**[1] जो वर्तमान समय की घटनाओं के संवाद, बिना घटाये बढ़ाये पहुँचा दे आर सत्यता एवं दूरदर्शिता के गुण को हाथ से न छोड़े।

न्यायी राजा के लिए आवश्यक है कि वह मानव-परीक्षा के आसन पर बैठे, और पांच प्रकार के मनुष्यों को—जिनमें संसार के सब मनुष्य आजाते हैं—पहचान लेवे और फिर बुद्धि के अनुसार व्यवहार करे। १-सैर्व श्रेष्ठ वह **बुद्धिमान मनुष्य** है जो समय की परम आवश्यक उपयोगिताओं को अपने ज्ञान से काम में लावे, और जिसके सद्गुणों का सोता केवल उसी की गली में घुसा न रह कर दूसरों की खेती बारी को भी हराभरा बनाये। केवल ऐसा शुद्ध व्यक्ति सम्राट् को परामर्श देने और राज्य संभालने के योग्य है। २-इसके बाद **शुभ चिन्तक** है, जिसके सत्कर्मों की सरिता उसकी गली से बाहर न जाय और दूसरों के जल-प्रदान का साधन न बने। यद्यपि ऐसा व्यक्ति दया और प्रतिष्ठा के योग्य है, परन्तु विश्वास पात्रता जैसे उच्च पद का अधिकारी नहीं है। इससे निकृष्ट **भोला भाला** है, जिसकी कर्म-भुजा पर भलाई के चिह्न नहीं होते, पर बुराई तथा बुरे कर्मों की धूल से भी जिसका अंचल सौंदा नहीं होता। यद्यपि वह मान पाने योग्य नहीं है, तथापि सुख की छाया में बैठने का अधिकारी है। ४-इस से निकृष्टतर **सुषुप्त-भाग्य** है, जिसके घर में विनाश की सामग्री के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता, किन्तु जनता उसके कष्ट से मुक्त होती है। समय का शासक, उसको निराशा के तप्त स्थान में रखकर, श्रेष्ठ उपदेशों, ग्लानि पूर्ण धिक्कारों तथा उचित ताड़नाओं द्वारा सतपथानुगामी बनावे। ५-**अधमाधम** वह दुष्टप्रकृति है, जिसके पाप कर्म दूसरों के पापों को बढ़ाने वाले हैं, और जिसकी दुष्टता से सम्पूर्ण जगत दुःख में हो। यदि पूर्व रोगियों का उपचार दुष्ट-प्रकृति के लिए हितकर सिद्ध न हो, तो राजा उसको कोढ़ियों के समान पृथक् रखकर नागरिकों से उसे मिलने न दे। यदि इस हृदय विदारक दंड से उसकी घोर अज्ञान निद्रा भङ्ग न हो, तो उसको शोक के शिकंजे में कसकर घर से बाहर निकाल दे। यदि उसके नष्ट स्वभाव के लिए यह औषधि भी लाभदायक सिद्ध न हो, तो राजा उसको राज्य से बाहर कर दे और निराशा-वन में भटकने दे। यदि यह उपाय भी उसकी पापमय प्रकृति को लाभ न पहुँचावे, तो उसकी दुष्टता के साधनों—नेत्रों से दृष्टि और हाथ पैर से बल खींचले (अर्थात् अन्धा करदे या

१—भेदिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
हाथ पांव काट दें)। परन्तु राजा को चाहियें कि उसके जीवन का ताना बाना तोड़ने (प्राण लेने) का साहस न करे; क्योंकि बुद्धिमान मनोविज्ञानियों ने मानव शरीर को ईश्वरीय मन्दिर समझ कर उसको नष्ट करने की आज्ञा नहीं दी है।

अतएव न्यायप्रिय राजा के लिए आवश्यक है, कि अपने अनुभव और सूक्ष्म दृष्टि के प्रकाश से, मनुष्यों के पद पहचान कर, कार्य संचालन करे। और इसी लिए प्राचीन काल के ज्ञानार्जकों ने कहा है कि अग्रशोची, तेजपुञ्ज शासक हर छोटे आदमी को नौकर नहीं रखते; और जिनको इस काम के लिए स्वीकार कर लेते हैं, उन नौकरों में से हर एक को नित्य प्रति सामने आने का अधिकारी नहीं समझते; जिनको सामने आने की आज्ञा होती है, उनमें से हर एक को अपने बिछौने के पास आने के योग्य नहीं जानते। निकट जाने के अधिकारी व्यक्तियों में से हर एक आमोद-प्रमोद सभा में पदार्पण नहीं करने पाता। उपरोक्त श्रेणी का प्रत्येक पदस्थ (आमोद-प्रमोद सभा में जाने वाला) प्रतिष्ठित सभा में प्रवेश के योग्य नहीं होता। जो व्यक्ति इस सौभाग्य द्युति से प्रकाश प्राप्त करते हैं (महती सभा में जा सकते हैं) उनमें से हर एक गुप्त-समिति में नहीं जा सकता; और इस विज्ञता-समिति का प्रत्येक सौभाग्यवान व्यक्ति, राजकीय विषयों पर विचार करने वाली गुप्त राष्ट्रपरिषद में स्थान नहीं पाता।

ईश्वर को धन्यवाद है, कि हमारे समय का सम्राट् उपरोक्त उत्तम गुणों से ऐसा अलंकृत है, कि यदि उनको इन सब का सर-इ-दफ़्तर कहें तो अत्युक्ति न होगी। वह अपने ज्ञान के प्रकाश से, मनुष्यों के पद पहचान कर उनके पुरुषार्थ का दीपक जलाता है, और बिना किसी प्रकार की कठिनाई के प्रसन्न वदन अपने ज्ञान को कर्म-सौन्दर्य से विभूषित करता है। किसकी सामर्थ्य है कि वाक्शक्ति की गुनियां[1] से, उसके आध्यात्म जगत की अग्रगण्यता[2] एवं पवित्र—विस्तीर्ण मार्ग की कार्य पटुता का अनुमान कर सके; और यदि कुछ हाल वर्णन किया जाय और कोई भेद दर्शाया जांय तो श्रोता सुनने का बल कहाँ से लाये और समझने की शक्ति किससे मांगे। तो मेरे लिए यही अच्छा है कि मैं इस प्रयत्न से अपने को हटा लूं और उसके वाह्य जगत की कुछ विलक्षणताएं चित्रित करने पर सन्तोष करूं। अतः मैं उसके **शाला विभाग** की नीति, **सेना विभाग**

---

१ बढ़ई का एक ख़ास औज़ार जिससे वे लकड़ी की ठीक २ नाप करते हैं।

२ अकबर दीन इलाही मत का प्रवर्त्तक था। उसने अनुयायियों को जो चमत्कार दिखलाये थे, उनमें से कुछ का उल्लेख इस ग्रंथ के ७७ वें आईन में है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के नियम और **साम्राज्य विभाग** की व्यवस्था—क्योंकि राज्य के कारख़ाने की सभी बातें इन्हीं तीन विभागों के अन्तर्गत हैं—वर्णन करता हूँ; और कर्मण्य अन्वेषकों के लिए एक भेंट तैयार करता हूँ; जिसका प्रत्येक क्लिष्ट मालूम होने वाला अंश सरल, और आसान मालूम होने वाला भाग कठिन है।

अनुभवी कार्यशील एवं प्राचीनकाल के इतिहासज्ञ इस चिंता में हैं कि पूर्वकालीन शासकों ने, बिना इन सुबोध विधानों के, राज-कार्य को कैसे सुव्यवस्थित किया और राज्य-उपवन बिना इस ज्ञान-स्रोत की सिंचाई के कैसे हरा भरा रहा। इन्हीं कारणों से यह उत्कृष्ट ग्रन्थ तीन प्रकार की नीतियों से परिष्कृत किया गया, और मेरे साथ जो उपकार किये गये हैं उनके लिए इस पुस्तक के द्वारा कुछ कृतज्ञता प्रकट की गई है।

लोगों[1] की जानकारी के लिए कुछ हिन्दी शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। उनके उच्चारण की सुविधा के लिए मात्राएं लिखदी हैं। इससे अन्वेषी कष्ट न उठायेंगे और शुद्धोच्चारण में गड़बड़ी भी न होगी। अलिफ़, लाम और इसी प्रकार के अन्य वर्णों के नाम लिख कर भ्रम का मोर्चा घिस दिया है। कुछ को मनक़ूता (बिन्दु वाला) लिख कर स्पष्ट कर दिया है। समाकृति वर्णों को सामान्य रीति से बयान किया है। वे अक्षर जो केवल फ़ारसी भाषा के थे, फ़ारसी शब्द से आबद्ध करके न्यारे कर दिये, जैसे पदीद शब्द की बे, चमन की जीम, निगार की काफ़ और मुज्हदा की ज्हे। कभी उच्चार्यमाण अक्षर पर, तीन बिन्दु लगाकर भेद प्रगट कर दिया है। जो वर्ण फ़ारसी भाषा में नहीं हैं, उनको हिन्दी अक्षर कह कर सन्देह दूर कर दिया। ऐसे अक्षरों का अन्तर, जैसे रूए में ये और दस्त में ते है क्रमशः तहतानी और फ़ौक़ानी लिखकर प्रकट कर दिया है। अदब की बे का प्रयोग प्रायः स्पष्ट होता है, अतएव मैंने उसे केवल बे लिखा है। नून, वाव, याय तहतानी, और हे में से प्रत्येक वर्ण को, जो जहां पर जिह्वा से योंही स्पष्ट उच्चारित हुये हैं, बिना किसी बन्धन के लिखा है। नून, जो नाक के सहारे बोली जाती है—जैसे जां की नून—नून-इ-ख़फ़ी या नून-इ-पिनहां कह कर भिन्नता प्रकट करदी है। कुछ अक्षर ऐसे हैं, जो लिखे जाते हैं, पर बोले नहीं जाते—जैसे फ़रख़न्दा

---

१ यह पैरा केवल फ़ारसी भाषा-भाषियों के लिए उपयोगी है। मूल ग्रन्थ में प्रायः अनेक शब्दों को इस पैरे में बतलाए हुये नियमों से स्पष्ट किया गया है। अनुवादक।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
को है—उनको मकतूबी बयान किया है। पेश और ज़ेर, जिनका भेद अप्रकट है, मफ़ूल शब्द से आबद्ध करके उच्चारण स्पष्ट कर दिया है। अलिफ़ के पूर्व वर्ण में ज़बर अवश्य होता है और मख़फ़ी भी साकिन होता है, इस लिए उसे किसी मात्रा से आबद्ध नहीं किया है।

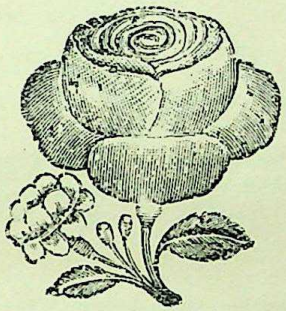

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

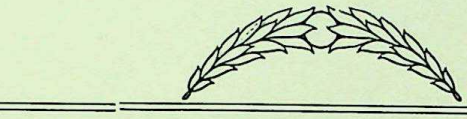

प्रथम ग्रन्थ

राजकीयशालाओं का वर्णन ।

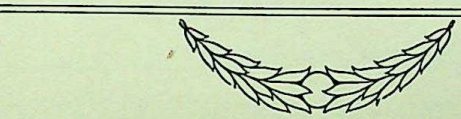

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रथम ग्रन्थ।

राजकीयशालाओं का वर्णन।

आईन[1] १

राजकीयशाला।

उच्च विचारशील और महत्वाकांक्षी वह व्यक्ति है, जो सृष्टि के सभी परमाणुओं को, विना किसी को विशेषता दिये, ईश्वरीय शक्ति की विचित्रता के आविर्भाव का स्थान जाने, और तदनुसार ही अपना भीतरी और बाहरी आचरण बनाये तथा बुद्धिमानी से अपने और परायों का समुचित सम्मान करे। यदि उसको ये गुण प्राप्त न हों, तो उसके लिए आवश्यक है कि वह संसार के लड़ाई झगड़ों में न पड़े और शान्ति-पथ ग्रहण करे। यदि वह विरक्त हो तो निज को श्रेष्ठ गुणों से अलंकृत करे; और यदि गृहस्थों में से हो तो उसके प्रबन्ध में आसक्तों की तरह दत्तचित्त हो और निर्लिप्त-भाव से जीवन-निर्वाह करे।

प्रतिष्ठा, चाहे आध्यात्मिक हो अथवा लौकिक, छोटे-बड़े कार्यों को करने से नहीं रोकती; वरन् उनके करने को वह विश्वनिर्माता न्यायकारी की श्रेष्ठ उपासना समझती है[2]। यदि वह स्वयम् अपने सब काम न कर सके, तो उसको चाहिये कि तीव्र सूक्ष्म दृष्टि और यथार्थ अनुभव द्वारा एक दो ऐसे मनुष्यों को

१—मूल-ग्रन्थ में "आईने-मंज़िल आबादी" पाठ है, जिसका अर्थ राजकीय शालासमृद्धि का "आईन", होता है। पाठकों की सुविधा के लिए, ब्लाकमैन के (अनुबाद के) अनुसार आईनों का वर्गीकरण संख्या-क्रम से किया गया है, और "आईने-मंज़िल आबादी" का भावार्थ दो भिन्न शीर्षकों द्वारा प्रकट किया गया है।

२—अकबर इस वाक्य को बहुधा कहा करता था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चुन ले, जो चतुर, बुद्धिमान, धार्मिक और साम्प्रदायिक एवं जातिगत मामलों में निष्पक्ष, हृदय-पारखी तथा उद्योगी हों, और उनकी निगरानी पर काम छोड़ दे।

जो शासक बड़े कार्यों के अतिरिक्त और कुछ नहीं करता, बुद्धिमान उसकी गणना राजाओं में नहीं करते। यद्यपि कुछ निष्पक्ष न्यायाधीश, सांसारिक माया से कीले हुये ऐसे शासक को, ऐसे काम करने पर, क्षम्य मानते हैं; क्योंकि अधिकतर अर्थ-लोलुप चाटुकार—जो धूर्तता से अपने को सज्जनों में शामिल कर लेते हैं—पद-भेद की बातें बनाते हैं,[1] और बाह्य आडम्बर के प्रेमी शासकों को (प्रमाद निद्रा में) सुला देते हैं; उनकी केवल यही आकांक्षा रहती है कि स्वयम् लेन-देन की दूकान सजालें और अपना घर भरलें। भाग्यवान शासक छोटे और बड़े मामलों में भेद नहीं मानते; वे ईश्वरानुमोदित सहायता से लोक परलोक का भार अपने साहस के कन्धे पर रखते हैं और निश्चिन्त और निर्लिप्त रहते हैं, जैसा कि हाल हमारे समय के बादशाह का है। वह अपनी ज्ञान विचक्षणता से शालाओं (कारखानों) की समृद्धि में—जो कि लोक रक्षा की पहली सीढ़ी है, और जिन पर अगले शासक[2] अपने बड़प्पन के कारण बहुत कम ध्यान देते थे—चित्त लगाता है, और प्रत्येक स्थान के लिए उपयुक्त नियम निर्धारित करता है। और अपने इस कर्तव्य-पालन को अद्वैत न्यायकारी के कृपा-भाजन होने का साधन समझता है।

इस अद्भुत कार्य की सफलता दो बातों पर निर्भर है :—प्रथम, ज्ञान और सूक्ष्म दृष्टि के द्वारा, लोकोपकारी राज-आज्ञाओं को पवित्र हृदय मन्दिर से तैयार करके अस्तित्व-सभा में लाना; दूसरे, सत्प्रकृति और प्रयत्नशील व्यक्तियों को उन्हें सौंपकर उनके कार्यान्वित होने का ध्यान रखना।

यद्यपि शालाओं के बहुत से कर्मचारी सेना-विभाग में वेतन पाते हैं

१—अर्थात् कहते हैं कि यह कार्य छोटा है, राजा के करने योग्य नहीं।

२—हिन्दुओं के इस समय तक के प्राप्त इतिहास में, जिन राजाओं ने शाला-विभाग पर अत्यधिक ध्यान दिया और उस को उन्नति के शिखर पर पहुँचाया, उनमें सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आज से लगभग २५०० वर्ष पूर्व उसके शासन-विधान "कौटिल्य का अर्थ शास्त्र" को देखकर आश्चर्य होता है। मेगस्थनीज़ के साक्ष्य से भी इस बात की पुष्टि होती है। इतिहासकार विन्सेण्ट-स्मिथ ने मौर्य-शासन की प्रशंसा करते हुये उसके सुसंगठित होने का सारा श्रेय चन्द्रगुप्त मौर्य तथा उसके मंत्री चाणक्य को ही दिया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथापि सन् ३६ इलाही[१] में इस (शाला) विभाग का व्यय तीस करोड़ इक्यानवे लाख, छियासी हज़ार सात सौ पञ्चानवे दाम[२] था। इस राज्य का व्यय उसकी आय के अनुसार नित्य प्रति बढ़ता जाता है। सौ से अधिक कारख़ाने हैं, और उनमें से हर एक कार्यालय बड़े नगर के सदृश तो क्या, एक देश के समान है। सम्राट् के निरन्तर ध्यान देने से उनमें बढ़िया सामान रहता है और सदा बढ़ता रहता है। सौभाग्य और ग्रहों के प्रताप से जितनी जितनी सम्पत्ति बढ़ती जाती है, वात्सल्य और दयालुता की भी उतनी ही उतनी वृद्धि होती जाती है।

कुछ व्यवस्थाओं को भावी सत्यान्वेषियों के लिए, उपहार के तौर पर, निर्मित करता हूँ और इस प्रकार दूसरों में अपने ज्ञान और कर्म का दीपक जलाता हूँ। कुछ व्यवस्थाएं जो सामान्य प्रकार की हैं और विधान के तीनों विषयों[३] में सम्मिलित होने के योग्य हैं—मैंने उनका उल्लेख शालाओं के वर्णन में ही किया है।

आईन २।

राज कोष।

प्रत्येक सूक्ष्मदर्शी बुद्धिमान जानता है, कि समय की आपदाओं का हटाना और जनता के कष्टों का दूर करना, ईश्वर की सर्व श्रेष्ठ उपासना और सर्वोत्तम आराधना[४] है। ये दोनों बातें कृषी की उन्नति, राज-कार्यालयों की परिपूर्णता,

---

१—अकबर ने जो सन् इलाही (सौर-सम्वत्) चलाया था उसका आरम्भ १५ फ़रवरी सन् १५५६ ई० से होता है। इसके अनुसार सन् ३६ इलाही में ईसवी सन् १५६५ था।

२—अकबरी रुपया ४० दाम में चलता था। इस हिसाब से ३०,६१,८६,७६५ दाम, ७७२६६६६$\frac{७}{८}$ रुपये के बराबर होते हैं। आजकल के हिसाब से अकबरी रुपया= २ शिलिङ्ग ३ पेंस अंगरेज़ी=१॥।-) हिन्दुस्तानी के होता है। विनिमय की कमी बेशी के कारण रुपए की दर में भी कमी बेशी होती रहती है।

३—सम्पूर्ण ग्रन्थ तीन विषयों में विभाजित है, यथा १—शालाओं का वर्णन, २—सैन्य विभाग का वर्णन और ३—साम्राज्यशासन का वर्णन।

४—श्रीमद्भागवत् में भी कहा है कि सज्जन पुरुष संसार के कष्टों को दूर करने के लिए स्वयं कष्ट सहते हैं, अर्थात् स्वयं दुःख उठाकर लोकहित का साधन करते हैं। क्योंकि यह विश्वात्मा की सर्वोत्कृष्ट आराधना है। यथा—

तप्यन्ते लोक तापेन, प्रायशः साधवोजनाः।
परमाराधनं तद्धिः, पुरुषस्याखिलात्मनः॥

(श्रीमद्भागवत स्क० ८)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राज्य के प्रयत्नवान महारथियों की तत्परता और सेना की शुभ कार्यपरायणता पर निर्भर हैं। और उपरोक्त चारों बातें राजा के यथार्थ-विचार, जनता के पालन-पोषण, उत्तम धन के संचय और अन्तःकरण के आज्ञानुसार व्यय करने पर अवलम्बित हैं। इससे नागरिकों और ग्रामीणों के लिए जो बातें होनी चाहिये वे प्राप्त होती हैं, और उक्त दोनों समुदायों की सभ्यता और संस्कृति की पूर्ति होती है। अतएव न्यायी शासकों के लिए अनिवार्य है कि पहिली चीज़ों का संग्रह करें और पिछले समुदायों की रक्षा करें। कुछ लोग, जिस प्रकार विरक्त त्यागियों के लिए धन संचय करना एवं उसकी अधिकता की चिन्ता करना घृणित मानते हैं, उसी प्रकार वे, उनके विरुद्ध गृहस्थों के लिए उसका एकत्र करना आवश्यक समझते हैं। पर यह प्रलाप केवल वाह्यदर्शक अदूरदर्शियों का है, क्योंकि (विरक्त और गृहस्थ) दोनों ही, समय की आवश्यकता की पूर्ति के लिए दौड़-धूप करते हैं। दीन सन्तोषी, अपने भोजन वस्त्र के लिए इतनी पूंजी चाहते हैं, जिससे उनको ज्ञान-चिन्तन में बल मिल सके और शीतोष्ण से बचाव हो सके। दूसरे समुदाय का अलम् इस बात पर होता है कि कोष को धन से भरे, ऐश्वर्य की सामग्री एकत्र करे तथा अन्य कार्य सोचे।

उपरोक्त विचार से, जिस समय सम्राट् के ज्ञान चक्षु खुले और उसने गुरुतर कार्यों के सुप्रबन्ध में कुछ ध्यान देना आरम्भ किया, तो ख़्वाजासरा[1] एतमाद खां को परामर्श के योग्य समझ कर अपने हृदय का भेद बतलाया। उसके अनुभव-द्वारा सम्राट् की कुछ पवित्र हार्दिक इच्छा कार्य रूप में परिणित हुई, फिर उसमें क्रमशः उन्नति होती गई, और उसके उत्तम साधन उपस्थित होते गये। हर प्रकार की भूमि के कर की जांच की गई, और सत्प्रकृति अनुभवी व्यक्तियों द्वारा वह पड़ताल सफलता पूर्वक समाप्त हुई।

१—ख़्वाजासरा, रनिवास के प्रधान नपुंसक दास को कहते हैं। एतमाद शब्द का अर्थ विश्वास और भरोसा है। अगले समय में, रनिवासों में ऐसे दासों के रखने का चलन था। एतमाद ख़ां का असली नाम फूलमलिक था। सलीम शाह (१५४५—१५५३) की सेवा के उपलक्ष में उसको मुहम्मद ख़ां कि उपाधि मिली थी। उसके बाद वह अकबर की सुश्रूषा में लगा। जब अकबर के पालक-पिता शमशुद्दीन मुहम्मद अतगा ख़ां का देहान्त होगया, तो उसने (अकबर ने) अर्थ-विभाग पर ध्यान देना आरम्भ किया। जब उसे मालूम हुआ कि माल का मोहकमा चोर-घर बन गया है, तो उसने फूल मलिक को उसकी निगरानी के लिए नियत किया और एतमाद ख़ां की पदवी प्रदान की। इसके विशेष विवरण के लिए द्वितीय ग्रन्थ में मंसबदारों की सूची में नं० ११६ देखिए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ऐसी मार्मिकता के साथ—वह भूमि जिसमें अपने और पराये का अन्तर नहीं था—उसने ख़ालसा की ज़मीन से जागीर की ज़मीन पृथक् करदी। एक एक करोड़ दाम की मालगुज़ारी के लिए उसने एक एक परिश्रमी सत्यनिष्ठ अधिकारी नियत किया, और सहायता के लिए निर्लोभी वितक्ची (मोहर्रिर) साथ कर दिया तथा हर एक के लिए एक ईमानदार ख़ज़ांची मुक़र्रर किया। दयालुता और कृषकों की रक्षा के ख़्याल से, सम्राट् ने अधिकारियों को आज्ञा दी कि वे किसानों को ज़रे-ख़ालिस (पूरी तौल के सिक्के) अदा करने के लिए बाध्य न करें और जो कुछ भी वे दें उसके लिए मोहर लगा कर रसीद दे दें। इस उत्तम व्यवस्था द्वारा उसने अधिकारियों के भ्रम का मोरचा घिस दिया, और प्रजा ने नाना प्रकार के अत्याचारों से छुटकारा पाया। सम्पदा बढ़ गई और राज्य समृद्ध हो गया। जब माल (अर्थ) का प्रधान सोता साफ़ हो गया तो एक ईमानदार और परिश्रमी व्यक्ति प्रधान कोषाध्यक्ष के पद के लिये चुना गया, और एक दारोग़ा तथा एक मुहर्रिर उसकी सहायता के लिए नियत किये गये। दूरदर्शिता कार्य रूप में परिणित हुई और कार्य-संचालन के लिए नियम निर्धारित हुए। जैसे, जब प्रत्येक प्रान्तीय कोषाध्यक्ष के पास दो लाख दाम (५००० रु०) जमा हो जांय, तो राज दरबार में लाकर उस (प्रधान कोषाध्यक्ष) को सौंप दें, साथ ही धन के ब्योरे की सूची भी साथ लावें। **पेशकश**[1] जमा करने के लिए एक अलग ख़ज़ांची नियुक्त किया गया। लावारिसी माल (उत्तराधिकारी रहित-सम्पत्ति) के लिए एक और कोषाधीश नियत किया। **नज़्र** में आये हुए धन के लिए भी एक निपुण व्यक्ति रक्खा गया। तुलादान एवं दान पुण्य के रुपये देने के लिए एक और शुभ चिन्तक नियुक्त किया। अनेक प्रकार के व्यय के लिए उत्तम नियम बना दिये, और सत्यशील कार्याध्यक्ष, योग्य दारोग़े, ठीक लिखने वाले वितक्ची पृथक पृथक नियत किये। वार्षिक-व्यय का रुपया, जमा का

१—पेशकश का तात्पर्य उस नियत भेंट के धन से है, जो राज्य की अधीनस्थ जागीरें आदि, सम्राट् को अदा करती थीं। भारतवर्ष में इसी तथा ऐसे ही और अनेक नामों से बहुत दिनों तक कर वसूल किया जाता रहा है, यथाः—राज हक़, ज़ोर तलबी, सार्वदेश मुखी, खिचड़ी, कुदनी, घास दाना, पेशकश, और ख़िराज आदि। आजकल इनमें से कई राजकर बन्द हैं। देशी रियासतें जो कर भारत सरकार को देती हैं वह ख़िराज कहलाता है। पेशकश के नाम से अब भी कई राज्यों में कर लिया जाता है। जूनागढ़ राज्य को कई अधीनस्थ छोटे राज्य ज़ोर तलबी नामक कर देते हैं। गुजरात में एक दो राज्यों से अब भी खिचड़ी के नाम से कर लिया जाता है।

Lo-1/15A-D:

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ख़ज़ांची (प्रधान कोषाध्यक्ष) प्रत्येक ख़र्च के ख़ज़ांची को देता है और ठीक लिखा पढ़ी करके रसीदें आदि ले लेता है। हिसाब लिखने का तरीक़ा आसान होगया और राज्योद्यान हरा भरा हो गया। थोड़े ही समय में ख़ज़ाने भर गये, सेनाएं बढ़ गईं और कुटिल राजद्रोही आज्ञा-पथ के अनुगामी हो गये।

ईरान और तूरान में केवल एक ख़ज़ांची रहता है, इस से हिसाब-किताब में बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। परन्तु यहां माल और कार्य की अधिकता के कारण उपार्जित-द्रव्य के निरीक्षण के लिए बारह कोषाध्यक्ष नियत किये गये हैं; जिनमें से नौ तरह तरह की नगदी के लिए हैं, और तीन मणि मुक्ता, सोना और जड़ाऊ सामान जमा करते हैं। कोषों का परिमाण इससे कहीं अधिक है कि इस वृत्तान्त के साथ उसका भी उल्लेख किया जा सके। सम्राट्, अपनी गुण-ग्राहकता से, कार्यों के उपलक्ष में लोगों पर कृपा करता अथवा धिक्कारता है; इस लिए काम-काज में चहल पहल रहती है।

हर कारख़ाने के लिए एक अलाहिदा ख़ज़ांची नियत किया गया, और उनकी संख्या सौ के लगभग हो गई है। सावधान कार्य-अभिज्ञ, दिन दिन, मास मास, फ़स्ल फ़स्ल और साल साल के लेन-देन का हिसाब दुरुस्त रखते हैं; जिस से संसार का बाज़ार गर्म रहता है।

पुनः सम्राट् की आज्ञा से, सौभाग्यवान सत्यशील कर्मचारियों में से एक व्यक्ति, दरबार-आम में, सदा रुपये और मोहरें तैयार रखता है, जिस से बहुधा अभिलाषी प्रतीक्षा का बिना कष्ट उठाये सफल मनोरथ हो जाते हैं। एक करोड़ दाम राजभवन के आंगन में प्रस्तुत रहता है। एक एक हज़ार दाम टाट की थैलियों में भरे जाते हैं; ऐसी हर थैली को **सहसा** कहते हैं। इन थैलियों का ढेर **गंज** कहलाता है। इसके अतिरिक्त सम्राट् बहुतसा रुपया अपने ख़ासों[1] को सौंप देता है, जो समय कुसमय के लिए तैयार रहता है, और कुछ लोग **बहले** (थैली) में रखकर हाथ में लिए रहते हैं, इस कारण प्रचलित भाषा में उसको **ख़र्जे-बहला** कहते हैं।

ये समस्त कृपाएं, सम्राट् की अद्भुत उदारता और हर प्रकार से अपनी प्रजा को पालन करने के कारण से हैं। परमात्मा करे, वह हज़ार वर्ष जिये।

---

१ प्रतिष्ठा प्राप्त सम्राट् के ख़ास आदमी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आईन ३।

रत्न-कोष।

वह कितना है और कैसा है—यदि मैं यह वर्णन करने लगूं, तो बहुत समय लगेगा। अतः उसके सम्बन्ध में थोड़ा सा हाल लिखकर ज्ञान का बाज़ार सजाता हूँ और हर खलिहान से एक बाली उठाता हूँ।

सम्राट् ने इस विभाग के लिए एक बुद्धिमान, सन्तोषी और कार्यपरायण कोषाध्यक्ष नियत किया। और उसकी सहायता के लिए एक सद्प्रकृति एवं कार्यपटु वितक्ची, एक भाग्यवान और परिश्रमी दारोग़ा और कई चतुर जौहरी मुक़र्रर किये। उसने इन्हीं चार स्तम्भों के आधार पर इस बड़े कारख़ाने की बुनियाद रखी। इन्होंने हर कोटि के रत्नों को श्रेणी-बद्ध करके सन्देह का मल साफ़ कर दिया।

लाल—जिस लाल का मूल्य १००० मोहर से कम नहीं होता पहली श्रेणी में रखा जाता है; ९९९ से ५०० मोहर तक का दूसरी में; ४९९ से ३०० तक का तीसरी में; २९९ से २०० तक का चौथी में; १९९ से १०० तक का पाँचवीं में; ९९ से ६० तक का छठी में; ५९ से ४० तक का सातवीं में; ३९ से ३० तक का आठवीं में; २९ से १० तक का नवीं में; ९$\frac{३}{४}$ से ५ तक का दसवीं में; ४$\frac{३}{४}$ से १ तक का ग्यारहवीं में; $\frac{३}{४}$ मोहर से $\frac{१}{४}$ रुपए तक का बारहवीं में। लाल के इस से अधिक दर्जे नहीं रखे हैं।

हीरा[१]—पन्ना और लाल-नीले याक़ूत निम्नलिखित रीति से क्रमान्वित होते हैं:— पहली श्रेणी—३० मोहर से अधिक मूल्यवान; दूसरी श्रेणी—२९$\frac{३}{४}$ मोहर से १५ मोहर तक; तीसरी श्रेणी—१४$\frac{३}{४}$ से १२ तक; चौथी श्रेणी—११$\frac{३}{४}$

१—कोहनूर—अकबर के रत्न-कोष में जगत् प्रसिद्ध कोहनूर हीरे का साफ़ साफ़ पता नहीं चलता। यह उस समय किसी और नाम से पुकारा जाता होगा। इसके इतिहास के सम्बन्ध में लोगों के विभिन्न मत हैं। कोई कोई सज्जन तो इसे मूसली-पट्टम में गोदावरी के तट पर मिला हुआ बतलाते हैं और कहते हैं कि यह अंगराज कर्ण के पास था। किसी किसी का कहना है कि श्रीकृष्ण का कौस्तुभ मणि यही है और चलते चलते उज्जैन के राजा विक्रमादित्य के पास पहुँचा। ('विश्व कोश' तथा शब्द सागर,) जो भी हो, प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में ऐसे विलक्षण मणियों का उल्लेख मिलता है। पर यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें से कोहनूर का किस से सम्बन्ध है।

कोहनूर का पता बाबर के समय से चलता है, उसने अपने आत्म-चरित में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

से १० मोहर तक; पाँचवीं श्रेणी—९$\frac{३}{४}$ से ७ मोहर तक; छठी श्रेणी—६$\frac{३}{४}$ से ५ मोहर तक; सातवीं श्रेणी—४$\frac{३}{४}$ से ३ मोहर तक; आठवीं श्रेणी—२$\frac{३}{४}$ से २ मोहर तक; नवीं श्रेणी—१$\frac{३}{४}$ से १ मोहर तक; दसवीं श्रेणी—८$\frac{३}{४}$ रुपए से ५ रुपए तक; ग्यारहवीं श्रेणी—४$\frac{३}{४}$ रुपए से २ रुपए तक; बारहवीं श्रेणी—१$\frac{३}{४}$ रुपए से $\frac{१}{४}$ रुपए तक।

इसका दो स्थानों पर उल्लेख किया है। एक तो, जब हुमायूं बीमार पड़ा था तब ख़्वाजा ख़लीफ़ा तथा उसके अन्य मित्रों ने उस (हुमायूं) के स्वास्थ्य लाभ के लिए बाबर से कहा था कि अपने पास की संसार की सबसे अमूल्य वस्तु उस हीरे को—जोकि उसको इब्राहीम की पराजय के बाद मिला था और जिसको उसने हुमायूं को देदिया था,—दान करदे। (Memoirs of Zahiruddin Mohammad Baber, 1925, Vol II Appendix D, Page 442). दूसरे ४ मई १५२६ ई० के घटना-क्रम में बाबर लिखता है:—"बिकरमाजीत—एक हिन्दू राजा—जोकि ग्वालियर का राजा था और सौ वर्ष से भी अधिक पहले से उस देश पर (उसका वंश) शासन करता था। ..... जिस युद्ध में इब्राहीम पराजित किया गया था उसी में बिकरमाजीत भी जहन्नुम को पहुँचाया गया था। बिकरमाजीत का परिवार तथा वंश के मुख्य मुख्य मनुष्य उस समय आगरे में थे। जब हुमायूं पहुँचा तो बिक्रमाजीत के आदमियों ने भागने की चेष्टा की, किन्तु उन दलों ने जिनको कि हुमायूं ने उक्त परिवार की चौकसी के लिए तैनात किया था,—गिरफ़्तार कर लिया और हिरासत में ले लिया। हुमायूं ने उनको लूटने खसोटने नहीं दिया। उन्होंने स्वेच्छा से हुमायूं को एक पेशकश भेंट की। जिसमें जवाहरात और बहुमूल्य पत्थर थे। उनमें वह प्रसिद्ध हीरा भी था जो सुल्तान अलाउद्दीन द्वारा प्राप्त किया गया था। यह इतना मूल्यवान है कि एक रत्न-पारखी ने उसका मूल्य संसार भर का आधे दिन का व्यय लगाया। यह तोल में लगभग ८ मिसक़ाल है। जब मैं आया तो हुमायूं ने मुझे उसको पेशकश के तौर पर भेंट किया, किन्तु मैंने उसको पुरस्कार के रूप में देदिया।" (Memoirs of Baber, Vol II. P. 193).

अब प्रश्न है कि ग्वालियर राज विक्रमादित्य को अलाउद्दीन (१२९६-१३१६) से कैसे मिला? "राजपूताना का इतिहास" (जिल्द पहली पृष्ठ २३५, ले० म. म. राय बहादुर पं० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा) देखने से मालूम होता है:—"दिल्ली की तंवरों के वंशजों की दूसरी शाखा के तंवर वीरसिंह ने विक्रमी संवत् १४३२ (१३७५ ई०) के आस पास दिल्ली के सुल्तान फ़ीरोज़शाह तुग़लक़ की सेवा में रहकर ग्वालियर पर अपना अधिकार जमाया, और अनुमान १८० वर्ष बाद मानसिंह के पुत्र विक्रमादित्य के समय वह क़िला पीछे मुसलमानों ने ले लिया।" यद्यपि कोई प्रमाण मौजूद नहीं है तथापि अनुमान से मालूम होता है कि तंवर वीरसिंह अथवा उनके और किसी पूर्वज या उनकी संतति ने अपनी सेवा के उपलक्ष में दिल्लीश्वर से उसे पाया होगा अथवा और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मोती—ये बहुमूल्य रत्न कांति की दृष्टि से १६ श्रेणियों में विभाजित हैं और परख की लड़ियों में पिरोये गये हैं। ३० मोहर तथा उससे अधिक मूल्य वाले, बीस बीस मोती सूत में पिरोकर पहली लड़ी बनाई गई है; २९$\frac{3}{4}$ मो० से १५

किसी उपाय से तुग़लक़ वंश से प्राप्त किया होगा। तुग़लक़ वंश के शासकों को अलाउद्दीन से मिला होगा।

अब विचारणीय विषय यह है कि अलाउद्दीन को मालवा के किस हिन्दू राजा से कोहनूर मिला। मालवा में भी अलाउद्दीन (१०५७ ई०) नामक एक शासक हुआ है। परन्तु यहाँ पर उससे अभिप्राय नहीं है। यहाँ पर तो अलाउद्दीन ख़िलजी से तात्पर्य है (Erskine's Memoirs of Sultan Babur, 1918, Vol. 2 P. 191)। ख़ुसरो अलाउद्दीन का समकालीन था। वह प्रसिद्ध फ़ारसी लेखक और कवि था। उसने अपने ग्रंथ "आशिक़ा" में लिखा है कि जब सुल्तान अलाउद्दीन के वज़ीर ऐनुलमुल्क (फूलमलिक काफ़ूर) ने मालवा के राजा कोका या महलक देव को पराजित किया था, तो अलाउद्दीन ने समाचार पाने पर दिल्ली में सात दिन तक रोशनी करवाई थी (History of India by Elliot and Dowson, Vol. 3 P. 550)। 'आईने-अकबरी' के तीसरे ग्रंथ के अनुसार मालवा के शासकों में उस समय हरनन्द था। कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ़ इण्डिया जिल्द ३ पृ० १११ के अनुसार इस हरनन्द का ही नाम मुसलमान ऐतिहासिकों ने कोका लिखा है। अनुमान होता है कि इसी हरनन्द से ऐनुलमुल्क ने कोहनूर हीरा लिया होगा।

जो कुछ भी हो, इसमें संदेह नहीं कि एक विलक्षण हीरा सन् १३०४ ई० के पहले से १५५५ ई० तक मालवा, ग्वालियर और दिल्ली के शासकों के पास रहा है। अकबर और जहाँगीर के समय में उसका पता नहीं चलता। "शाहजहाँ-नामा" के लेखक इनायत ख़ाँ के अनुसार तख़्ततऊस में एक हीरा १४ लाख रुपए का लगा था। पर यह कोहनूर नहीं मालूम होता। "ए फ़ार्गाटेन इम्पायर" (A forgotten Empire by Sewell P. 399) के अनुसार कोहनूर बीजापुर के अली आदिल शाह ने कृष्णा नदी के तट पर कोलूर में पाया था। इतिहासकार फ़ैरिया सूज़ा के अनुसार तालीकोट में १५६५ ई० में राम राजा के मारे जाने के बाद विजयनगर की लूट में एक हीरा अली आदिल शाह को मिला था, जो साधारण अंडे के बराबर था। राम राजा उसे अपने घोड़े के मुंह के शृङ्गार में लगाता था। १६५६ ई० में मुग़ल सेनापति मीर जुमला उस तरफ़ साम्राज्य स्थापित कर रहा था। उसने उसे पाकर शाहजहाँ को भेंट के रूप में दिया था। परन्तु 'शब्दसागर' (पृ० ६५१) के अनुसार "सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में यह हीरा ग्वालियर के एक राजा ने गोलकुंडा के एक बादशाह को दिया था।" १६६५ ई० में टैवरनियर ने इसे सम्राट औरङ्गज़ेब के यहाँ देखा था और उसके सम्बन्ध में लिखा है:—"यह

कोहनूर

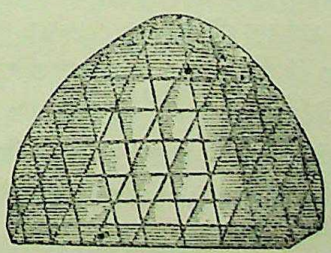

जैसा टैवरनियर ने देखा था।

हीरा मुग़ल महान् के अधिकार में है। उसने मुझे अन्य हीरों के साथ इसे भी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मोहर तक दूसरी लड़ी में; १४$\frac{३}{४}$ से १२ मो० तक तीसरी में; ११$\frac{३}{४}$ से १० मो० तक चौथी में; ९$\frac{३}{४}$ से ७ मो० तक पांचवीं में; ६$\frac{३}{४}$ से ५ मो० तक छठी में; ४$\frac{३}{४}$ से ३ मो० तक सातवीं में; २$\frac{३}{४}$ से २ मो० तक आठवीं में; १$\frac{३}{४}$ मो० से १ मो० तक नवीं में; १ मो० से कम ५ रु० तक दसवीं में; ५ रु० से कम २ रु० तक ग्यारहवीं में; २ रु० से कम १$\frac{१}{४}$ रु० तक बारहवीं में; १$\frac{१}{४}$ रु० से कम ३० दाम तक तेरहवीं में; ३० दाम से कम

दिखलाने की कृपा की।.....मुझे इसे तौलने की भी आज्ञा मिली। मैंने निश्चय किया कि यह ३७९$\frac{१}{२}$ रत्ती या २१९$\frac{९}{१६}$ कैरट का है। जब यह कटा नहीं था तो मेरे पूर्व कथनानुसार ९०७ रत्ती या ७९३$\frac{५}{८}$ कैरट का था। यह पत्थर वैसी आकृति का है जैसी कि अंडे को बीच से काटने पर होजाती है" (Travels In India by Tavernier 1925 Vol. 11, P. 97)। २७९$\frac{९}{१६}$ फ़्लोरेनटाइन कैरट २६८$\frac{१९}{५०}$ इंग्लिश कैरट के बराबर होते हैं। हारटेनज़ियो बोर्जियो (Hortensio Borgio) नामक एक विनीशियन के बुरी तरह से खरादने के कारण उसकी तौल में कमी होगई।

१७३९ ई० में औरंगज़ेब के दुर्बल वंशज मुहम्मद शाह से उसे नादिर शाह फ़ारस ले गया। उसीने इसका नाम कोहनूर रक्खा। १७४७ ई० में नादिर शाह के क़त्ल में मारे जाने पर कोहनूर उसके पौत्र शाहरुख़ को मिला। १७५१ ई० में काबुल में दुर्रानी वंश के संस्थापक अहमद शाह के पास आया। उससे उसके पुत्र तैमूर को, जो काबुल में आकर रहा था, मिला। फिर उसके बाद १७९३ ई० में उसके पुत्र शाहज़मां और फिर उसके तीसरे भाई सुल्तान शुजा को मिला। शाह शुजा को काबुल की गद्दी पर बैठने और मुहम्मद के गद्दी से उतारे जाने तथा क़ैद किये जाने के बाद १८०९ में इलफ़िंस्टन ने उसे शुजा को कंकण में पहने हुये देखा था। उसने लिखा है कि कोहनूर उसी शक्ल का था, जैसा कि टैवरनियर का लेख है। (Account of the Kingdom of Kabul, Ed. 1907, Vol. II, P. 325, note.) अन्त में शुजा को दोस्त मुहम्मद ने गद्दी से उतार दिया। शाहशुजा भाग कर काश्मीर पहुँचा, जहां के शासक अता मुहम्मद ने उसे क़ैद कर लिया।

१८१२ में शाह शुजा और ख़ान ज़मां के परिवार लाहोर पहुँचे। पंजाब के शासक रणजीत सिंह से शुजा की बेगम ने प्रार्थना की—"यदि आप मेरे पति को छुड़ादें तो मैं आपको कोहनूर हीरा दे दूंगी।" बन्धन से मुक्त होने पर शुजा बातें बनाने लगा। अन्त में एक दूसरे ने पगड़ी बदली। रणजीत सिंह ने उसके जीवन-निर्वाह के लिए पंजाब में ज़ागीर नियत करदी और उसने उसे कोहनूर देदिया।

रणजीत सिंह बहुधा राज कार्यों में उसे अपनी भुजा पर बांधे रहते थे। अपनी मृत्यु के समय रणजीत सिंह ने उसे जगन्नाथ धाम भेजवाने की इच्छा प्रकट की, उस समय यह १० लाख पौण्ड का था। (The Punjab by Steinbach, 1846, P. 16) किन्तु अन्त में वह कहीं नहीं भेजा जा सका। १८३९ ई० में उनकी मृत्यु के पश्चात् यह रत्नागार में रख दिया गया। फिर रणजीत सिंह की विधवा महिषी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२० दाम तक चौदहवीं में ; २० से कम १० दाम तक पन्दरहवीं में ; १० से कम ५ दाम तक सोलहवीं में। प्रत्येक मोती अपनी श्रेणी के गणनानुसार उतने ही धागों में पिरोया गया है ; जैसे सोलहवीं श्रेणी के मोती सोलह धागों में पिरोये गये हैं। हर लड़ी के धागों के सिरे पर ख़ास शहंशाही मोहर होती है। इस कारण,

झिन्दन उसको दिलीपसिंह की भुजा पर बांधने लगीं। (विश्वकोश)

जब पंजाब पर १८४९ ई० में ब्रिटिश-सरकार का अधिकार हुआ, और दिलीप सिंह को ५० हज़ार पौण्ड वार्षिक पेन्शन देकर पंजाब के बाहर रहने की आज्ञा दी गई तथा सिक्खों की जागीरें ज़ब्त करके उनकी पेन्शनें नियत की गईं, उसी समय पंजाब के शासन प्रबन्ध के लिए एक बोर्ड बनाया गया था। लार्ड डल्हौसी ने उसका प्रेसीडेण्ट लार्ड लारेन्स को बनाया। तभी यह हीरा लार्ड लारेन्स के पास आया। वे उसको एक टीन के बक्स में बन्द करके भूल गये। जब उनसे मांगा गया तब २६ मार्च १८४६ ई० को इंग्लैण्ड भेजा गया और ३ जून १८४६ ई० को वह वहाँ पहुँचा।

१८५१ ई० में हाइड-पार्क की प्रदर्शिनी में वह प्रदर्शित किया गया। उस समय उसका वज़न १८६$\frac{१}{१६}$ कैरट था और उसका मूल्य १४ लाख पौण्ड निर्धारित हुआ था। १८५२ ई० में क्विन विक्टोरिया की इच्छा से अधिक आब लाने के लिए इसके तराशने का काम मेसर्स गैरर्ड्स को सौंपा गया। उन्होंने ऐम्स्टर्डम के वूर सेंजर नामक हीरा तराश से ३८ दिन तक इसे तरशवाया। इसमें उसके तीन टुकड़े होगये। बड़े टुकड़े को गुलाब जैसा बनाने के लिए उसे फिर तराशा गया। (विश्व कोश)। इसमें ८००० पौण्ड व्यय हुए। घटते घटते अब १०६$\frac{१}{१६}$ कैरट का रह गया है और उसकी आकृति इस प्रकार की

कोहनूर

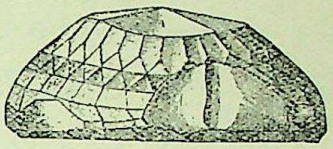

वर्तमान रूप।

है। आज कल कोहनूर टावर आफ़ लण्डन के स्टेट-ज्वेलरी रूम में, साम्राज्ञी मेरी के ताज में जड़ा हुआ, रक्खा है।

कितने ही ऐतिहासकों के मत से यह हीरा (जो अब इंग्लैण्ड में है) बाबर वाला हीरा नहीं है, वरन् मीर जुमला वाला है, जिस पर कटने के निशान लोगों ने बराबर देखे हैं, और उनका उल्लेख अपने ग्रंथो में किया है। उनके अनुसार १६५६ ई० में वह ९०० रत्ती या ७८७$\frac{१}{२}$ कैरट का था। टैवर-नियर ने १६६५ ई० में इसे ३१९$\frac{१}{२}$ रत्ती या २७९$\frac{९}{१६}$ फ्लोरैन्टाइन कैरट या २६८$\frac{१६}{५०}$ इंग्लिश कैरट का देखा था। किन्तु बाबर का हीरा ८ मिस्क़ाल या ३२० रत्ती या १८६$\frac{९}{१६}$ कैरट का था। मि० बाल के अनुसार टैवरनियर की रत्ती २·६६ ट्राय ग्रेन के बराबर थी और बाबर की १·८४२ ग्रेन की। मि० बाल (Travels in India, translated by V. Ball, 1925, Vol II, P. 338-339) के अनुमानानुसार बाबर का हीरा उस समय शाहजहाँ के अधिकार में रहा होगा, जब कि टैवरनियर ने औरंगज़ेब के जवाहरात देखे थे। जब शाहजहां मर गया तब वह उसके अधिकार में आगया होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रत्येक मोती बदल जाने के गड़बड़ से बच जाता है। इसके अतिरिक्त हर मोती में एक विवरण लगाकर भ्रम का मल साफ़ कर दिया गया है।

दैनिक और मासिक वेतन पर काम करने वालों के अतिरिक्त, दूसरे

नादिरशाह उसे दूसरे जवाहरात के साथ फ़ारस लेगया होगा। यह हीरा अब तक फ़ारस के बादशाह के पास है। यह तौल में भी बाबर के हीरे के बराबर अर्थात् १८६ कैरट का है। इसका नाम 'दरियाय-नूर' है।

कोहनूर भी जब इंग्लैण्ड गया था तो १८६$\frac{१}{६}$ कैरट का था। बाल के मत से टैवर-नियर के समय से १८५० ई० तक लगभग ८२$\frac{१२७}{४००}$ कैरट (२६८$\frac{१६}{५०}$—१८६$\frac{१}{१६}$) की जो उसमें कमी हो गई है उसका कारण उसका विभिन्न शासकों के पास जाना तथा उनकी आवश्यकता के अनुसार उसका तराशा जाना है। यह कमी शाहरुख़, शाह शुजा या शाह ज़मां के समय में हुई है (Travels in India, Translated by Ball, Vol. II, P. 345)।

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका (Encyclopædia Britannica, 1929, Ed. 14, Vol. 13, P. 474] में लिखा है:—"कोहे-नूर—एक प्रसिद्ध हीरा, जिसके इतिहास का पता निश्चय पूर्वक चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ से लगाया जा सकता है।" इससे यह स्पष्ट प्रकट है कि यह मीर जुमला से दो ढाई सौ वर्ष पूर्व अर्थात् मालवा के हिन्दू शासक के समय का है इसी आईन के अन्तिम पैरे में ५$\frac{१}{२}$ टांक ४ रत्ती (१२२$\frac{१}{२}$ रत्ती) तक के हीरों का उल्लेख हुआ है। तोल के विचार से अकबर के हीरे १२२$\frac{१}{२}$ रत्ती तक के थे; किन्तु औरङ्गज़ेब का हीरा कटने के पहले केवल १०० रत्ती का था। संभव है शाहजहां ने अधिक आब लाने के लिए किसी उत्तम कारीगर से अकबरी हीरे को ही कटवाया हो और टैवरनियर ने इसी को १०० रत्ती का लिखा हो। 'विश्व कोश' के अनुसार रणजीतसिंह का हीरा ही बाबर का हीरा है।

बाल ने "ट्रैविल्स-इन-इण्डिया" के भाषान्तर में कई स्थानों पर टैवरनियर की इस बात की सख़्त शिकायत की है कि उन्होंने रत्ती को कैरट और कैरट को रत्ती लिख दिया है और उनकी तौल में भी सन्देह है। साथ ही शाहजहाँ को बन्दी गृह में यह हीरा कैसे मिला होगा? यह बात भी समझ में नहीं आती। इतना ही नहीं बाल ने उनकी भूलों को जगह जगह पर प्रकट किया है। जहाँ तक टैवरनियर की नाप जोख का सम्बन्ध है वह तो बाल के शब्दों से ही विश्वसनीय नहीं है। अब रही बाल के ऐतिहासिक ज्ञान की बात—इस सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त है कि उन्होंने दोस्त मुहम्मद को शुजा का भाई बतलाया है (Travels in India, Appendix 2), जो कि बिल्कुल ग़लत है। वास्तव में मुहम्मद बारकज़ई ख़ानदान का था और शाह शुजा दुर्रानी बंश का (Oxford History of India by Vincent Smith, 1923, P. 675.)। ऐसी अवस्था में कोहनूर की ऐतिहासिक शृङ्खला तथा उसके परिमाण का ठीक निश्चय होना कठिन है।

जो कुछ भी हो इस विरोधाभासात्मक सामग्री की उपस्थिति में तथा प्रमाणों की व्यवस्थित श्रङ्खला न मिलने की अवस्था में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि शाह फ़ारस का हीरा ही बाबर का हीरा है और विक्रमादित्य का हीरा कोहनूर हीरा नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर्मचारियों को मोती बेधने का परिश्रम-पुरस्कार निम्नलिखित क्रमानुसार दिया जाता है:— जो प्रथम श्रेणी के मोती को बेध कर लड़ी के योग्य बनाता है १ चरन[१] ($\frac{१}{४}$ रु०) पाता है; दूसरी श्रेणी के मोती का बेधक अष्ट ($\frac{१}{८}$ रु०); तीसरी श्रेणी का दसा ($\frac{१}{१०}$ रु०); चौथी श्रेणी का ३ दाम; पांचवीं श्रेणी का सूकी[१]; छठी श्रेणी का १ दाम; सातवीं श्रेणी का $\frac{३}{४}$ दाम; आठवीं श्रेणी का $\frac{१}{२}$ दाम; नवीं श्रेणी का $\frac{१}{४}$ दाम; दसवीं श्रेणी का $\frac{१}{५}$ दाम; ग्यारहवीं श्रेणी का $\frac{१}{६}$ दाम; बारहवीं श्रेणी का $\frac{१}{७}$ दाम; तेरहवीं श्रेणी का $\frac{१}{८}$ दाम; चौदहवीं श्रेणी का $\frac{१}{९}$ दाम; पन्दरहवीं श्रेणी का $\frac{१}{१०}$ दाम; सोलहवीं श्रेणी का $\frac{१}{११}$ दाम (११ मोती के दाने बेधने पर १ दाम) तथा कम।

इन अनमोल रत्नों के मूल्य की अपूर्वता इतनी अधिक प्रसिद्ध है, कि उसके सम्बन्ध में कुछ लिखना व्यर्थ है। पर आज कल जो मणिमुक्ता सम्राट् के कोष में हैं, उनका ब्योरा इस प्रकार है:—**लाल**—११ टांक[२] २० रत्ती भर का, और **हीरा**—५$\frac{१}{२}$ टांक ४ रत्ती भर का; हर एक का मूल्य एक लाख रुपए। **पन्ना**—१७$\frac{३}{४}$ टांक ३ रत्ती भरका, मूल्य ५२००० रुपए। **याक़ूत**—४ टांक ७$\frac{३}{४}$ रत्ती भर का, और **मोती**—५ टांक भर का; हर एक का मूल्य ५०००० रुपए।

आईन ४।

टकसाल।

यतः टकसाल की समृद्धि कोष की पूंजीवर्द्धक होती है और प्रत्येक कार्य उसी से शोभा प्राप्त करता है, अतः मैं उसका कुछ हाल लिखता हूँ और वाग्वाटिका को परितृप्त करता हूँ।

१—इन सिक्कों का पूरा हाल आगे है।

२—संस्कृत भाषा में इसे टंक कहते हैं। यह तौल में ४ माशे भर का होता है। पर अकबरी टांक ४ माशे से कुछ अधिक था; क्योंकि सिक्कों का जो ब्योरा अबुल फ़ज़ूल ने आगे दिया है, उससे प्रकट होता है कि एक दाम का वज़न ५ टांक या १ तोला १ माशा ७ रत्ती था। इस हिसाब से एक टांक, तौल में ४ माशा १$\frac{२}{५}$ रत्ती भरका होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नागरिकों और ग्रामीणों का कार्य द्रव्य से चलता है और हर एक अपनी इच्छानुसार उसका उपयोग करता है। विरक्त उसको अपने जीवन-स्थिरता की सामग्री बनाता है, और साँसारिक अपने अभीष्ट सिद्धि का अंतिम पड़ाव जानता है। निदान, सबका प्रयोजन उससे सफल होता है। बुद्धिमान उसको लौकिक और पारलौकिक आशाओं की पूर्ति का प्रधान सोता जानता है। मनुष्य जाति के लिए तो वह परमावश्यक है; क्योंकि जीवन-अस्तित्व के आधार, भोजन और वस्त्र का वह विशेष साधन है। उपरोक्त दोनों वस्तुएं बहुत कष्ट और परिश्रम से प्राप्त होती हैं, जैसे बोना, सींचना, काटना, साफ़ करना, गूंधना, पकाना, कातना, ताना तनना और बुनना इत्यादि। इन कार्यों के साधन, बिना अनेक सहायकों के पूरे नहीं हो सकते; क्योंकि उनके करने के लिए एक मनुष्य का बल पर्याप्त नहीं होता, और नित्यप्रति एक आदमी के लिए उक्त कार्यों का करना कठिन ही नहीं, वरन् असम्भव है। मनुष्य के लिए एक घर का होना भी आवश्यक है, जिसमें कि वह कुछ दिन का सामान रख सके। फिर चाहे वह तम्बू हो या खोह, उसे घर कहते हैं। मनुष्य की उत्पत्ति और उसके जीवन की स्थिरता निम्न लिखित पांच पदार्थों पर निर्भर है,—पिता, माता, पुत्र, सेवक और आहार; इनमें से अन्तिम पदार्थ सबका कार्य-साधक है। इसके अतिरिक्त अधिकतर सामान टिकाऊ नहीं होता और टूट फूट जाता है; अतएव प्रत्येक दशा में द्रव्य की आवश्यकता होती है। द्रव्य, पदार्थ की प्रौढ़ता और कठोर गढ़ाई के कारण, बहुत समय तक दृढ़ रहता है, और थोड़े से भी बहुत काम निकलता है। यात्राओं में भी काम आता है; क्योंकि थोड़े दिनों का भी भोजन ले जाना कठिन होता है, फिर महीनों और सालों के लिए क्या कहा जाय!

ईश्वर की कृपा सहायक हो गई, और यह बहुमूल्य मुक्ता (सुवर्ण) अस्तित्व-तट पर आगया तथा बिना परिश्रम किये जीवन-सामग्री तैयार हो गई। इसके सबब से मनुष्य के साहस का मस्तक अयोग्यता की धूल से नहीं सौंदता और ईश्वरोपासना भली भांति बन पड़ती है। इसके गुण वर्णन नहीं हो सकते; यह कोमल शरीर, स्वादिष्ट और सुगन्धित होता है। इसके मिश्रित अवयव[1] प्रायः तौल में बराबर होते हैं। चारों तत्वों[2] में से प्रत्येक के लक्षण इसकी अवस्था

१—मध्य युग के रासायनिकों का मन्तव्य है कि सोने में, गन्धक और पारा समभाग में मिले होते हैं। गंधक से ही सोने में रंग आता है। देखिये आईन १३।

२—मुसल्मान तत्वज्ञ केवल चार तत्व मानते हैं। आकाश की गणना वे तत्वों में नहीं करते।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के मुखड़े से प्रकट होते हैं। रूप से अग्नि, शुक्लता से वायु, कोमलता से जल और गुरुत्व से पृथ्वी का ज्ञान होता है; और इसी लिए इसमें जीवन-दायक अनेक चमत्कार होते हैं। अन्य धातुओं के प्रतिकूल, चारों तत्वों में से कोई भी तत्व, उसे क्षति नहीं पहुँचा सकता। पावक से वह जलता नहीं, वायु उसमें असर नहीं करती, पानी युगों तक उसका रूप नहीं बदलता और मिट्टी उसे खाती नहीं है। इसी कारण तत्वज्ञान सम्बन्धी प्राचीन ग्रन्थों में बुद्धि को—जिस से हर कार्य की युक्ति कार्य-रूप में परिणित होती है—**नामूसे-अकबर**[१] कहा है; और सुवर्ण को—जिस पर जीवन-सामग्री निर्भर है—**नामूसे-असग़र**[२] बतलाया है। गुण वाचक दो शब्दों में, सोना न्याय-रक्षक एवं लोक-व्यवस्थापक है। वस्तुतः वस्तुओं की सुव्यवस्था उसी से होती है और न्याय की नीव भी उसी पर आधारित है। अद्वैत ईश्वर ने उसकी सुश्रूषा के लिए चांदी और तांबे को प्रचलित किया, और इनको मनुष्य के सम्पन्न होने का सहायक साधन बनाया है। इन्हीं दूरदर्शी विचारों से, न्यायी शासकों और जाग्रतभाग महीपालों ने इन नगदों के प्रचार में उत्साह दिखलाया है, और इस कार्य की उन्नति के लिए टकसालें स्थापित की हैं। इस कार्यालय की सफलता इस बात पर निर्भर है कि सत्यनिष्ठ, परिश्रमी और बुद्धिमान कर्मचारी नियुक्त हों, और विश्वधाम का स्तम्भ उन्हीं के स्थिर विचारों और निरीक्षण पर निर्मित हो।

आईन ५

टकसाल के सहायक।

पहला **दारोग़ा**—एक बुद्धिमान सचेत व्यक्ति होता है, जो अपने विचार-गांभीर्य और साहस विशालता से अपने साथियों का कष्टकर कार्य-भार शीघ्र संचालन के कंधे पर रखता है, हर एक को उसके काम काज में लगाये रखता है और अपने परिश्रम तथा सत्यता द्वारा कार्य को पूरा करता है।

१—बड़ा देव दूत। २—छोटा देव दूत। 'हरीरी' अरबी भाषा का प्रामाणिक-ग्रंथ है। उसमें लिखा है, "यदि यह बात धर्म के विरुद्ध न होती, तो मैं सोने को शीश नवाता और केवल 'ज़र' न कह कर 'ज़र-अले-उस्सलाम' कहता।"

संस्कृत में सोने को हिरण्य और चाँदी को रजत कहते हैं। सर्वे गुणाः कांचन-माश्रयन्ति; अर्थात् समस्त गुण कंचन के आश्रित हैं। (भर्तृहरि)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दूसरा **सैरफ़ी**—इस महत्वपूर्ण विभाग की सफलता इसके अनुभव पर निर्भर है, और मुद्राओं की खराई के अनुसार उनकी श्रेणियां निश्चय करने का भार उसके कर्तव्यपरायण सत्याचारी हाथों पर अवलम्बित है। सुसमय के कारण, इस राज्य में बहुत से कार्य कुशल सर्राफ़ एकत्र हो गये हैं और सम्राट् के ध्यान देने से सोना और चांदी खराई के सर्वोच्च पद पर पहुंच गये हैं। अजम (ईरान) में सब से खरे सोने को **दहदही** कहते हैं, परन्तु वहां के लोग सोने की खराई दस अ़यारों[१] (अंशों) से अधिक नहीं जानते। हिन्दी भाषा में खरे सोने को **बारह बानी** कहते हैं, क्योंकि यहाँ के लोग खराई बारह प्रकार की मानते हैं।

१—अ़यार शब्द अ़रबी भाषा का है। इसका अर्थ सोने और चांदी की चाश्नी (बानगी) है। चांदी और सोने के तौलने और कसौटी पर कसने को भी अ़यार कहते हैं। इस स्थल पर यह शब्द खराई के अंशों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, जो १० अंश मानी गई है।

अकबर के समय में खराई के लिए बान शब्द प्रचलित था। सब से खरे सोने को १२ बान का सोना कहते थे। उससे कम दर्जे का ११, १० और ९ आदि अंशों का होता था।

आज कल इसके लिए कई शब्द व्यवहृत होते हैं। जैसे—कैरट (Carat), टच (touch) और बट्टा आदि। सब से खरा सोना २४ कैरट का, १०० टच का, पक्का सोना, पांसा, ख़ालिस, शुद्ध, बीस बिस्वा, सोलह आने पक्का, बिना छीज बट्टा आदि आदि नामों से पुकारा जाता है। परन्तु जो खराई में जितना कम होता है वह उसी के अनुसार उतने ही कम कैरट, टच या बट्टे का सोना कहलाता है।

कैरट के सम्बन्ध में "इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका का" (Encyclopædia Britannica, 1929, Ed. 14 Vol. 4 P. 827) में लिखा है—"कैरट एक छोटा सा बांट है (जो पहले बीज के रूप में था) जो हीरों और मूल्यवान पत्थरों के तौलने तथा सोने की शुद्धता के निश्चय करने के लिए परखने में काम आता है.....इस समय भिन्न भिन्न स्थानों में कैरट की तौल में अन्तर है। १८७७ ई० में लण्डन, पैरिस और ऐम्सटर्डम के जौहरियों के सिण्डीकेट ने कैरट का वज़न २०५ मिलीग्राम (३·१६३ ट्राय ग्रेन) नियत किया था। दक्षिणी अफ़रीका का कैरट गार्डनर विलियम्स के अनुसार ३·१७६ ग्रेन का होता है। सोने की शुद्धता निश्चित २४ कैरट के अनुपात से जांची जाती है। इस प्रकार निकृष्ट धातु के २ भाग मिलने पर २२ कैरट का सोना बनता है।" जिस सोने में तांबा मिला होता है, कैरट का प्रयोग प्रायः उसी के लिए होता है। कैरट की तौल साधारणतः ४ ग्रेन की मानी जाती है। कदाचित् कैरट अ़रबी के क़ीरात शब्द से निकला हो। क़ीरात की तौल आधा दांग या ४ जौ होती है, (ग़यासुल्लुग़ात)।

टच का अर्थ परख और कमी है। जिस सोने में चाँदी और ताँबा दोनों धातुएँ मिली रहती हैं, अधिकतर उसके लिए टच शब्द प्रयोग होता है। जन साधारण हर प्रकार के सोने के लिए टच और कैरट प्रयोग करते हैं।

बट्टे का प्रयोग आम तौर से होता है, जैसे कहते हैं—यह पक्का सोना नहीं है, यह एक आने बट्टे या ६ रत्ती बट्टे का है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लोग पहले, पुराने हुन के सोने को—जो एक सिक्का है और दक्षिण में प्रचलित है—सब से बढ़िया जानते थे और उसका खरापन १० अंश मानते थे; परन्तु सम्राट् की जांच में उसकी खराई केवल ८$\frac{१}{२}$ अंश स्थिर की गई है। अलाउद्दीन के गोल छोटे दीनार के सोने की खराई, लोग १२ अंश मानते थे; पर आज के दिन वह १०$\frac{१}{२}$ अंश की सिद्ध हुई है।

इस कला के निपुण व्यक्ति आज कल के सोने से इतिहास तैयार करते हैं और लोगों को उसकी कथाएं सुनाते हैं तथा इसको रसायन का सोना ख़्याल करते हैं। वे कहते हैं कि खान का सोना इस दर्जे को नहीं पहुंचता है। परन्तु सम्राट् के ध्यान देने से वह उस दर्जे पर पहुँच गया और अनुभवी व्यक्ति विस्मित हो गये। वास्तव में अब उसकी खराई का दर्जा न इससे घटेगा और न बढ़ेगा। सत्यशील, वाक्पटु एवं तथ्यवादी पृथ्वी-पर्यटक इस श्रेणी के सोने का पता कहीं नहीं बतलाते हैं। परन्तु जब उसे गलाते हैं, तो सूक्ष्म कण उससे अलग हो जाते और राख में मिल जाते हैं। मूर्ख उस सोने को मल ख़्याल करते हैं, परन्तु गुणी उसे राख से निकाल लेते हैं। यद्यपि आघात वर्द्धनीय खनिज-स्वर्ण,[१] गलाने से गल जाता और राख होजाता है तथापि विशेष क्रिया द्वारा वह (सोना) अपनी मूल अवस्था को लौट आता है किन्तु उसमें कुछ कमी होजाती है। सम्राट् के दृष्टि-प्रकाश से उस कमी की असलियत प्रकट होगई और छलियों की धूर्तता पकड़ ली गई।

१—कौटिल्य ने सोने के आठ भेद लिखे हैं—१ जाम्बूनद, जोकि जम्बू नदी में निकलता है; भट्ट स्वामी के मत से यह गुलाबी सेब के रंग का होता है। २ शातकुम्भ, यह शात कुम्ब पर्वत से प्राप्त होता है; इसका रंग कमल-पुष्प-दल के समान होता है। ३ हाटक, जो कि हाटक नाम की प्रसिद्ध खानों से निकाला जाता है। ४ वैणव, जो कि वेणु पर्वत की उपज है; इसका रंग कनक चम्पा के समान होता है। ५ शृङ्गशुक्तिज, जो कि शृङ्गशुक्ति से निकाला जाता है; इसका रंग लाल संखिया के समान होता है। ६ जातरूप। ७ रसविद्ध। ८ आकरोद्गत, जो खान से निकलता है।

जो सोना कमल के फूल की पंखुड़ियों के रंग का, मृदु चमकीला और ठनठनाने वाला हो, श्रेष्ठ होता है। साथही रंग में एक समान हो, कसौटी पर कसा जाकर एक जैसी लकीर दे। खोखला तथा पोला न हो। पक्का, चिकना तथा शुद्ध हो। पहनने पर शोभा बढ़ावे। सदा ही नया मालूम पड़े, तथा चमकता रहे। आंखों तथा हृदय को प्रिय मालूम पड़े। लाल पीले रंग का सोना मध्यम कोटि का, और केवल लाल रंग का निकृष्ट होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आईन ६।

बनवारी।

बनवारी शब्द बानवारी का संक्षिप्त रूप है। यद्यपि इस देश में बुद्धिमान सर्राफ़ अपने अनुभव द्वारा रंग और सफ़ाई से धातु के खरेपन का दर्जा जान लेते हैं तथापि दूसरों के प्रबोध के लिए यह प्रशंसनीय व्यवस्था जारी की गई है।[१]

ताँबे और इसी प्रकार की दूसरी धातुओं के कुछ क़लम बनाये हैं, जिनमें से हर एक के सिरे पर थोड़ा सा सोना लगा दिया है, और हर क़लम पर उसके सोने के खरेपन का दर्जा लिख दिया है। जब नए आये हुये सोने की जाँच करते हैं, तो उस सोने से और क़लमों से कसौटी[२] पत्थर पर कई रेखाएँ खींचते हैं। जिस क़लम की लकीर से नए सोने की रेखा का रंग रूप मिल जाता है वह उसी खराई का सोना समझा जाता है। परन्तु यह आवश्यक है कि रेखाएँ एक ही प्रकार की खींची जाँय और खींचने में एक ही सा बल प्रयोग किया जाय, उसमें छल छिद्र की धूल का संसर्ग न हो।

इस नियम का संचालन तरह तरह के बानों का सोना बनाने पर निर्भर है। इसकी क्रिया इस प्रकार है—एक माशा ख़ालिस चांदी और उतना ही

१—कौटिल्य ने सुवर्णाध्यक्ष के कर्तव्यों में लिखा है :—कसौटी पर कसने पर जब सोने का रंग हल्दी की तरह हो तो उसको सुवर्ण कहते हैं। जब इस सुवर्ण (१६ मापक वाला) के एक से सोलह काकणी तक के परिमाण में एक से सोलह काकणी तक क्रमशः तांबा मिलाते हैं, तो सोलह प्रकार का सोना तैयार हो जाता है। कसौटी पर पहले उत्तम सोने की रेखा बनाकर फिर दूसरे सोने की रेखा खींची जाय। कसौटी पर जो रेखा खींची जाय वह नाख़ून या अंगूठे से मिट जानी चाहिये। यदि उसके मिटाने के लिए गेरु प्रयुक्त करना पड़े तो बेईमानी का अनुमान करना चाहिये। गो मूत्र में जाति हिंगुलुक (इंगुर) या पुष्प कासीस डाल कर सोना डाला जाय और उसको अंगूठे से रगड़ा जाय तो सोना सफ़ेद हो जाता है।

२—केसर की तरह, चिकनी मृदु और चमकीली कसौटी श्रेष्ठ होती है। कलिंग देश की मूंगे के रंग की भी कसौटी श्रेष्ठ मानी जाती है। एक समान लाल रंग की कसौटी ख़रीदने और बेचने के ही काम में आती है। हाथी के रंग की या हरे रंग की कसौटी बेचने के और स्थिर, कठोर भिन्न वर्ण एवं काले रंग की (कसौटी) ख़रीद करने में लाभदायक होती है। इनमें भी सफ़ेद, चिकनी, बराबर रंग वाली, मृदु तथा चमकीली श्रेष्ठ मानी जाती है। (कौटलीय अर्थशास्त्र, अधिकरण २)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ख़ालिस तांबा इकट्ठा गला कर थकिया बनाते हैं, और फिर उस मिश्रण को ६ माशे ख़ालिस सोने के साथ—जो १०$\frac{१}{२}$ बान खरा हो—गलाते हैं, खोटे सोने का टुकड़ा बन जाता है। इस टुकड़े में से एक माशा सोना लेकर उसके सोलह भाग करते हैं, प्रत्येक भाग आधी रत्ती का होता है। जब ७$\frac{१}{२}$ रत्ती ख़ालिस सोना (१०$\frac{१}{२}$ बान का) इस मिश्रण के एक भाग ($\frac{१}{२}$ रत्ती) के साथ मिलाते हैं, तो १०$\frac{१}{४}$ बान का सोना तैयार होता है। यदि ७ रत्ती ख़ालिस सोने को मिश्रण के दो भागों के साथ मिलावें तो १० बान का सोना बनेगा। अगर ६$\frac{१}{२}$ रत्ती ख़ालिस सोने को मिश्रण के तीन भागों के साथ गलावें तो ९$\frac{३}{४}$ बान का सोना तैयार होगा। यदि ६ रत्ती विशुद्ध सोने को खोटे सोने के चार भागों से मिलावें, ९$\frac{१}{२}$ बान का सोना बनेगा। अगर ५$\frac{१}{२}$ रत्ती ख़ालिस सोने को खोटे सोने के पांच भागों के साथ मिश्रित करें तो ९$\frac{१}{४}$ बान का सोना तैयार होगा। जब ५ रत्ती शुद्ध सोने को उसके छे भागों के साथ मिला देते हैं तो ९ बान का सोना तैयार होता है। यदि ४$\frac{१}{२}$ रत्ती ख़ालिस सोना खोटे सोने के सात हिस्सों के साथ मिलावें, तो ८$\frac{३}{४}$ बान का सोना बनेगा। अगर ४ रत्ती शुद्ध सुवर्ण को उसके आठ भागों के साथ गलाते हैं तो ८$\frac{१}{२}$ बान का सोना तैयार होता है। जब ३$\frac{१}{२}$ रत्ती ख़ालिस सोने को उसके नौ हिस्सों के साथ मिलाते हैं तो ८$\frac{१}{४}$ बान का सोना बनता है। जब ३ रत्ती ख़ालिस सोना उसके दस भागों के साथ गलावें, तो ८ बान का सोना बनता है। जब २$\frac{१}{२}$ रत्ती ख़ालिस सोना, मिलावटी टुकड़े के ग्यारह भागों के साथ गलाया जाता है तो ७$\frac{३}{४}$ बान का स्वर्ण हाथ लगता है। यदि २ रत्ती ख़ालिस सोना, उसके बारह भागों के साथ गलावें तो ७$\frac{१}{२}$ बान का सोना तैयार होता है। यदि १$\frac{१}{२}$ रत्ती शुद्ध सोने को मिश्रित के तेरह भागों में मिलावें तो ७$\frac{१}{४}$ बान का सोना बनेगा। जब १ रत्ती ख़ालिस सोने को उसके चौदह भागों के साथ गलावें तो ७ बान का सोना रह जायगा। जब आधी रत्ती ख़ालिस सोने को उसके पन्द्रह भागों से मिलाते हैं, तो ६$\frac{३}{४}$ बान का सोना तैयार होता है। इस क्रिया का सारांश यह है, कि खोटे सोने की प्रति आधी रत्ती की मिलावट असली सोने के खरेपन में चौथाई बान की कमी पैदा कर देती है। उस खोटे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सोने के टुकड़े का मान, जो दूसरे प्रयोग द्वारा तैयार हुआ है, ६$\frac{१}{२}$ बान होता है।

जब चाहते हैं कि ६$\frac{१}{२}$ बान से भी कम मान का सोना तैयार हो तो पहले मिश्रण की $\frac{१}{२}$ रत्ती को जो तांबा और चांदी मिला कर तैयार किया गया था—दूसरे मिश्रण की ७$\frac{१}{२}$ रत्ती के साथ (जो सोने, चांदी और तांबे के मिश्रण से बना है) मिलादें तो ६$\frac{१}{४}$ बान का सोना तैयार होगा। जब पहले मिश्रण की १ रत्ती दूसरे मिश्रण की ७ रत्तियों से मिलावें तो ६ बान का सोना रह जायगा। यदि उसका मान इससे भी कम करना चाहें, तो मिश्रणों में आधी आधी रत्ती बढ़ाते जांय। बानवारी में ६ बान तक की साख मानते हैं। इस से कम बानों के सोने का हिसाब किताब नहीं होता। यह सब कार्य **साहबे--अयार** (प्रधान—पारखी) की देख रेख से होता है, और शोभा बढ़ाता है[१]।

तीसरा, अमीन[२]—उसके निस्वार्थी और निर्लोभी होने से शत्रु मित्र निर्भीक रहते हैं। मत भेद सम्बंधी वार्तालाप के समय वह दारोगा और दूसरे लोगों का सहायक होता है। वह सत्य सत्य कहता है और झगड़ा शांत कर देता है।

चौथा, मुशरिफ़—जो हिसाब लिखने, मामला समझने और ईमानदारी से आय व्यय की शाखा को दृढ़ रखता है, और बुद्धि प्रिय रोज़नामचा भरता है।

पांचवां, सौदागर—सोना चांदी और तांबा लाकर लेन देन करता है और अपना नफ़ा लेता है। और इस प्रकार कारख़ाने की शोभा बढ़ाता है। कर चुकाकर कोष की वृद्धि में प्रयत्न करता है। इस समुदाय की बढ़ती और व्यापार की उन्नति, न्याय की व्यापकता और कर्मचारियों की तृष्णाहीनता से होती है।

छठा, गंजूर[३]—लाभ के रुपये की चौकसी करता और लेन देन में सत्यता के साथ व्यवहार करता है।

१—कौटिल्य ने भी इस विषय में "खनिज पदार्थों के व्यवसाय संचालन" तथा "सुवर्णाध्यक्ष के कार्य" में प्रकाश डाला है।

२—अमीन का अर्थ अमानतदार अर्थात् वह व्यक्ति जिसके पास किसी अवधि के लिए धरोहर के रूप में कोई वस्तु रक्खी जाय। यहां पर आज कल के उस अदालती अमीन से आशय नहीं है, जो मौक़े की तहक़ीक़ात करता है, ज़मीन नापता, बटवारा करता या डिगरी आदि का अमलदरामद कराता है।

३—ख़ज़ांची।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

छठे और प्रथमोक्त चार अधिकारियों के वेतनों में एक दूसरे के वेतन से अन्तर रहता है। इन में सब से छोटा अहदी[1] पद पाकर संसार में सफल होता है।

सातवां, तराज़ूकश[2]—सिक्कों को तौलता है। यदि सोने की १०० जलाली मोहरें जोखता है तो $1\frac{3}{4}$ दाम मज़दूरी लेता है; चांदी के १००० रुपया तौलने में $6\frac{19}{25}$ दाम; और तांबे के १००० दाम तौलने में एक दाम का $\frac{11}{25}$ पाता है। सिक्कों के कमोबेश होने पर तुलाई में भी उसी हिसाब से कमी बेशी हो जाती है।

आठवां, गुदाज़गर ख़ाम[3]—वह मिट्टी के तख़्ते पर छोटी बड़ी नालियां बनाता और उन पर तेल चुपड़ देता है। फिर सोना चांदी गलाकर, उन नालियों में डाल देता है, सलाख़ बन जाती है। पर तांबे के लिए तेल से चिकना करने के स्थान में केवल राख छिड़कना ही पर्याप्त होता है। पूर्वोक्त तौल (१०० मोहर जलाली) का सोना गलाने की मज़दूरी २ दाम १५ जीतल; पूर्वोक्त तौल की चांदी गलाने पर ५ दाम $13\frac{1}{4}$ जीतल; और उपर्युक्त तौल का तांबा गलाने पर ४ दाम $21\frac{1}{2}$ जीतल पाता है।

नवां, वर्क़ कश—वह मिलावटी सोने के वर्क़ बनाता है; जिनमें से हर एक की तौल छे या सात माशे और लंबाई चौड़ाई छे अंगुल होती है। उनको वह पारखी के पास लाता है। वह उनको एक सांचे में, जो तांबे का बना होता है, डालकर जांचता है। जिनको वह ठीक पाता है, उन पर अद्ल[4] की छाप लगा देता है, जिससे उनमें परिवर्तन न होने पावे और यह जान लिया जाय कि इन पर कार्रवाई हो चुकी है। पूर्वोक्त सोने की तौल के वर्क़ बनाने पर उसको $42\frac{1}{3}$ दाम मज़दूरी मिलती है।

१—अहदी अरबी भाषा के 'अहद' शब्द से—जिसका अर्थ 'एक' होता है—बना है। अहदी से आशय उस व्यक्ति का है, जो अकेला ही कठिनतर कार्यों को कर सके। अकबर के समय में ये सिपाही का काम करते थे और बड़ी आवश्यकता के समय इन से काम लिया जाता था, बाक़ी दिन ये बैठे बैठे खाते थे। पड़े पड़े खाने के कारण ही 'अहदी' शब्द आलसियों, निठल्लुओं और अकर्मण्यों के लिये प्रयुक्त होने लगा है। ये राज दरबार में मुहर्रिरों के पदों पर, दरबार के चित्रकारों और कारख़ानों में भी रहते थे। मालगुज़ारी न देने वाले व्यक्तियों के दरवाज़ों पर ये डट जाते थे और उनसे बिना वसूल किये नहीं उठते थे। द्वितीय ग्रन्थ के चौथे आईन में इनके कर्तव्यादि का सविस्तर उल्लेख है।

२—डंडीदार।

३—कच्ची धातु गलाने वाला।

४—न्याय की छाप, ठीक होने का ठप्पा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आईन ७।

खोटे सोने को साफ़ करने की रीति[1]।

जब वरक़ों पर अद्‌ल की छाप हो चुकती है, तो सोने का मालिक, पारखी की कार्यपटुता से उनकी खोटाई इस प्रकार दूर करता है :—वह १०० जलाली मोहरों की तौल के सोने के लिए ४ सेर शोरा नमक और ४ सेर कच्ची ईंटों का चूरा प्रयोग करता है। पहले वह वरक़ों को शुद्ध जल में धोता है, फिर उनको

१—कौटिल्य ने सोने को शुद्ध करने तथा उसको रंगीन बनाने की कई रीतियां लिखी हैं। जैसे, खोटा सोना सफ़ेद रंग का होता है। इसमें चौगुना जस्त मिलाया जाय और पत्र के आकार में पीटकर तपाया जाय। लाल पड़ने तथा पिघलने पर इसको तेल तथा गोमूत्र में डाल दिया जाय।

जो सोना खान से निकला हो, जस्त मिलाकर उसके पत्र पीटे जांय, और उनको खरल में पीटा जाय। फिर उनको तपाया तथा पिघलाया जाय। अन्त में उस गलित पदार्थ को केला तथा बज्रकन्द में डाल दिया जाय।

जो सोना तपाने के बाद अन्दर बाहर से केसरिया रंग का या कारण्ड (हंस की जाति का एक पक्षी) के रंग का हो वह उत्तम है, और जो काला या नीला पड़ जाय उसे मिलावटी समझना चाहिये।

चमकीला तथा तपनीय सोना तपनीय कहलाता है। इसमें जस्त और सेंधा नमक मिलाकर बिनवां कण्डों से तपाया जाय। इस क्रिया से इसका रंग नीला, लाल, पीला, सफ़ेद, हरा, तोते तथा कबूतर के रंग का हो जाता है। सोने में रंग देने के लिये मोरपंखी सफ़ेद चमकीले पीले रंग का तीक्ष्ण (संभवतः हीराकसीस) नामक मसाला प्रयोग किया जाय।

शुद्ध या खोटी चांदी तूतिया, जस्त, हड्डी, (शुद्ध मृत्तिका) आदि में क्रमशः चार चार बार, गोमय में तीन बार, और फिर १७ बार तूतिया तथा नमक में मिला कर तपाया जाय। इस मिश्रण को एक काकणी (घुंघची, पण या माशे का चौथाई भाग) से दो माशे तक यदि सुवर्ण में डाला जाय तो सुवर्ण का रंग सफ़ेद हो जाता है, और श्वेत तार कहलाता है। सफ़ेद रंग के सोने के ३० भाग यदि तपनीय सोने के ३ भागों के साथ मिलाकर तपाया जाय तो सोना लाल रंग का, और लाल सोना पीले रंग का हो जाता है। तपनीय सोने को गरम कर यदि उस में रंग के तीन भाग दिये जांय तो उसका रंग लाल पीला हो जायगा। तपनीय सोने का एक भाग अगर सफ़ेद के दो भागों से मिलाया जाय तो वह मूंग के रंग का बनेगा। यदि वह काले लोहे के आधे भाग के साथ मिलाया जाय तो उसका रंग काला पड़ जायगा। यदि उपर्युक्त तपनीय योग में पारा मिलाने के बाद दो बार तपाया जाय तो उसका रंग तोते के पंख की तरह हरा हो जाता है। भिन्न रंग के सोने को प्रयोग में लाने के पहले उसको कसौटी पर कस लेना चाहिये।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उसी मसाले में (शोरा नमक और ईंटों के चूरे के मसाले में) सौंद देता है। इसके बाद वर्क़ों को एक दूसरे पर रखकर, बिनवाँ कंडों से जिनको हिन्दी भाषा में उपला कहते हैं और जो जंगली गाय का सूखा गोबर है—ढांक देता है। फिर आग जलाता और धीरे धीरे जलने देता है। उपले राख हो जाते हैं। जब आग बुझ जाती है तो उसके इधर उधर की राख उठा कर रख छोड़ते हैं। फ़ारसी भाषा में उसको **ख़ाके-ख़लास** और हिन्दी में **सलोनी** कहते हैं। इस राख से चाँदी निकाल लेते हैं, जिसके निकालने की क्रिया अलग लिखी जायगी। नीचे की राख वर्क़ों सहित ज्यों की त्यों रहने देते हैं, और दो बार फिर आग जलाते हैं तथा पहली क्रिया का उपयोग करते हैं। जब तीन आंचें दे चुकते हैं, तो उसको **सिताई**[1] कहते हैं। फिर साफ़ पानी से धो डालते हैं, और वही मसाला लगा कर पुनः तीन बार आँचें देते हैं तथा राख अलग कर लेते हैं। इसी प्रकार छे बार मसाला मिलाते, अठारह आँचें देते और फिर धोते हैं। पारखी उनमें से एक तोड़ता है, यदि नरम और मुलायम आवाज़ आती है तो वह उसके पूर्णतया शुद्ध होने का लक्षण मानता है। अगर आवाज़ सख़्त होती है, तो मसाला मिलाकर तीन आंचें और देते हैं। पुनः प्रत्येक पत्र से एक एक माशा काट कर एक पृथक पत्र बनाते हैं और उसे कसौटी पत्थर पर कसते हैं। यदि वह ख़ालिस नहीं हुआ होता, तो एक दो बार फिर तपाते हैं। बहुधा तीन चार आंचों से उद्देश्य सिद्ध हो जाता है।

इस तरह से भी परीक्षा करते हैं। दो तोला ख़ालिस सोना लेते हैं और दो तोला तपाया हुआ सोना। दोनों सोनों के बराबर तौल के बीस बीस पत्र बनाते हैं। फिर मसाला सौंद कर आँच देते हैं। तत्पश्चात् उनको धोकर तौलते हैं। यदि दोनों प्रकार के वर्क़ तौल में बराबर होते हैं तो यह उनके ख़ालिस होने का लक्षण होता है।

दसवां, गुदाज़गर पुख़्ता[2]—वह ख़ालिस सोने के वर्क़ों को गलाता है और पहली रीति से सलाख़ें बनाता है। १०० सोने की मोहरों में उसकी मज़दूरी ३ दाम होती है।

ग्यारहवां, ज़र्राब[3]—वह अपनी दृष्टि के बल से सोने, चांदी और तांबे की सलाख़ों से सिक्कों के अनुरूप गोल टिकियां काटता है। सोने की १००

१—तीन बार तपाई या ताई हुई धातु।
२—पक्की धातु गलाने वाला।
३—टिकिया बनाने वाला।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मोहरों की टिकियां तैयार करने पर वह २१ दाम और $१\frac{१}{४}$ जीतल मज़दूरी पाता है। यदि चांदी की सलाख़ों से १००० रुपए की टिकियां बनाता है, तो ५३ दाम $८\frac{३}{४}$ जीतल मज़दूरी लेता है। यदि उतनी ही चांदी से चवन्नियों की टिकियां तैयार करता है तो उसकी मज़दूरी में २८ दाम और बढ़ जाते हैं। १००० तांबे के दाम बनाने में २० दाम मज़दूरी लेता है। उतने ही वज़न के तांबे से आधे दाम और चौथाई दाम की टिकियां काटने में २५ दाम पाता है; अष्टांश दाम बनाने में, जिसको दमड़ी कहते हैं, ६६ दाम लेता है।

ईरान और तूरान में ज़र्राब, बिना सांचे की निहाई के सिक्कों की नाप भर टिकियां नहीं काट सकते; हिन्दुस्तान के गुणी बिना उसके इस उत्तमता से कार्य करते हैं कि बाल भर फ़र्क़ नहीं पड़ता; और यह बड़े आश्चर्य की बात है।

बारहवां, मोहरकन—वह सिक्के के नक़्शों को फ़ौलाद और उसी प्रकार की दूसरी धातुओं पर खोदता है। उसके आकार रुपए और अशरफ़ी आदि पर बन जाते हैं। आज कल इस काम पर मौलाना अली अहमद देहलवी[१] (दिल्ली निवासी) हैं। किसी देश में उनका सानी नहीं बतलाया जाता। वह फ़ौलाद पर तरह तरह की ऐसी सुन्दर लिपियां लिखते हैं, जो प्रसिद्ध सुलेखाचार्यों के क़लमों[२] की बराबरी करती हैं। वह **यूज़बाशी**[३] के पद पर हैं। इनके दो प्यादे टकसाल में रहते हैं, जिन में से हर एक का वेतन ६०० दाम है।

तेरहवां, सिक्कची—टिकियों को दो ठप्पों के बीच में रखता है। हथौड़े के बल से उनमें दोनों तरफ़ नक़्श हो जाते हैं। उसकी मज़दूरी १०० सोने की मोहरों के ठप्पा करने में १ दाम $\frac{२}{५}$ जीतल होती है; चांदी के १००० रुपयों के सिक्कों के नक़्श करने में ५ दाम $६\frac{१}{२}$ जीतल; और १००० रुपए की रेज़गारी बनाने में १ दाम ३ जीतल और बढ़ जाते हैं। तांबे के १००० दाम बनाने में उसकी मज़दूरी ३ दाम होती है; २००० आधे दाम और ४००० चौथाई दाम तैयार करने में ३ दाम $१८\frac{३}{४}$ जीतल; और ८००० अष्टांश दाम बनाने में $१०\frac{१}{२}$ दाम। सिक्कची अपनी मज़दूरी का छठा भाग घनहा को देता है; क्योंकि उसके लिये पृथक मज़दूरी नियत नहीं होती।

१—इसी ग्रंथ का २० वाँ आईन देखिये।

२—सुलिखित वाक्य।

३—सौ आदमियों का सरदार। ख़ास ख़ास अहदी इस फ़ौजी पद पर पहुँचते थे। यूज़बाशी को ५०० से ७०० रु० तक मासिक वेतन मिलता था। इस का वर्णन द्वितीय ग्रंथ के तीसरे आईन में है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चौदहवां, सब्बाक—साफ़ की हुई चांदी की टिकियां बनाता है और १००० रुपए भर के लिए ५४ दाम लेता है।

चांदी की सफ़ाई—उसमें सीसा, जस्त और तांबे का मेल होता है। ईरान और तूरान में चांदी की सब से ज्यादा खराई को **दहदही** कहते हैं और हिन्दुस्तानी सर्राफ़ उसे **बीस्तबिस्वा** (बीस बिस्वा) कहते हैं। मिलावट के अनुसार उसका दर्जा घट जाता है। पांच से अधिक कम दर्जे की चांदी नहीं बनाई जाती है। दस दर्जे से कम वाली चांदी पर कोई ध्यान नहीं देता। अनुभवी परखिये मिलावटी चीज़ के रंग से उसके न्यूनाधिक अंश को जान लेते हैं। रेती से रगड़ कर या छेद करके, उसका भीतरी हाल मालूम कर लेते हैं; और आग में तपाकर और पानी में बुझाकर उसका खरापन जान लेते हैं। कालेपन में सीसा, ललाई में तांबा, मटमैली सफ़ेदी में जस्त और सफ़ेदी में चांदी क्रमशः अधिक मिली रहती है।

चांदी को शुद्ध करने की विधि।

एक गढ़ा खोदते हैं उसमें बिनवाँ कंडे का थोड़ासा चूरा डालते हैं। फिर उसे बबूल की लकड़ी की राख से भरते हैं और तर करके रकेबीदार बना लेते हैं। मिश्रण (खोटी चाँदी) उसी में रख देते हैं और उसी के अनुसार सीसा मिला देते हैं। पहले सीसे का चतुर्थांश चाँदी के ऊपर रखकर, कोयला भरते हैं और धौंकनी से धौंक कर गलाते हैं। बहुधा यह क्रिया चार बार की जाती है। धातु के ख़ालिस हो जाने की पहचान यह है कि गलाया हुआ पदार्थ साफ़ चमकता हुआ दिखलाई पड़ता है और किनारों की ओर से जमने लगता है। जब जमते जमते बीच में भी कठोर होने लगता है तो उस पर प्रानी के छींटे देते हैं। उस समय उस से मेंढ़े के सींग की तरह लपट उठती है। अब उसकी थकिया जम जाती है और चांदी पूर्णतया शुद्ध होजाती है। यदि यह थकिया फिर गलाई जाय, तो हर तोले में आधी रत्ती माल जल जायगा, अर्थात् सौ तोले में ६ माशा २ रत्ती माल घट जायगा। चांदी एवं सीसा मिली हुई वह राख मुर्दाशंख के सदृश हो जाती है; हिन्दी में उसे **कहरल**[1] कहते हैं और फ़ारसी में **कोहना**; इसका प्रयोग आगे बतलाया जायगा। इसके पहले कि ज़र्राब उसकी टिकियां बनावे, प्रति सौ

१—इसका उच्चारण खरल भी होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तोले शुद्ध किये हुये माल में से ५ माशे ५ रत्ती ख़ालसा के लिये निकाल लिये जाते हैं। फिर पारखी साफ़ टिकियों पर न्यायतुला के ठप्पों से निशान लगाता है जिस से वह बदलने न पावे।

प्राचीन काल में चांदी की खराई जानने के लिए भी लोग बानवारी क्रिया का प्रयोग करते थे, परन्तु अब निम्नलिखित साधन के उपस्थित होने के कारण वे उसमें प्रवृत्त नहीं होते। यदि १०० तोले शाही चांदी, जिसका इराक़ और ख़ुरासान में चलन है और लारी एवं मिसक़ाली चांदी जो तूरान में प्रचलित है, में से ३ तोले १ रत्ती निकल जाय, और उतनी ही तौल की फ़िरंगी तथा रूमी नारजील की चांदी में से, एवं गुजरात और मालवा की महमूदी और मुज़फ़्फ़री चांदी में से १३ तोले ६$\frac{१}{२}$ माशे घट जाय, तो इन चांदियों की खराई शहंशाही चांदी के खरेपन से मिल जायगी।

पन्द्रहवां, कुर्सकूब—साफ़ चांदी को तपा कर इतना कूटता है कि उसमें सीसे की गंध तक नहीं रहती। १००० रुपए की चांदी की मज़दूरी ४॥ दाम है।

सोलहवां, चाशनीगीर—ख़ालिस किये हुये सोने और चांदी की जांच करता है और निम्नलिखित रीत्यनुसार शुद्ध होने की सनद देता है। वह २ तोले सोना लेता है, और ८ वर्क़ बनाता है। फिर पूर्वोक्त विधि से मसाला चुपड़ कर उनको तपाता है। हवा से बचाये रखता है और फिर धोकर गलाता है। यदि वे तौल में कम नहीं होते तो वह शुद्ध जानता है। प्रधान पारखी उनको कसौटी पर कसकर निजको और दूसरों को सन्तोष देता है। उपर्युक्त माल की जांच कराई वह १$\frac{२}{५}$ दाम लेता है। चांदी की परीक्षा करने के लिए १ तोला चांदी लेता है, और उतने ही सीसे के साथ उसे हड्डी की घरिया में गलाता है, और इतनी आंच देता है कि सीसा बिल्कुल जल जाता है। फिर उसे पानी में बुझाकर इतना कूटता है कि सीसे का संसर्ग नहीं रहता। इसके बाद नई घरिया में गलाकर तौलता है। यदि चांदी तीन चावल कम होती है तो यह पूर्ण खरे होने की पहचान होती है; अन्यथा वह उसे फिर गलाता है, यहां तक कि वह उसी दर्जे को पहुँच जाती है। इतनी चांदी जांचने की मज़दूरी ३ दाम ४$\frac{१}{२}$ जीतल होती है।

सत्रहवां, न्यारिया—ख़ाके-ख़लास (सलोनी) इकट्ठी करके दो दो सेर धोता है। सोना भारी होने के कारण तह में बैठ जाता है। धोई हुई राख को हिन्दी में **कुकरा** कहते हैं। उसमें भी कुछ सोना मिला रहता है। दूसरी क्रिया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वारा, जो आगे बतलाई जायगी, सोना निकाला जाता है। नीचे बैठे हुये मिश्रण में पारा मिलाकर मलते हैं। प्रति सेर में ६ माशे सीसा प्रयोग करते हैं। पारा प्रेम के आकर्षण से सोने को अपने में खींच लेता है। उसको शीशे के बर्तन में डालकर आंच देकर सोना अलग कर लेते हैं। उतने परिमाण की राख से सोना निकालने में न्यारिया को २० दाम २ जीतल मिलते हैं।

कुकरे की क्रिया—कुकरे के बराबर **पुनहर** मिलाते हैं, और **रसी** को गाय के गोबर में सानते हैं। फिर पहले मिश्रण को पीस कर दूसरे में सौंद देते हैं; और उसके दो दो सेर के गोले बनाकर कपड़े पर सुखा लेते हैं।

पुनहर की क्रिया—एक गढ़े को बबूल की राख से इस प्रकार भरते हैं कि एक मन सीसे के प्रयोग करने में राख की उंचाई ६ अंगुल रहती है। उसका पेंदा बराबर करके सीसा रख देते हैं और कोयले चुनकर उसे गलाते हैं। फिर कोयले हटाकर उस पर काँटे दार दो मिट्टी के तख्ते लगा देते हैं। धौंकनी की तरफ़ का सूराख़ बन्द करके दूसरी ओर का छेद खुला रखते हैं। पर इस छेद को भी एक ईंट से उस समय तक ढांपे रहते हैं, जब तक कि राख सीसे को बिलकुल नहीं सोख लेती। कर्मचारी उस ईंट को क्षण क्षण उठाकर सीसे का हाल मालूम करते रहते हैं। सीसे के उपर्युक्त परिमाण के लिए वे चार माशे चांदी राख में मिला देते हैं। राख को पानी से ठंडा कर लेते हैं, उसी को **पुनहर** कहते हैं। उतने में से २ सेर सीसा जल जाता है और राख ४ सेर बढ़ जाती है। सब सामान तौल में १ मन २ सेर होता है।

रसी—एक प्रकार का तेज़ाब है, जिसको सज्जी और शोरा-मिट्टी से बनाते हैं।

यतः पुनहर और रसी का हाल निवेदन कर चुका, अब मुख्य विषय पर आता हूँ और कुकरे की क्रिया पूर्ण करता हूँ। तन्दूर की तरह एक भट्ठी बनाते हैं, जिसके दोनों मुँह छोटे, पेट बड़ा और उंचाई डेढ़ गज़ होती है। उसकी पेंदी में छेद करके भूमि में एक गढ़ा खोदते हैं और उसी पर उसे रखते हैं। इस भट्ठी को कोयलों से इस प्रकार भरते हैं कि वह चार अंगुल ख़ाली रहती है। फिर दो धौंकनियों से आग जलाते हैं। जब आग दहकने लगती है तो उन गोलों में से एक एक को तोड़कर उस अग्निकुंड में डालते और गलाते हैं। सोना, चांदी, तांबा तथा सीसा छिद्र द्वारा उस गढ़े में आ जाता है। उसकी बची हुई सामग्री बाहर निकाल लेते हैं, और मुलायम बनाकर धोते हैं, सीसा अलग निकल आता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है। इसी प्रकार राख इकट्ठी कर लेते हैं और दूसरी क्रिया द्वारा उससे भी लाभ उठाते हैं। धातु (खनिज) को गढ़े से निकाल कर पुनहूर की तरह गलाते हैं। सीसा राख में मिल जाता है, जिसमें से ३० सेर निकल आता है और १० सेर जल जाता है। सोना, चांदी, तांबा एवं थोड़ा सीसा अपनी हालत में (पिण्ड में) रह जाता है, उसको **बुगरावटी** कहते हैं, और कुछ लोग **गुबरावटी** पुकारते हैं।

बुगरावटी की क्रिया—एक गढ़ा खोदते हैं, और उसमें सौ तोले बुगरावटी के लिए आध सेर बबूल की राख भरते हैं। उस राख को रकेबीदार बनाते हैं और बुगरावटी उसमें भर देते हैं, साथ ही १ तोला तांबा और २५ तोले सीसा उसमें बढ़ा देते हैं। फिर कोयला भर कर ईंटें ढक देते हैं। जब मिश्रण गल जाता है, तो कोयला और ईंटें हटा कर बबूल की लकड़ी यहाँ तक जलाते हैं कि तांबा और सीसा राख में मिल जाता है, और मिला हुआ सोना चाँदी अलग हो जाता है। उस राख को भी **कहरल** कहते हैं। उससे सीसा और तांबा निकल आता है, जिसकी क्रिया आगे बतलाई जायगी।

आईन ८

सोने से चांदी अलग करने की रीति।

मिश्रित सोना चांदी छे बार गलाते हैं, तीन बार तांबे के साथ और तीन बार छाछिया गंधक के साथ। एक तोला मिश्रण के लिए एक माशा तांबा और दो माशे दो रत्ती गंधक लेते हैं। पहले, तांबे के साथ गलाते हैं, फिर गंधक के साथ। यदि मिश्रण १०० तोले हो तो तांबा भी १०० माशे प्रयोग करते हैं। पहले उसमें ५० माशे मिलाकर गलाते हैं, शेष आधे को फिर दो बार (पचीस पचीस माशे मिला कर) टिघलाते हैं। गंधक को भी इसी क्रम से गलाते हैं। उस मिश्रण (सोना चांदी) को चूरा चूरा करके घरिया में भरते हैं और ५० माशे तांबा मिला कर गलाते हैं। उसके पास ठंढे पानी से भरा हुआ एक बर्तन रख लेते हैं। उसके ऊपर एक ख़स का कूंचा बिछा देते हैं। गलित धातु उसी पर उड़ेल देते हैं और एक लकड़ी से चलाते रहते हैं, जिससे उसकी थकिया नहीं बँधने पाती है। फिर उन टुकड़ों को अन्य आधे मसाले के साथ मिला कर घरिया में भरते

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और गलाते हैं। जब माल पिघल जाता है तो उसे उठा कर साये में सुखाते हैं, जिससे वह ठंढा हो जाता है। मिश्रण के प्रति तोले के लिए दो माशे दो रत्ती गंधक अर्थात् सौ तोले मिश्रण के लिए १$\frac{३}{८}$ सेर गंधक इस्तेमाल करते हैं। तीन बार उसी प्रकार क्रिया करते हैं। फिर उस पर हलके सफ़ेद रंग की राख दिखलाई पड़ती है। वह असल में चाँदी है जो इस प्रकार निकली है। उसको उठाकर अलग रख छोड़ते हैं, उसकी क्रिया आगे बतलाई जायगी। जब मिश्रण तांबे और गंधक के साथ तीन तीन बार गलाया जा चुकता है तो शेष भाग सोने का थक्का हो जाता है। पंजाबी भाषा में उसे **कैल** कहते हैं, और दिल्ली प्रदेश में **पिंजर**। यदि मिश्रण में सोना अधिक मिला होता है तो साधारणतया ६$\frac{१}{२}$ बान का निकलता है, परन्तु अधिकतर ५ बान प्रत्युत ४ ही बान का निकला करता है।

उसकी खराई बढ़ाने के लिए इन दो क्रियाओं में से एक का करना आवश्यक है। चार सौ तोले खरे सोने में इस सोने के पचास तोले मिलाते हैं और **सलोनी** क्रिया द्वारा उसकी पूर्ति करते हैं या **अलोनी** क्रिया से काम चलाते हैं। **अलोनी,** दो हिस्सा जंगली गोबर और एक हिस्सा शोरा नमक का मिश्रण है। पिंजर की सलाखें तैयार करके पत्र बनाते हैं। हर पत्र तौल में डेढ़ तोले से कम नहीं होता, पर चौड़ाई में उससे अधिक होता है जितना चौड़ा कि सलोनी के लिए बनाया जाता है। उनको सफ़ेद और काले तिलों के तेल से चुपड़ कर मसाला लगाते हैं। फिर हर बार मसाला लगाने में उसे दो बार मंद मंद आँच से तपाते हैं। इसी प्रकार तीन चार बार सौंदते और तपाते हैं। यदि इससे भी अधिक खरा चाहते हैं तो उक्त क्रिया को कई बार करते हैं, यहाँ तक कि वह ९ बान का हो जाता है। उसकी भी राख रख लेते हैं, वह कहरल के समान होती है।

आईन ९।

राख से चांदी निकालने की रीति।

अलोनी क्रिया के पहिले और पीछे जो राख और मैल जमा किया है उसका दुगना ख़ालिस सीसा मिलाकर उसे घरिया में भरते हैं, और कोयलों की आग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर रख कर एक पहर (३ घंटे) भर जलाते हैं। जब ठंडा हो जाता है तो सब्बाकी[1] के तरीक़े से साफ़ कर लेते हैं। इसकी भी राख कहरल होती है। सलोनी क्रिया अन्य रीतियों से भी की जाती है जोकि गुणियों से छिपी नहीं हैं।

अठारहवां, पनीवार—कहरल गलाकर चांदी को तांबे से अलग करता है। एक तोला चांदी में उसकी मज़दूरी १½ दाम होती है। लाभ प्राप्ति के उपलक्ष में कृतज्ञता प्रकाशन के रूप में वह ३०० दाम प्रति मास दीवान को देता है। कहरल को चूरा चूरा करता है और एक मन (कहरल) में १½ सेर सुहागा और तीन सेर सज्जी कूटकर ख़मीर बनाता है। फिर उक्त भट्ठी में सेर सेर भर डालता और गलाता है। चांदी मिला हुआ सीसा उस गढ़े में आजाता है और सब्बाकी क्रिया द्वारा साफ़ हो जाता है। जो सीसा इस से अलग होकर मिट्टी में मिल जाता है वह फिर पुनहर हो जाता है।

उन्नीसवां, पैकार—सलोनी और कहरल शहर के सुनारों से ख़रीदता है, और टकसाल घर में गलाता एवं सोने और चांदी से लाभ उठाता है। एक मन सलोनी में १७ दाम और एक मन कहरल में १४ दाम ख़ालसा को देता है।

बीसवां, निचुई वाला—चांदी मिले हुये तांबे के पुराने सिक्के गलाता है, और १०० तोला चांदी से ३½ रु० दीवान को देता है। जब चांदी पर सिक्का करता है, तो उसका नियत कर पृथक चुकाता है।

इक्कीसवां, ख़ाक शोई—जब माल के स्वामी विभिन्न प्रकार से, जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है, चांदी और सोना ले लेते हैं, तो ख़ाकशोई टकसाल झाड़ कर राख घर ले जाता है, और उनको धो कर लाभ उठाता है। बहुतेरों का इस पेशे से उद्यम चमक जाता है। लाभ उठाने के उपलक्ष में कृतज्ञता प्रकाशनार्थ वह राज्य को प्रतिमास १२½ रुपए अदा करता है।

टकसाल के सभी पेशेवर राज्य को प्रति १०० दामों की आय पर, ३ दाम प्रतिमास कर स्वरूप देते हैं।

१—इसका उल्लेख पहले हो चुका है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आईन १०

अचल राज्य के मुद्रा[1]।

जिस प्रकार सम्राट् के ध्यान देने से सोने और चाँदी ने अधिकाधिक शुद्धता प्राप्त की, उसी प्रकार मुद्रों की विपुल आकृतियों से भी उनका मुख

१ मुद्रा—भारतवर्ष में मुद्रा बनना कब प्रारम्भ हुआ यह अभी तक निश्चित नहीं हो सका है। परन्तु पुरातत्वविदों के मतानुसार "भारतवासी बहुत ही प्राचीन काल से विनिमय के लिए धातुओं के बने हुये सिक्कों का व्यवहार करते आये हैं। हिन्दुओं, बौद्धों और जैनों के सर्व प्राचीन धर्म-ग्रन्थों से भी पता चलता है कि प्राचीन-काल में भारत में सोने, चांदी और तांबे के सिक्कों का बहुत प्रचार था। सोने के सिक्कों का नाम सुवर्ण वा निष्क, चांदी के सिक्कों का नाम पुराण वा धरण और तांबे के सिक्कों का नाम कार्षापण था (प्राचीन मुद्रा ले० राखालदास बनर्जी)।

ऋग्वेद संहिता में निष्क का उल्लेख तीन स्थानों पर है; पहले, दूसरे और आठवें मण्डल में। पहले में ऋषि-कक्षिवान् ने सिन्ध नद के समीपवर्ती राजा भावयव्य से १०० निष्क, १०० घोड़े और १०० सांड़ उपहार में लिये थे, (शतं राज्ञो नाधमानस्य निष्काञ्छतमश्वान्प्रयतान्सद्य आदम्। शतं कक्षीवां असुरस्य गोनां दिवि श्रवोऽजरमा ततान। ऋक्० मं० १ सूक्त १२६ मंत्र २। इस पर सायणाचार्य का भाष्य इस प्रकार है—नाधमानस्य स्वीकर्तव्यमित्युच्चैर्याचमानस्य असुरस्य धनानां निरसितुः दानशीलस्य राज्ञः स्वतेजसा दीप्यमानस्य स्वनयस्य निष्कान् आभरण विशेषान् इयत्ताविशेषविशिष्टानि वा सुवर्णानि शतं शत संख्याकानि शतं सहस्रमित्यपरिमित वचनः अपरिमितान् सद्यः प्रार्थनानन्तरमेव कक्षीवानहं आदं आत्तवानस्मि स्वीकृत वानस्मी त्यर्थः। तथा प्रयतान् शुद्धान् लक्षणोपेतान श्वानध्वगमन समर्थान् हयान् शतं शत संख्याकान् आदं आत्तवान्। तथा गोनां पुंगवानां बलीवर्दानामित्यर्थः। उत्तर मंत्रे स्त्री गवीनामभिधानात्। तेषां शतं आदम् एवं प्रदाता राजा दिवि द्युलोके श्रवः कीर्तिं अजरं शाश्वतीं आततान विस्तारितवान् गवादि प्रतिगृहीताहं स्वर्गे कीर्तिमकरवमित्यर्थः)। दूसरे स्थल में रुद्र का वर्णन है जिसमें ऋषि गृत्समद ने एक माला का उल्लेख किया है, जो निष्कों का बना हुआ था, (अर्हन् बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम्। अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति। ऋक्० मण्डल २ सूक्त ३३ मंत्र १०। इसका अर्थ सायणाचार्य के शब्दों में इस प्रकार है—हे रुद्र! त्वं अर्हन् अर्हो योग्य एव सन् सायकानि शरान् धन्व धनुश्च बिभर्षि धारयसि तथा अर्हन्नेव यजतम् यजनीयं पूजनीयं विश्वरूपं बहुविधरूपयुक्तं निष्कं हारं बिभर्षि तथा अर्हन्नेव इदं विश्वं सर्वं अभ्वं महन्नामैतत् अति विस्तृतं जगत् दयसे रक्षसि देङ् रक्षणे। हे रुद्र! त्वत्त्व-त्तोऽन्यत् किञ्चित् ओजीयः ओजस्वितरं बलवत्तरं नवाअस्ति। न खलु विद्यते। अतस्त्वमेवोक्तव्यापारेषु योज्य इत्यर्थः। इसी प्रकार "निष्कं वा घा कृणवते स्रजं वा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

द्युतिमान हुआ। धनागार विभूषित होगया और जनता को सुख प्राप्त हुआ। मैं उसका कुछ वृत्तान्त वर्णन करता हूँ और उनकी विलक्षणताएं चित्रित करता हूँ।

दुहितर्दिवः, त्रिते दुःष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये परिदह्मस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ऋक्० मण्डल ८ सूक्त ४७ मंत्र १५, है। इसका अर्थ सायणाचार्य ने इस प्रकार किया है—हे! दिवो दुहितरुषो निष्कंवा घ आभरणविशेषं वा कृणवते कुर्वते स्वर्णकाराय यत् दुःष्वप्न्यं दृष्टं स्वर्णकारेण निर्माणसमये दृष्टमित्यर्थः। घेति पूरणः वा शब्दश्चार्थेवा अथवा स्रजं माल्यं कृणवतेकुर्वाणेइत्यर्थः। तस्मिन्नपि मालाकारे मालानिर्माणसमये यत् दुःष्वप्न्यं दृष्टं तदुभय विषयं स्वप्नं आप्त्ये अपांपुत्रे त्रिते वर्तमानं परिदद्मसि परिदद्मो वयं त्रिताः परित्यजामेत्यर्थः। अथवा त्रिते मयि यद्दुःष्वप्न्यं दृष्टं तत्स्वर्णकाराय मालाकाराय वा परिदद्मसि अस्मत्तोपिनिष्कृष्य तयोरुपरि स्थापयामः। वो युष्माकमूतयो रक्षणानि अनेहसः अपापानि अनुपद्रवाणि च ऊतयो वो युष्माकं रक्षणानिः सऊतयः शोभन लक्षणानि पुनरुक्तिरादरार्था। इन ऋचाओं में निष्क शब्द आना तथा उसका मुद्राभरण के रूप में प्रयोग होना प्रकट करता है कि ऋग्वेद के समय में निष्क का प्रचार था। कितने ही विद्वानों का मत है कि वैदिक काल में राजा लोग सोने के विशेष परिमाण में बराबर टुकड़े करा लेते थे। यज्ञ में उन्हीं को दक्षिणा में देते थे वही "निष्क" कहलाते थे। उन पर यज्ञस्तूप आदि भी बनाये जाते थे। उनको गूथ कर हार बनाते थे तथा ऋषि और ब्राह्मणादि आज कल की मोहरों के हार हमेलों की तरह पहनते थे। इन मंत्रों में आभूषण से आशय निष्कों के हार से है, और निष्क से आशय विनिमय के काम में आने योग्य मुद्रा से है। यह सब स्वीकार करते हैं कि ऋग्वेद संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ है। अतः निष्क उतनाही प्राचीन है जितना कि ऋग्वेद।

"शतपथ ब्राह्मण" में एक स्थान पर हिरण्यं सुवर्णं शतमानम् (अर्थात् पीले रंग की 'शतमान' नामक सुवर्ण मुद्रा) का उल्लेख है। यह तौल में एक पल था। किसी किसी विद्वान् के मत से निष्क का दूसरा नाम शतमान है।

मनुस्मृति के आठवें अध्याय (श्लोक १३१-१३८) में पुराने मुद्रों का मान इस प्रकार दिया हुआ है। मनु ने रोशनदान के प्रकाश में उड़ते हुये दिखलाई पड़ने वाले ज़र्रों को सबसे छोटा माना है। उनको त्रसरेणु कहते हैं।

८ त्रसरेणु = १ लिक्षा
३ लिक्षा = १ राई
३ राई = १ सफ़ेद सरसों
६ सरसों = १ मंझला जौ
३ जौ = १ कृष्णल रत्ती
५ कृष्णल = १ माष
१६ माष = १ सुवर्ण
४ सुवर्ण = १ पल
१० पल = १ धरण
२ कृष्णल = १ रौप्य (चाँदी का) माषक
१६ माषक = १ रौप्य धरण या पुराण

तांबे के कर्ष भर के पण (पैसे) का नाम "कार्षापण" है।

१० धरण = १ चांदी का शतमान
४ सुवर्ण = १ निष्क।

निष्क का मान भिन्न भिन्न समयों में "शब्द सागर" के अनुसार इस प्रकार रहा है:—

१ निष्क = १ कर्ष (१६ माशे)
१ ,, = १ सुवर्ण ,,
१ ,, = १ दीनार ,,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्वर्ण मुद्रा।

(१) सहँसा—एक गोल मुद्रा है; तौल १०१ तोले ६ माशे ७ रत्ती;

१ निष्क = १ पल (४ या ५ सुवर्ण)
१ ,, = ४ माशे
१ ,, = १०८ या १५० सुवर्ण

सुवर्ण भी एक सिक्का था। बौद्धों के त्रिपिटक में "पभुतम् हिरञ् ञ सुवराणं" एक पद है। इसमें हिरण्य और सुवर्ण दोनों शब्द आये हैं। हिरण्य से अमुद्रित सोने का और सुवर्ण से 'सुवर्ण' नामक सिक्के से तात्पर्य है।

जो लोग यह कहते हैं कि प्राचीन भारतीयों ने सिक्का बनाना विदेशियों से सीखा, वे भूल में हैं। यह सब जानते हैं कि सन् ३२६ ईसा के पूर्व जब सिकन्दर ने इस देश पर आक्रमण किया था तो राजा आम्भि ने उपहार स्वरूप उसको चाँदी के बहुत से सिक्के, १००० भेड़ें और ३००० बैल दिये थे। ये सिक्के भारतवर्ष में ही निर्मित हुये थे। इसके अतिरिक्त रोम के इतिहासज्ञ क्विन्टस कर्टियस के अनुसार सिकन्दर जब तक्षशिला पहुँचा था तो वहां के राजा ने उसको ८० टेलेण्ट के मूल्य का अङ्कित किया हुआ चांदी का टुकड़ा उपहार में दिया था (Coins of Ancient India)। यह अङ्कित मुद्रा भारतवर्ष का ही था। सर अलेक्ज़ण्डर कनिङ्घम तथा रैप्सन का मत है कि प्राचीन भारत के सिक्के इसी देश के तौल के अनुसार बने हैं, क्योंकि इनका आकार प्रकार संसार की अन्य जातियों से भिन्न है।

मुद्रों के निर्माण काल के अन्वेषण के सम्बन्ध में, तक्षशिला की खुदाई में पुरातत्व विभाग के प्रधान अधिकारी सर जान मार्शल ने जो बहुत से पुराण तथा चाँदी के कार्षापण निकाले हैं, वे दूसरे दियादात के समय के हैं। दियादात का समय, ईसा के पूर्व तीसरी शताब्दी के अन्तर्गत माना जाता है। पादरी लोवेनथाल के मतानुसार दक्षिण भारत में पुराणों का चलन बहुत प्राचीन काल से रहां है और वे तीसरी शताब्दी तक चलते रहे हैं। अनेक पुरातत्वविदों के मतों का सार यही है कि भारतवर्ष में मुद्रा का चलन ईसा के १००० वर्ष पूर्व से चला है। पर, यह मत अन्तिम और निश्चित है, यह नहीं कहा जा सकता। क्योंकि मोहनजोदाड़ो (ज़िला लरकाना, सिन्ध) तथा हरप्पा (ज़िला माण्टगुमरी, पंजाब) में जो खुदाई हुई है, उसमें बड़ी बड़ी विलक्षण वस्तुएं निकली हैं, यथा—मिट्टी के बर्तन, खिलौने, नीले कांच और लेई तथा सीपी की चूड़ियां, चाक़ू, चक़माक़ की कीलें, पांसे और शतरंज के मुहरे, पत्थर की अंगूठियों का अद्भुत अनुक्रम, लाल पत्थर और सीप आदि का बना हुआ हार और नए नमूने के सिक्के या सील मुहरें आदि।

मोहेनजोदाड़ो की सभ्यता ईसा से ३००० या ३५०० वर्ष पहले की मानी जाती है। इससे यह सिद्ध ही होगया कि भारतीय आज से ५००० वर्ष पहले ऐसी वस्तुएँ तैयार करते थे जो संसार के लिए अनोखी थीं। इनमें सब से अपूर्व वस्तु सिक्के या निशान हैं जिनके सम्बन्ध में "इण्डियन हिस्टरिकल क्वार्टरली" में लिखा है कि भारतवर्ष के बाहर दूसरे प्राचीन स्थानों में जितनी सीलें अनुसन्धान में अभी तक पाई गई हैं उनमें से कोई भी आकार, प्रकार तथा चित्रण में इन सीलों के समान नहीं हैं (None of the seals discovered

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मूल्य १०० लाल जलाली। उसके एक ओर, बीच में, सम्राट् का नाम लिखा हुआ

in other ancient sites outside India bear resemblance to these seals in shape devices or pictographs. The Indian Historical Quarterly, March 1932. P. 131)। उन सीलों पर जो लेख हैं वे संसार की सभी लिपियों से भिन्न लिपि में लिखे हुये हैं। विद्वान उनको पढ़ रहे हैं। संभव है उनमें तथा अन्य स्थानों की खुदाई में मुद्रा निकल आवें।

'प्राचीन मुद्रा' के अनुसार खुदाइयों में सोने के पुराने निष्क, सुवर्ण अथवा पल नामक सिक्के अभी तक कहीं नहीं मिले हैं; किन्तु चाँदी के चौकोर और गोल लाखों सिक्के प्राप्त हुये हैं। पुरातत्वविदों के अनुसार यही प्राचीन पुराण वा धरण हैं। ये कदाचित् चाँदी के पत्रों को काट कर बनाये गये हैं। इनके पश्चात् ही अङ्क चिह्न युक्त (Punch marked) सिक्कों का चलन चला है।

विदेश वालों में यूनानियों के जो सोने चाँदी तथा तांबे के सिक्के मिले हैं, उनसे मालूम होता है कि वहाँ के पचीस शासकों ने अफ़ग़ानिस्तान और पंजाब पर शासन किया था। इन पर प्राचीन ग्रीक लिपि के लेख के साथ साथ खरोष्ट्री लिपि में उसका अनुवाद दिया हुआ है। जिससे एक दूसरी की सहायता से दोनों लिपियाँ पढ़ी जा सकती हैं।

क्षत्रप वंशी राजाओं के प्राप्त सिक्के कलदार चवन्नी के बराबर हैं। उन पर क्षत्रप या महाक्षत्रप का नाम, उपाधि और संवत् दिया हुआ है। इन सिक्कों से दो दर्जन के लगभग राजाओं का पता चलता है। इन से यह भी मालूम हुआ है कि राजा के मरने पर पुत्र के बजाय क्रमशः उसके भाई राज्य करते थे। अन्तिम भाई के मरने पर जेठे भाई का लड़का राज्य का अधिकारी होता था।

कुशन वंशियों के सिक्कों से उनका शीत प्रधान देश का निवासी होना सिद्ध होता है। राजतरङ्गिणी के अनुसार वे तुर्किस्तान के रहने वाले थे। इसी लिए शीत निवारणार्थ उनके शरीर पर लंबे लबादे आदि देख पड़ते हैं। वे शिव, बुद्ध और सूर्य आदि के उपासक थे। यज्ञ प्रेमी होने के कारण राजे अग्निकुण्ड में आहुति देते हुये दिखलाई पड़ते हैं।

गुप्त वंश के सिक्के सर्वोत्तम हैं और वे सोने, चांदी तथा तांबे के प्राप्त हैं। इन में से किसी में एक अश्व यज्ञ स्तम्भ से बंधा हुआ है, जो दक्षिणा देने या अश्वमेध यज्ञ की स्मृति दिलाने के लिये है। दूसरे प्रकार के सिक्कों में राजा बाजा बजा रहा है। तीसरे प्रकार के सिक्कों में राजा तीर से शेर का शिकार कर रहा है। इस वंश के समुद्रगुप्त, द्वितीय चन्द्रगुप्त और स्कन्दगुप्त आदि ने संसार भर में सब से पहले अपने सिक्कों पर छंदोबद्ध लेख लिखवाये थे। इसी प्रकार अन्य वंशों के सिक्कों का भी विवरण जानना चाहिये।

मध्यकाल के भारतीय सिक्कों पर विदेशी सिक्कों का भी काफ़ी प्रभाव पड़ा था। कितने सिक्के तो उनकी हूबहू नक़ल हैं। नक़ल बुरी बात नहीं है यदि उसका उपयोग समझदारी से किया जाय; किन्तु यहाँ कई सिक्कों की नक़ल से बड़ा अनर्थ हुआ है। जैसे हूण तोरमाण ईरान का ख़जाना लूट कर भारतवर्ष में ले आया था। मालवा, गुजरात, काठियावाड़ और राजपूताना आदि में कई सदियों तक उन्हीं सिक्कों की नक़लें बनती रहीं। उनमें राजा की आकृति

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है; और पाँचों तरफ़ की महराबों में—"अस्सुल्तानुलआज़म अलख़ाक़ानुलमोअज़्ज़म ख़ल्लदअ' अल्लाहुमुल्कहू व सुल्तानहू ज़र्ब दारुलख़िलाफ़त आगरा"[१]। उसके दूसरी

बिगड़ते बिगड़ते यहां तक ख़राब हुई कि लोगों ने राजा का चेहरा गदहे का खुर समझ लिया, और उन सिक्कों को गधीया या गदैया सिक्के कहने लगे। "अजमेर बसाने वाले राजा अजयदेव चोहान तथा उनकी रानी सोमल देवी के चांदी के सिक्कों के एक तरफ़ वही माना हुआ गधे के खुर का चिन्ह और दूसरी तरफ़ उनके नाम अंकित हैं।" किन्तु बापा रावल के स्वर्ण मुद्रों तथा प्रतिहार वंशी भोजदेव आदि के सिक्कों से मालूम होता है कि उन्होंने किसी की, नक़ल नहीं की, वरन् वे पुरानी शैली के सिक्के बनवाते रहे।

"ये सिक्के अनेक राजवंशों के जैसे ग्रीक्, शक, पार्थियन, कुशन, क्षत्रप, गुप्त, अर्जुनायन, औदुंबर, कुनिन्द, मालव, नाग, राजन्य, योधेय, आंध्र, हूण, गुहिल, चौहान, कलचुरि (हैहय), चंदेल, तोमर, गाहड़वाल, सोलंकी, यादव, पाल, कदंब, आदि के तथा काश्मीर के भिन्न भिन्न वंशों के; कांगड़े, नेपाल, आसाम, मणिपुर आदि के भिन्न भिन्न राजाओं के तथा अयोध्या, उज्जैन, कौशांबी, तक्षशिला, मथुरा, अहिछत्रपुर आदि नगरों के राजाओं के एवं मध्यमिका आदि नगरों के मिलते हैं।.... भारतवर्ष के प्राचीन सोने, चाँदी और तांबे के सिक्कों के कई बड़े बड़े संग्रह इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, और रूस आदि यूरोप के देशों में, कलकत्ता, बम्बई आदि की एशियाटिक सोसायिटियों के संग्रहों में, तथा इण्डियन म्यूज़ियम् (कलकत्ता), बंगीय साहित्य परिषद् (कलकत्ता), लखनऊ म्यूज़ियम्, राजपूताना म्यूज़ियम् (अजमेर), सरदार म्यूज़ियम् (जोधपुर), वाट्सन म्यूज़ियम् (राजकोट), प्रिन्स आफ़ वेल्स म्यूज़ियम् (बंबई), मद्रास म्यूज़ियम्, पेशावर म्यूज़ियम्, लाहौर म्यूज़ियम्, पटना म्यूज़ियम्, नागपुर म्यूज़ियम् आदि कई एक संग्रहालयों में तथा कई विद्यानुरागी गृहस्थों के निजी संग्रहों में विद्यमान हैं" (हिन्दी प्राचीन मुद्रा की भूमिका पृ० ७-६)।

मुसलमान बादशाहों के सिक्कों में महमूद ग़ज़नवी ने अपने सिक्कों पर बड़े विचित्र लेख लिखवाये। उनमें देव नागरी लिपि में लिखा था—"अथ अव्यक्तमेक मुहम्मद अवतार नृपति महमूद" तथा, "अयं टंक महमूद संवत् ४१२।" ऐसा मालूम होता है कि उसके दरबार में कुछ भारतीय पंडित थे, उन्होंने उसको पैग़म्बर मुहम्मद का अवतार बना दिया था। ये सिक्के लाहौर के बने हुये थे। उन दिनों लाहौर, ग़ज़नी और नीशापुर में टकसालें थीं, इनके अतिरिक्त तीन चार जगहें और थीं। काबुल में उन दिनों कोई टकसाल न थी, (Thomas, in "Journal of Royal Asiatic Society", Vol. IX P. 67, and Vol. XVII P. 157, quoted by C. B. Vaidya in his 'Downfall of India' P. 143)।

अन्य मुसलमान बादशाहों के सिक्के आसानी से मिल जाते हैं और उनका हाल भी लोगों को मालूम है, इस लिए उनके सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा गया है।

१—महाराजाधिराज, महाराजराजेश्वर, उसका राज्य और शासन सदा घना रहे; राजधानी आगरा में अङ्कित किया गया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तरफ़ बीच में पाक कलमा[१] और यह आयत—"[२]अल्लाहु यर्जुक़ो मँइयशाउ बिग़ैरे हिसाब" और उसके आसपास पहले चार[३] ख़लीफ़ों के नाम।

पहले, मौलाना मक़सूद मोहरकन ने, उपर्युक्त वाक्य खोदने में कार्य पटुता दिखलाई थी, उनके बाद मुल्ला अली अहमद ने निम्नलिखित वाक्य लिखकर विचित्रता प्रकट की। मुल्ला ने एक ओर—"[४]अफ़ज़लो दीनार यनफ़क़हू-अर्रजुलु दीनार यनफ़क़हू अ़ला असहाबिही फ़ी सबीलिल्लाह" बढ़ा दिया; और दूसरी तरफ़—"[५]अस्सुसुलतानुलआ़ली अलख़लीफ़तुलमुतआ़ली ख़ल्लदअल्लाहु तआ़ला मुलकहू व सुल्तानहू व अब्बदअ अ़दलहू व एहसानहू।"

पीछे से उसने सब इबारत साफ़ करदी, और कवि सम्राट् एवं दार्शनिक शेख़ फ़ैज़ी की दो रुबाइयाँ खोद दीं। सहँसा के एक ओर:—

"[६]ख़ुर्शीद कि हफ़्त बह्र अज़-ओ गौहर याफ़्त;
संगे सियह अज़ परतवे आं जौहर याफ़्त।
कान अज़ नज़रे तर बियते ऊ ज़र याफ़्त;
वां ज़र शरफ़ अज़ सिक्कए शाह अकबर याफ़्त।"

और बीच में, "[७]अल्लाहु अकबर, जल्ल जलाल हू।" दूसरी ओर यह रुबाई:—

"[८]ईं सिक्का कि पीरायये उम्मीद बुअद;
बा नक़्श-दवाम-ओ नाम-ए जावीद बुअद।

१—"लाइलाह इल्लिल्लाह मुहम्मद रसूलल्लाह।"

२—ईश्वर, जिसको चाहता है, बिना हिसाब रोज़ी देता है।

३—बकर, उमर, उसमान और अली।

४—सबसे बढ़कर वह दीनार है, जिसको कोई व्यक्ति अपने धर्म बन्धुओं पर ईश्वर के मार्ग में व्यय करता है।

५—श्रेष्ठ सुलतान और उच्च पदस्थ ख़लीफ़ा; परमेश्वर सर्वदा उसका देश और उसकी बादशाही स्थिर रक्खे, और उसका इन्साफ़ और एहसान हमेशा बनाये रक्खे।

६—यह सूर्य है जिससे कि सात समुद्रों ने मोती पाया, काले पत्थर ने जिसकी द्युति से प्रतिभा प्राप्त की, जिसकी पोषण-दृष्टि से खान ने सोना पाया और सोने ने बादशाह अकबर के सिक्के से प्रतिष्ठा प्राप्त की।

[मध्यकाल के प्राकृतिक तत्ववेत्ताओं के मतानुसार, सूर्य के प्रभाव से ही धातु, मोती और बहुमूल्य मणियों का आविर्भाव होता है। देखिये तेरहवां आईन।]

७—ईश्वर महान है, उसका ऐश्वर्य महान है।

८—यह मुद्रा, जोकि आशा का भूषण है, अमिट आकारों और चिरस्थायी नाम के साथ स्थिर रहेगा। उसकी भागवानी के चिह्न के लिए इतना ही पर्याप्त है कि संसार में सूर्य का भेंट किया हुआ एक परमाणु चिरस्थायी रहेगा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सीमाएसआ़दतश हमीं बस कि बदह ;
यक़ ज़र्रा नज़र करदए ख़ुर्शीद बुअद।"

और स्थायित्व का चिह्न इलाही साल और महीना बीच में अंकित कर दिया।

(२) इसी नाम और इसी शक्ल का एक और स्वर्ण मुद्रा है, ६१ तोले ८ माशे का। इसका मूल्य ग्यारह माशे वाली १०० गिर्द[१] मोहरें हैं। इस पर भी पहले वाले ही अङ्क हैं।

(३) **रहस**—पूर्वोक्त दोनों मुद्राओं का अद्धा। कभी चार कोने का भी बनता है। उसके एक तरफ़ वही सौ मोहर वाली (सहँसा) के चिह्न हैं; और दूसरी ओर मलिकुश्शोअ़रा शेख़ फ़ैज़ी की यह रुबाई :—

"२ई नक़दे रवाने गंजे शाहिंशाही;
बा कौकबे इक़बाल कुनद हमराही।
ख़ुर्शीद बिपरवरिश अज़ांरु किबदह;
याबद शरफ़ज़ सिक्कए अकबर शाही।"

(४) **आत्मा**—सहँसा का चतुर्थांश; गोल और चौकोण। इसके कुछ मुद्रों पर सहँसा के अंक हैं, और कुछ पर मलिकुश्शोअ़रा की यह रुबाई :—

"३ई सिक्का कि दस्ते-बख़्त रा ज़ेबर बाद;
पीराया-ए नोह सिपहो हफ़्त अख़्तर बाद।
ज़र्रीं नक़देस्त कारअज़ो-चुं ज़र बाद;
दर दहरे रवाँ बनामे शाह अकबर बाद।"

—और दूसरी ओर पहली रुबाई।

(५) **बिंसत**—आत्मा की दोनों शक्लों के समान। इसे पहले सिक्के के पञ्चमांश के बराबर बनाते हैं।

इसी प्रकार सहँसा के आठवें, दसवें, बीसवें और पचीसवें, भागों के भी सिक्के हैं।

१—गोल।

२—यह शाही ख़ज़ाने का प्रचलित मुद्रा, सौभाग्य नक्षत्र के साथ रहता है। सूर्य उसका पोषण इस लिये करता है कि वह संसार में अकबर शाही सिक्के द्वारा सुकीर्ति प्राप्त करे।

३—यह मुद्रा, जो भाग्य-कर का भूषण है, नौ आकाशों और सप्त ग्रहों का शृङ्गार हो। यह एक सोने का सिक्का है, इससे सोने के सदृश कार्य सिद्ध हों। संसार में अकबर बादशाह के नाम से प्रचलित हो।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(६) **जुगुल**[1]—चौकोन, सहँसा का पचासवां हिस्सा, मूल्य दो मोहर।

(७) **लाल जलाली गिर्द**—तौल और मूल्य में दो गिर्द मोहरों के समान। एक ओर "अल्लाहो अकबर" और दूसरी ओर 'या मुईन'[2]।

(८) **आफ़ताबी**—गोल, तोल १ तोला २ माशे ४$\frac{३}{४}$ रत्ती, मूल्य १२ रुपए। एक ओर "अल्लाहो अकबर जल्ल जलाल हू," और दूसरी ओर महीना, इलाही साल और सिक्का लगाये जाने का स्थान।

(९) **इलाही**—गोल, तौल १२ माशे १$\frac{३}{४}$ रत्ती, इस पर आफ़ताबी के समान लिखावट है। मूल्य १० रुपए।

(१०) **लाल जलाली चहार गोशा**—चौकोण, तौल और मूल्य इलाही के समान। एक ओर "अल्लाहो अकबर", दूसरी ओर "जल्ल जलाल हू"।

(११) **अद्‌ल गुटका**—गोल, तौल ११ माशे, मूल्य ९ रुपए। एक ओर "अल्लाहो अकबर" दूसरी तरफ़ "या मुईन"।

(१२) **मोहर**[3] **गिर्द**—गोल, तौल और मूल्य में अद्‌ल गुटका के सदृश पर लिखावट और प्रकार की।

१—मूल ग्रन्थों में इस शब्द के अक्षर-न्यास भ्रमात्मक हैं। इसे चुगुल भी पढ़ा जा सकता है। तौल और मूल्य में भी भिन्नता है। किसी किसी में लिखा है चौकोर चुगुल की तौल ३ तोले ५$\frac{१}{४}$ रत्ती और मूल्य ३० रु० है। जो चुगुल गोल है, वह २ तोले ९ माशे भर की है। उसका मूल्य ११ माशे वाली ३ मोहरें अर्थात् २७ रु० है। लिखावट दोनों पर एक सी है।

२—हे सहायक!

३—अधिकतर सिक्के के रूप में यही मोहर चलती थी। मोहर फ़ारसी भाषा का शब्द है। "हाब्सन् जाब्सन्" के अनुसार यह 'मेहर' शब्द से, जिसका अर्थ सूर्य होता है, निकला है; इसका दूसरा अर्थ, छाते के सिरे पर का सुनहला छोटा घेरा, होता है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह मुद्रा शब्द से जो सिक्का और छाप दोनों अर्थों में व्यवहृत होता है, निकला है। राजपूताने में सोने के सिक्कों को पुराने समय में सुवर्ण, निष्क, शतमान, पल, दीनार, गद्याणक आदि कहते थे (राजपूताने का इतिहास जिल्द पहली)। भारतवर्ष के अन्य भागों में भी सोने के सिक्कों के क़रीब क़रीब ऐसे ही नाम थे। पर इनमें मुद्रा के अतिरिक्त कोई नाम ऐसा नहीं है, जिससे मुहर शब्द निकला हुआ जान पड़े। यद्यपि सोने के सिक्के और मुसलमान बादशाहों ने भी बनवाये थे, किन्तु मोहर नाम से उनकी अधिक ख्याति ग़ज़नी के ग़ोरी बादशाहों के समय में ही हुई। उन्होंने सन् १२०० ई० में १०० रत्ती (१७५ ग्रेन) की मोहर बनाई, और उसका मूल्य रुपए का दस गुना नियत किया। मुहम्मद तुग़लक़ की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(१३) **महराबी**[१]—तौल, मूल्य और लिखावट में मोहर गिर्द के समान।

(१४) **मुईनी**—चौकोर और गोल; तौल और मूल्य में लाल जलाली और मोहर गिर्द के सदृश। "या मुईन" खुदा हुआ।

(१५) **चहार गोशा**—अंक और तौल आफ़ताबी के समान।

(१६) **गिर्द**—इलाही का अद्धा और वही अंक।

(१७) **धन**—लाल जलाली का अद्धा।

(१८) **सलीमी**—अद्ल गुटका का अद्धा।

(१९) **रबी**—आफ़ताबी का चौथाई।

(२०) **मन**—इलाही और जलाली का चौथाई।

मोहर २०० ग्रेन की थी। कम्पनी की सरकार ने सब से पहली मोहर सन् १७६६ ई० में बनाई और उसका मूल्य १४ सिक्का रुपया क़रार दिया। आजकल भारतवर्ष में सोने का सिक्का नहीं बनता है।

१—यह महराबी क़दीम है। इसी तरह का एक और सिक्का था, जिसको महराबी जदीद कहते थे। क़दीम की तरह यह भी छे कोने का सिक्का था। इसकी तौल ११ माशे २ रत्ती थी। इसके एक ओर "अल्लाहु अकबर जल्ल जलाल हू", और दूसरी ओर "इसुरदाद इलाही ज़र्ब आगरा ४९" अंकित है। 'आईने अकबरी' में इस मुद्रा का उल्लेख नहीं है। पर नवलकिशोर प्रेस से 'आईने-अकबरी' का जो संस्करण १ नवम्बर सन् १८९३ ई० को प्रकाशित हुआ था उसमें सिक्कों के सम्बन्ध में एक परिशिष्टांश है, उसमें महराबी जदीद का उल्लेख है। किन्तु परिशिष्ट की टिप्पणी में यह बात लिखी है कि 'आईने-अकबरी' में इसका ज़िक्र नहीं है। जुलाई सन् १९३१ ई० के 'हिन्दुस्तानी' में इसी सिक्के के सम्बन्ध में लिखा है,—"एक और मुहर आगरा टकसाल से अकबर के उनचासवें (४९वें) सन् इलाही में जारी हुई थी। इसका एक नमूना लखनऊ के अजायब घर में भी है।" यह सिक्का सन् १६०४ का है, और 'आईने अकबरी' के लेखक की हत्या १२ अगस्त सन् १६०२ को हो चुकी थी। संभवतः इसी से "आईने अकबरी" में इसका समावेश नहीं होसका।

उसी 'हिन्दुस्तानी' में एक और सिक्के के बारे में लिखा है,—"ब्रिटेन के अजायब घर में एक बहुत ही नायाब मोहर इलाही सन् ५० की मौजूद है। उस पर एक ओर एक बतख़ बनी हुई है और दूसरी ओर "अल्लाहु अकबर, ५० ख़ुरदाद, ज़रब आगरा लिखा हुआ है।" इसका भी उल्लेख आईने अकबरी में नहीं है।

नवलकिशोरी के परिशिष्टांश में एक दूसरे प्रकार की मोहर - गिर्द जदीद का उल्लेख है। वह ११ माशे की थी। उसके एक ओर रामचन्द्र और सीता का चित्र और देवनागरी लिपि में शब्द "राम" तथा दूसरी ओर "फ़रवर्दीन इलाही ५०" अङ्कित है।

इसी प्रकार अकबर के और भी नाना प्रकार के सिक्के हैं, जो संग्रहालयों में सुरक्षित हैं, परन्तु 'आईने-अकबरी' में उनका उल्लेख नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(२१) **निस्फ़ी सलीमी**—अद्ल गुटके का चौथाई।

(२२) **पंज**—इलाही का पंचमांश।

(२३) **पारडौ**—लाल जलाली का पांचवां भाग एक ओर 'लाला'[१] और 'नसरीन'[२] खुदा हुआ है।

(२४) **समनी**—इसे **अष्ट सिद्ध** भी कहते हैं। यह मोहर इलाही का अष्टमांश है। एक ओर 'अल्लाहो अकबर' और दूसरी ओर 'जल्ल जलाल हू'।

(२५) **कला**—इलाही का सोलहवां भाग; दोनों ओर नसरीन के फूल खुदे हुये हैं।

(२६) **ज़र्रा**—इलाही का बत्तीसवां हिस्सा; इसमें आकार कला के समान हैं।

नियम यह है, कि सम्राट् की टकसाल में सोने से प्रति मास, लाल जलाली, धन और मन के सिक्के मुद्रित किये जाते हैं, परन्तु अन्य मुद्रा बिना नई आज्ञा के अङ्कित नहीं होते।

रौप्य मुद्रा।

(१) **रुपया**[३]—चांदी का नगद है, गोल ११½ माशे भर का। यह पहले, शेर खाँ के समय में प्रविष्ट हुआ और इस प्रतापी राज्य में पूर्णता को पहुँचा, एवं नवीन अंक खोदे गये। एक ओर "अल्लाहो अकबर जल्ल जलाल हू"; और दूसरी तरफ़ तारीख़। यद्यपि इसका भाव ४० दाम से घटता बढ़ता रहता है; परन्तु वेतनादि के सम्बन्ध में इसकी यही दर स्थिर रहती है।

१—पोस्त का लाल रंग का फूल, जिसमें प्रायः काली ख़स ख़स पैदा होती है।

२—सेवती।

३—"एक और चांदी का सिक्का है, जोकि बहुत ही दुष्प्राप्य है, परन्तु सौभाग्य से लखनऊ अजायब घर के लिए प्राप्त कर लिया गया है। उस पर रुपया शब्द लिखा हुआ है। इसके संबन्ध में मुख्य बात यह है कि किसी चांदी के सिक्के पर रुपया शब्द नहीं लिखा है। यद्यपि साधा- चांदी के विशेष तौल के सिक्के को ते हैं" (हिन्दुस्तानी जुलाई सन् १९३१) 'आईने-अकबरी' में इसका भी उल्लेख नहीं है।

रुपया, संस्कृत में रुप्य शब्द से निकला है। कौटिल्य ने लिखा है—"लक्षणाध्यक्ष लोहा, रांगा, जस्त, काला सुरमा, आदि में से किसी एक का एक माशा, चौथाई तांबा तथा चांदी लेकर रुपया (रुप्य रूप) बनवावे" (कौटिल्य का अर्थ शास्त्र, अधिकरण २)। हिन्दुओं के अनेक प्राचीन चांदी के सिक्के मिल चुके हैं। विल्सन के मतानुसार रुपए का चलन शेरशाह ने १५४२ ई० में चलाया। "हाब्सन जाब्सन"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(२) **जलाला**—वर्गाकार, इस वैभवशाली राज्य में इस प्रकार का बनाया गया। तौल और अङ्क रुपए के सदृश।

(३) **दर्ब**—जलाला का अद्धा।

(४) **चरन**—जलाला का चौथाई।

(५) **पाएडौ**—जलाला का पाँचवाँ भाग।

(६) **अष्ट**—जलाला का आठवाँ भाग।

(७) **दसा**—जलाला का दसवाँ भाग।

(८) **कला**—जलाला का सोलहवाँ हिस्सा।

(९) **सूकी**—जलाला का बीसवाँ भाग।

जलाला की तरह गोल रुपए की भी उपर्युक्त रेज़गारी बनाई जाती है, पर उनकी सूरत शक्ल में भिन्नता होती है।

ताम्र-मुद्रा।

१—**दाम**[१]—तांबे का सिक्का है, ५ टांक का, जिसका वज़न १ तोला ८ माशे ७ रत्ती होता है। यह रुपए का चालीसवां भाग है। पहले इसे **पैसा** कहते

के अनुसार मुसलमान बादशाहों ने हिन्दुओं की तरह पर रुपया बनाया था। परन्तु रुपया शब्द शेरशाह के समय में ही प्रसिद्ध हुआ। यह सम्भव भी है। फ़ारसी अक्षरों में यदि रुप्य शब्द लिखें तो रुप्य का शुद्धोच्चारण न जानने वाला व्यक्ति उसे रुपया, 'रुपियह' आदि पढ़ेगा। अनुमान होता है, पढ़ाई लिखाई में ही रुप्य का नाम रुपया पड़ गया।

मोरलैण्ड लिखते हैं अकबर का "चाँदी का मुख्य मुद्रा १७२½ ग्रेन का रुपया था, जो वज़न में आज कल के रुपए के बराबर था। तांबे का ख़ास सिक्का दाम था। इनमें से प्रत्येक के खंड मुद्रा भी थे। रुपए का सबसे छोटा खंड मुद्रा उसका बीसवाँ भाग (सूकी) था, और दाम का अष्टमांश या दमड़ी।.... रुपए का तुलनात्मक मूल्य अंग्रेज़ी सिक्कों में २ शिलिङ्ग ३ पेन्स था" (India at the Death of Akbar, P. 55)।

ब्रिटिश सरकार के प्रारम्भिक सिक्कों के चार नमूने ब्रिटिश म्यूज़ियम में हैं। उनमें से एक पर एक तरफ़ The rupee of Bombaim. 1677. By authority of Charles the Second; और दूसरी तरफ़ King of Great Buritaine, France and Ireland लिखा हुआ है। यह तौल में १६७.८ ग्रेन है (हाब्सन जाब्सन)। चांदी के भाव के घटने बढ़ने के अनुसार, शिलिङ्ग के मुक़ाबले में, रुपए का तुलनात्मक मूल्य घटता बढ़ता रहता था। १८९८ ई० में पार्लामेण्ट के एक ऐक्ट के अनुसार इसकी दर १ शिलिङ्ग ४ पेंस नियत हुई थी। प्रचलित कलदार रुपए की तौल १८० ग्रेन है; जिसमें १६५ ग्रेन चांदी और १५ ग्रेन अन्य धातुएं रहती हैं।

१—कई लेखकों के मतानुसार ग्रीक भाषा के "मुख्य सिक्कों के नाम भारतीय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थे और **बहलोली** भी। आज कल यह दाम के नाम से प्रसिद्ध है। इसके एक ओर अंकित होने का स्थान, और दूसरी तरफ़ साल और महीना खुदा हुआ है। हिसाब करने वाले हर दाम को २५ भागों में विभाजित करते हैं, और हर भाग को **जीतल**[१] कहते हैं। यह काल्पनिक विभाजन हिसाब किताब में काम आता है।

२—**अधेला**—दाम का आधा।

३—**पावला**—दाम का चौथाई।

४—**दमड़ी**—दाम का आठवां भाग।

इस शासन के आरम्भ में, सोना, अनेक स्थानों पर सम्राट् के श्रेष्ठ नाम से उच्च पद प्राप्त करता था, अर्थात् बहुत जगहों पर सिक्के बनाये जाते थे; पर आज कल वे चार स्थानों के अतिरिक्त और कहीं नहीं अंकित होते हैं, यथाः—राजधानी, बंगाला, अहमदाबाद और काबुल। चांदी और तांबे के सिक्के उपर्युक्त चार जगहों

भाषाओं में समाविष्ट हो गये। द्रम्म (वर्तमान दाम) ग्रीक शब्द ड्रैकमी ($\theta\rho\alpha\chi\mu\eta$) का विकृत रूप है और दीनार दीनारियस का रुपान्तर है" (Rawlinson's Intercourse Between India and the Western world, P. 167, Ed. 1916)। आप्टे के कोष में भी उपर्युक्त मत का समर्थन किया गया है। द्रम्म शब्द भास्कराचार्य के प्रसिद्ध ग्रंथ लीलावती में आया है—वराटकानां दशकद्वयं यत् साकाकिणी ताश्च पणश्चतस्रः; ते षोडश द्रम्म इहाव गम्यो द्रम्मैस्तथा षोडशभिश्च निष्कः—अर्थात् बीस कौड़ियों की एक काकिणी, ४ काकिणी का १ पण, १६ पण का १ द्रम्म और १६ द्रम्म का १ निष्क। अकबर के राजत्व काल में दाम आज कल के पैसे की तरह चलता था। पीछे से जीतल की तरह दाम भी एक काल्पनिक मुद्रा रह गया। कारनेगी (Carnegie) ने अवध के काल्पनिक सिक्कों की तालिका इस प्रकार निर्मित की है :—

२६ कौड़ी = १ दमड़ी

१ दमड़ी = ३ दाम

२० दमड़ी = १ आना

२५ दाम = १ पैसा।

अकबर के समय में सिक्कों में दाम एक विशेष महत्व की चीज़ था। "शाही रजिस्टरों के अनुसार दिल्ली के बादशाहों के सब प्रदेशों का राजस्व ६ अरब ३० करोड़ दाम या २ करोड़ ५० लाख रुपए था" (Muhammad Sharif, in Elliot, vii. 138.)। 'आईने - अकबरी' में भी वेतन, राजस्व आदि सबका उल्लेख दामों में है।

१—जीतल भारतवर्ष का बहुत पुराना तांबे का सिक्का है। पश्चिमी घाट पर यह बहुत दिनों तक चलता रहा था; परन्तु अब इसका पता नहीं है। ई० टामस के अनुसार अलाउद्दीन का जीतल तंगा का (जिसका पीछे से रुपया नाम पड़ गया) $\frac{१}{६४}$ भाग या वर्तमानी समय के पैसे के बराबर था। परन्तु इसका चलन अलाउद्दीन के पहले से था, जैसा कि नीचे के उदाहरणों से प्रकट होता है। "कुतबुद्दीन (११६३—६४) की आज्ञा से निज़ामुद्दीन मुहम्मद जब दिल्ली लौटा था,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में तथा निम्नलिखित दस और स्थानों में बनाये जाते हैं,—इलाहाबास (इलाहाबाद), आगरा, उज्जैन, सूरत, देहली, पटना, काश्मीर, लाहौर, मुल्तान और टांडा। पर निम्नलिखित अट्ठाइस स्थानों पर केवल तांबे के सिक्कों का मुद्रण होता है,—अजमेर, अवध, अटक, अलवर, बदायूं, बनारस, भक्कर, बहेरा, पटन, जौनपुर, जालन्धर, हरिद्वार, हिसारफ़ीरोज़ा, कालपी, ग्वालियर, गोरखपुर, कलानोर, लखनऊ, मंदू, नागोर, सरहिन्द, स्यालकोट, सरोंज, सहारनपुर, सारंगपुर, संबल, क़न्नोज, रणथम्भोर।[१]

इस समृद्धिशाली देश में अधिकतर लेन देन मोहर-गिर्द, रुपया[२] और दामों से होता है। लालची चोट्टे सिक्कों के माल को घिसकर तथा दूसरे उपायों से ख़राब करके मनुष्यों को बड़ी हानि पहुँचाते हैं। इस लिए सम्राट् समय की गति पहचान कर सदा कार्य कुशल व्यक्तियों के मतानुसार नए क़ानून बनाता रहता है, और इस हानिप्रद व्यवहार का इलाज कर देता है।

सिक्कों के आईनों में कई बार परिवर्तन हुये[३]। पहले, (जलूसी सन् २७, १५८२ ई०) में, जब कि शासन का प्रबन्ध-भार **राजा टोडरमल**[४] के हाथों में था,

---

तो वह अपने साथ दो ग़ुलाम राजधानी दिल्ली में लाया था। मलिक क़ुतबुद्दीन ने उन दोनों तुर्कों को १००००० जीतल को ख़रीद लिया था" (Raverty. Tabkat-i-Nasiri, P. 603)। १२९० ई० में "दिल्ली में दुर्भिक्ष पड़ा था, उस समय अन्न एक जीतल का केवल सेर भर मिलता था" (Ziá-ud-din Barni, in Elliot, iii. 146)। अकबर के समय में यह काल्पनिक-मुद्रा रह गया था। मध्य काल में पुर्तग़ीज़ों का सेइटिल (Ceitile या Zoitoles) नामक तांबे का एक छोटा सिक्का था। कदाचित् यह और जीतल शब्द एक हो (Fernandes, in Memorias da Academia Real das Sciencias de Lisboa, 2 da Classe, 1856)। "ग़यासुल्लुग़ात" के अनुसार जीतल शब्द हिन्दी का है।

१—"बाबर ने सात टकसालें स्थापित कीं और हुमायूं के समय में नौ और अकबर के समय में बहत्तर तक हो गईं, परन्तु औरंगज़ेब के समय में वे केवल अड़सठ रह गई थीं।" (हिन्दुस्तानी)

२—मुग़लों का मुद्रा निर्माण-कार्य साधारणतया उस समय के यूरोपीय सम्राटों से अत्यधिक उत्तम था; और अकबर के सिक्के धातु की शुद्धता, तौल की पूर्णता एवं कला की दृष्टि से विशेष रूप से उत्कृष्ट थे [Mughal Rule in India, by H. L. O. Garret, M. A., 1930, P. 218]।

३—यह वाक्य मूल ग्रंथ में नहीं है। प्रसंग को स्पष्ट करने के लिए इसे ब्लाक्-मैन के अनुवाद के अनुसार जोड़ दिया गया है।

४—राजा टोडरमल का जन्म लाहोर में एक खत्री के घर में हुआ था। अकबर के राजत्व काल के अट्ठारहवें वर्ष में, संभवतः वह नौकर हुआ। पहले पहल उसको गुजरात का झगड़ा तय करने का काम सौंपा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्राट् ने चार प्रकार की मोहरें प्रचलित की थीं। पहली—लाल जलाली, उस पर सम्राट् का नाम खुदा हुआ था; उसकी तौल १ तोला १$\frac{३}{४}$ रत्ती, खराई में पूरी, और मूल्य ४०० दाम था। दूसरी वह मोहर थी, जिसको सम्राट् ने अपने शासन के आरम्भिक काल में जारी किया था। इसका वज़न ११ माशे था। यह तीन प्रकार की थी। पूर्णतया खरी और तौल में भी पूरी होने पर उसका मूल्य ३६० दाम होता था। चलन के अनुसार यदि वह तीन चावल तक घिस जाती थी, तो उसी कोटि की मानी जाती और मूल्य में कम नहीं की जाती थी। पर जो मोहर चार चावल से छे चावल तक घट जाती थी, वह दूसरे दर्जे का नगद ख़्याल किया जाता था, और उसका मूल्य ३५५ दाम होता था। अगर छे से नौ चावल तक घट जाती, तो लोग उसको तीसरे दर्जे का मुद्रा मानते थे, और उसका मूल्य ३५० दाम रह जाता था। इससे भी अधिक घिसी हुई मोहर को बिना सिक्का किया हुआ सोना मानते थे।

रुपया, तीन प्रकार का चलता था। पहला, चौकोण—ख़ालिस चांदी का, तौल ११$\frac{१}{२}$ माशे, नाम **जलाला,** मूल्य ४० दाम। दूसरा, गोल, पुराना **अकबर शाही** रुपया—तौल में पूरा या एक रत्ती तक कम होने पर मूल्य ३९

गया। उन्नीसवें वर्ष में उसने बंगाल में मुनीम खाँ के साथ काम किया, और पीछे से तीन साल फिर गुजरात में। सत्ताइसवें वर्ष वह राज्य का दीवान बनाया गया। इस साल उसने राजस्व सम्बन्धी नई व्यवस्था जारी की। बत्तीसवें वर्ष किसी खत्री ने उसपर आक्रमण किया। इसी साल वह बीरबल की मृत्यु का बदला चुकाने के लिए, यूसुफ़ज़इयों पर चढ़ाई करने के लिए भेजा गया। अब टोडरमल वृद्ध हो चुका था, इस लिए चौंतीसवें साल में उसने त्यागपत्र दे दिया। अकबर ने उसको अनिच्छा से स्वीकार किया। अंतिम जीवन उसने गंगातट पर व्यतीत किया; जहाँ १० नवम्बर सन् १५८९ ई० को उसका स्वर्गवास हो गया। राजा टोडरमल ने अपनी बुद्धि प्रखरता से चार हज़ारी पद प्राप्त किया था। वह माली मामलों की समझदारी के लिए जितना प्रसिद्ध था, वैयक्तिक साहस के लिए भी उतना ही ख्यातिनामा था। उसके ज्येष्ठ पुत्र का नाम दहारु था। वह भी वीर था। जैसे उसका पिता ४००० सैनिकों का स्वामी था, वैसे ही उसका पुत्र भी ७०० का मंसबदार था। ठट्ठ के युद्ध में वह वीर गति को प्राप्त हुआ था।

अबुल फ़ज़्ल, टोडरमल को व्यक्ति गत रूप से पसन्द नहीं करता था, परन्तु उसने उसकी दृढ़ता और योग्यता की प्रशंसा की है। वह उसपर हिन्दुओं का कट्टर पक्षपाती होने का लांछन लगाता था। यहाँ तक कि उसने इसकी शिकायत खुल्लम खुल्ला अकबर से की थी। पर सम्राट् ने टोडरमल की राजभक्ति और सेवाओं का स्मरण करके उत्तर दिया कि "मैं एक वृद्ध सेवक को पृथक् नहीं कर सकता हूं।"

टोडरमल हिन्दू धर्म का कट्टर अनुयायी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दाम; और दो रत्ती तक कम होने पर मूल्य ३८ दाम। इससे अधिक घिसा हुआ रुपया चांदी के भाव में लिया जाता था।

दूसरी बार, १८ मेहर सन् २९ इलाही में, जब अज़दुद्दौला अमीर फ़तहउल्ला शीराज़ी[1] राज्य का अमीन नियुक्त हुआ, तो शाही फ़रमान (राजाज्ञा-पत्र) जारी हुआ, कि मोहर में तीन चावल और रुपये में छे चावल तक की घिसावट को, कम न माना जाय। इससे अधिक कम होने पर, न्यूनता के अनुसार मूल्य काटा जाय। यह नहीं, कि नौ चावल तक की कमी को यकसांही ख़्याल किया जाय। इस कारण से एक रत्ती कम वाली मोहर का मूल्य ३५५ दाम और कुछ भिन्न नियत हुआ। और एक रत्ती अंकित सोने की दर चार दाम और कुछ भिन्न मानी गई। पहले (टोडरमल के)

था। एक बार बादशाह के साथ उसको पंजाब जाना पड़ा। प्रस्थान की शीघ्रता में उसकी उपास्य श्री मूर्तियां खो गईं। वह बिना पूजन किये कोई कार्य नहीं करता था। इस लिए अब की बार उसको कई दिन बिना अन्न जल के रहना पड़ा। जब इस घटना की सूचना सम्राट् को मिली, तो उसने बड़ी कठिनाई से उसको सान्त्वना दी। उसके और बीरबल के धार्मिक विचारों में कुछ अन्तर था। बीरबल स्वर्ग-यात्रा के पहले ही 'दीन इलाही' मत का सदस्य हो चुका था, परन्तु टोडरमल ने अन्त तक उसको स्वीकार नहीं किया था। [विशेष विवरण के लिये द्वितीय ग्रंथ में मंसबदार नं० ३९ के जीवनचरित को देखिये।]

१—अमीर फ़तहउल्ला, शीराज़ (फ़ारस) का रहने वाला था। तत्वज्ञान और पदार्थ विज्ञान इसका चढ़ा बढ़ा था। यंत्र कला में वह विशेष दक्ष था। उसके गुणों पर मुग्ध होकर अबुल फ़ज़्ल कहा करता था, "यदि प्राचीन ग्रन्थ नष्ट हो जांय, तो अमीर उनका पुनर्निर्माण कर सकता है।" बीजापुर के आदिलशाह ने उसे फ़ारस से दक्षिण प्रदेश में बुलाया था। सन् ९९१ हि० में जब आदिल शाह का स्वर्गवास हो गया, तो सम्राट् अकबर ने उसे बुला लिया, और सद्र (प्रधान) का पद प्रदान किया। तीन साल बाद उसने उसको अमीनुलमुल्क की उपाधि प्रदान की। वह राजा टोडरमल की सहायता के लिए नियत किया गया। उसने उक्त कार्य बड़ी तत्परता से किया। अकबर ने प्रसन्न होकर उसकी उपाधि बदल दी और अज़दुद्दौला (राज्य की भुजा) की पदवी से उसे विभूषित किया। इसके बाद वह ख़ानदेश गया। सन् ९९७ में जब वह वापस आ रहा था, अकबर उस समय काश्मीर में था, अमीर फ़तहउल्ला को ज्वर आ गया। यह सोचकर कि "मैं हिकमत का ज्ञाता हूं, सब बातें जानता हूं, जो कुछ भी उपचार करूंगा, ठीक होगा", हकीम अली के विरोध करने पर भी हरीसा (एक प्रकारका हरीरा—जो गेहूं, मांस, घी, नमक और मसाला आदि से बनता है) खा लिया, जिससे वह मर गया।

अबुल फ़ज़्ल, फैज़ी और बीरबल के बाद बादशाह सबसे अधिक प्रेम अमीर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सम्राट् ने चार प्रकार की मोहरें प्रचलित की थीं। पहली—लाल जलाली, उस पर सम्राट् का नाम खुदा हुआ था; उसकी तौल १ तोला १$\frac{३}{४}$ रत्ती, खराई में पूरी, और मूल्य ४०० दाम था। दूसरी वह मोहर थी, जिसको सम्राट् ने अपने शासन के आरम्भिक काल में जारी किया था। इसका वज़न ११ माशे था। यह तीन प्रकार की थी। पूर्णतया खरी और तौल में भी पूरी होने पर उसका मूल्य ३६० दाम होता था। चलन के अनुसार यदि वह तीन चावल तक घिस जाती थी, तो उसी कोटि की मानी जाती और मूल्य में कम नहीं की जाती थी। पर जो मोहर चार चावल से छे चावल तक घट जाती थी, वह दूसरे दर्जे का नगद ख्याल किया जाता था, और उसका मूल्य ३५५ दाम होता था। अगर छे से नौ चावल तक घट जाती, तो लोग उसको तीसरे दर्जे का मुद्रा मानते थे, और उसका मूल्य ३५० दाम रह जाता था। इससे भी अधिक घिसी हुई मोहर को बिना सिक्का किया हुआ सोना मानते थे।

रुपया, तीन प्रकार का चलता था। पहला, चौकोण—ख़ालिस चांदी का, तौल ११$\frac{१}{२}$ माशे, नाम **जलाला,** मूल्य ४० दाम। दूसरा, गोल, पुराना **अकबर शाही** रुपया—तौल में पूरा या एक रत्ती तक कम होने पर मूल्य ३९

गया। उन्नीसवें वर्ष में उसने बंगाल में मुनीम खाँ के साथ काम किया, और पीछे से तीन साल फिर गुजरात में। सत्ताइसवें वर्ष वह राज्य का दीवान बनाया गया। इस साल उसने राजस्व सम्बन्धी नई व्यवस्था जारी की। बत्तीसवें वर्ष किसी खत्री ने उसपर आक्रमण किया। इसी साल वह बीरबल की मृत्यु का बदला चुकाने के लिए, यूसुफ़ज़इयों पर चढ़ाई करने के लिए भेजा गया। अब टोडरमल वृद्ध हो चुका था, इस लिए चौंतीसवें साल में उसने त्यागपत्र दे दिया। अकबर ने उसको अनिच्छा से स्वीकार किया। अंतिम जीवन उसने गंगातट पर व्यतीत किया; जहाँ १० नवम्बर सन् १५८९ ई० को उसका स्वर्गवास हो गया। राजा टोडरमल ने अपनी बुद्धि प्रखरता से चार हज़ारी पद प्राप्त किया था। वह माली मामलों की समझदारी के लिए जितना प्रसिद्ध था, वैयक्तिक साहस के लिए भी उतना ही ख्यातिनामा था। उसके ज्येष्ठ पुत्र का नाम दहारु था। वह भी वीर था। जैसे उसका पिता ४००० सैनिकों का स्वामी था, वैसे ही उसका पुत्र भी ७०० का मंसबदार था। ठट्ठ के युद्ध में वह वीर गति को प्राप्त हुआ था।

अबुल फ़ज़्ल, टोडरमल को व्यक्ति गत रूप से पसन्द नहीं करता था, परन्तु उसने उसकी दृढ़ता और योग्यता की प्रशंसा की है। वह उसपर हिन्दुओं का कट्टर पक्षपाती होने का लांछन लगाता था। यहाँ तक कि उसने इसकी शिकायत खुल्लम खुल्ला अकबर से की थी। पर सम्राट् ने टोडरमल की राजभक्ति और सेवाओं का स्मरण करके उत्तर दिया कि "मैं एक वृद्ध सेवक को पृथक् नहीं कर सकता हूं।"

टोडरमल हिन्दू धर्म का कट्टर अनुयायी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दाम; और दो रत्ती तक कम होने पर मूल्य ३८ दाम। इससे अधिक घिसा हुआ रुपया चांदी के भाव में लिया जाता था।

दूसरी बार, १८ मेहर सन् २६ इलाही में, जब अज़दुद्दौला अमीर फ़तहउल्ला शीराज़ी[१] राज्य का अमीन नियुक्त हुआ, तो शाही फ़रमान (राजाज्ञा-पत्र) जारी हुआ, कि मोहर में तीन चावल और रुपये में छे चावल तक की घिसावट को, कम न माना जाय। इससे अधिक कम होने पर, न्यूनता के अनुसार मूल्य काटा जाय। यह नहीं, कि नौ चावल तक की कमी को यकसांही ख़्याल किया जाय। इस कारण से एक रत्ती कम वाली मोहर का मूल्य ३५५ दाम और कुछ भिन्न नियत हुआ। और एक रत्ती अंकित सोने की दर चार दाम और कुछ भिन्न मानी गई। पहले (टोडरमल के)

था। एक बार बादशाह के साथ उसको पंजाब जाना पड़ा। प्रस्थान की शीघ्रता में उसकी उपास्य श्री मूर्तियां खो गईं। वह बिना पूजन किये कोई कार्य नहीं करता था। इस लिए अब की बार उसको कई दिन बिना अन्न जल के रहना पड़ा। जब इस घटना की सूचना सम्राट् को मिली, तो उसने बड़ी कठिनाई से उसको सान्त्वना दी। उसके और बीरबल के धार्मिक विचारों में कुछ अन्तर था। बीरबल स्वर्ग-यात्रा के पहले ही 'दीन इलाही' मत का सदस्य हो चुका था, परन्तु टोडरमल ने अन्त तक उसको स्वीकार नहीं किया था। [विशेष विवरण के लिये द्वितीय ग्रंथ में मंसबदार नं० ३६ के जीवनचरित को देखिये।]

१—अमीर फ़तहउल्ला, शीराज़ (फ़ारस) का रहने वाला था। तत्वज्ञान और पदार्थ विज्ञान इसका चढ़ा बढ़ा था। यंत्र कला में वह विशेष दक्ष था। उसके गुणों पर मुग्ध होकर अबुल फ़ज़्ल कहा करता था, "यदि प्राचीन ग्रन्थ नष्ट हो जांय, तो अमीर उनका पुनर्निर्माण कर सकता है।" बीजापुर के आदिलशाह ने उसे फ़ारस से दक्षिण प्रदेश में बुलाया था। सन् ६६१ हि० में जब आदिल शाह का स्वर्गवास हो गया, तो सम्राट् अकबर ने उसे बुला लिया, और सद्र (प्रधान) का पद प्रदान किया। तीन साल बाद उसने उसको अमीनुलमुल्क की उपाधि प्रदान की। वह राजा टोडरमल की सहायता के लिए नियत किया गया। उसने उक्त कार्य बड़ी तत्परता से किया। अकबर ने प्रसन्न होकर उसकी उपाधि बदल दी और अज़दुद्दौला (राज्य की भुजा) की पदवी से उसे विभूषित किया। इसके बाद वह ख़ानदेश गया। सन् ६६७ में जब वह वापस आ रहा था, अकबर उस समय काश्मीर में था, अमीर फ़तहउल्ला को ज्वर आ गया। यह सोचकर कि "मैं हिकमत का ज्ञाता हूं, सब बातें जानता हूं, जो कुछ भी उपचार करूंगा, ठीक होगा", हकीम अली के विरोध करने पर भी हरीसा (एक प्रकारका हरीरा—जो गेहूं, मांस, घी, नमक और मसाला आदि से बनता है) खा लिया, जिससे वह मर गया।

अबुल फ़ज़्ल, फैज़ी और बीरबल के बाद बादशाह सबसे अधिक प्रेम अमीर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

क़ानून के अनुसार, मोहर में एक रत्ती कम होने पर पांच दाम घटाते थे, और तीन चावल से अधिक की कमी में भी यदि वह कमी आधा चावल होती, तो पाँचही दाम का हिसाब लगाते थे। १½ रत्ती की कमी के लिए, लेन देन में १० दाम कम किये जाते थे। यदि इतनी कमी न भी होती, तो भी दस दाम का ही हिसाब लगाते थे। परन्तु नए क़ानून (अज़दुद्दौला के क़ानून) के अनुसार वह ६ दाम और कुछ भिन्न घटाई गई और उसका मूल्य ३५३ दाम और कुछ भिन्न रह गया[१]। अज़दुद्दौला ने उस क़ानून को भी रद्द किया, जिसके द्वारा गोल रुपए का मूल्य, उसके पूर्णतया खरे होने और तौल में पूरे होने पर भी, चौकोर रुपए से एक दाम कम माना जाता था। एक रत्ती तक कम होने पर भी, उस गोल रुपए का मूल्य ४० दाम नियत किया। पहले यदि रुपया दो रत्ती कम होता, तो उसका मूल्य दो दाम कम समझा जाता था। पर अब उतनी ही कमी के लिए, उसके मूल्य में एक दाम और कुछ भिन्न कम किया जाता है।

तीसरे, जब अज़दुद्दौला ख़ानदेश गया, तो राजा टोडरमल ने मोहर का मूल्य, जो जलाला रुपयों में लगाया जाता था, गोल रुपयों में नियत कर दिया; और अपने स्वाभाविक पक्षपात तथा हठधर्मी से मोहर और रुपए की कमी को पहली रीति के अनुसार मुक़र्रर किया।

चौथे, जब राज्य की रक्षा का भार क़ुलीज ख़ाँ[२] पर आपड़ा, तो उसने मोहरों के मूल्य कूतने का नियम वही स्वीकार किया, जो कि राजा टोडरमल ने

फ़तहउल्ला से करता था। कई आविष्कार भी उसने किये थे, परन्तु अबुल फ़ज़्ल ने उनको अकबर के नाम से विख्यात किया है। अमीर की अबुल फ़ज़्ल से अच्छी बनती थी। उसके पुत्र को अमीर ने शिक्षा दी थी। "मीरातुल आलम" के लेखक के मतानुसार वह एक संसारी जीव था। बहुधा जब वह बादशाह के साथ शिकार में जाता था, तो कंधे पर बन्दूक़ और फेंट में बारूद रखकर शक्ति का प्रदर्शन करता हुआ चलता था।

"मआसिरुल उमरा" के लेखक का कथन है कि कुछ लोगों के मतानुसार वह तीन हज़ारी मंसबदारों में था। उसका नाम "तबक़ाते-अकबरी" अथवा "आईने-अकबरी" के मंसबदारों की सूची में नहीं है।

१—अज़्दुद्दौला ने १ रत्ती मुद्रित सोने का मूल्य चार दाम और कुछ भिन्न नियत किया था। इसलिए पूरी तौल अर्थात् ११ माशे भर की मोहर का मूल्य (११ माशे × ८ रत्ती × ४ + कुछ भिन्न = ३५२ + कुछ भिन्न या लगभग ३५३ दाम या उससे कुछ अधिक) अबुल फ़ज़्ल के मतानुसार ३५३ दाम और कुछ भिन्न था। पहले इसी का मूल्य ३६० दाम था।

२—क़ुलीज अकबरी शासन के १७ वें वर्ष में, सबसे पहले सूरत के दुर्ग का शासक बनाकर भेजा गया था; जिसको अकबर ने ४७ दिन के घेरे के बाद जीत लिया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निश्चित किया था। परन्तु राजा मोहर की जितनी कमी के लिए, पांच दाम कम करता था, क़ुलीज़ ख़ां ने उसके लिए १० दाम घटाकर क्रय-विक्रय का बाज़ार परिचालित किया। जिस मोहर में राजा दस दाम कम करता था, उसने उसके लिए दुगना (२० दाम) घटाया जाना नियत किया। जो मोहर १½ रत्ती से अधिक कम होती थी, उसकी गणना उसने बिना सिक्का किये हुये सोने में की। जो रुपया[१] एक रत्ती से अधिक कम होता उसको वह बिना अंकित की हुई चांदी ख़्याल करता था।

सम्राट् राजाज्ञा-रक्षकों पर विश्वास करता था, और कार्यों की अधिकता के कारण वह पहले इस ओर बहुत कम ध्यान देता था। जब इस कारख़ाने के कुप्रबन्ध

था। क़ुलीज ख़ां तेइसवें वर्ष गुजरात भेजा गया; और शाह मंसूर की मृत्यु के बाद वह पिछले दो साल के लिए दीवान नियत हुआ। अट्ठाइसवें वर्ष गुजरात की विजय में फिर उसने भाग लिया। चौंतीसवें वर्ष उसे संभल की जागीर मिली। टोडरमल की मृत्यु के बाद, वह फिर दीवान बनाया गया। इसी समय उसने सिक्कों के मूल्य में हेर फेर किया। सन् १००२ हिजरी में वह काबुल का गवर्नर नियुक्त हुआ। परन्तु वहां वह असफल रहा। सन् १००५ हिजरी में वह अपने जामात्र शाहज़ादा दानियाल का शिक्षक बना। सन् १००७ हिजरी में, जब कि बादशाह ख़ानदेश में था, वह आगरे की गवर्नरी पर तैनात था। दो वर्ष बाद वह पंजाब और काबुल का सूबेदार नियुक्त किया गया। जहांगीर के गद्दी पर बैठने के बाद वह गुजरात भेजा गया, परन्तु दूसरे ही वर्ष पंजाब वापस गया। जहां उसको रौशनाइयों से युद्ध करना पड़ा। सन् १०३५ हिजरी में उसकी मृत्यु हो गई। अपनी योग्यता द्वारा उसने चार हज़ारी की पदवी प्राप्त की थी। वह पक्का सुन्नी था। वह कवि भी था। उसका कविता सम्बन्धी नाम 'उलफ़ती' था।

१—संसार के वर्तमान समय के मुख्य सिक्कों और अकबरी रुपए में कितना अन्तर है, यह इस तालिका से जाना जाता है। इस में सब सिक्कों का तुलनात्मक मूल्य शिलिङ्ग और पेंसों में है। अकबरी रुपया आज कल के हिसाब से लगभग २ शिलिङ्ग ३ पेंस का था, और भारतवर्ष का प्रचलित कल्दार रुपया इस तालिका के अनुसार इंग्लैण्ड के १ शिलिङ्ग ६ पेंस के बराबर है। विनिमय तथा सोने चांदी के घटने बढ़ने के अनुसार इनके मूल्य में भी कमी बेशी होती रहती है।

देश	मुख्य सिक्का	तुलनात्मक मूल्य शि०	पेंस
अर्जेनटिना	पेसो (काग़ज़) = १०० सेन्तावो	१	८
	,, (स्वर्ण) = ,, ,,	४	०
आस्ट्रिया	शिलिङ्ग = १०० ग्रोशेन	०	७
बेलजियम	फ्रैंक = १०० सेण्टाइमस्	०	१½

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की ख़बर उस तक पहुँची, तो उसने एक उत्तम व्यवस्था निर्धारित की, जिससे सुदूरवर्ती और निकटवर्ती आनन्दित हुये और संसार हानि उठाने से बच गया।

देश	मुख्य सिक्का	तुलनात्मक मूल्य शि०	पेंस
बेलजियम	बेल्गा = ५ फ्रैंक	०	७
ब्रेज़िल	क्रूज़ीरो = ४ मिलरेई	२	०
	मिलरेई (काग़ज़) = १००० रेई	०	६
ब्रिटिश हण्डूरास (अमेरिका)	डालर (स्वर्ण) = १०० सेण्टस्	४	१
बुलगेरिया	लेव = १०० स्टोटिंकी	०	०½
कनाडा	डालर (स्वर्ण) = १०० सेण्टस्	४	१
लङ्का	रुपया = १६ आना	१	६
चिली (दक्षिणी अमेरिका)	पेसो (स्वर्ण) = १०० सेन्तावो	०	६
चीन	टाएल (Tael) (डालर) = १०० ताम्र मुद्रा	२	८
क्यूबा (मैक्सिको की खाड़ीमें)	पेसो (स्वर्ण) = १ डालर (अमेरिका)	४	१
चेको-स्लोवाकिया	क्रोन	०	१½
डेनमार्क	क्रोन = १०० ऊर	१	१¼
मिस्र	मिस्री पौण्ड = १०० पियास्टरस्	२०	६¼
फ़िनलैण्ड	मर्क्का = १०० पेनी	०	१¼
फ्रान्स	फ्रैंक = १०० सेन्टाइमस्	०	२
जरमनी	राइशमार्क = १०० फेनीक (Pfennige)	०	११¾
ग्रीस	ड्राकमा = १०० लेप्टा	०	०½
हालैण्ड	फ्लोरिन = १०० सेण्टस्	१	८
हंगेरी	पेंगो = १०० फ़िलर	०	८½
हिन्दुस्तान	रुपया = १६ आना	१	६
इटली	लीरा = १०० सेण्टाइमस्	०	२½
जापान	येन = १०० सेन	२	०½
मारिशस	रुपया = १६ आना	१	६
मैक्सिको	डालर (स्वर्ण) = १०० सेन्तावो	२	०½
	पेसो (स्वर्ण) = ५० सेण्टस् (अमेरिका)	२	०½
न्यूफ़ाउण्डलैण्ड	डालर (स्वर्ण) = १०० सेण्टस्	४	१
नार्वे	क्रोन = १०० ऊर		१½

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विद्वानों की सम्मतियां।

सर अब्दुर्रहीम, एक्स. चीफ़ जस्टिस, मद्रास हाईकोर्ट—"·····यह (आईने-अकबरी का अनुवाद) एक ऐसा सत्कर्म है, जिससे भारतीय इतिहास के विद्यार्थियों का महान् कल्याण होगा। मुझे विश्वास है कि पंडित जी को अवश्य ही प्रोत्साहन और सहायता प्राप्त होगी।"

पंडित **रामचन्द्र जी शुक्ल,** प्रोफ़ेसर बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी—"···· पंडित जी के इस अनुवाद में बड़ी भारी विशेषता यह है कि इसमें फ़ारसी के मूल शब्दों और वाक्यों का पूरा ध्यान रक्खा गया है। ऐसा अनुवाद उसीके द्वारा हो सकता है जिसे फ़ारसी और हिन्दी दोनों भाषाओं पर समान और पूर्ण अधिकार हो। अनुवाद ठीक ठीक फ़ारसी के अनुकूल होते हुये भी उसकी भाषा बहुत ही सरस, प्रांजल और चलती हुई है। आपकी यह निपुणता देख मुग्ध हो जाना पड़ता है। यह हिन्दी का बड़ा भारी सौभाग्य है कि उसके एक बड़े भारी अभाव की पूर्ति के लिए पंडित जी ऐसे प्रकाण्ड विद्वान् और लेखन-कला-पटु साहित्य-क्षेत्र में उतरे हैं। इतिहास के क्षेत्र में आपने एक अत्यन्त उज्वल भविष्य का आभास दिया है। आपकी विद्वत्ता, श्रमशीलता, और तत्परता देख मेरे हृदय में आपके प्रति श्रद्धा का जो भाव उत्पन्न हुआ है वह मुझे बराबर उत्साह प्रदान करता रहेगा।"

डा० **बेनी प्रसाद,** एम. ए., डी. एस. सी., पी-एच. डी, इलाहाबाद यूनीवर्सिटी—"आईने-अकबरी भारतीय इतिहास की महत्वपूर्ण पुस्तकों में से है, हिन्दी अनुवाद एक कमी को पूरा करता है। पाण्डेय जी ने जिस परिश्रम और उत्साह से यह काम किया है उसकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। उपयुक्त शब्दों का विन्यास बड़ी ख़ूबी से किया गया है। भाषा में महावरा है।"

मौ० **हसरत मोहानी,** बी. ए.,—"मेरे विद्वान् मित्र पं० रामलाल जी पाण्डेय ने आईने-अकबरी का हिन्दी अनुवाद पूर्ण करके देश और जाति की बहुत बड़ी सेवा की है। मूल ग्रंथ की फ़ारसी इबारत से मिलाकर देखने से मालूम हुआ कि पंडित जी ने असाधारण अनुसंधान एवं परिश्रम से काम लिया है। यह बात बिना अत्युक्ति के कही जा सकती है कि आईने-अकबरी का इससे अधिक शुद्ध और सरस अनुवाद कहीं और किसी भाषा में प्रकाशित नहीं हुआ है। मैं यह बात अपने वैयक्तिक अनुभव के आधार पर कहता हूँ।"

कर्मवीर श्री सुन्दर लाल जी, "····हाल में मुझे उन (भाषान्तरकार) के साथ कई घण्टे बैठने और उनके अनुवाद का स्थान स्थान पर मूल फ़ारसी से मुक़ाबला करने का मौक़ा मिला। उनकी सफलता को देखकर मैं दंग रह गया और हर्ष से भर गया।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

डा० **राधा कुमुद मुकर्जी**, एम. ए., पी. आर. एस., पी-एच. डी, प्रोफ़ेसर ऐण्ड हेड आफ़ दि डिपार्टमेण्ट आफ़ इन्डियन हिस्ट्री, लखनऊ यूनीवर्सिटी—"मैं पं० रामलाल पाण्डेय को उनके जीवन की महान्कृति के पूर्ण करने के उपलक्ष में, जो कि उन्होंने अबुलफ़ज़ल के विश्व विद्याभण्डार फ़ारसी ग्रंथ आईने-अकबरी के भाषान्तर के रूप में उपस्थित की है, बधाई देता हूँ। उन्होंने यह कार्य विद्या प्रेम से प्रेरित होकर ही आरम्भ किया था, और सात वर्ष के अनवरत परिश्रम के बाद उसे समाप्त किया। उनकी यह कृति, भारतीय इतिहास और हिन्दी-साहित्य के लिए जिसमें ऐसे प्रमुख ग्रंथों का अभाव है, एक अमूल्य दान है। अनुवादक की बहुभाषा भिज्ञता भी सराहनीय है, कि जिनको फ़ारसी तथा हिन्दी दोनों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त है। धुरन्धर विद्वान् तक अबुलफ़ज़ल की फ़ारसी को क्लिष्ट तथा पुराने ढंग की फ़ारसी समझते हैं, तिस पर आईने-अकबरी तो और भी कठिन है, क्योंकि उसमें तत्कालीन भारत की सभी श्रेणियों का जीवन सम्बन्धी प्रत्येक दशा और पहलुओं को निरूपण करने के लिए, नाना प्रकार के विषयों के वर्णन में, भयङ्कर शब्द भाण्डार का, प्रयोग करना पड़ा है। मुझे इसमें किञ्चितमात्र सन्देह नहीं कि पंडित रामलाल जी का श्रम, जिसने कि अनुपम सफलता प्राप्त करली है, हिन्दी विद्वानों द्वारा युगों तक पुरस्कृत होता रहेगा। विद्वान् सदा इससे लाभान्वित होते रहेंगे, और भारत के एक अनुपम सम्राट् के विस्तृत काल सम्बन्धी अपूर्व ऐतिहासिक ज्ञान-स्रोत का जल पान करते रहेंगे।"

सर जी. **रास मसऊद**, वाइस चांसलर, मुसलिम यूनीवर्सिटी, अलीगढ़:—"मैंने आपके आईने-अकबरी के अनुवाद के उद्धरणों का मूल पुस्तक से मिलान किया है और आपके ग्रंथ की उत्कृष्टता को देख कर चकित हो गया हूँ। वस्तुतः आपने हिन्दी और फ़ारसी साहित्य की महान सेवा की है, जो समस्त प्राच्य विद्या विशारदों एवं हिन्दी-ईरानी संस्कृति प्रेमियों का सम्मान बिना प्राप्त किये नहीं रह सकती। आईने-अकबरी एक अत्यन्त पारिभाषिक, ज्ञान सम्पन्न और विद्वता पूर्ण कृति है। आपके अनुवाद ने ग्रंथ की संपन्नता को सुरक्षित रखने में विलक्षण सफलता प्राप्त की है।"

डा० **राम प्रसाद त्रिपाठी**, एम. ए., डी. एस. सी, इतिहास विभाग, इलाहाबाद यूनीवर्सिटी:—"मैं आईने-अकबरी के भीमकाय हिन्दी भाषान्तर को देख कर अति प्रसन्न हुआ। पं० रामलाल पाण्डेय हमारी सर्व श्रेष्ठ बधाई के पात्र केवल इस लिए ही नहीं कि उन्होंने इतने दुःसाध्य कार्य का भार अपने ऊपर लिया है, प्रत्युत इस लिए भी कि उन्होंने उसे असाधारण योग्यता और अपूर्व सफलता के साथ संपन्न किया है। आप उन उदाराशय महानुभावों में से हैं, जिनकी प्रेममयी सेवा का उद्देश्य, और कुछ नहीं, केवल विद्या तथा साहित्य की उन्नति करना होता है। उनका आईने-अकबरी का अनुवाद हिन्दी-साहित्य को एक बहुमूल्य रत्न प्रदान करेगा, जो उसके भाँडार को समृद्धिशाली बना देगा।"

11.11.42

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आईने-अकबरी

खंड १, अंक २

भाषान्तरकार तथा सम्पादक

रामलाल पाण्डेय

आईने-अकबरी के ग्राहकों के लिए नियम।

(१) आईने-अकबरी का प्रति अंक प्रति तृतीय मास में प्रकाशित होगा, जिसमें २०×२६ साइज़ के २८ पौण्ड और ४० पौण्ड के काग़ज़ पर छपे हुए रायल अठपेजी ६४ पृष्ठ होंगे।

(२) जो सज्जन कम से कम १००) एकमुश्त पेशगी देंगे, उनकी सेवा में प्रकाशन के क्रम से श्रेष्ठ संस्करण की एक प्रति भेजी जाया करेगी; और ग्रन्थ के अन्त में उनका नाम भी प्रकाशित किया जायगा।

(३) स्थायी ग्राहकों के लिए वार्षिक मूल्य श्रेष्ठ संस्करण का ७) और साधारण संस्करण का ४॥) होगा।

(४) एक प्रति का मूल्य डाक-व्यय के अतिरिक्त श्रेष्ठ संस्करण का २) और साधारण संस्करण का १।) होगा।

प्रकाशक

विद्या-मन्दिर, कानपुर

G1
15,B

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, साहित्य महारथी:—फ़ारसी में आईने-अकबरी बड़ा ही महत्वपूर्ण ग्रंथ है। पंडित रामलाल पाण्डेय ने उसकी सभी जिल्दों का अनुवाद, हिन्दी में, करके बड़ा काम किया। प्रकाशित होजाने पर उससे हिन्दी साहित्य को एक ग्रंथ रत्न की प्राप्ति होगी। साहित्य की अभिवृद्धि की दृष्टि से अनुवादक महोदय की सहायता करना, हिन्दी भाषा के प्रेमियों और सम्पन्न सज्जनों का कर्तव्य है।

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय, हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस:—अनुवाद के जितने गुण हैं, पंडित जी के सरस अनुवाद में पाये जाते हैं। ऐसा अपूर्व अनुवाद करने और उसे आद्योपान्त एक रस रखने में उन्होंने चकितकर कार्य किया है। इसके लिए वे बधाई के पात्र हैं।

मातृभाषा अथवा हिन्दी में अनुवाद करके पंडित जी ने उस रत्न को एक प्रकार से स्वायत्त कर लिया है, और यह एक हर्ष ही नहीं बड़े गौरव की बात है।

श्री महेश प्रसाद, एम. एफ. (आनर्स-इन-अरबी) हेड-आफ दी डिपार्टमेण्ट आफ़ अरबी, फ़ार्सी, और उर्दू, बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी, बनारस—आईने-अकबरी के लेखक विद्वद्वर अबुलफ़ज़्ल की लेखन-शैली एक विशेष ढंग की है; उस विशेषता को पंडित जी ने खूब ही निभाया है। ··निदान यह अनुवाद उत्तम और विश्वास-पूर्ण है।

श्रीमान् काका कालेलकर, प्रिंसिपल गुजरात-विद्यापीठ—इस ग्रंथ पर मूल फ़ारसी के ऊपर से सीधा हिन्दी अनुवाद करके श्रीमान् पाण्डेय जी ने देश का बहुत ही उपकार किया है। ऐसे कार्य निष्ठा और परिश्रम से ही हो सकते हैं। मुझे आशा है कि यह अनुवाद शीघ्र ही प्रकाशित हो जायगा, और इसका साहित्य-संसार में उचित आदर होगा।

पं० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, परीक्षक कलकत्ता-विश्वविद्यालय, और भूतपूर्व सम्पादक 'भारत मित्र' और 'स्वतंत्र' कलकत्ता—वास्तव में पाण्डेय जी का यह कार्य बड़ा ही प्रशंसनीय है। अनुवाद अच्छा हुआ है और मूल भाव की बराबर रक्षा की गई है। मैं पाण्डेय जी के उद्योग की सफलता चाहता हूँ।

मौ० आज़ाद सुभानी—'आईने-अकबरी का यह तर्जुमा निहायत सही और मुकम्मिल तर्जुमा है, और इसका मुस्तहक़ है कि मुल्क इस पर अपनी तवज्जोह सादिक़ मब्जूल करे। मुल्क को पंडित जी का इस ख़िदमते जलीला के लिए जो इल्मी भी है और तमद्दुनी भी बेहद शुक्र गुज़ार होना चाहिए।

Printed at the Job Press, Cawnpore.

156

टकसाल के कर्मचारी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

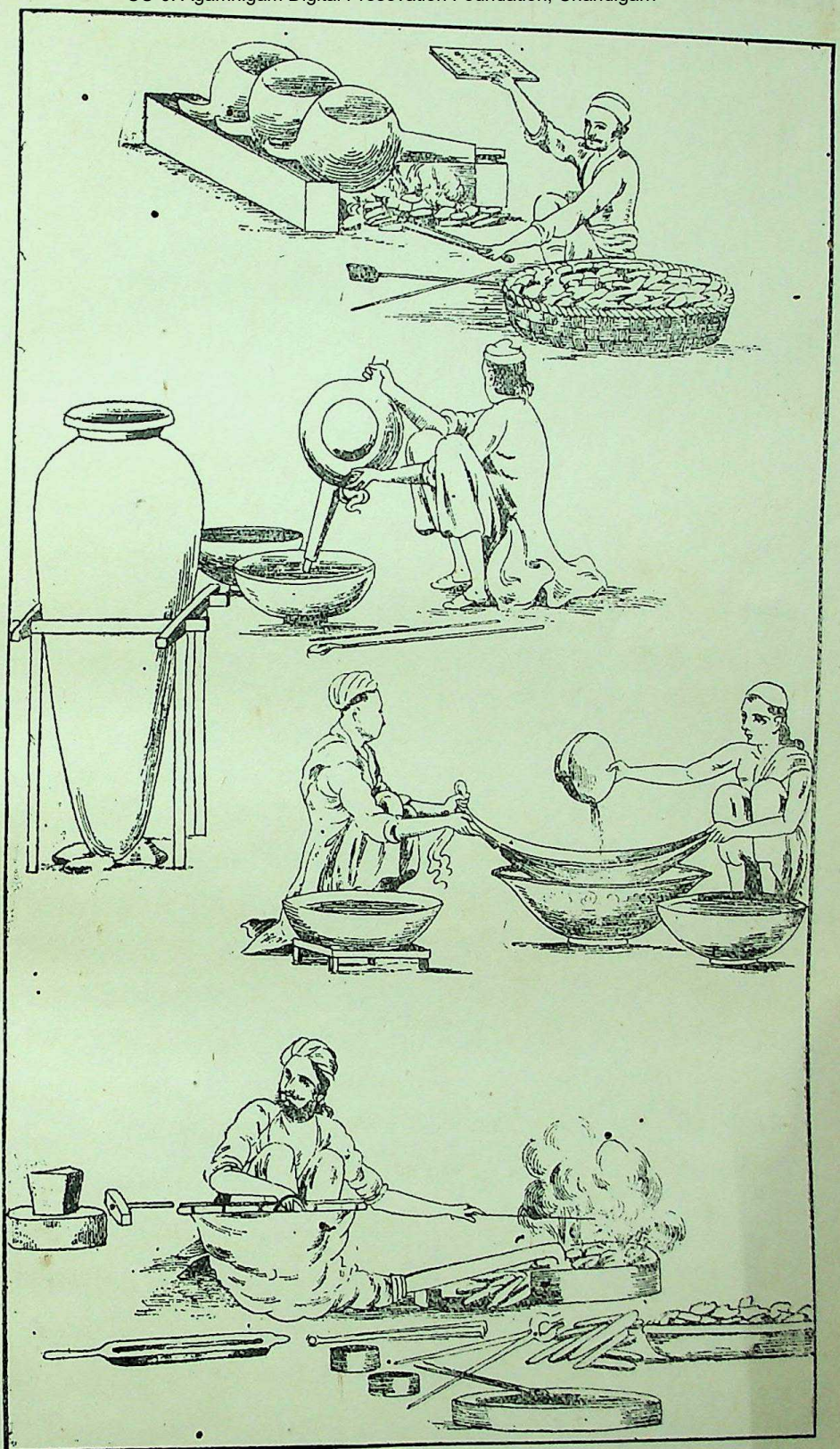

पृ० ३७ से ४६ तक देखिये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

टकसाल के कर्मचारी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

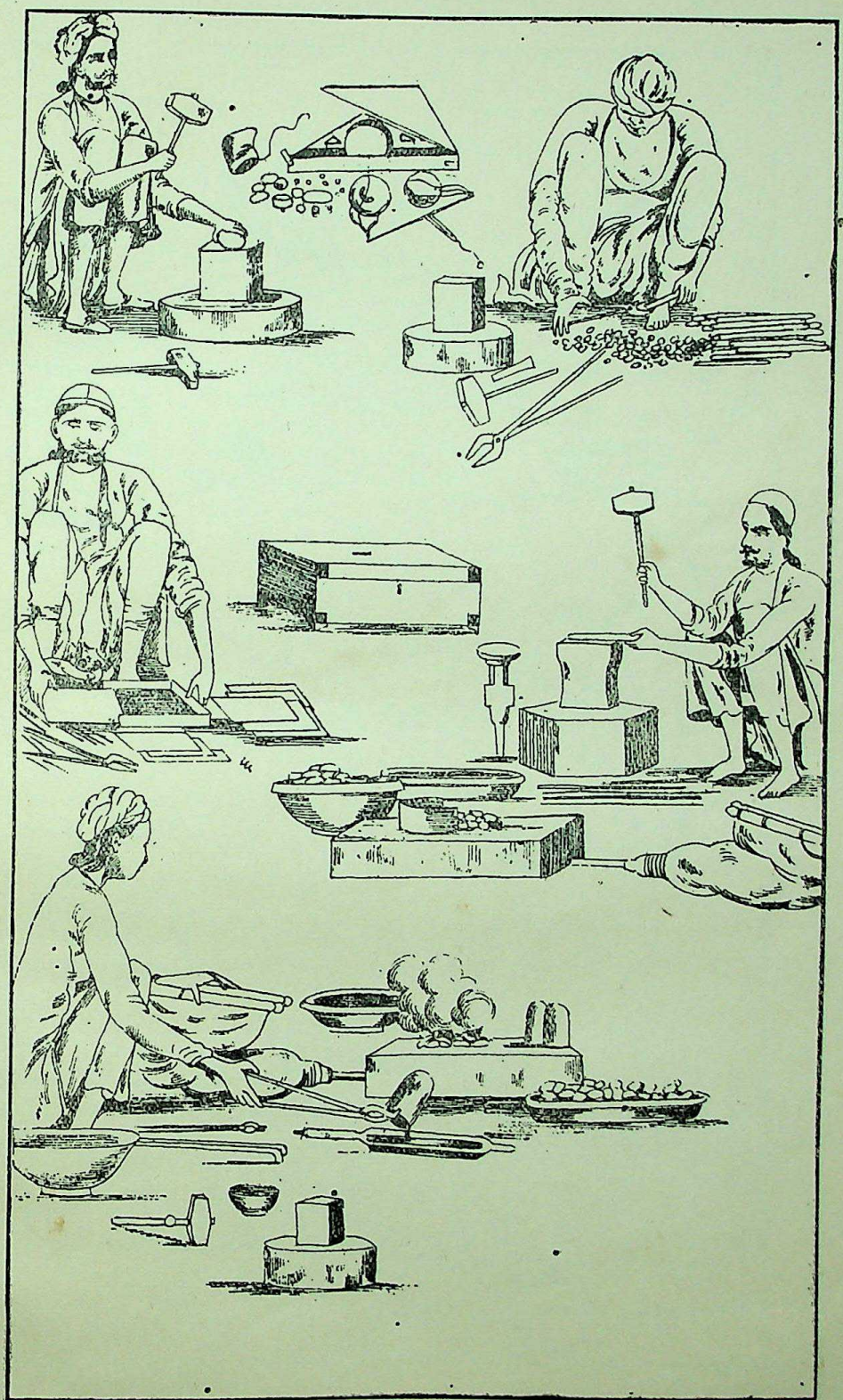

पृष्ठ ३७ से ४६ तक देखिये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

टकसाल के कर्मचारी

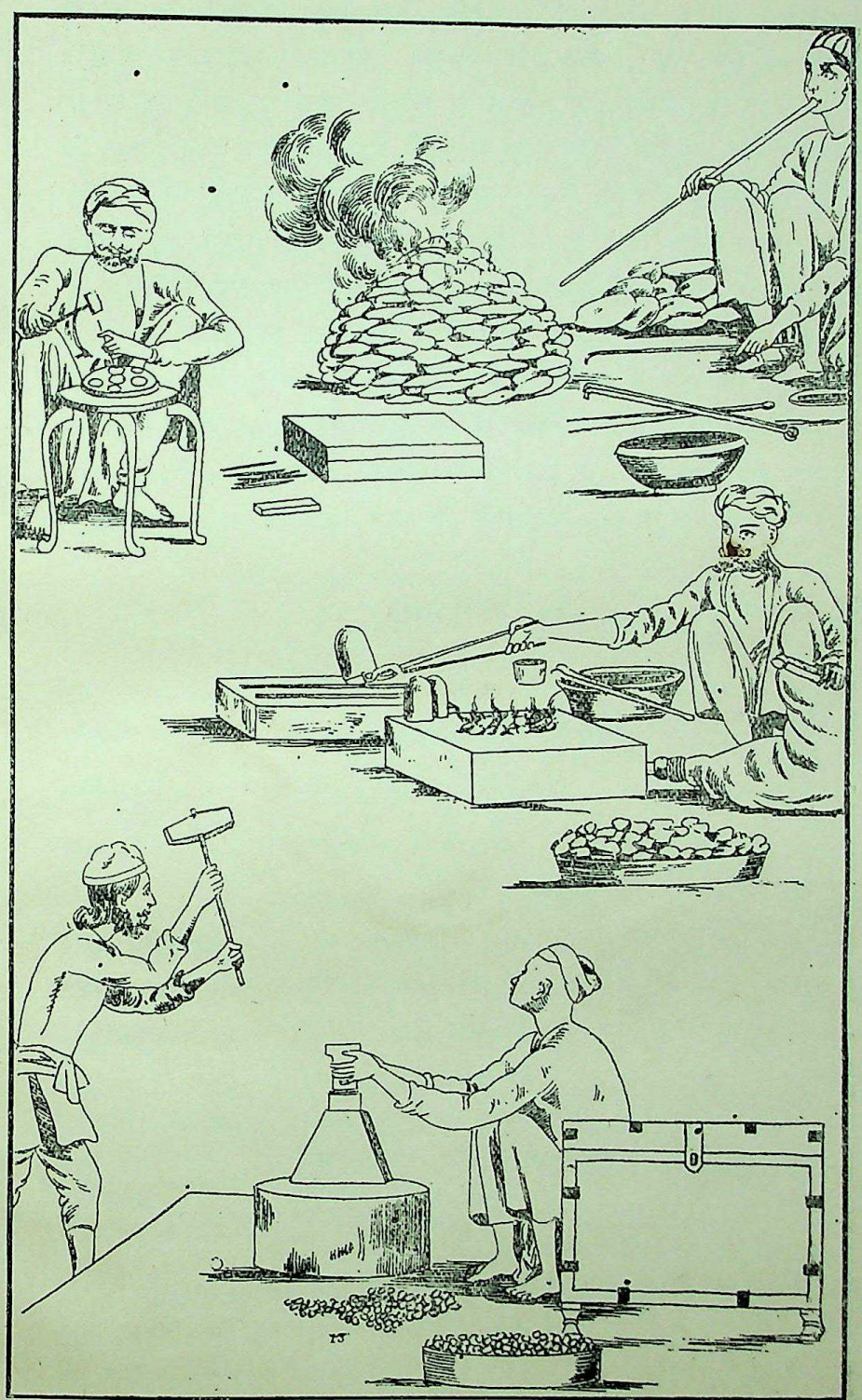

पृष्ठ ३७ से ४६ तक देखिये।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तारीख़ २६ बहमन[1] सन् ३६ इलाही (१५६२ ई०) को दूसरा क़ानून (अर्थात् अज़दुद्दौला का क़ानून) स्वीकार किया गया। पर उसके अनुसार तीन चावल तक घिसी हुई मोहर और छे चावल तक कम रुपया, जो पहले पूरे वज़न का शुमार किया जाता था, पूरी तौल का माना जाना स्वीकार नहीं किया गया। इससे कमीने चोट्टों की शक्ति क्षीण हो गई। यदि टकसाल के कर्मचारी ही सिक्का उतनी तौल में कम बनाते अथवा ख़ज़ाने के अधिकारी उतना वज़न कम कर देते, तो पहले के क़ानूनों में इसका कोई उपचार नहीं था। पर इस नई व्यवस्था से सचाई का बाज़ार सज गया और संसार सुखी हो गया। इसके अतिरिक्त, निर्लज्ज चोट्टे छांट कर हलके चावलों से सिक्का तौलते थे और तीन चावल घिसी हुई मोहर को छे चावल ठहराते थे, एवं छे चावल कम होने पर नौ चावल घटाते थे। इसी प्रकार वह कमी बराबर बढ़ती जाती थी, और बहुत सा सोना बीच में ही हड़प लिया जाता था तथा धूर्त लोग सदा क्षति पहुँचाने में लगे रहते थे।

देश	मुख्य सिक्का	तुलनात्मक मूल्य	
		शि०	पेंस
पेरू	लिब्रा = १० सोल	२०	०
पुर्तगाल	इस्क्यूडो (स्वर्ण) = १०० सेण्टावो	४	५ १/४
रुमानिया	लेउ = फ्रैंक = १०० बनी	०	१/४
रूस	रूबल = १०० कापेक	२	१ १/२
स्पेन	पिएसटा = फ्रैंक = सेण्टाइमस	०	९ १/२
स्ट्रेट्स सेट्लमेण्ट्	डालर (चांदी)	२	४
स्वीडेन	क्रोना = १०० ऊर	१	१ १/२
स्वीट्ज़रलैण्ड	फ्रैंक = १०० सेण्टाइमस	०	९ १/२
टर्की	लीरा = १०० पियास्टर	१८	०
अमेरिका (यू० स्टेट्स)	डालर (स्वर्ण) = १०० सेण्टस्	४	१
उरुग्वे (अमेरिका)	पेसो (स्वर्ण) = १०० सेण्टाइमस	४	३
युगो-स्लेविया	दीनार = १०० परस	०	९ १/२

(Nelson's World Gazetteer, 1932, P. 575).

१—फ़ारसी का ग्यारहवां महीना जो बहुधा फाल्गुन के इधर उधर पड़ता है और कभी कभी फाल्गुन में ही। हर सौर मास के प्रति दूसरे दिन का नाम भी बहमन होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस लिए सरकारी हुक्म से **बाबाग़ोरी**[1] चावल बनाये गये, और उनसे सिक्के तौला जाना निश्चित हुआ। उसी वर्ष और उसी मास में इस बात का भी बहुत प्रयत्न किया गया कि ख़ज़ांची और अमल परदाज़ प्रजा से किसी ख़ास तरह के सिक्के न मांगें। लोग, जो कुछ भी दें, उसकी तौल और खराई में जो कमी हो, हाल की दर के अनुसार हिसाब करके—बिना कुछ और घटाये बढ़ाये—लेलें। इस पवित्र आज्ञा ने झूठे व्यौहारियों की जड़ काट दी, लोभियों को सन्तोष की शिक्षा दी और सम्पूर्ण प्रजा को अत्याचारियों की दुष्टता से मुक्ति दिलाई।

आईन ११।

दिरहम और दीनार।

राजकीय मुद्राओं की विलक्षणता लिखी जा चुकी, अब इन दो नगदों का कुछ वृत्तान्त वर्णन करता हूँ, और प्राचीन मुद्राओं का पद प्रकाश-शिखर पर लाता हूँ।

१—बाबा शब्द तुर्की भाषा का है, जो पिता, प्रपिता, नाना, सरदार, सफ़ेद दाढ़ी वाले व्यक्ति तथा स्वतन्त्र मुसलमान फ़क़ीर के लिए प्रयुक्त होता है। ऐंग्लो इण्डियन् कुटुम्बों में बाबा शब्द बच्चे के लिए प्रयोग किया जाता है। ऐंग्लो इण्डियनों का बाबा शब्द अंग्रेज़ी के बेबी (Baby = बच्चा) शब्द का अपभ्रंश जान पड़ता है। ग़ोरी से तात्पर्य ग़ोर के रहने वाले से है।

बाबाग़ोरी वह रक्षक फ़क़ीर या शहीद कहलाता था, जिसके संरक्षण में अपने को देकर कर्मचारी खान में प्रवेश करते थे। कापलैण्ड ने १८१८ ई० में ऐसे एक साधू की क़ब्र के होने का उल्लेख किया है। उसका कहना है कि यह क़ब्र इस देश में एक चोटी पर बनी हुई है, जिसकी पूजा फ़क़ीर के बजाय देवता के रूप में अधिक होती है? (Copland in Transactions of the Literary Society of Bombay, i. 294)। इसके अतिरिक्त एक किंवदन्ती है कि बाबा ग़ोरी नामक एक युवराज ग़ोरवंश का था। जो उस देश में युद्ध में मारा गया था। किन्तु इतिहास में इस युवराज का कहीं पता नहीं चलता? (Hobson Jobson, P. 43)।

यहां पर इन बाबा ग़ोरियो में से किसी का अभिप्राय नहीं है। वरन् यहां पर उस उत्तम श्वेत मणि से आशय है, जिसके गुरियों की मालाएं गुजरात के लिमदुरा में सन् १५१६ में पहनी जाती थीं, (Barbosa, 67)। ब्लाकमैन के मतानुसार अकबरी दरबार के जवाहरात तौलने के सभी बांट इन्हीं बाबाग़ोरी मणियों के बने हुये थे, (Blochmann's Text Edition of Ain-i-Akbari, II, 60)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दिरहम[१]—लोग इसे दिरहाम भी कहते हैं। यह एक चांदी[२] का सिक्का था, जिसकी शक्ल खजूर की गुठली के समान थी, ख़लीफ़ा उमर फ़ारूक़ के शासन काल में यह गोल बनाया गया, और ज़ब्बीर के राजत्व काल में उस पर "अल्लाह" और "बरकत" शब्द खोदे गये। हज्जाज ने उस पर इख़लास[३] की सूरत खुदवाई। अनेक व्यक्ति कहते हैं कि उसने उस पर अपना नाम भी अङ्कित कराया था। बहुत लोग कहते हैं कि दिरहम पर, जिसने सब से पहले सिक्का लगाया, वह उमर फ़ारूक़ था। कुछ लोगों का कथन है कि मर्वान-सुत अब्दुल मलिक के समय में रूमी दीनार और हमीरी एवं क़िसरवी दिरहम प्रचलित थे। अब्दुल मलिक की आज्ञा से यूसुफ़-सुत हज्जाज ने दिरहम पर छाप लगाई। कुछ लोग ऐसा अलापते हैं कि हज्जाज ने खोटे दिरहमों के माल को खरा किया और उन पर "अल्लाहु अहद[४]" तथा "अल्लाहुसमद[५]" का ठप्पा लगाया। इन दिरहमों का नाम मकरूहा (अपवित्र) पड़ा; क्योंकि इन से ईश्वर के पवित्र नाम की प्रतिष्ठा नहीं होती थी। अथवा परिवर्तन होने के कारण लोग उनको इस नाम से पुकारने लगे थे। हज्जाज के बाद, हुबैरा-पुत्र उमर ने, अब्दुल मलिक-सुत यज़ीद के शासन काल में, इराक़ राज्य के अन्तर्गत, दिरहमों को उससे (हज्जाज से) बहुत बढ़िया बनाया। पश्चात् इराक़ के शासक, अब्दुल्ला क़सरी के पुत्र ख़ालिद ने उसको और भी साफ़ बनाया। उसके बाद यूसुफ़-सुत उमर ने उसकी शुद्धता पराकाष्ठा को पहुँचादी। यह भी कहते हैं कि दिरहम को जिसने पहले पहल मुद्रित किया वह ज़ब्बीर-सुत मसअब था। उसकी तौल तरह तरह की बतलाते हैं, जैसे १० या ६ या ६ या ५ मिसक़ाल। पर अन्य व्यक्ति कहते हैं कि उनका वज़न २० क़ीरात[६]

१—इसका नाम दिरम भी है। कोई कोपकार इसे अरबी भाषा का और कोई फ़ारसी भाषा का बतलाता है। किसी किसी का मत है कि लोअर रोम साम्राज्य के सिक्के द्रैहम या ड्रैकमा (Drachma) का यह विकृत रूप है। कलाममजीद के सूरए यूसुफ़ में दिरहम का बहुवचन दिराहम शब्द आया है। साधारणतया दिरहम ३॥ माशे तौल को कहते हैं।

२—संसार में बहुत दिनों से कई धातुओं के सिक्के चल रहे हैं। ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व लाइकर्गस ने स्पार्टा में लोहे का सिक्का चलाया था। मलय उपद्वीप में टीन का सिक्का चलता रहा है। भारत में दक्षिण पथ के अन्ध्र राजा सीसे के सिक्के बनवाते थे। चीन का पीतल का सिक्का तो प्रसिद्ध ही है।

३—क़ुरान में एक सूरत है।

४—ईश्वर एक है।

५—ईश्वर नित्य है।

६—कैरट क़ीरात का ही रूपान्तर है। इसका उल्लेख ३२ पृष्ठ के नोट में हो चुका

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१२ क़ीरात और १० क़ीरात था। उमर फ़ारुक ने हर प्रकार का एक एक दिरहम लिया, और इन सब के तौल का तिहाई, अर्थात् चौदह क़ीरात का एक दिरहम बनाया। अनेक व्यक्तियों का यह कहना है कि उमर के समय में कई प्रकार के दिरहम प्रचलित थे; उनमें से एक प्रकार का ८ दांग का था, जिसे बग़ली कहते थे, यह शब्द रासबग़ल के नाम से सम्पर्क रखता था, जोकि एक पारखी था, और जिसने उमर ख़त्ताब की आज्ञा से दिरहम पर सिक्का लगाया था। किसी किसी ने कहा है कि इसका सम्बन्ध शब्द बग़ल से है, जो कि एक गांव का नाम है। दूसरे प्रकार का चार दांग का था, जिसको **तबरी** कहते थे। तीसरे प्रकार का दिरहम तीन दांग का था, जो **मग़रबी** कहलाता था। चौथे क़िस्म का एक दांग का था, वह **यमनी** नाम से प्रसिद्ध था। उमर ख़त्ताब ने चारों प्रकार के दिरहमों को लेकर, उनके आधे वज़न का यकवज़ना दिरहम चलाया। **फ़ाज़िल ख़ुजन्दी**[१] का कहना है कि प्राचीन समय में दिरहम दो

है। कुछ लोगों का मत है कि अरबी क़ीरात शब्द ग्रीक भाषा के Kepátlov शब्द से, जो कि एक पेड़ की (जिसको अंग्रेज़ी में Carob कहते हैं और भूमध्य सागर की तरफ़ होता है) फली का दाना है, निकला है। यह दाना हिन्दुस्तानी रत्ती या घुंघुची के समान तौलने के काम में लाया जाता था, (Hobson-Jobson P. 160.)। कैरट जवाहरात तौलने के भी काम में आता था, और अब भी वे उसी से तौले जाते हैं, (आईने-अकबरी पृ० २७ नोट)। परन्तु यह आश्चर्य की बात है कि तेरहवीं शताब्दी में सुन्दरता की जांच के लिए भी कैरट प्रयोग किया जाता था, जैसा कि मार्को पोलो की यात्रा में उल्लिखित सन् १२९८ ई० की एक घटना से प्रकट होता है—"ख़ान आज़म ने अपने कमिश्नरों को प्रान्त में भेजा और आज्ञा दी कि वे चार पांच सौ युवती तथा रूपवती स्त्रियों को, उनकी सुन्दरता की जांच करके ले आवें। कमिश्नरों ने प्रान्त भर की लड़कियों को परखियों के सामने इकट्ठा किया। फिर वे अपने रूप के अनुसार क्रमान्वित की गईं। उनमें से कोई १६ कैरट की और कोई कोई १७, १८ या २० कैरट की थीं। कमिश्नरों ने उनमें से आवश्यक संख्या में उन सुन्दरियों को छांट लिया, जो कि ख़ान द्वारा निश्चत परिमाण—२० या २१ कैरट के अनुकूल थीं, (Marco Polo, 2nd. ed. I. 350-351)। साधारणतः कैरट ४ ग्रेन का माना जाता है, किन्तु वास्तव में वह ३$\frac{१}{६}$ ग्रेन के लगभग होता है, और १$\frac{७}{८}$ ग्रेन ट्राय की १ रत्ती होती है।

१—ख़ुजन्द क़सबा एशिया में सीर दरिया के किनारे पर है, यह यूनियन आफ़ सोशियलिस्ट सोवियट रिपब्लिक्स के अन्तर्गत उज़बक प्रजातन्त्र है। रेशम, रुई, सूत और अंगूर आदि यहां की उपज हैं। इसकी जन संख्या ३७००० है। (Nelson's World Gazetteer, 1932, P. 260)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रकार के थे। उनमें से पहले का नाम आठ दांगी और छे दांगी था, जिसका १ दांग=२ क़ीरात; १ क़ीरात=२ तस्सूज; १ तस्सूज=२ हब्बा; दूसरा नाक़िस था, जो ४ दांग और कुछ भिन्न भर था। इस सम्बन्ध में लोगों के और भी अनेक मत हैं।

दीनार[1]—एक सोने का मुद्रा है, एक मिसक़ाल भर का; १$\frac{३}{७}$ दिरहम के बराबर। कहते हैं १ मिस्क़ाल=६ दांग; १ दांग=४ तस्सूज; १ तस्सूज=२ हब्बा; १ हब्बा=२ जौ; १ जौ=६ ख़रदिल; १ ख़रदिल=१२ फ़ल्स; १ फ़ल्स=६ फ़तील; १ फ़तील=६ नक़ीर; १ नक़ीर=६ क़तमीर; १ क़तमीर=१२ ज़र्रा। इस हिसाब से एक मिसक़ाल ९६ जौ का होता है। **मिस्क़ाल** एक बांट है, जिससे लोग सोना तौलते हैं; और एक सिक्का किया हुआ मुद्रा भी है। कुछ प्राचीन लेखों से ज्ञात होता है कि यूनानी मिसक़ाल का चलन बन्द हो गया है और वह इस मिसक़ाल से २ क़ीरात कम है। साथ ही यूनानी दिरहम भी दूसरे दिरहमों से भिन्न है; वह तौल में औरों से $\frac{१}{६}$ या $\frac{१}{४}$ मिसक़ाल कम होता है।

१—दीनार नामक सिक्के का प्रचार किसी समय एशिया और यूरप के बहुत से भागों में था। यह कहीं सोने का और कहीं चाँदी का होता था। देश भेद से इसके मूल्य में भी भेद था।

मुसलमानों के आने के बहुत पहले से भारतवर्ष में दीनार चलता था। हरिवंश और महाबीर चरित में दीनार का स्पष्ट उल्लेख है। सांची में बौद्ध स्तूप का जो बड़ा खंडहर है, उसके पूर्व द्वार पर सम्राट् चन्द्रगुप्त का एक लेख है। उस लेख में दीनार शब्द आया है। अमरकोष में भी दीनार शब्द मौजूद है, और निष्क के बराबर अर्थात् दो तोले का माना गया है। रघुनन्दन के मत से दीनार ३२ रत्ती सोने का होता था। अकबर के समय में, जो दीनार नाम का सोने का सिक्का जारी था उसका मान एक मिसक़ाल अर्थात् आधे तोले के अन्दाज़ था।

हिन्दुस्तान की तरह अरब और फ़ारस में भी प्राचीन काल में दीनार नामक सिक्का प्रचलित था। अरबी और फ़ारसी कोष-कारों ने दीनार शब्द को अरबी लिखा है, पर फ़ारस में दीनार का प्रचार बहुत प्राचीन काल में था। इसके अतिरिक्त रोमन लोगों में भी यह सिक्का दीनारियस के नाम से प्रचलित था। धात्वर्थ पर ध्यान देने से भी दीनार शब्द आर्य भाषा ही का प्रतीत होता है (शब्दसागर)। बग़दाद के ख़लीफ़ा हारूं रशीद (७८६-८०९ ई०) के समय का एक दीनार ब्रिटिश म्यूज़ियम लन्दन में मौजूद है। इब्न बतूता (१३९३) के अनुसार भारतीय दीनार पश्चिमी दीनार से मूल्य में ढाई गुना अधिक था, (Ibn Batuta, iii. 106.)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आईन १२

सोने और चांदी[1] में व्यवसायियों का लाभ।

दस बान वाले एक तोले सोने का मूल्य ११ माशे वाली एक गोल मोहर है। यदि सोना चौथाई बान कम हो अर्थात् ९$\frac{३}{४}$ बान का हो, तो १ मोहर से एक तोला २ रत्ती (सोना) लेते हैं; यदि आधा बान कम हो, तो १ तोला ४ रत्ती; यदि पौन बान कम हो, तो १ तोला ६ रत्ती; यदि सोना नौ बान का हो तो १ मोहर से १ तोला और १ माशा लेते हैं। इसी प्रकार हर बान की कमी के बदले में १ माशा सोना अधिक लेते हैं।

१—कौटिल्य के अर्थ शास्त्र से मालूम होता है कि उस समय जनता के नाना प्रकार के आभूषण सरकारी प्रधान कर्मचारियों की देख रेख में तथा टकसाल घर में बनाये जाते थे जैसा कि "सुवर्णाध्यक्ष का कार्य" के आरम्भ में लिखा है:—"सुवर्णाध्यक्ष सोने चांदी के गहने बनवाने के लिये अक्षशाला (टकसाल) बनवाये, जिसमें प्रथक् प्रथक् चार कमरे हों और एक दरवाज़ा हो। विशिखा नामक सड़क के बीच में कुलीन, विश्वसनीय और चतुर सुनार को रक्खा जाय।....सौवर्णिक (राजकीय सुनारों का अध्यक्ष) ग्रामीणों तथा नागरिकों का सोना चांदी लेकर कारीगरों से उनकी चीज़ें बनवाये। कारीगर नियत समय तथा कार्य के अनुसार काम करें। जो काम का बहाना करके नियत समय पर काम पूरा न करें अथवा काम बिगाड़ दें उनका वेतन काट लिया जाय और वेतन का दुगना जुर्माना किया जाय। देर करने पर चौथाई वेतन काटा जाय तथा उसका दुगना दंड दिया जाय। जितना तथा जैसा माल लिया जाय वैसा ही लौटाया जाय।.....(कौटिल्य-अर्थशास्त्र, अधिकरण २)।

सुनारों की तरह तरह की चोरी को रोकने के लिये कौटिल्य ने उनका इस प्रकार वर्णन किया है:—"सुनार लोग चालाकी से सोने को इस प्रकार गलाते हैं कि उसका कुछ अंश पहले से ही आग में गिर जाय। बहुधा परीक्षा के समय उसे दूसरी धातु से बदल लेते हैं। इन युक्तियों से सोना निकाल लेते हैं। इसको विस्रावण कहते हैं।" इसी प्रकार उसने तुलाविषम, अपसारण, पेटक, पिंक, परिकुट्टन, अवच्छेदन, उल्लेखन और परिमर्दन नामक रीतियों में तरह तरह के उपायों से चोरी का सविस्तर वर्णन किया है। जैसे, "हड़ताल, मैनसिल, सिंगरफ आदि में से किसी एक को कुरुविन्द (रत्न या धातु विशेष) के चूर्ण के साथ मिलाकर और उसको कपड़े में रखकर रगड़ने का नाम परिमर्दन है। परिमर्दन से सोने तथा चांदी के वर्तन घिस तो जाते हैं किन्तु देखने में ज्यों के त्यों बने रहते हैं। टूटे हुये टुकड़ों एवं घिसे हुये गहनों में उन्हीं के समान गहनों के द्वारा, पत्र वाले गहनों में टूटे हुये पत्र के द्वारा, और बिगड़े हुये गहनों में तपाने तथा पानी में रगड़ने के द्वारा सोने की चोरी का पता लगाना चाहिये।"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सौदागर १०० लाल जलाली मोहरों से, १३० तोले २ माशे $\frac{५}{८}$ रत्ती हुन का सोना, जो $८\frac{१}{४}$ बान का होता है, ख़रीदता है। इसमें से २२ तोले १० माशे $७\frac{१}{२}$ रत्ती आग में जल जाता और ख़ाके-खलास में मिल जाता है। १०७ तोले ४० माशे $१\frac{१}{८}$ रत्ती ख़ालिस सोना शेष रह जाता है। जब वह सोना, राजकीय छाप द्वारा सुकीर्ति प्राप्त करता है, अर्थात् सिक्का किया जाता है, तो उसकी १०५ मोहरें बनती हैं; और लगभग $\frac{१}{२}$ तोला सोना जिसका मूल्य ४ रु० होता है, शेष रह जाता है। ख़ाके-ख़लास से २ तोले ११ माशे ४ रत्ती सोना, और ११ तोले $११\frac{१}{२}$ माशे $\frac{११}{२}$ रत्ती चांदी हाथ लगती है। दोनों का मूल्य ३५ रुपए $१२\frac{१}{२}$ तंगा[२] होता है। इस प्रकार उपर्युक्त सोने की पूर्ण उपलब्धि १०५ मोहरें, ३९ रुपए, २५ दाम होते हैं।

"सुवर्णाध्यक्ष को चाहिये कि "वह अवक्षेप (इधर उधर सोने को छिपाना) प्रतिमान (बट्टों की घटी बढ़ी), अग्नि, गंडिका (निहाई), भंडिका (घरिया), अधिकरणी (बिछौना), पिच्छ (कटिया), सूत्र (सूत), चेल्ल बोलन (वस्त्र), पगड़ी, उत्संग (जंघा), मक्षिका, शरीर निरीक्षण (शरीर को इधर उधर देखना), सोना बुझाने का पानी का बर्तन और अग्निष्ठ (अंगीठी) इत्यादि को देखकर चोरी का पता लगावे" (कौटि०—अर्थ०, अधिकरण २)।

१—ब्लाकमैन के अनुवाद में ग़लती से $४\frac{१}{२}$ रत्ती छप गया है।

२—संस्कृत में जो टंक (देखिये पृ० २९ का नोट २) शब्द है, महाराष्ट्र भाषा का टांक उसी का रूपान्तर है। मालूम होता है कि उसी से टका और तंगा शब्द बने हैं। कई कोषकारों के अनुसार तंगा तुर्की भाषा का शब्द है। ग़यासुल्लुग़ात में तंगा का अर्थ सोने, चांदी अथवा तांबे का प्रचलित सिक्का लिखा हुआ है। यह ठीक भी है क्योंकि फ़ीरोज़शाह ने सोने और चांदी के तरह तरह के तंगे बनवाये थे (Tarikh-i-Firoze Shahi, in Elliot, iii. 351)। आज कल तंगा विशेषतर तुर्किस्तान में चलता है और वह चाँदी का होता है। डब्लू इर्स्किन का कहना है कि तंगा चग़ताई तुर्की के तंग शब्द से निकला है, जिसका अर्थ सफ़ेद होता है। "ग़यासुल्लुग़ात" के अनुसार तुर्किस्तान और बदख़शां में तंग नाम के प्रदेश हैं। संभव है, इन्हीं के नाम से सिक्के का नाम तंगा पड़ गया हो। तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी में टंका या तंगा दिल्ली के बादशाहों का एक लोकप्रिय सिक्का रहा है; पीछे से यही रुपए के रूप में परिवर्तित हो गया (Hobson-Jobson)। टका—चांदी का एक पुराना सिक्का, रुपया (शब्द सागर)। बंगाल में टंका—टाका के नाम से आज तक प्रचलित है और बंगभाषा भाषी उसे रुपए के लिए प्रयोग करते हैं। इब्न बतूता ने भी उस समय के सिक्कों का नाम, जिसको कि उसने देखा था, तंगा या सोने का दीनार लिखा है। और उसका तुलनात्मक मूल्य चांदी के दस दीनार बतलाये हैं। 'मसालिकुलअबसार' (१३४०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसका हिसाब इस प्रकार से होता है। पहले, २ रु० १८$\frac{१}{२}$ दाम कारीगर अपनी मज़दूरी में उस हिसाब से लेते हैं, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है। दूसरे, ५ रु० ८ दाम ८ जीतल का मसाला ख़र्च होता है, यथा:—धातु के साफ़ करने में १ रु० ४ दाम १$\frac{१}{२}$ जीतल व्यय होता है (२६ दाम १६$\frac{१}{२}$ जीतल के कंडे + ४ दाम २० जीतल की सलोनी + १ दाम १० जीतल का पानी + ११ दाम ५ जीतल का पारा), खाके-ख़लास की कार्रवाई के लिए ४ रु० ४ दाम ६$\frac{१}{४}$ जीतल (२१ दाम ७$\frac{१}{४}$ जीतल का कोयला; ३ रुपए २२ दाम २४ जीतल का सीसा)। तीसरे, ६ रुपए ३७$\frac{१}{२}$ दाम माल वाला व्यापारी से इस कारण से लेता है, कि उसने सोने को उक्त लाभ प्राप्ति के लिए लगाया था। यदि यह पूंजी ख़ालसा की होती है तो उपर्युक्त रक़म (६ रुपए ३७$\frac{१}{२}$ दाम) दीवान के पास जाती है। चौथे, व्यापारी सोना लाने के बदले में १०० लाल जलालो मोहरें लेता है। पांचवें, १२ रुपए ३७ दाम ३$\frac{१}{२}$ जीतल, व्यापारी लाभ स्वरूप लेता है। छठे, ५ मोहर १२ रुपए ३$\frac{१}{२}$ दाम ख़ालसा में जमा होते हैं। व्यापारी इस हिसाब से लाभ उठाते हैं।

यद्यपि भारतवर्ष में सोना (बाहर से) आता है, परन्तु इस देश के उत्तरीय पर्वतों में वह बहुत होता है और तिब्बत में भी पैदा होता है। गंगा और सिंध नदी की बालू से भी, सलोनी क्रिया द्वारा सोना निकाला जाता है। इस देश के बहुत से दरियायों को बालू में सोना मिला हुआ है, परन्तु परिश्रम की विशेषता और व्यय की अधिकता के कारण, प्रत्येक नदी के किनारे उक्त क्रिया नहीं की जा सकती।[३]

ख़ालिस चांदी एक रुपए की १ तोला २ रत्ती बिकती है, अतः व्यवसायी ६५० रुपए से ६६६ तोले ६ माशे ४ रत्ती ख़रीदता है। इसमें से ५ तोले

ई०) के लेखक ने इन्हीं चांदी के दीनारों को 'भारतवर्ष का चांदी का दीनार' लिखा है। फ़ीरोज़शाह तुग़लक़ (१३३८–१३५१) के शासनकाल में तंगे पूर्ववत् बनते रहे किन्तु बहलोल लोदी (१४८८–१५१७) के समय में वे तांबे के बनने लगे। उस समय चांदी का एक तंगा तांबे के २० तंगों में चलता था। गोआ में अब भी इस नाम से एक सिक्का ६० रेई या २ पेंस में चलता है। ब्लाक्मैन के अनुसार १ तंगा=२ दाम; आज कल १ तंगा=२ पैसा (Ain-i-Akbari translated into English by H. Blochmann 1873, Vol. I, P. 37, note)।

३—मोरलैण्ड ने लिखा है कि अबुलफ़ज़ल के समय में भारतवर्ष में "मूल्यवान् धातुओं में सोना उल्लेख करने के योग्य नहीं उत्पन्न होता था। दक्षिण प्रदेश में आये हुये पर्यटकों के साक्ष्य से सिद्ध होता है कि उन दिनों मैसूर की खानों में कार्य होना आरम्भ नहीं हुआ था। अबुलफ़ज़ल ने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

४$\frac{३}{४}$ रत्ती चांदी, सलाख़ बनाने में जल जाती है। शेष चांदी में १००६ रुपए तैयार होते हैं, और २७$\frac{१}{२}$ दाम की चांदी बच रहती है। इसमें हानि लाभ का विवरण इस प्रकार है :—पहले, २ रुपए २२ दाम १२ जीतल कारीगरों की मज़दूरी होती है (अर्थात् तराज़ूकश ५ दाम ७$\frac{३}{४}$ जीतल ; चाशनीगीर ३ दाम ४$\frac{१}{४}$ जीतल ;

उत्तर भारत में नदियों की रेती से सोना निकालने का उल्लेख किया है, वह प्रथा अब भी जारी है। चांदी भी केवल परिमित परिमाण में प्राप्त होती थी। अबुलफ़ज़ूल ने आगरे की एक खान का उल्लेख किया है किन्तु उसमें ख़र्च तक नहीं निकलता था। नदियों तथा कुमायूं के पर्वतों से चांदी निकालने की बात भ्रमात्मक है ; कुमायूं एक ऐसा राज्य था, जिसका मुग़ल शासकों को बहुत कम निश्चित ज्ञान था।

भारतवर्ष की दूसरी मुख्य धातुओं में पारा, रांगा, सीसा, जस्ता, तांबा और लोहा हैं। इनमें से पहली चार धातुएं विशेषतर बाहर से आती थीं, यद्यपि अल्प परिमाण में सीसा और जस्ता राजपूताने में भी पैदा होते थे। दक्षिण भारत में तांबा बाहर से आता था, किन्तु उत्तर भारत स्थानीय खानों पर आश्रित था। पर, लोहे के सम्बन्ध में सारा देश अपने साधनों पर अवलम्बित था!" (India at the Death of Akbar, by W. H. Moreland, 1920. P. 146-147)।

मोरलैण्ड का यह मत कहां तक सत्य है और अबुलफ़ज़ूल की खोज कहां तक असत्य है, उपस्थित सामग्री के आधार पर इसका ठीक ठीक निर्णय होना कठिन है। पर यह तो निश्चय ही है कि आज से पांच हज़ार वर्ष पहले अर्थात् महाभारत काल में, चिन्तामणि विनायक वैद्य के शब्दों में "यहां सुवर्ण की उत्पति बहुत होती थी। हिन्दुस्तान के प्रायः सब भागों में सोने की उत्पत्ति होती थी। हिमालय के उत्तर में बहुत सोना मिलता था। उत्तर हिन्दुस्तान की नदियों में सुवर्ण के कण बहकर आते थे। दक्षिण के पहाड़ी प्रदेशों में सोने की बहुत सी खानें थीं, और अब भी हैं।" चोल, पांड्य और दक्षिण के अन्य राजाओं तथा हिमालय की ओर से आने वाले लोगों ने युधिष्ठिर को नज़राने में सोना दिया था इसका सविस्तर उल्लेख महाभारत सभापर्व में है। उसी में एक स्थल पर लिखा है:—

खसाः एकाः सनाः ह्यर्हाः प्रदराद्यीर्घ वेणवः,
पारदाश्च कुलिंदाश्च तंगणाः परतंगणाः।
तद्वैपिपीलिकं नाम उद्धृतं यत्पिपीलिकैः,
जातरूपं द्रोणमेय महार्घ्यः पुञ्जशो नृपाः।
(महाभारत सभापर्व ५२)

हिमालय के उस पार रहने वाले खस आदि तङ्गण और परतङ्गण लोगों ने युधिष्ठिर को 'जातरूप' नामक सोना भेंट में दिया था। इस सोने को चिउँटियां अपने बिलों से निकालती थीं और लोग एकत्र कर लेते थे। इसी से इसे 'पिपीलक स्वर्ण' कहते थे। इसका उल्लेख मैगस्थनीज़ और सिकन्दर के साथ आये हुये इतिहासकारों ने भी कुछ अतिशयोक्ति के साथ किया है। तिब्बत में कहीं कहीं यह बात आज भी दिखलाई पड़ती है। तिब्बत वाले इस सोने को छोटी छोटी थैलियों में भर कर भारतवर्ष में लाते थे। हिन्दुस्तान का एक भाग इसी सोने की भरी हुई थैलियों में फ़ारस को कर चुकाता था।

यह सच है कि हिमालय के आगे और नदी के रेत में सुवर्ण रज मिलते थे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुदाज़गर ६$\frac{१}{२}$ दाम; ज़र्राब २ रु० १ दाम; सिक्कची ६$\frac{१}{२}$ दाम)। दूसरे, १० दाम १५ जीतल का मसाला लगता है (१० दाम का कोयला, १५ जीतल का पानी)। तीसरे, ५० रुपए १३ दाम शाही दीवान को दिये जाते हैं। चौथे, ६५० रु० सौदागर चांदी के बदले में लेता हैं, और ३ रु० २१ दाम १०$\frac{१}{२}$ जीतल

और इस प्रकार निर्मल सोना अनायास मिल जाता था। तथापि यह बात भी नीचे के श्लोक से स्पष्ट मालूम होती है कि महाभारत काल में पत्थर की खानों से सुवर्ण मिश्रित पत्थरों से सोना निकालने की कला विदित थी।

अप्युन्मत्तात्प्रलपतो बालाच्च परिजल्पतः,
सर्वतः सार मा दद्यादश्मभ्य इव काञ्चनम्।
(उद्योग पर्व ३४)

प्राचीन काल में पत्थर तोड़कर और उसकी बुकनी बनाकर भट्ठी में गलाकर सोना निकालने की कला प्रसिद्ध रही होगी," (महाभारतमीमांसा, संवत् १९७७, पृ० ३७३–७४)।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी खनिज पदार्थों के सम्बन्ध में एक पूरा प्रकरण है, जिसमें खानों के अध्यक्ष के कर्तव्यों में बतलाया गया है कि वह "तांबा आदि धातुशास्त्र, पारा निकलने और माणिक परखने आदि की विद्याओं को जान कर या जानकार लोगों तथा मेहनती मज़दूरों को साथ लेकर कच्ची धातु, कोयला, राख, खुदाई आदि चिन्हों को भूमि या पहाड़ों पर पाकर भार, रंग, गंध और स्वाद के अनुसार खान की परीक्षा करे। परिचित स्थानों, पहाड़ों, गड्ढों, गुफाओं, तराइयों और गुप्त छेदों से बहने वाले या (जामुन, आम, ताड़, हाथी, हरताल, शहद, सिंगरफ़, कमल, तोता, मोर आदि के रंग वाले) काई की तरह चिकने चमकीले और बोझ वाले जलों को सोने से मिश्रित जाने (अर्थात् वहां पर सोने की खान समझे)। परन्तु यदि वह तरल पदार्थ पानी पर डालते ही नीचे बैठ जाय, तेल की तरह सब तरफ़ फैल जाय और मटियाले रंग का हो जाय तो उसको चांदी तथा तांबे से मिश्रित समझना चाहिये।" जहां जहां सोना चांदी पैदा होती थी उसी के अनुसार उनके नाम होते थे, जैसे जम्बू नदी में निकला हुआ सोना जाम्बू-नद कहलाता था और हाटक की खानों से निकला हुआ हाटक स्वर्ण और वेणु पर्वत से प्राप्त हुआ वैणव नाम से पुकारा जाता था। जिस 'जातरूप' सोने का उल्लेख महाभारत काल के प्रसंग में ऊपर हो चुका है, कौटिल्य ने भी उसका उल्लेख किया है (आईने-अकबरी पृ० ३३)। इसी प्रकार अर्थशास्त्र में कई प्रकार की चांदी का वर्णन है, जैसे तुत्थोद्गत—जो तुत्थ पर्वत से प्राप्त होती थी, गौडिक—जो गौड देश की उपज थी इत्यादि। इतनाही नहीं कौटिल्य ने खान के नियम उल्लंघन करने पर खान के कर्मचारियों के लिए तरह तरह के दंड भी नियत किये हैं, (कौटिल्य–अर्थ शास्त्र अधिकरण २)।

उपर्युक्त विवरण को ध्यान पूर्वक पढ़ने से मालूम होता है कि अबुलफ़ज़्ल की खोज का बहुतांश महाभारत और कौटिल्य से मिलता हुआ है, इसलिए उसे भ्रमात्मक नहीं माना जा सकता। समुद्रगुप्त और अलाउद्दीन के राजत्वकाल के ऐतिहासिक साहित्य से पता चलता है कि दक्षिण प्रदेश सचमुच उन दिनों सोने की चिड़िया था। मलिक काफ़ूर ने ९६००० मन सोना अलाउद्दीन को दिया था। विजय नगर के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लाभ प्राप्त करता है। यदि व्यवसायी खोटी चांदी लेकर उसे अपने घर पर साफ़ करता है, तो बहुत फ़ायदा उठाता है। परन्तु जब वह उसे सिक्का[1] लगवाने के लिए लाता है, तो उसको उतना नफ़ा नहीं मिलता।

कृष्ण राजा के महल से भी सोने की अधिकता का पता चलता है, (A forgotten Empire; by Sewell, 1924)। मैसूर की सोने की खान का उल्लेख भले ही विदेशी पर्यटक न करें, परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वह खान चालू नहीं हुई थी। कोलर की प्रसिद्ध खान तो आज से पांच हज़ार वर्ष पूर्व अर्थात् मोहेनजोदड़ो और हरप्पा की सभ्यता के समय भी चालू थी, जैसा कि डाक्टर राधा कुमुद मुकर्जी ने लखनऊ यूनीवर्सिटी में भाषण करते हुये कहा है कि "उनका (हरप्पा और मोहनजोदड़ो निवासियों का) सोना कोलर (मैसूर का एक ज़िला) और अनन्तापुर से आता था" (Dr. Radhakumud mookerjee's Lecture delivered at Lucknow University on January 29, 1935.)। इस से सिद्ध है कि खान चालू पहले से ही थी किन्तु या तो उस समय किसी कारण से उसकी खुदाई स्थगित करदी गई होगी अथवा पर्यटकों के उल्लेख करने से रह गई होगी। मोरलैण्ड की यह बात भी ध्यान में नहीं जमती कि मुग़ल शासकों को कुमायूं का हाल नहीं मालूम था। अबुलफ़ज़ल सुदूरवर्ती स्थानों का हाल सही लिख सकता था किन्तु कुमायूं, जैसे निकटवर्ती स्थानों का मूल्यवान् धातुओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी पता नहीं लगा सकता था, यह बात समझ में नहीं आती। मोरलैण्ड ने कल्पना से बहुत काम लिया है, इसी लिए सर यदुनाथ सरकार और डाक्टर बेनीप्रसाद ने मोरलैण्ड के उक्त ग्रंथ में प्रदर्शित विचारों से अनेक स्थलों पर मतभेद प्रकट किया है (Modern Review January 1921, P. 15, and August 1921, P. 214)।

आजकल "हिन्दुस्तान में प्रायः सभी प्रान्तों में सोना पाया जाता है। पर मैसूर (कोलर) और हैदराबाद की खानों में अधिक मिलता है। पिछली शताब्दी में कैली फ़ोर्निया और आस्ट्रेलिया में भी इसकी बहुत बड़ी खाने मिली हैं" (शब्द सागर)।

१—"दिसम्बर १५७७ ई० में जब अकबर ने नारनोल के समीप (जो कि पटियाला राज्य में है, और जहां शेरशाह पैदा हुआ था) पड़ाव डाला और एक विशेष सभा की आयोजना की तथा राजा टोडरमल और ख़्वाजा शाहमंसूर से परामर्श करके अनेक बातें तय कीं, उनमें एक महत्वपूर्ण विषय टकसाल का था। उस समय तक विभिन्न टकसालें छोटे कर्मचारियों अर्थात् चौधरियों के हाथ में थीं, उन अधिकारियों में सन्तोषजनक शासन संचालन योग्य न वैयक्तिक गुरुत्व था और न उनके पास उपयुक्त पद ही था। अब उक्त विभाग को अधिकार में रखने के लिए राजधानी में एक उत्तरदायी टंकशालाध्यक्ष नियत किया गया, और इस पद पर ख़्वाजा अब्दुस्समद शीराज़ी 'शीरीं क़लम' नियुक्त किया गया। यह हुमायूं का अभिन्न हृदय मित्र था। अकबर ने लड़कपन में उस से प्रारम्भिक ड्राइङ्ग की शिक्षा पाई थी। १५७७—७८ में यह कलाकार अधिक आयु वाला हो गया होगा। सूबों की पांच प्रधान टकसालों में से हर एक एक उत्कृष्ट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लारी[१] और शाही चांदी तथा दूसरे प्रकार की खोटी चांदी एक रुपया की एक तोला ४ रत्ती मिलती है। इस हिसाब से, सौदागर ६५० रुपए से ६८६ तोले ७ माशे चांदी ख़रीदता है, जिसमें से १४ तोले १० माशे १ रत्ती सब्बाकी क्रिया में जल जाती है। अर्थात् $१\frac{१}{२}$ तोला प्रति सैकड़ा के हिसाब से वह घट

राजपदाधिकारी को सौंपी गई। राजा टोडरमल बंगाल का उत्तरदाता बनाया गया; मुज़फ़्फ़र ख़ाँ, ख़्वाजाशाह मंसूर, ख़्वाजा इमामुद्दीन हुसेन और आसफ़ खां द्वितीय को क्रमशः लाहौर, जौनपुर, गुजरात या अहमदाबाद, और पटना की टकसालें सौंपी गईं। उसी दिन चौकोर जलाली रुपयों के बनाने की आज्ञा दी गई।

चांदी और तांबे के सिक्के बहुत से क़स्बों में तैयार होते थे, जिनकी कि एक सूची अबुलफ़ज़्ल ने भी दी है किन्तु वह अपूर्ण है। पिछले वर्षों में टकसाल के क़ानूनों में फिर सुधार हुआ। धातु की शुद्धता, तौल की पूर्णता और कलाकारिता की दृष्टि से नाना प्रकार के अपने सिक्कों की श्रेष्टता के लिए अकबर बधाई का पात्र है। मुग़ल मुद्रानिर्माण कार्य की, जब क्विन-इलीज़बेथ तथा अन्य तत्कालीन यूरोपीय राजाओं के मुद्रण कार्य से तुलना की जाय, तो वह उनसे हर पहलू से अत्युत्कृष्ट घोषित किया जायगा। मालूम होता है कि अकबर और उसके उत्तराधिकारी सिक्कों की खराई और तौल को मिलोनी के द्वारा कम करने के लालच में कभी नहीं पड़े। अकबर के अधिकतर सिक्कों का सोना वस्तुतः शुद्ध था" (Akbar the great Mogul, 11Ed: 1919, P. 156–157)। अबुलफ़ज़्ल ने सोने के सिक्कों की केवल चार टकसालें बतलाई हैं (आई ने अकबरी पृष्ठ ५८); किन्तु संभवतः १५७८ ई० में उपर्युक्त छे स्थानों में केवल सोने के सिक्के बनते थे।

१—"लारी फ़ारस का सिक्का था, और व्यापार द्वारा भारतवर्ष में बहुत बड़ी तादाद में आता था। यह नाम से सिक्का नहीं समझा जा सकता था, क्योंकि यह चांदी की ख़मदार सलाख़ या छड़ की शक्ल का था, जिसके सिरे पर छाप लगी हुई थी और अकबर के आधे रुपए से भी कम मूल्य का था, (India at the death of Akbar, by W. H. Moreland, P. 57, 1920)। इसके अतिरिक्त दक्षिण में 'बराहु' या हून नाम का एक और सिक्का था, जिसको विदेशियों ने पगोडा लिखा है। यह साधारणतया अकबर के रुपए के साढ़े तीन गुने मूल्य का था। यह सोने का सिक्का था। फ़नाम नामक सोने का एक और छोटा सिक्का था। इनके अतिरिक्त चांदी और तांबे के भी सिक्के चलते थे। सीक्कीन या चिकीन नामक एक सोने का विनीशिया का सिक्का था, जो मूल्य में अकबर के चार रुपए के बराबर था और लाल सागर या फ़ारस की खाड़ी से व्यापार द्वारा यहां आता था। इटली का दुक़ात भी उपर्युक्त मार्ग से ही आता था। सोने का दुक़ात अकबर के चार रुपए और चांदी का दुक़ात दो रुपए के बराबर था। रियल्स आफ़-एट (Reals of eight) नामक एक स्पेन का सिक्का था उसका मूल्य २ अकबरी रुपए था। पोर्चुगीज़ों की टकसाल गोआ में थी वहां का सोने का परडाओ नामक सिक्का पहले मूल्य में पगोडा के बराबर था फिर रद्दोबदल होने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जाती है। ४ तोले ११ माशे ३ रत्ती सलाख़ बनाते समय गुदाज़गर की क्रिया द्वारा आग में जल जाती है। बाक़ी चांदी में १०१२ रुपए तैयार होते हैं, और ख़ाके-कहरल से ३$\frac{१}{२}$ रुपए की चांदी निकल आती है। हानि लाभ का ब्योरा इस प्रकार है :—पहले, ४ रुपए २७ दाम २४$\frac{३}{४}$ जीतल मज़दूरी होती है (तराज़ूकश—५ दाम ७$\frac{३}{४}$ जीतल; सव्वाक—२ रुपए १६ जीतल, क़ुर्सकूब—४ दाम १६ जीतल; चाशनीगीर—३ दाम ४ जीतल; गुदाज़गर—६$\frac{१}{२}$ दाम; ज़र्राब—२ रु० १ दाम; सिक्कची—६ दाम १२$\frac{१}{२}$ जीतल)। दूसरे, ५ रुपए २४ दाम १५ जीतल अन्य आवश्यक कार्यों में व्यय होते हैं (अर्थात् ५ रु० १४ दाम का सीसा, १० दाम का कोयला, १५ जीतल का पानी)। तीसरे, ५० रुपए २४ दाम राजदरबार को दिये जाते हैं। चौथे, ६५० रु०, व्यापारी अपनी चांदी के बदले में पाता है, और ४ रुपए २६ दाम लाभ[१] उठाता है। बहुधा वह सस्ती चांदी ख़रीदता है और बहुत लाभ प्राप्त करता है।

एक मन तांबा १०४४ दाम में मिलता है, और १ सेर (तांबा) २६ दाम २$\frac{१}{२}$ जीतल में। एक मन में १ सेर तांबा आग में जल जाता है। एक सेर में ३० दाम बनते हैं। इस हिसाब से सब मिला कर ११७० दाम मुद्रित होते हैं। जिनमें व्यापारी अपना मूलधन लेता है और १८ दाम १६$\frac{१}{२}$ जीतल का फ़ायदा उठाता है। ३३ दाम १० जीतल मज़दूरी निकल जाती है। १५ दाम ८ जीतल आवश्यक सामग्री में व्यय होते हैं (अर्थात् १३ दाम ८ जीतल का कोयला, १ दाम का पानी, १ दाम की मिट्टी)। ५८$\frac{१}{२}$ दाम सरकार को दिये जाते हैं।

आईन १३।

धातुओं की उत्पत्ति।

सृष्टिकर्ता ईश्वर ने चार तत्व प्रकट किये, और अद्भुत आकृतियां निर्माण कीं। **अग्नि**—उष्ण, शुष्क और नितांत हल्की; **वायु**—तप्त, आर्द्र और अपेक्षतया लघु; **जल**—शीतल, गीला और अपेक्षतया गुरु; **पृथ्वी**—ठंडी, शुष्क और सर्वथा भारी।

पर अकबर के २$\frac{१}{४}$ रु० के बराबर रह गया (India at the death of Akbar, by Moreland. P. 57 & 56)।

१—इन महों का जोड़ १०१५ रु० २५ दाम १४$\frac{३}{४}$ जीतल है, जो कि अबुलफ़ज़्ल के दिये हुये जोड़ १०१५ रु० २० दाम से कुछ ही अधिक है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उष्णता पदार्थ में हल्कापन लाती है, और शीतलता भारीपन। आर्द्रता परमाणुओं को सरलता से पृथक् कर देती है, और शुष्कता उनको अलग अलग होने से रोकती है। इस विचित्र व्यवस्था से चार प्रकार के मिश्रित पदार्थ आविर्भूत हुये, अर्थात् **आकाशीय**[1], **खनिज, बनस्पति, जीवधारी**। सूर्य आदि की गरमी से जल कण हलके होकर वायु में मिल जाते और ऊपर चढ़ जाते हैं, उस मिश्रित को **बुख़ार**[2] कहते हैं। उसी कारण से पार्थिव-परमाणु वायु से मिलकर ऊपर चले जाते हैं, वे **दुख़ां**[3] कहलाते हैं। कभी वायु-कण भी उस (पृथ्वी) से मिल जाते हैं। कुछ तत्ववेत्ता उपर्युक्त दोनों मिश्रितों को बुख़ार कहते हैं; परन्तु जो मिश्रण जल कणों से उत्पन्न होता है, उसको **बुख़ारे-तर** तथा **बुख़ारे-आबी** (आर्द्र वाष्प) कहते हैं; और जो पदार्थ पार्थिव-अणुओं के संयोग से प्रकट होता है उसको **बुखारे-ख़ुश्क** तथा **बुख़ारे-दुख़ानी** (शुष्क वाष्प) कहते हैं। इन दोनों से भूमि के ऊपर मेघ, वायु, वृष्टि और हिम इत्यादि बनते हैं, और उसके (पृथ्वी के) अन्दर भूकम्प, सोते और खानें। बुख़ार शरीर के स्थान पर समझा जाता है और दुख़ां आत्मा की जगह पर। उनके गुण और परिमाणों की विभिन्नता के कारण नाना प्रकार के पदार्थ अस्तित्व-जगत में आते हैं, जैसा कि वैज्ञानिक ग्रन्थों में उल्लेख है।

खनिज[4] (पदार्थ) पांच प्रकार से अधिक नहीं होते:—पहले, वे जो अपनी शुष्कता के कारण नहीं पिघलते हैं, जैसे याक़ूत; दूसरे वे जो अपनी द्रवता के सबब से नहीं टिघलते हैं, जैसे, पारा; तीसरे वे, जो गलते तो हैं पर न घनाघात से बढ़ते हैं और न आग से जलते हैं, जैसे फिटकरी; चौथे, वे, जो आघात वर्द्धनीय तो हैं, किन्तु आग से भस्मीभूत हो जाते हैं, जैसे गंधक; पांचवें, वे, जो आघात से बढ़ने वाले हैं, परन्तु आग से नहीं जलते, जैसे सोना। पिण्ड के पिघलने का तात्पर्य यह है कि अवयवी के अवयव उसके शुष्क और आर्द्र मूलतत्वों के संयोग से बह चलें। आघातवर्द्धनीयता का आशय है पिण्ड का इस प्रकार दबना कि उसका विस्तार, लम्बाई और चौड़ाई के रूप में परिणित होकर फैल जाय, बग़ैर इसके कि उसमें से कोई चीज़ अलग की जाय या जोड़ी जाय।

१—बादल, ओले, बरफ़ आदि।

२—गैस (Gas) वाष्प।

३—धूम (Vapour)।

४—"कौटिल्य-अर्थशास्त्र" के अधिकरण दो में "खनिज पदार्थों के व्यवसाय-संचालन" में खनिज पदार्थों के उपयोग का विशेष रूप से उल्लेख है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जब बुख़ार दुख़ां के साथ इस प्रकार मिले, कि पहला (बुख़ार) परिमाण में अधिक हो और मिलने तथा पकने के पश्चात् सूर्यकी गरमी उसको जमादे, **पारा**[१] बन जायगा। यतः उसका कोई अंश दुख़ां से रहित नहीं होता, इसलिए उसमें शुष्कता अनुभव होती है, और छूने पर हाथ में नहीं चिपकता, वरन् भागता है। इसका सटान (मिलान) ताप से होता है, इस लिए गरमी इसे नहीं पिघलाती। यदि बुख़ार और दुख़ां का मिश्रण लगभग तुल्य परिणाम में हो; तो चिकनी चिपचिपी आर्द्रता उत्पन्न होती है। ख़मीर होने के समय, वायुकण उसमें प्रविष्ट हो जाते हैं, और सर्दी उसको जमा देती है। यह पिण्ड दहनशील होगा। यदि दुख़ां और चिकनाई कुछ विशेष हो, तो **गंधक** पैदा होगी; वह लाल, पीले, नीले और सफ़ेद रंग की होती है। अगर दुख़ां अधिक हो और चिकनाई कम हो, तो **हरताल** बनेगी, जो लाल और पीली होती है। यदि बुख़ार ज्यादा हो, तो पिण्ड बंधने पर **नफ़्त**[२] हो जायगा, वह काला और सफ़ेद होता है। यतः इसके पिण्ड बंधने का कारण शीतलता है, इसलिए यह तापसे द्रवित होने लगता है। स्निग्धता की अधिकता और गीलाई की विशेषता के कारण यह दहनशील है और आर्द्रता की अधिकता से यह आघातवर्द्धनीय नहीं होता।[३]

१—पारा एक अद्भुत खनिज पदार्थ है। अधिक सरदी पाकर वह जम जाता है। गंधक और पारा मिला हुआ द्रव्य ईंगुर कहलाता है। विशेष क्रिया द्वारा दोनों अलग अलग कर लिये जाते हैं। भारतवर्ष में पारे की खान केवल नैपाल में है। इस देश में आजकल चीन जापान और स्पेन से भी पारा आता है। पारे पर गरमी का प्रभाव सब से ज़्यादा पड़ता है, इसी से गरमी नापने के यंत्रों में उसका उपयोग होता है। पुराणों और वैद्यक ग्रंथों में पारे का अनेक स्थलों पर उल्लेख है, और उसके माहात्म्य में उसको ब्रह्म या शिव स्वरूप तक बतलाया गया है। पारे के आधार पर एक रसेश्वर दर्शन निर्मित किया गया है, जिसमें पारे से ही सृष्टि की उत्पत्ति कही गई है, और उसके द्वारा मुक्ति का उपाय रससाधन बतलाया गया है। भावप्रकाश में सफ़ेद, पीला, लाल और काला पारे के चार भेद बतलाये गये हैं। सफ़ेद सब से उत्तम माना गया है। अनेक रासायिनिक प्रयोगों में आने के कारण ही इसे रसराज कहते हैं।

२—इसका शुद्ध उच्चारण निफ़्त है। अधिकतर लोग नफ़्त ही बोलते हैं। यह एक प्रकार का तेल है, जो सफ़ेद और काले रंग का होता है। सफ़ेद रंग का ज़्यादा अच्छा होता है। यह शेरवान देश की भूमि से उबलता है। कहीं कहीं यह शब्द बारूद के अर्थ में भी व्यवहृत होता है।

३—वर्तमान भौतिक विज्ञान (Physical Science) के प्रचार के पहले, प्रायः सभी देशों के विचारवान् भौतिक जगत के मूल-पदार्थ केवल पांचही—पृथ्वी, जल, अग्नि,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यद्यपि सप्त-पिण्डों के अस्तित्व का मूलधन पारा और गंधक है, तथापि एक दूसरे के गुणों में विभिन्नता, संसृष्टि में भेदभाव एवं शुद्धता में अंतर होने के कारण नाना प्रकार के पदार्थ उत्पन्न होते हैं। जब ये दोनों वस्तुएं पार्थिक-कणों से मिश्रित न हों, पदार्थ स्वच्छ रहें, पूर्णतया पक कर आपस में मिल जांय,

वायु और आकाश—मानते थे, किसी किसी विचारक ने आकाश को अन्य पदार्थों का अधिष्ठान (Space) मान कर उसको मूल पदार्थों की कोटि से पृथक् कर दिया है। फ़ारसी, अरबी के अनेक विज्ञानवेत्ता तथा चार्वाक आदि पिछले मत के ही पोषक रहे हैं। परन्तु वर्तमान विज्ञान वेत्ताओं ने विश्लेषणक्रिया द्वारा बानवे मूल द्रव्य खोजे हैं। उनको अंगरेज़ी भाषा में एलीमेण्ट्स (Elements) कहते हैं, इन द्रव्यों में कुछ धातुएं (जैसे सोना, चांदी, तांबा, लोहा आदि), कुछ दूसरे खनिज (जैसे, गंधक, संखिया आदि) और कुछ वायव्य द्रव्य (जैसे, आक्सिजन्, हाइड्रोजन् और नाइट्रोजन आदि) हैं। वैज्ञानिक मूल पदार्थ (Element) उसको मानते हैं, जो किसी रासायनिक प्रक्रिया द्वारा दो या अधिक पदार्थों का बना हुआ सिद्ध न हो सके अथवा जो दो या अधिक पदार्थों के संयोग से न बनाया जा सके।

जिस पृथ्वी को प्राचीन विद्वानों ने मूल-तत्व माना है, वर्तमान कालीन वैज्ञानिकों ने उसमें सभी मूल पदार्थ अर्थात् बानवे द्रव्य पाये हैं। जल को इंग्लैण्ड निवासी प्रसिद्ध वैज्ञानिक कैविण्डस् दो गैसीय मूल पदार्थों अर्थात् आक्सिजन् (Oxygen) और हाइड्रोजन् (Hydrogen) का मिश्रण सिद्ध कर चुका है। वायु कितने ही प्रकार के गैसीय मूल एवं मिश्रित पदार्थों का मिश्रण साबित हुई है, उन पदार्थों में आक्सिजन् और नाइट्रोजन् मुख्य हैं, इनमें भी पंचमांश आक्सिजन् है और शेष चार भागों में अधिकांश नाइट्रोजन् है।

रासायनिक खोज संबन्ध में मुख्य सिद्धान्त "डाल्टन का परमाणुवाद" (Dalton's Atomic Theory) है। इसके मत में प्रत्येक मूल पदार्थ एकही प्रकार के अनेक परमाणुओं का समूह मात्र है। आक्सिजन् के सभी परमाणु एक से हैं, और इसी प्रकार हाइड्रोजन् आदि सभी मूल पदार्थों के भी परमाणु समान होते हैं। मूल पदार्थों में सबके परमाणुओं से हाइड्रोजन् का परमाणु सब से हलका पाया जाता है। इस लिए इसके भार (Atomic weight) को इकाई मान कर वैज्ञानिकों ने सभी मूल पदार्थों के परमाणुओं के भार निकाले हैं, जिनकी तालिका नीचे दी जाती है :—

मूल पदार्थ		परमाणुभार	मूल पदार्थ		परमाणुभार।
हाईड्रोजन्	Hydrogen	१	नाइट्रोजन्	Nitrogen	१४
हीलियम्	Helium	४	आक्सिजन्	Oxygen	१६
लीथियम्	Lithium	६·९४	फ़्लोरिन्	Fluorine	१९
बिरीलियम्	Beryllium	९·१	नियन्	Neon	२०·२
बोरन्	Boron	१०·९	सोडियम्	Sodium	२३
कार्बन्	Carbon	१२	मैग्नीशियम्	Magnesium	२४·३२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

साथ ही गंधक सफ़ेद हो और पारे के परमाणु अधिक हों, तो **चांदी**[२] पैदा होगी। यदि दोनों बराबर हों और गंधक लाल हो तथा उसमें रंगीन बनाने का बल भी हो तो **सोना** दर्शन देगा। उसी परिस्थिति में यदि मिश्रण के पश्चात् और पूर्ण परिपक्व होने के पहले सरदी उसे जमादे, तो **ख़ारचीनी** उत्पन्न होगी। उसे

मूलपदार्थ		परमाणुभार	मूलपदार्थ		परमाणुभार
एल्यूमीनियम्	Aluminium	२७·१	रुथीनियम्	Ruthenium	१०१·७
सिलिकन्	Silicon	२८·३	रहोडियम्	Rhodium	१०२·९
फ़ासफ़ोरस	Phosphorus	३१	पैलेडियम्	Palladium	१०६·७
सल्फ़र (गंधक)	Sulphur	३२	सिल्वर (चांदी)	Silver	१०७·८८
क्लोरीन	Chlorine	३५·४६	कैड्मियम्	Cadmium	११२·४
अर्गन	Argon	३९·९	इण्डियम्	Indium	११४·८
पोटैशियम्	Potassium	३९·१	टिन (रांगा)	Tin	११८·७
कैलशियम्	Calcium	४०·०७	ऐण्टीमनी (सुर्मा)	Antimony	१२०·२
स्कैण्डियम्	Scandium	४५·१	टिल्यूरियम्	Tellurium	१२७·५
टाइटेनियम्	Titanium	४८·१	आयोडिन	Iodine	१२६·९२
वनैडियम्	Vanadium	५१	ज़िनन	Xenon	१३०·४
क्रोमियम्	Chromium	५२	केशीयम्	Caesium	१३२·८१
मैंगैनीज़	Manganese	५४·९३	बेरियम्	Barium	१३७·३७
आइरन् (लोहा)	Iron	५५·८४	लेन्थैनम्	Lanthanum	१३९
कोबाल्ट	Cobalt	५८·९७	सीरियम्	Cerium	१४०·२५
निकेल	Nickel	५८·७	प्रैसीडीमियम्	Praseodimium	१४०·९
कापर (तांबा)	Copper	६३·५७	न्योडीमियम्	Neodimium	१४४·३
ज़िंक (जस्ता)	Zinc	६५·३७	इलीनियम्	Illinium	—
गैलियम्	Gallium	७०·१	समैरियम्	Samarium	१५०·४
जर्मेनियम्	Germanium	७२·५	यूरोपियम्	Europium	१५२
आर्सेनिक	Arsenic	७४·९६	गडोलीमियम्	Gadolimium	१५७·३
सेलेनियम्	Selenium	७९·२	टर्बियम्	Terbium	१५९·२
ब्रोमीन	Bromine	७९·९२	डाइसप्रोसियम्	Dysprosium	१६२·५
क्रिप्टन	Krypton	८२·९२	हालमियम्	Holmium	१६३·५
रुबीडियम्	Rubidium	८५·४५	इरबियम्	Erbium	१६७·७
सट्रन्शियम्	Strontium	८७·६३	थूलियम्	Thulium	१६८·५
यट्रियम्	Yttrium	८९·३	टरबियम्	Terbium	१७३·५
ज़िर्कोनियम्	Zirconium	९०·६	लुटेसियम्	Lutecium	१७५
नायोबियम्	Niobium	९३·५	हैफ़नियम्	Hafnium	१७८·६
मालिबडेनम्	Molybdenum	९६	टैन्टलम्	Tantalum	१८१·५
मैसूरियम्	Masurium	—	टंग्सटन	Tungsten	१८४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आहनचीनी भी कहते हैं। वास्तव में वह कच्चा सोना होता है; पर कुछ लोग उसे एक प्रकार का तांबा ख़्याल करते हैं। यदि केवल गंधक साफ़ न हो, और उसमें पारे की अधिकता हो एवं जलाने की शक्ति विद्यमान हो, तो **तांबा** तैयार होगा। यदि एक दूसरे की मिलावट ठीक तरह से नहीं होती और सीसा अधिक

मूलपदार्थ		परमाणुभार	मूलपदार्थ		परमाणुभार
रीनियम्	Rhenium	—	—	—	—
आसमियम्	Osmium	१९०·९	रेडन	Radon	—
इरीडियम्	Iridium	१९३·१	—	—	—
प्लेटिनम्	Platinum	१९५.२	रेडियम्	Radium	२२६
गोल्ड (सोना)	Gold	१९७·२	एक्टीनियम्	Actinium	—
मर्करी (पारा)	Mercury	२००·६	थोरियम्	Thorium	२३२·१५
थैलियम्	Thallium	२०४	प्रोटोएक्टीनियम्	Protoactinium	—
लेड (सीसा)	Lead	२०७·२	यूरैनियम्	Uranium	२३८·२
बिस्मथ	Bismuth	२०८			
पोलोनियम्	Polonium	२१०			

(The outline of Wireless, by Ralf Stranger, 1932, P. 30-31.)

भौतिक विज्ञान के आचार्यों ने यह भी सिद्ध किया है कि प्रत्येक परमाणु दो प्रकार के विद्युत् अणुओं से बना है। एक विद्युदणु ऋणात्मक है और इलैक्ट्रोन (Electron) कहलाता है, दूसरा घनात्मक है जो पोज़िट्रोन (Positron) कहलाता है। एक ही रासायनिक परमाणु में अनेक विद्युदणु होते हैं, और इस दृष्टि से एक एक परमाणु हमारे सौर मण्डल से भी अधिक पेचीदा मंडल है, जिसमें सूर्य स्थानीय परम लघु घनात्मक विद्युत केन्द्र है और उसके चारों ओर अनेक ऋणात्मक विद्युदणु ग्रहों की नाईं नियत कक्षाओं में परिभ्रमण करते रहते हैं। इस प्रकार प्रत्येक परमाणु एक प्रकार का वृहत ब्रह्माण्ड है। जब यह ऋणात्मक विद्युदणु रूपी ग्रह अपनी कक्षा से विचलित कर दिये जाते हैं तभी प्रकाश प्रकट होता है। सारांश यह है कि वर्तमान विज्ञान ने 'यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे' की उक्ति को प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिया है।

वर्तमान रासायनिकों ने कुल ९२ मूल पदार्थों को दो भागों में बांटा है, एक धातु (metal) और दूसरे अधातु (non-metal)। इनमें आधे के लगभग धातु और शेष अधातु हैं। धातु और अधातु के भेद का प्रकटीकरण भी रासायनिक प्रक्रिया पर अवलम्बित किया गया है। पदार्थों के जलने से (आक्सिजन के मिलने से) जो मिश्रित पदार्थ बनता है वह उस मूल का ओषित् (oxide) कहलाता है। कुछ ओषित् क्षार (alkaline) रूप होते हैं और कुछ अम्ल (acid) रूप। जिन मूल पदार्थों के ओषित् क्षार रूप होते हैं वे धातु हैं और दूसरे अधातु।

जगत् के असंख्यों प्रकार के इन्द्रिय गोचर पदार्थ इस प्रकार से बने हैं। ऋणात्मक और घनात्मक (electrons & positrons) विद्युदणुओं से परमाणु (atoms) बनते हैं और परमाणुओं के संयोग से अणु (molecules) संगठित होते हैं। इन अणुओं से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

होता है, तो मिश्रित **रांगा** बन जायगा। कुछ लोग कहते हैं कि दोनों के विना स्वच्छ हुये, पदार्थ नहीं बनता। यदि दोनों मिश्रित द्रव्य निकृष्ट हों, कठोरता से मिले हों, पारे के पार्थिव कणों में पार्थक्य का भाव हो और गंधक में जलने की शक्ति हो, तो **लोहा** प्रकट होगा। यदि उस अवस्था में पूर्ण मिश्रण न हो, और

शुद्ध रासायनिक पदार्थ (compounds) आविर्भूत होते हैं, और इन शुद्ध रासायनिक पदार्थों से असंख्यों प्रकार के इन्द्रियगोचर पदार्थ बनते हैं। वास्तविक बात यह है कि मूल पदार्थ में एक ही प्रकार के परमाणु होते हैं, किन्तु जब वे दूसरे प्रकार के परमाणुओं से मिलते हैं, तभी तीसरे प्रकार का द्रव्य तैयार होता है।

अनेक विद्वानों का मत है कि प्राचीन और अर्वाचीन मूल पदार्थों के सम्बन्ध में जो मतभेद है वह केवल विचारप्रणाली के कारण है। प्राचीन विचारकों की वृत्ति अन्तर्मुखी होने के कारण वे दृष्टा को मुख्य मानकर दृश्य को गौण समझते थे। इस लिए उनका पदार्थ विभाजन दृष्टा की अपेक्षा से है। दृष्टा की दृष्टि के पांच मूल साधन पांच इन्द्रियां हैं। वाह्य-जगत का समस्त ज्ञान दृष्टा तक इन्हीं पांच द्वारों से पहुँचता है। यहाँ तक तो वर्तमान वैज्ञानिक भी सहमंत हैं। प्राचीन विचारकों के मतानुसार "जिस पदार्थ का ज्ञान केवल एक ही इन्द्रिय की सहायता से हो वह मूल पदार्थ है और जिसके ज्ञान के लिए दो इन्द्रियों की अपेक्षा हो वह मिश्रित पदार्थ है।" इधर वर्तमान वैज्ञानिकों की वृत्ति वहिर्मुखी होने के कारण दृश्य को दृष्टा की अपेक्षा अधिक महत्व देते हुये कहते हैं, कि इन्द्रिय जन्य ज्ञान अस्पष्ट, अधूरा और कभी कभी भ्रांत होता है; प्रकृति का ठीक ठीक ज्ञान उसी के बने हुये यन्त्रों द्वारा हो सकता है। अतएव उन्होंने अपने मूल पदार्थ रासायनिक प्रक्रियाओं से निश्चित किये हैं।

पर मूल पदार्थों का विश्लेषण नितान्त न हो सके, यह बात नहीं है। गत तीस वर्षों में वैज्ञानिकों ने ऐसी प्रक्रियाएं ढूंढी हैं, जिन के द्वारा मूल पदार्थों का विश्लेषण भी संभव प्रतीत होने लगा है; यद्यपि साधारण रासायनिक प्रक्रिया द्वारा उनका विभाजन असंभव है। हम इसको इस प्रकार भी कह सकते हैं कि जो पदार्थ रासायनिक प्रकिया द्वारा मूल एवं अविश्लेषणीय है वही कुछ भौतिक प्रक्रियाओं द्वारा मिश्रित और विश्लेषणीय सिद्ध हो जाता है जैसा कि ऊपर लिखा गया है। इस दृष्टि से प्राचीन और अर्वाचीन दोनों ही मत ठीक हैं; क्योंकि दोनों ही अपनी अपनी दृष्टि से पदार्थों को देखते और तदनुसार परिणाम निकालते हैं।

२—कौटिल्य ने चांदी के चार भेद लिखे हैं—(१) तुत्थोद्गत—जोकि तुत्थ पर्वत से निकाली जाती है, (इसका रंग चमेली के समान सफ़ेद होता है—बट्ट स्वामी का भाष्य); (२) गौडिक जो कि गौड़ देश की उपज है (यह अगर के रंग की होती है—बट्ट स्वामी का भाष्य)। (३) काम्बुक जो कि कंबु पर्वत से प्राप्त की जाती है। (४) चाक्रवालिक—जो कि चक्रवाल पर्वत से निकलती है। [तीसरे और चौथे प्रकार की चांदी का रंग कुंद (एक प्रकार की चमेली) के समान होता है—बट्ट स्वामी का भाष्य। Kautilya's Arthshastra, Translated by Dr. R. Sham Sastri P. 99]। किन्तु डा० प्राणनाथ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पारा अधिक हो तो **सीसा** प्रदर्शित होगा। ये सात धातुएं **सप्तपिंड** कहलाती हैं। लोग पारे को पिण्डों की माता और गंधक को पिंडों का पिता कहते हैं तथा पारे को जीवात्मा और हरताल तथा गंधक को श्वास ख़्याल करते हैं। **जस्त**—जो कुछ लोगों के मतानुसार तूतिया की रूह है, और जिसकी सूरत शक्ल सीसे के समान होती है, विज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थों में उसका उल्लेख कहीं नहीं पाया जाता। हिन्दुस्तान में, जालोर की सीमाओं में जो कि सूबे अजमेर के इलाक़े में है, उसकी खान है। रासायनिकों का मत है कि **रिसास** (जस्त) एक प्रकार की चांदी है कुष्ट-रोग ग्रसित, और पारा एक तरह की चांदी है जिसको फ़ालिज की बीमारी है; सीसा एक प्रकार का सोना है कुष्ट-रोग पीड़ित, और तांबा कच्चा सोना है। रासायनिक वैद्य की तरह उपचार द्वारा इन धातुओं को उनके सदृश अथवा उनके जोड़ का बना देते हैं।

बुद्धिमान कार्यकुशल, उपर्युक्त सप्तपिण्डों से मिश्रित कई धातुएं बनाते हैं, जिन से आभूषण और बर्तन इत्यादि बनते हैं। मैं उनमें से कुछ का हाल वर्णन करता हूँ :—

सफ़ेद रू—हिन्दुस्तान के लोग इसे **काँसी** कहते हैं। चार सेर ताँबा और एक सेर क़लई (रांगा) गलाकर इसे बनाते हैं।

रूई—इस में चार सेर ताँबा और डेढ़ सेर सीसा रहता है। हिन्दुस्तानी इसको **भंगार** कहते हैं।

बिरंज—हिन्दू इसे **पीतल** कहते हैं। इसको तीन प्रकार से बनाते हैं। पहली, वह पीतल, जो ठंढी होने पर आघात से बढ़ने के योग्य हो; उसके अंश इस प्रकार हैं—२½ सेर तांबा, १ सेर रूह तूतिया। दूसरी, वह जो तपाकर पीटने से बढ़ सके; वह २ सेर तांबे और १½ सेर रूह तूतिया से तैयार होती है। तीसरी जो घनाघात से बढ़ने के अयोग्य है। उसे ढालने के काम में लाते हैं। वह २ सेर तांबे और १ सेर रूह तूतिया से बनती है।

सीमेसुख़्ता—सीसा, चांदी, और तांबे से मिलकर बनता है। इसका रंग काला चमकदार होता है, और नक़्क़ाशी के काम में आता है।

हफ़्त-जोश—ख़ार चीनी की तरह यह भी कहीं नहीं प्राप्त होता। यह छै

विद्यालङ्कार ने अपने भाषान्तर (कौटिल्य-अर्थ-शास्त्र पृ० ७७) में चांदी के पांच भेद लिखे हैं—१-तुत्थोद्गत, २-गौडिक, ३-काममल, ४-कबक, ५-चाक्रवालिक।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

धातुओं से मिलकर बनता है। कोई कोई इसको **तालीक़ून** कहते हैं। पर कुछ लोग तालीक़ून साधारण तांबे को ही ख़्याल करते हैं।

अष्ट-धात (अष्टधातु)—यह आठ चीज़ों का मिश्रण है; छे हफ़्तजोश के अंश और रूह तूतिया तथा कांसी। यह सात चीज़ों से भी बनता है।

कौल-पत्र—२ सेर सफ़ेद रू और एक सेर तांबे से बहुत रंगीन और सुहावना तैयार होता है। यह सम्राट् के पवित्र आविष्कारों में से है।

आईन १४।

पदार्थों की लघुता और गुरुता।

यह लिखा जा चुका है कि अनेक प्रकार के मिश्रितों की सृष्टि, वाष्प (बुख़ार) और धूम (दुख़ां) के संयोग से होती है, और वे दोनों तत्वों के प्रभाव से हलके और भारी होते हैं। इसके अतिरिक्त बुख़ार ख़ुश्क हो या तर, कभी ऐसा होता है कि वे मिलने के पहले पकते हैं अथवा पीछे, और कभी कभी उक्त दोनों दशाओं में से एक में। इस कारण वह मिश्रित पदार्थ, जिसके वायु और अग्नि सम्बन्धी अवयव, जल और पृथ्वी के कणों से प्रबल होते हैं उस खनिज द्रव्य से हलका होता है, जिस में जल और पृथ्वी के कण अधिक होते हैं। इसी प्रकार वह खनिज पदार्थ जिसका बुख़ार दुख़ां से विशेष होता है उससे हलका होता है, जिसका दुख़ां बुख़ार से अधिक होता है। इसी तरह वह खनिज वस्तु, जिसमें बुख़ार और दुख़ां की परिपक्वता विशेष हो उस से अधिक भारी होता है, जो उस दर्जे को नहीं पहुँचता है; क्योंकि परमाणुओं का अंतर और वायु का प्रवेश ही हर शरीर को बड़ा बनाता और हलका करता है। इस अनुभव के द्वारा प्रत्येक वस्तु की लघुता और गुरुता जानने का साधन उपलब्ध होता है। पूर्वजों में से एक व्यक्ति[१] ने पदार्थों की गुरुता का अंतर कुछ पद्यों में वर्णन किया है :—

१—इस व्यक्ति से आशय अबू बासिर-फ़राही से है। यह सिजिस्तान के क़स्बे फ़राह का रहने वाला था। इसका असली नाम मोहम्मद बदरुद्दीन था। इसने निसाबु-सिबियां नामक एक पद्यात्मक शब्दकोष बनाया था, जो फ़ारस और हिन्दुस्तान के फ़ारसी के अधिकतर मदरसों में शताब्दियों से पढ़ाया जाता है। (Journal of Asiatic Society Bengal, 1868. P. 7.)।

"हमने पदार्थों की गुरुता इस प्रकार नियत की है :—सोना १९·२६; पारा १३.६; सीसा ११·३२५; चाँदी १०·४७;

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क़ता ।

ज़ रुह जुस्सा-ए हफ़्तादो यक दिरम सीमाब,
चिलो शशस्तो ज़ अर्ज़ीज़ सी ओ हश्त शुमार ।
ज़हब सदस्त सरब पंज हो नुह आहन चिल,
बिरंजो मिस चिहलो पंज नुक़रा पिंजहो चार ।

"पारे की गुरुता ७१ दिरम है, रुई की ४६, रांगे की ३८, सोने की १००, सीसे की ५६, लोहे की ४०, पीतल एवं तांबे की ४५ और चांदी की ५४।" कुछ लोगों ने इस गणना को अक्षरों की संख्याओं में वर्णन किया है :—

क़ता ।

नुह फ़िलज्ज़े मुस्तवी उल हज्म रा चूं बर कशी,
इख़्तिलाफ़े वज़्न दारद हर यके बे इश्तिबाह ।
ज़र लकन ज़ीबक़ अलम असरब दहन अर्ज़ीज़ हल,
फ़िज्ज़: नद आहन यके मिस्सो शब: मह रुए माह ।

अर्थात् यदि तुम समान विस्तार वाली नौ धातुओं को तोलो, तो उनके वज़न में, निस्सन्देह इस प्रकार अन्तर पाओगे :—सोना लकन[१]=१००, पारा अलम=७१, सीसा दहन=५६, रांगा हल=३८, चांदी नद=५४, लोहा यके=४०, पीतल और ताँबा माह=४५, रुई माह=४६ ।

यदि उपरोक्त धातुओं[२] के कुछ टुकड़े, जो लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई में बराबर हों, लेवें, तो तोलने पर भार में वे एक दूसरे से भिन्न निकलेंगे। कुछ

ताँबा ६ ; टिन ७·३२ ; लोहा ७·७ ; जिसके समानुपात के लिए पानी मान है । अबुल फ़ज़्ल ने सोने को मान माना है, और उसकी गुरुता १६·२६ निश्चित की है । इस हिसाब से पारा १३·८७; सीसा ११·३६; चांदी १०·४० ; तांबा ८·६७ ; लोहा ७·७६ ; टिन ७·३२ ; रुई ८·८६ होता है"—ब्लाक् मैन् (Blochman's translation of Ain-i-Akbari, Vol. 1, P. 42, Note 1)। टिन शब्द क़लई के लिए प्रयोग किया गया है । क़लई को हिन्दी में रांगा कहते हैं।

१—फ़ारसी भाषा में प्रत्येक अक्षर के लिए कुछ अंक नियत हैं, जैसे—लाम के लिए ३०, काफ़ के लिए २०, नून के लिए ५० । लकन=लाम+काफ़+नून=३०+२०+५०=१०० । इसी प्रकार औरों की भी संख्याएं जानना चाहिये । पुराने फ़ारसीदां तारीख़ निकालने में संख्याओं का बहुधा प्रयोग करते थे ।

२—पहले धातुओं में उन्हीं द्रव्यों की गणना थी जो पीटने पर बिना खंडित हुये या चूर हुये बढ़ सकते थे—जैसे सोना, चांदी आदि । पर आजकल चूर होने वाले द्रव्य भी—संखिया, हरताल, सुरमा, सज्जीखार आदि—धातुओं के अन्तर्गत माने जाते हैं । पुराने ग्रंथों में अलुमीनियम्, प्लेटिनम्, निकल, कोबाल्ट और रेडियम् आदि का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पानी का वर्तन

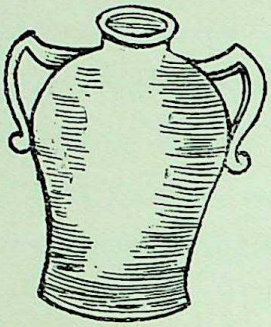

हवाई तराज़ू

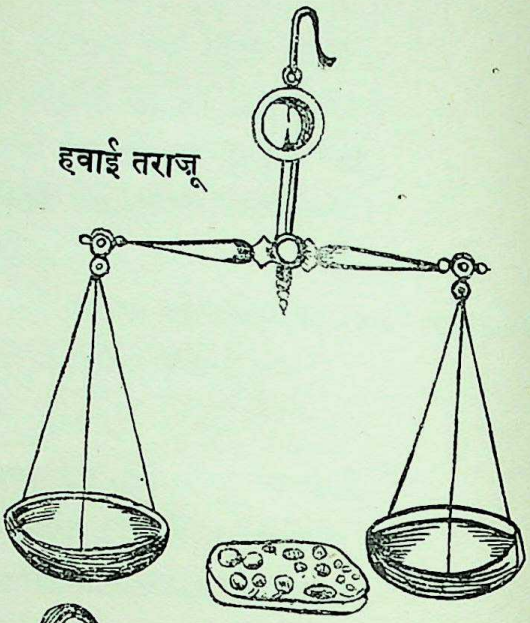

आबी तराज़ू

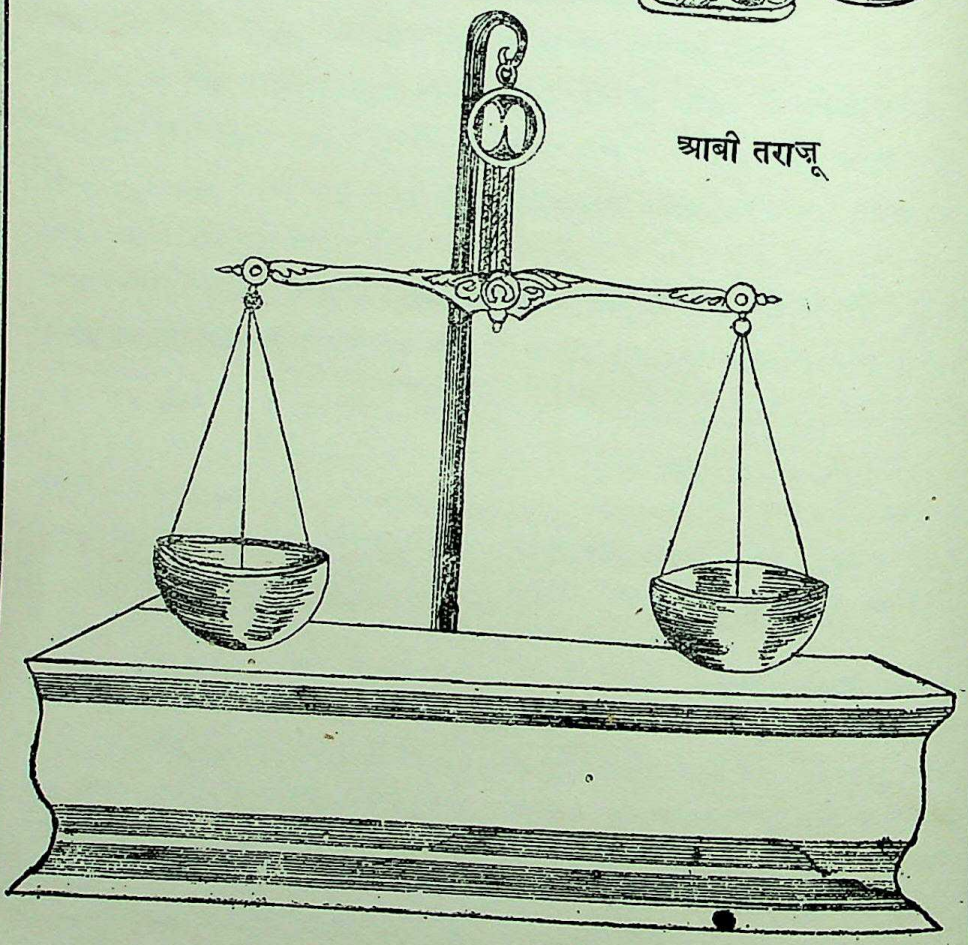

पृष्ठ ८७ देखिये।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बुद्धिमान धातुओं के मानान्तर का कारण, उनके पिण्डों की गुण सम्बन्धी विभिन्नता ख़्याल करते हैं; और उनका हलकापन, भारीपन, पानी पर तैरना, डूब जाना, और भारों का अंतर, हवाई और आबी तराज़ू पर तौल कर मालूम कर लेते हैं।

कितने ही तीक्ष्ण-दृष्टि वैज्ञानिक सब पदार्थों की नाप-जोख पानी से करते हैं। वे एक विशेष प्रकार का पात्र बनाते हैं, और उसको पानी से भर देते हैं। फिर उसमें सब धातुएं सौ सौ मिसक़ाल डालते हैं। उनके डालने से जितना पानी बाहर गिर जाता है, उससे उनके विस्तार और गुरुता का अन्तर जान लेते हैं। जिस पदार्थ का गिरा हुआ पानी ज्यादा होता है उसका विस्तार अधिक और गुरुता न्यूनतर होती है; पर जिसका निकला हुआ पानी कम होता है वह उसके विरुद्ध होता है। इस प्रकार उपर्युक्त परिमाण (१०० मिस्क़ाल) में चांदी को बर्तन में डालने पर उसका पानी ६$\frac{२}{३}$ मिस्क़ाल कम हो जाता है, और उतनाही सोना डालने पर ५$\frac{१}{४}$ मिस्क़ाल घट जाता है। जब किसी पदार्थ के गिरे हुये पानी का परिमाण उसके वायु संबंधी भार (हवाई वज़न) में से घटादें, तो जो कुछ शेष रहेगा वह जल संबंधी भार (आबी वज़न) होगा। हवाई तराज़ू वह है जिसके दोनों पल्ले हवा में रहें, और आबी तराज़ू उसे कहते हैं जिसके दोनों पलड़े पानी पर रहें। भारी पदार्थ में डूबने का बल विशेष होता है, इसलिए प्रत्येक दशा में वह केन्द्र की ओर दौड़ेगा। यदि दोनों तराज़ुओं में से कोई पानी की सतह पर हो और दूसरी वायु में, तो हवाई यद्यपि हलकी होती है तो भी डूब जायगी, क्योंकि वायु जल से सूक्ष्म होती है, इससे इस हद तक प्रतिरोध नहीं करती। पर यदि बाहर गिरा हुआ पानी, अन्दर डाले हुये पिण्ड के विस्तार के बोझ से न्यूनतर हो, तो वह पिण्ड डूब जायगा। यदि गिरा हुआ जल अधिक होगा तो पिण्ड पानी पर तैरने लगेगा। और यदि बाहर निकला हुआ पानी, पिण्ड के वज़न के बराबर हो, तो वह पानी में इतना डूबेगा कि उसका ऊपरी भाग पानी के धरातल के बराबर रहे। इस सम्बन्ध में अबूरैहान बेरूनी ने एक तालिका तैयार की है, लोगों की जानकारी के लिए, मैं उसका यहां पर उल्लेख करता हूँ :—

पता नहीं चलता। वैद्यक ग्रंथों में सोना, चांदी, तांबा, रांगा, लोहा, सीसा और जस्ता को सप्तधातु बतलाया गया है। सोनामाखी, रूपामाखी, तूतिया, कांसा, पीतल, सिंदूर और शिलाजीत ये सात उपधातु कहलाती हैं। वैद्यक के ग्रंथों में पारे को धातु नहीं माना है, वरन् उसे रस बतलाया है। गंधक, इंगुर, अभ्रक, हरताल, मैनसिल, सुरमा, सुहागा, चुम्बक, फिटकरी, गेरू, खरिया, कसीस, खपरिया, बालू, मुरदासंख की गणना उपरसों में है। पारा द्रव अवस्था में मिलता है, इस लिए यूरोप वाले इसे बहुत दिनों तक धातु नहीं मानते थे। जब

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धातुओं की लघुता और गुरुता की तालिका।

नं०	धातुओं तथा रत्नों के नाम	उस जल का परिमाण जो १०० मिस्क़ाल धातु या रत्न डालने पर बाहर निकल जाता है।			धातुओं और रत्नों के वज़न पानी में जब कि हवा में वे १०० मिस्क़ाल हों।			धातुओं और रत्नों की तौल हवा में जब कि उनका विस्तार १०० मिस्क़ाल सोने या १०० नीले याक़ूतों के बराबर हो।		
		मिसक़ाल	दवानक़	तस्सूज	मिसक़ाल	दवानक़	तस्सूज	मिसक़ाल	दवानक़	तस्सूज
१	सोना	५	१	२	९५	४	२	१००	×	×
२	पारा	७	२	१	९२	३	३	७१	१	१
३	सीसा	८	५	३	९१	१	३	५९	२	२
४	चांदी	९	४	१	९०	१	२	५४	३	३
५	कांसा	११	२	३	८८	४	३	४६	२	३
६	तांबा	११	३	३	८८	३	३	४५	३	३
७	पीतल	११	४	३	८८	२	३	४५	३	५
८	लोहा	१२	५	२	८७	३	२	४०	×	×
९	रांगा (क़लई)	१३	४	३	८६	२	३	३८	२	२
१०	याक़ूत आसमानी	२५	१	२	७४	४	२	९४	३	३
११	याक़ूत सुर्ख़	२६	८	३	७४	३	३	९४	३	३
१२	लाल	२७	५	२	७२	३	२	९०	२	३
१३	ज़मुर्रद	३६	२	३	६३	४	३	६९	३	३
१४	मोती	३७	१	३	६२	५	३	६७	५	२
१५	लाज़्हवर्द	३८	३	३	६१	३	३	६५	३	२
१६	अक़ीक़	३९	३	३	६१	३	३	६४	४	२
१७	कहरुवा	३९	३	३	६०	३	३	६४	३	१
१८	बिल्लौर२	४०	३	३	६०	३	३	६३	३	३

मालूम हुआ कि अधिक सरदी से पारा जम जाता है तब उसकी गणना धातुओं में की। अमेरिका वाले बहुत दिनों तक उल्का पिंडों के लोहे का ही व्यवहार करते रहे। उनको और किसी प्रकार के लोहे के व्यवहार का ज्ञान ही नहीं था। जब यूरोप वाले वहां पहुँचे तो उनको तरह तरह के लोहे का व्यवहार मालूम हुआ। धातुओं में प्रसिद्ध धातु सोना, चांदी, तांबा, लोहा, सीसा और रांगा हैं। इन पर लोगों का बहुत प्राचीन काल में ध्यान गया था। इनमें सब से हलकी धातु रांगा है, जो जल से लगभग आठ गुना भारी होता है।

१–४ तस्सूज = १ दवानक़ या दांग, ६ दवानक़ = १ मिसक़ाल। इस हिसाब से इस तालिका की अनेक धातुओं की तौल में साधारण अन्तर प्रतीत होता है, क्योंकि बाहर के जल का भार और पानी की धातु की तौल १०० मिसक़ाल होना चाहिए। याक़ूत आसमानी पारा और चांदी की तौल तो ठीक है परन्तु अन्य धातुओं तथा रत्नों की तौल दूसरी हस्त-लिखित पुस्तकों की संख्याओं से नहीं मिलती।

२–जिन अणुओं के संयोग से ये धातुएं बनी हैं, आजकल के वैज्ञानिक उनमें दो चीज़ें मानते हैं:—एक द्रव्य (matter) और दूसरी शक्ति (energy)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आईन १५ ।

अन्तःपुर[1] ।

विश्व-विभूषक सम्राट् को आबादी की बड़ी चिन्ता रहती है, इससे कार्य योग्यता से होते हैं, सृष्टि सत्यता की हरित-भूमि हो जाती है और वाह्यता आत्मिकता का रूप प्रदर्शित करती है। इसी कारण से, स्त्रियों की अधिकता ने,—जिसने बड़े बड़े ज्ञानवानों को मोह के अंध-पाश में फांस दिया है—सम्राट् का ज्ञान-प्रकाश बढ़ाया और सांसारिक बन्धन के गढ़े से निकाल कर विरक्ति-शिखिर पर पहुँचाया। उत्तमोत्तम ढंग से, अन्तःपुर आबाद हो गया और परिवार सुव्यवस्थित हो गये। सम्राट् ने हिन्दुस्तान एवं अन्य देशों के श्रेष्ठ पुरुषों के साथ विवाह-सम्बन्ध स्थापित किये, और इस एकता के नाते के द्वारा अशान्त जगत शांत हो गया।

१—महाभारत काल में 'राजा का महल बहुधा क़िले के अन्दर हुआ करता था। उसमें कई आंगन और कक्षाएं होती थीं। बाहर की कक्षा में सब लोगों को आने की इजाज़त थी, और दूसरी कक्षा में केवल अधिकारी और दरबारी जा सकते थे। तीसरी कक्षा में यज्ञशाला राजा के स्नान तथा भोजनगृह आदि का प्रबन्ध रहता था। चौथी कक्षा में अन्तःपुर होता था। यहां का स्थान विस्तीर्ण होता था, उस में बड़े बड़े बाग़ बग़ीचे लगे रहते थे। राजा के अन्तःपुर में स्त्रियाँ रहती थीं" (महाभारत मीमांसा, पृ० ३१४)।

कौटिल्य ने अन्तःपुर निर्माण के सम्बन्ध में लिखा है :—"अन्तःपुर में अनेक कमरे हों। उसके चारों ओर दीवार, द्वार तथा खाइयां हों। राजा का निवास-स्थान कोषगृह के अनुरूप बनाया जाय। एक मोहन-गृह बनाया जाय, जिसकी दीवारों से होकर आने जाने के मार्ग हों। राजा का निवास-स्थान इसके मध्य में भी हो सकता है। इसी प्रकार एक महल बनाया जाय और भूमिगृह तैयार किया जाय, जिसके दरवाज़ों पर मूर्तियां बनी हों, दीवारों में सीढ़ियाँ लगी हों, अन्दर बाहर जाने के लिए अनेक सुरंगें हों, सब खम्भे पोले हों और उनसे होकर आने जाने के मार्ग हों। उनकी छतों की कल और यंत्रों से इस प्रकार रचना की गई हो कि आवश्यकता के समय वे एक क्षण में बिठलाई जा सकें। इस महल को भी राजा अपना निवास-स्थान बना सकता है। सहपाठी और बचपन के साथियों से बचने के लिए और आकस्मिक आपत्ति के समय आत्म-रक्षा के लिए उपर्युक्त उपाय आवश्यक है। अन्तःपुर के पिछले भाग में स्त्रियों के रहने का स्थान, गर्भोपयोगी जड़ी बूटियों का क्षेत्र और तालाब बनाया जाय। बाहर की ओर लड़के लड़कियों का निवास, और आगे की तरफ़ शृङ्गार-गृह, दरबार, राजकुमारों तथा अध्यक्षों के रहने के स्थान हों" (कौटिल्य अर्थशास्त्र प्रथम अधिकरण)।

विजयनगर के राजा कृष्णदेव राय (१५०९—१५२९ ई०) के महल का वर्णन बहुत विस्तृत और मनोरंजक है। उसके प्रासाद में कितने ही सहन, कितने ही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिस प्रकार सम्राट् ने अपने ज्ञान के प्रकाश से बाहर के योग्य सेवकों को गुमनामी की धूल से उठाकर उच्चपद प्रदान किये, उसी प्रकार उसने अपनी दूर-दर्शिता से महल के सभी दास दासियों की योग्यतानुसार पद-वृद्धि की। अदूरदर्शी तो यह जानता है कि उसने मिट्टी से सौंदे हुये सोने को चमका दिया है, पर सूक्ष्मदर्शी समझता है कि यह अकसीरसाज़ी या रसायन बनाना है। जैब जड़ी बूटी धातुओं को और का और बना देती हैं, अर्थात् तांबा और लोहा सोना हो जाता है तथा रांगा और सीसा चांदी बन जाती है, तो यदि कोई श्रेष्ट पुरुष किसी अयोग्य व्यक्ति को मनुष्य बना दे, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है :—

च नीको ज़दन्द ईं मसल होशमन्दां,
कि अक्सीर बख़्तस्त चश्मे-बलन्दां।

अर्थात् बुद्धिमानों ने यह कहावत क्या ही अच्छी कही है कि महापुरुषों की दृष्टि भाग्य की रसायन है। सम्राट् में प्रबन्ध के सभी गुण, जैसे ज्ञानाचता, सूक्ष्मदर्शिता, पद-ज्ञान, गुणग्राहकता, कार्य-प्रियता और सहनशीलता विद्यमान हैं। वह क्रोध में भी सन्मार्ग नहीं त्यागता, अधिक दया करने पर दृष्टि रखता है, सुनी हुई बातों को दूरदर्शिता से तौलता है, और कल्पित विचारों से दूर रहता है। वह मनुष्यों की सद्भावनाओं की प्राप्ति को दुर्लभ समझता है, और सांसारिक मदिरा से अपने ज्ञान-मणि को आघात नहीं पहुँचाता है।

महल और अनेक कमरे थे, जो सोने, चांदी और जवाहरात से सजे हुये थे। किसी किसी महल के सब कमरे हाथी दाँत के थे। उनमें हाथी दाँत के ही गुलाब और कमल के फूल बने हुए थे। कितने ही कमरों में रत्न जड़े हुये थे। ये इतने सुन्दर और मूल्यवान थे कि पर्यटक पेई (Paes) के शब्दों में "अन्यत्र वैसे कठिनाई से देखने को मिलते।" एक कक्ष में मानव-जीवन की सब अवस्थाओं के चित्र थे, उनको अवलोकन करके राजमहिषी सब जातियों (पुर्तग़ीज़ों तक) के रहन-सहन के तरीक़ों को जान सकती थीं। वे भिखारियों और अन्धों तक की अवस्था से परिचित थीं। एक महल में सोने से मढ़े हुये दो तख़्त थे। उसी जगह पर हरित सूर्यकान्तमणि का एक तख़्ता था, जो उस महल का एक अपूर्व पदार्थ था। उसके बाद एक बहुत बड़ा सहन था, जिसमें रानियों के लिए झूलने पड़े हुये थे। चार खम्भों पर सधा हुआ एक निवास था जिसके सायबान में नर्तकियों की मूर्तियां थीं। इनके अतिरिक्त और भी सुन्दर मूर्तियां थीं। यहीं पर एक आराध्य मूर्ति थी, जो पूजा के समय स्वर्ण सिंहासन पर ले जाई जाती थी। एक दालान तथा एक कमरे में दो पलंग थे जो चांदी की ज़ंजीरों से टंगे हुये थे। उनके पाये सोने के थे। उनमें रत्न जड़े हुये थे। इसके बाहर सहन में धनुष और बाण धारण की हुई महिलाओं की मूर्तियां थीं। एक दूसरे स्थान पर सोने के तीन बड़े बड़े कड़ाह या डेगें थीं, उनमें गाय का आधा अङ्ग छिप सकता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्राट् ने एक विशाल दुर्ग बनाया है, उसके रम्य भवनों में वह विश्राम करता है। ५००० से अधिक महिलाएं हैं, उनमें से प्रत्येक के लिए एक पृथक् गृह मनोनीत किया है। अलग अलग टोलियां बनाकर, वह उनको उत्तम सेवाओं पर तत्पर रखता है। चरित्रवती ललनाएं हर झुण्ड की निरीक्षणता के लिए दारोग़ा[1] पद पर नियुक्त की गई हैं। इन शीलवती सीमन्तिनियों में से उसने एक वरवर्णिनी को लेखिका बनाया है। उसने बाहर की तरह यहां भी कारख़ाने आबाद किये हैं, और प्रत्येक स्त्री का, उसकी योग्यतानुसार उपयुक्त वेतन नियत किया है। यद्यपि सम्राट् की बख़शिश का अनुमान लेखनी द्वारा नहीं किया जा सकता तथापि जो रक़म केवल मासिक वेतन के रूप में प्रत्येक सरदार महिला पाती है वह १६१० रुपए से १०२७ रुपए[2] तक है। कुछ सेविकाओं को ५१ से २०

था। अन्तःपुर का एक कमरा, जिसमें बैठ कर राजा नृत्य देखा करता था, स्वर्णमय था। उसके फ़र्श और दीवारों पर सोने के पत्र मढ़े हुये थे। इसी कमरे में दीवार के बीचोंबीच में बारह वर्ष की कन्या के बराबर एक सोने की मूर्ति थी (A Forgotten Empire, by Sewell, 1924, P. 284—88)।

१—दरोगा या दारोग़ा शब्द को कुछ कोषकारों ने फ़ारसीभाषा का माना है (शब्दसागर पृ० १५४३)। पर फ़ारसी की कई प्रसिद्ध लुग़तों में वह नहीं है। किसी किसी ने उसे मंगोलभाषा का बतलाया है (Kovalevsky's Dictionary, No. 1672)। मंगोल भाषा में यह प्रान्त के गवर्नर या नगर के शासक के लिये प्रयुक्त होता था। मंगोलभाषा के सन् १३१४ ई० के एक शिलालेख में यह शब्द प्रान्तीय गवर्नर के लिये ही प्रयुक्त हुआ है। चीन के शेन्सी प्रान्त में यह लेख प्राप्त हुआ था (Pauthier in his Marco Pollo., P. 773)। सुदूरपूर्व से ही यह शब्द इधर लाया गया है। तैमूर और उसके कुछ पिछले उत्तराधिकारी इस शब्द को गवर्नर के ही अर्थ में प्रयुक्त करते रहे; किन्तु कुछ दिनों के बाद यह साधारण अधिकारियों के लिए भी व्यवहृत होने लगा (Hobson-Jobson P. 279)। विल्सन के मतानुसार हिन्दुस्तानियों के राज-त्वकाल में यह शब्द पहले विभिन्न विभागों के सुपरिन्टेन्डेन्टों तथा मैनेजरों के लिए इस्तेमाल किया जाता था; परन्तु पीछे से केवल चुंगी, आबकारी और पुलिस थानों के प्रधान अधिकारियों के लिए काम में लाया जाने लगा। १७९३ ई० से १८६२—६३ ई० तक स्थानीय पुलीस का चीफ़ या हेड कांस्टेबिल तक दारोग़ा कहलाता था। संयुक्त प्रान्त में थाने के इंचार्ज को अब भी दारोग़ा कहते हैं।

कौटिल्य-अर्थशास्त्र का अध्यक्ष शब्द दारोग़ा शब्द से मिलता जुलता है। यद्यपि दोनों के अधिकारों में कुछ अन्तर है तथापि कोई कोई शब्द भाव द्योतक अवश्य हैं, जैसे कौटिल्य का गोअध्यक्ष और आईने-अकबरी का दारोग़ा गावख़ाना आदि।

२—मूलग्रंथ में "अज़ यक हज़ार-ओ शशसद्-ओ दह रुपया ता बीस्त-ओ हफ़्त" पाठ है, जिसका साधारण अर्थ १६१० से २७ रु० तक होता है। परन्तु यह वेतन "मिहीन बानों" (उच्च-पदस्थ महिला) का है। इससे २७ रुपया नहीं हो सकता। यदि सोलह सौ की अनुवृत्ति

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रुपए तक, और कुछ को ४० से २ रुपए तक मिलते हैं। दरबार ख़ास में वह एक आज्ञा पालक उत्तम लेखक मुशरिफ़ (दीवान) पद पर नियुक्त करता है, जो कि राजभवन के आय व्यय की देख भाल करता है और नगदी तथा जिस का हिसाब रखता है। इस समुदाय की महिलाएं जो कुछ चाहती हैं, अपने वेतन के अनुसार अन्दर के एक तहवीलदार (ख़ज़ांची) से मांग लेती हैं। तहवीलदार उसकी याददाश्त (स्मरण-पत्र) फाटक के मुशरिफ़ के पास भेजता है। वह उसे जांचता है। प्रधान कोषाध्यक्ष उसके अनुसार रुपया चुका देता है। इस प्रकार की मांग में **बरात**[1] नहीं दी जाती है।

इसके अतिरिक्त मुशरिफ़ वार्षिक व्यय की **बरावुर्द**[2] बनाकर संक्षेप में **क़ब्ज़**[3] तैयार करता है, जिस पर राज्य के मंत्रियों की मोहर का निशान लगाया जाता है। उसके बाद उस पर ख़ास शाहंशाही मोहर से छाप लगाई जाती है। यह मोहर केवल अन्तःपुर सम्बन्धी व्यय-पत्र के लिए ही बनाई गई है। फिर यह क़ब्ज़ वसूलयाबी के लिए जारी होती है। इस प्रमाण-पत्र के आधार पर प्रधान ख़ज़ांची बाहर के प्रधान तहवीलदार को रुपया दे देता है। वह उस रुपए को मुशरिफ़ के आदेशानुसार छोटे तहवीलदारों को बांट देता है, वहां से रनिवास के नौकरों को मिल जाता है। वेतन का हिसाब किताब वर्तमान समय के रुपए की दर (४० दाम=१ रु०) के अनुसार होता है।

रनिवास के आस पास भीतर की ओर सौ शुद्धाचारिणी एवं सचेत महिलाएं पहरा देती हैं[4]। विशेष कर सम्राट् के निवास स्थान पर शीलवती वाकपटु और

मानी जाय तो पिछली संख्या १६२७ होनी चाहिए पर अबुलफ़ज़्ल बहुधा बड़ी संख्या पहले लिखता है और छोटी संख्या बाद को। इस कारण से कदाचित् १६०० की अनुवृत्ति नहीं होगी वरन् दस सौ की होगी। इस हिसाब से २७ की संख्या १०२७ मानी जायगी। मौ० ज़काउल्ला ने अपने "इक़बालनामा अकबरी" में उक्त संख्या १०२७ ही लिखी है, किन्तु ब्लाक्-मैन के अनुवाद में १०२८ है। एक प्रति के पाठान्तर से ब्लाक्मैन की भी संख्या ठीक है।

१—चेक।

२—चिट्ठा।

३—क़ब्ज़ुलवसूल।

४—कौटिल्य ने अर्थ-शास्त्र (अधिकरण १, आत्मरक्षा-प्रकरण) में लिखा है कि "सोकर उठते ही राजा का आदर सत्कार धनुषबाण धारण की हुई सैनिक महिलाएं करें।" इससे प्रकट है कि उस समय महिलाएं शस्त्र धारण करती थीं और अन्तःपुर में राजा की निकटस्थ शरीर रक्षिका होती थीं। इसके आगे लिखा है कि "दूसरी कक्षा में चोग़ा, पगड़ी और वर्दी आदि पहने हुये बुड्ढे अन्तःपुर के नौकर, तीसरी कक्षा में कुबड़े, बौने तथा किरात लोग, और चौथी कक्षा में मंत्री, सम्बन्धी तथा ड्यूढ़ीदार स्वागत करें।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुशाग्रबुद्धि वरवर्णिनी उपस्थित रहती हैं। बाहर की ओर शुभचिन्तक ख्वाजा-सरा (नपुंसक गण)· सेवकाई के लिये उत्सुक रहते हैं। इन से समुचित दूरी पर राजभक्त चौकसी करते हैं। उनके बाद सच्चे और परिश्रमी फाटकों के चौकीदार चौकीदारी पर प्रस्तुत रहते हैं। इनके अतिरिक्त बाहर की तरफ़ चारों ओर अमीर, अहदी और अन्य सैनिक, अपने अपने पदों के अनुसार रखवाली करते हैं।

विजयनगर के राजा कृष्णदेवराय की बारह रानी थीं उनमें तीन पटरानी थीं। हर एक महिषी की अनेक दासियां एवं शरीर रक्षिकाएं थीं। नपुंसक रक्षकों को छोड़कर रनिवास में कोई नही जा सकता था। हाँ, राजा की अनुग्रह से वृद्ध उच्चपदस्थ कभी उनको देख सकते थे। वे बन्द पालकियों में बाहर जाती थीं। तीन चार सौ नपुंसक उनके साथ होते थे, और सब लोग दूर रहते थे। इनके अतिरिक्त अन्तः-पुर में बारह सौ स्त्रियां ओर बतलाई जाती थीं। उनमें से अनेक स्त्रियां ढाल तलवार चलाती थीं, बहुतसी महिलाएं कुश्ती लड़ती थीं, कितनी ही तरह तरह के बाजे बजाती थीं और बहुतसी स्त्रियां फाटक के अन्दर उसी प्रकार विभिन्न पदों और कार्यालयों में काम करती थीं, जैसे कि बाहर पुरुष काम करते थे। राजा महल के अन्दर रहता था। जब वह किसी रानी से मिलना चाहता था तो नपुंसक को आज्ञा देता था। नपुंसक रनिवास में नहीं जा सकता था। वह अपेक्षित रानी की शरीर-रक्षिका से कहता था। शरीर-रक्षिका रानी को सूचना देती थी। तब रानी की कोई सहेली या दासी उसको राजा के पास पहुँचा देती अथवा राजा को वहीं बुला ले जाती थी (A Forgotten Empire P. 247—249)। राजा के लिए ऐसे बन्धन क्यों थे, इसका उत्तर पेई या न्यूनीज़ के (Narrative of Domingos Paes & Chronicle of Fernao Nuniz) विवरणों में स्पष्ट नहीं है। वरन् इसका उत्तर कौटिल्य के निम्न-लिखित वाक्यों से मिल जाता है :— घर के अन्दर पहुँचकर राजा बुड्ढी स्त्री के द्वारा पटरानी को कहलादे और जब कोई उसके पास न रहे तभी उससे मिलकर बात चीत करे। क्योंकि भाई ने रानी के कमरे में छिपकर भद्रसेन को, माता की चारपाई में छिपकर लड़के ने कारूश को, खीलों में शहद के बजाय ज़हर लगाकर रानी ने काशिराज को, विष में बुझे पायज़ेब से रानी ने ही वैरंत्य को, हीरे की कर्धनी से रानी ने ही सौवीर को, दर्पण से रानी ने ही जालूथ को, और बालों के जूड़े में शस्त्र छिपाकर रानी ने ही विदूरथ को मारा था।" न्यूनीज़ के विवरण से मालूम होता है कि कृष्णदेवराय के उराधिकारी अच्युतराय के पाँच सौ रानियाँ थीं। इनके अतिरिक्त महल के अन्दर चार हज़ार और स्त्रियाँ थीं। उनमें से कुछ नर्तकियाँ, कुछ रानियों की पालकी ढोने वालीं, कुश्ती लड़ने वालीं, फलित ज्योतिष की ज्ञाता, भविष्य कहने वालीं, फाटक के अन्दर के ख़र्चे का हिसाब किताब रखने वालीं, राज्य के विषयों का विवरण लिखने वालीं तथा लिखचुकने के बाद उनको बाहर के लेखकों से मिलान करने वालीं, गान-विद्या निष्णाता और वाद्यकला विशारदा थीं। राजा की रानियाँ भी गान विद्या में बड़ी कुशल थीं (A Forgotten-Empire, P. 370, 382)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जब कभी बेगमें, अमीरों की पत्नीं तथा अन्य शुद्धाचारिणी महिलाएँ चाहती हैं कि सम्राट् की सेवा में उपस्थित होकर प्रणाम करके सौभाग्यवती हों, तो वे पहले अन्तःपुर के सेवकों को सूचना देती हैं और उपयुक्त उत्तर पाती हैं। फिर उनके प्रार्थना-पत्र दरबार के पेशकारों के पास भेजे जाते हैं। इसके बाद जो स्त्रियाँ अधिकारिणी होती हैं, अन्दर जाने की आज्ञा पाती हैं। किन्हीं विशेष बेगमों को एक मास पर्यन्त रहने की आज्ञा मिल जाती है।

सत्यशील रक्षकों के विद्यमान होते हुये भी सम्राट् अपनी सूक्ष्म दृष्टि नहीं हटाता है और अपना अनुभव काम में लाता है।

आईन १६।

यात्राओं में निवास-व्यवस्था।

पड़ावों के पूरे प्रबन्ध का हाल वर्णन करना कठिन है, परन्तु जो व्यवस्था और सजावट शिकारों और निकटवर्ती यात्राओं में दृष्टि गोचर होती है, उसका थोड़ा सा हाल लिखता हूँ और आदर्श उपस्थित करता हूँ।

गुलालबार—एक अद्भुत बड़ा घेरा होता है[1], सम्राट् ने उसका आविष्कार किया है। उसके दरवाज़े बहुत मज़बूत होते हैं और ताले कुंजी से खुलते तथा बन्द होते हैं। वह सौ वर्ग गज़ से कम नहीं होता। इसके पूर्वीय किनारे पर एक डेरा खड़ा करते हैं, जिसमें दो प्रवेश-द्वार और चौबन कोठे होते हैं। प्रत्येक की लम्बाई चौबीस गज़ और चौड़ाई १४ गज़ होती है उसके बीच में एक बड़ी **चोबींरावटी**[2] खड़ी करते हैं और उसके आस पास दूसरे **सरापर्दे**[3] लगा देते हैं। इस चोबींरावटी से मिला हुआ एक दुखंडा **चोबींकाख**[4] खड़ा किया जाता है, यह सम्राट् का उपासना-मन्दिर होता है। प्रातःकाल उस की छत पर बैठकर वह लोगों के अभिवादन (कोर्निश) स्वीकार करता है[5]। रनिवास से

१—इनमें से बहुतों का वर्णन फ़र्राशख़ाने (इक्कीसवें आईन) में भी है। २—लकड़ी की रावटी। ३—वे बड़े पर्दे जो आड़ करने के लिये ख़ेमों के इधर उधर दीवार के तौर पर लगाये जाते हैं। ४—काष्ट-भवन।

५—भारतवर्ष के शासकों में सम्राट् हर्षवर्द्धन के पड़ावों की व्यवस्था किसी हद तक अकबर से मिलती जुलती है। डा० राधाकुमुद मुकर्जी ने 'हर्ष', नामक अपनी पुस्तक में लिखा है :—सम्राट् (हर्षवर्द्धन) दौड़े में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्बन्ध रखने वाली महिलाएँ बिना आज्ञा उसके अन्दर नहीं जासकतीं। उसके बाहर, १० गज़ लम्बी ६ गज़ चौड़ी, २४ चोबीं रावटियाँ सुचारु रूप से खड़ी की जाती हैं, और हर एक क़नातों से अलग कर दी जाती है। श्रेष्ठ बेगमें इन्हीं में शयन करती हैं। कुछ और भी तंबू और ख़ेमे खड़े किये जाते हैं, जिनमें ख़ास लोग निवास करते हैं। इनको जर्बफ़्त, ज़रदोज़ और मख़मल के सायबानों से सजाते हैं।

चलित भवनों में ठहरता था। उसके ठहरने पर क़न्नौज में राज-सभा के लिए एक ऐसा ही प्रासाद निर्मित किया गया था। यह यात्रा-निवास भी कहलाता था, ऐसा ही एक भवन कजुघिर में बनाया गया था। ये झोंपड़ों के समान कटे हुये फूँस अथवा डालियों और शाखाओं से बनाये जाते थे, और सम्राट् के प्रस्थान करने पर आग लगाकर नष्ट कर दिये जाते थे। बाण ने अजिरवती नदी के तट पर मणितार शिविर का जो वृत्तान्त वर्णन किया है, उससे सम्राट् का ठाठ के साथ भ्रमण करना प्रकट होता है। वहाँ का राजकीय शिविर प्रसिद्ध अधीन राजाओं के अनेक शिविरों से—जो कि अपनी फ़ौजफाँटे के साथ उपस्थित थे—घिरा हुआ था। इसके अन्तर्गत चार विभिन्न प्रकार के सहन थे। चौथी कक्षा के एक डेरे में मोती के सदृश पाषाण-सिंहासन पर बैठकर पद्मराग मणि और नीलम की तिपाई पर पैर रखकर, सम्राट् लोगों को दर्शन देता था। शिविर के मार्ग भी उसी प्रकार सुशोभित और सज-धज के थे। राजद्वार गज वीथियों के कारण तमसाच्छन्न हो रहा था; एक स्थान पर घोड़े लहरों में ग़ोते लगाते हुये दृष्ट पड़ रहे थे। ऐसा मालूम होता था कि मानों के अपनी चंचलता के कारण आकाश की ओर को उछले हों। एक दूसरा स्थान ऊँटों की सेनाओं से भूरा हो रहा था। एक अन्य स्थान सफ़ेद छातों और चंवरों से श्वेत वर्ण हो रहा था। राज-शिविर के द्वार पर द्वारपाल थे, जिनका प्रधानाधिकारी पारियात्र था। यह सम्राट् का विशेष प्रिय पात्र था....। शिविर के भीतर एक अस्तबल था, जो सम्राट् के प्रिय घोड़ों से भरा हुआ था, उसमें राज्य का प्रसिद्ध हाथी दर्पशात भी था। इन चलित भवनों का महत्व सम्राट् के राजकीय महमानों के कारण और अधिक बढ़ गया था। आसाम के राजा कुमार ने उससे बंगाल के शिविर में भेंट की थी, उसके पायक २०,००० हाथियों और ३०,००० जहाज़ों पर आये थे....। हुआन चुआंग ने इन राजकीय यात्राओं के सम्बन्ध में लिखा है:— सम्राट् ने अपने समस्त राज्य का निरीक्षण जाजाकर किया, वह किसी स्थान पर अधिक समय तक नहीं ठहरा, किन्तु अपने रहने के लिए उसने पड़ावों पर अस्थायी निवास बनवा लिये। वर्षाऋतु के तीनमहीनों में वह बाहर नहीं गया। इस प्रकार की यात्रा में भी ५०० ब्राह्मणों और १००० बौद्ध भिक्षुओं को राजकीय अस्थायी निवासों से भोजन मिलता था।"

"इस प्रकार राजा अपने राज्य में सर्वोत्तम यात्री था और अपनी संवृद्धि में राज्य के निम्नलिखित स्थानों में उसने पड़ाव डाले थे—राजमहल, क़न्नौज, प्रयाग, मणितार (अवध), उड़ीसा,—इनके अतिरिक्त काश्मीर, वल्लभी, रीवा और गंजाम को एक आक्रमक की हैसियत से गया था (Harsh by Prof. Radhakumud mookerji, M. A., Ph. D., 1926, P. 86-88)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उससे लगा हुआ ६० गज़ लंबा चौड़ा **गलीमीसरा पर्दा** खड़ा करते हैं; इसमें कई ख़ेमे लगाये जाते हैं। ये डेरे **उर्दू बेगियों**[1] तथा अन्य पवित्र महिलाओं के विश्राम-स्थान होते हैं।

उसके बाहर ख़ास दौलतख़ाने तक १५० गज़ लंबा और १०० गज़ चौड़ा एक चित्ताकर्षक सहन सजाते हैं, उसको **महताबी** कहते हैं। उसके दोनों ओर पहले की तरह से क़नातें लगाते हैं, और हर दो गज़ के फ़ासले पर छे गज़ी चोबें खड़ी करते हैं, जो एक एक गज़ ज़मीन के अन्दर गड़ी रहती हैं। जिनके ऊपरी सिरों पर पीतल के कलश होते हैं। उनको भीतर और बाहर दो रस्सियों से कस देते हैं। पहरुए पूर्व-रीत्यनुसार पहरा देते हैं।

१—मूल में उर्दू बेगियां पाठ है। यह शब्द उर्दू और बेगियां से मिलकर बना है। तुर्की भाषा में उर्दू लश्कर, सेना या शिविर को कहते हैं। सन् १४०४ ई० में तैमूर ने इसका प्रयोग किया था। उस समय वह एक द्विभाषिया पर असन्तुष्ट होकर कहने लगा था—"तुम फ्रैंक राजदूतों के साथ नहीं थे, इस लिए मैं तुमको दंड दूंगा, और इस प्रकार भविष्य में सर्वदा के लिए कर्तव्य-पालन करने के निमित्त तुमको सन्नद्ध करूंगा। मैं हुक्म देता हूं कि तुम्हारे नथुने छेदे जांय और डोरी डाली जाय और दंड स्वरूप तुम सारी उर्दू (सेना) में घुमाये जाओ (Clavijo in Hobson-Jobson, P. 640,1903)। बाबर के भारतवर्ष में आने पर यह शब्द राजकीय-निवास के लिये व्यव्हृत होने लगा था। उस समय राज-निकेतन को उर्दू-ए-मुअल्ला (श्रेष्ठ शिविर) कहते थे। दरबार और शिविर में जो मिश्रभाषा बोली जाती थी वह ज़बाने-उर्दू कहलाती थी। पर उस समय वह विकसित नहीं हो सकी थी। अकबर के राजत्व-काल में उर्दू शब्द केवल सेना या शिविर के अर्थ में ही प्रयुक्त होता रहा। उर्दू कहने से उर्दू भाषा नहीं समझी जाती थी। अबुलफ़ज़ल ने उर्दू भाषा का आईने-अकबरी में कहीं उल्लेख नहीं किया है। इसके विरुद्ध हिन्दी भाषा के लिये हिन्दी शब्द अनेक स्थलों पर प्रयोग किया है। शाहजहां के शासन काल में उर्दू शब्द से उर्दूभाषा समझी जाने लगी। उर्दू उस समय बाज़ारू भाषा थी। पीछे से इसने साहित्य का रूप धारण किया और इस समय (१९३५ ई०) इसके गद्य और पद्य दोनों उत्कृष्ट माने जाते हैं। आजकल उर्दू कहने से अधिकतर लोग उर्दू भाषा ही समझते हैं, सेना या शिविर नहीं। पर हाँ, पेशावर की हद पर आज कल भी उर्दू शब्द से रणक्षेत्र की सेना का पड़ाव, छावनी, कैम्प या शिविर समझा जाता है। बेगशब्द भी तुर्की भाषा का है। इसका अर्थ स्वामी और सर्दार होता है। बेगम शब्द इसी का स्त्रीलिङ्ग है। बेगी इसी का रूपान्तर है। उर्दू-बेगियों से महिला सैनिकों अथवा शस्त्रधारी स्त्रियों का तात्पर्य है। हिन्दी में किसी किसी लेखक ने इन्ही उर्दू-बेगियों को उर्दू-बेगिनियाँ लिखा है। इन्हीं स्त्रियों के समान पहरेदारों में एक और स्त्री-दल था, जो कलमाकनी कहलाता था, इनको विवाह करने की आज्ञा नहीं होती थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस आनन्द प्रद आँगन के बीच में एक चबूतरा[1] बनाते हैं; जिस पर चार चौबों से नमगीरा[2] तान देते हैं। सम्राट् सायङ्काल वहाँ पर बैठता है। विशेष व्यक्तियों के अतिरिक्त और कोई वहाँ नहीं जाने पाता। गुलालबार से मिला हुआ एक घेरा वृत्ताकार बनाते हैं, जिसमें बारह हिस्से होते हैं, जिनमें से प्रत्येक ३० गज़ का होता है। उसके दरवाज़े महतावी की ओर खुले रहते हैं। उसमें एक दस गज़ी चोबीं रावटी और चालीस भागों का **ज़मीदोज़** (ख़ेमा) सजाते हैं। उस पर बारह बारह गज़ के बारह शामियाने तान देते हैं। और कुछ क़नातें लगाकर उनको एक दूसरे से पृथक् कर देते हैं। इस एकांत-स्थान को **इबच्कीख़ाना**[3] कहते हैं। हर निवास स्थान में उत्तम प्रकार का एक **सेहतख़ाना** तैयार करते हैं। सम्राट् ने तहारतख़ाने (पायख़ाना) का नाम सेहतख़ाना रक्खा है। उसके समीप १५० गज़ लंबा चौड़ा एक गलीमी सरापर्दा खड़ा करते हैं। इसमें ३६ वर्ग गज़ वाली १६ कोठरियाँ होती हैं। इसे भी पूर्वोक्तरीति से चोबों और कलशों से अलंकृत करते हैं। उसके बीच में एक हज़ार फ़र्राश बुज़ुर्ग बारगाह बनाते हैं उसमें ७२ कमरे होते हैं, और १५ गज़ चौड़ा खुलाव रहता है। उस पर ख़ेमे की तरह एक **क़लंदरी** तान देते हैं, जो मोमजामे या किसी हल्की चीज़ की बनी हुई होती है। वह वर्षा और गरमी में सुख देती है। उसके आस पास चारों ओर बारह बारह गज़ के ५० शामियाने लगे रहते हैं। इस दौलतख़ानाख़ास[4] में भी दरवाज़े और ताले लगे होते हैं। बड़े बड़े अमीर और सेना के उच्च अधिकारियों को बख़्शी[5] हुक्म लेकर उसमें आने देते हैं। हर महीने के आरम्भ में, सम्राट् के सम्मुख उपस्थित होने के लिए नई आज्ञा प्राप्त करनी पड़ती है। इस स्थान को बाहर भीतर बेलबूंटेदार फ़र्शों से सजाते हैं, जिससे एक विचित्र फुलवाड़ी खिल जाती है। उसके बाहर ३५० गज़ की दूरी तक रस्सियाँ खिंची होती हैं, और वे हर तीन गज़ के फ़ासले पर एक चोब से बाँध दी जाती हैं। उसके आसपास मनुष्य रखवाली करते हैं। यही **दीवाने-आम** होता है। इसके चारों ओर पूर्वोक्तरीति से

१—फ़तहपुर सीकरी के भग्नावशेषों में अब भी इसका कुछ दृश्य देखा जा सकता है (Ain-i-Akbari, translated by Blochmann, Vol. 1, P. 46, note, 1873)।

२—वह कपड़ा जो सायबान के रूप में पलंग आदि के ऊपर ताना जाता है।

३—गुप्त-भवन।

४—निवासस्थान चित्र में देखिये।

५—सेना को वेतन बाँटनेवाले-सेना-नायक भी बख़्शी हुआ करते थे, क्योंकि जो भूमि उनको अपनी सेना का वेतन चुकाने के लिए दी जाती थी उसकी वे तहसील वसूल करते थे (Blochmann's, translation of Ain-i-Akbari, P. 47, note)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहरेदार चौकसी करते हैं। इस आनन्द-निकेतन के अंतिम छोर पर, ६० गज़ वाली १२ रस्सियों की दूरी पर **नक़्क़ारख़ाना** बनाया जाता है और उस मैदान के बीच में **आकाश-दिया** जलाया जाता है।

दौड़े में, पूर्वलिखित सामान में से कुछ साथ लेचलते हैं। फ़र्तीले फ़र्राश उन ख़ेमों में से एक को उस स्थान पर खड़ा करते हैं, जिसको मीरमंज़िल पसन्द करते हैं। दूसरे सामान को आगे लेजाकर लगाते हैं, और सम्राट् के शुभागमन की प्रतीक्षा करते हैं। १०० हाथी, ५०० ऊँट, ४०० छकड़े और १०० कहार इन ख़ेमों की बारबरदारी करते हैं। ५०० सवार, मंसबदार और अहदी इत्यादि तथा ईरानी, तूरानी और हिन्दुस्तानी १००० फ़र्राश, ५०० बेलदार, १०० सक़्क़े[1], ५० बढ़ई, ख़ेमे सीनेवाले और मशालची, ३० मोची, और १५० मेहतर सदा सेवा में संलग्न रहते हैं। प्यादे का मासिक वेतन २४० दाम से १३० दाम तक है।

आईन १७।

सेना का पड़ाव[2]।

सम्राट् अपनी सेनाओं को एकत्र होने की बहुत कम आज्ञा देता है। अधिकतर विजयिनी सेना, जिस ओर सम्राट्, चढ़ाई करता है उसी तरफ़ इकट्ठी होजाती है। परन्तु वह अनेक सेनाओं को प्रति पार्श्व प्रदेश के कार्यों में लगाकर भेज देता है, और साथ जाने की आज्ञा नहीं देता। मनुष्यों की अत्यधिक भीड़ और सेनाओं के बहुत बड़े जमघट के कारण, अनेक दिन बीत जाते हैं पर सिपाही एक दूसरे का डेरा नहीं ढूँढ़ पाते, फिर परदेशी की तो चर्चा ही क्या! सम्राट् ने अपनी बुद्धि के प्रकाश से इस सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रशंसनीय मार्ग खोजा है, जिससे जन समूह सुख पाते हैं। एक रम्य भू-भाग पर, जिसकी लंबाई १५३० गज़ होती है, पूर्व लेखानुसार रनिवास, दरबारे-आम, दरबारे-ख़ास और नक़्क़ारख़ाना बनाया जाता है। उसके दाहिने, बायें और पीछे की ओर ३०० गज़ खुला मैदान छोड़ दिया जाता है। चौकीदारों को छोड़कर, और कोई आदमी उसमें नहीं जा सकता। इसके बीच में १०० गज़ की दूरी पर केन्द्र स्थल में

१—पानी खींचने वाले, भिश्ती। | २—शब्दार्थ "सेना के उतरने का आईन।"

सेना का पड़ाव

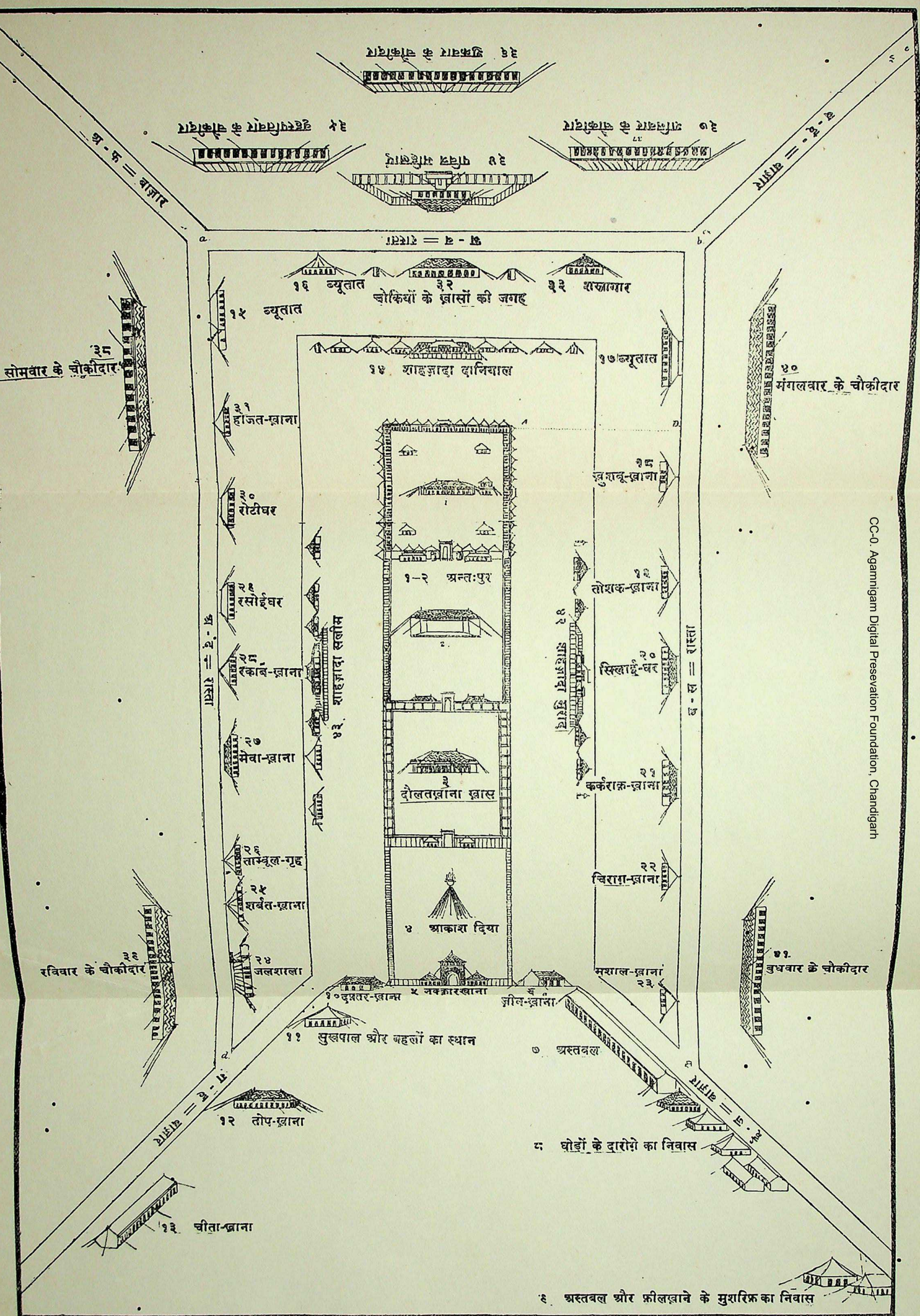

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दीप-प्रदीपन

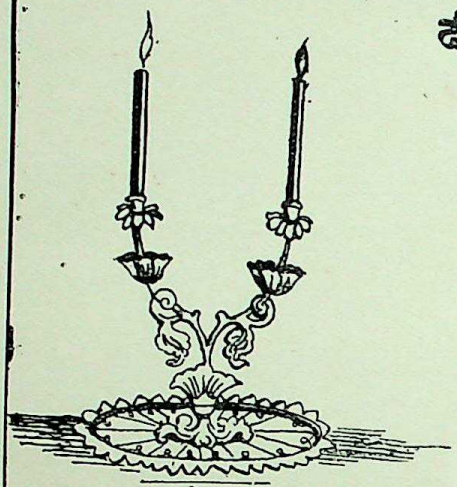

१ दोशाख़ा

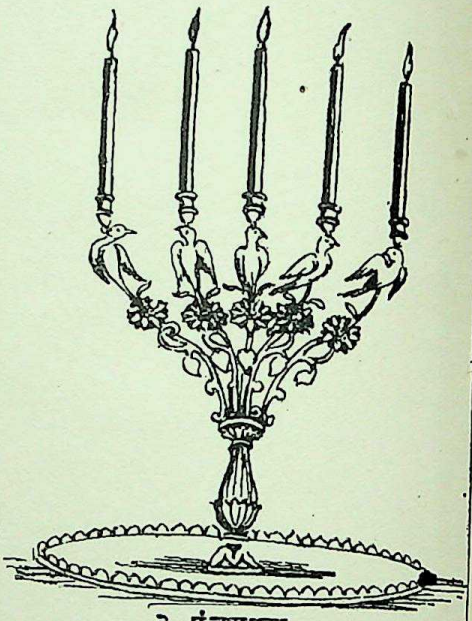

२ पंजशाख़ा

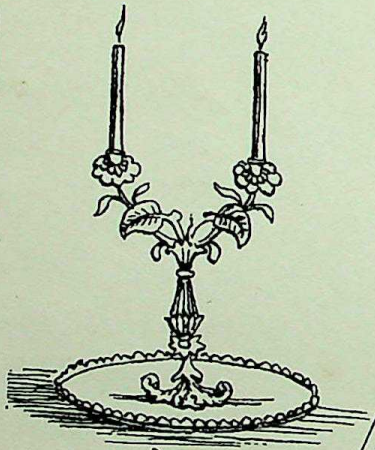

५ दोशाख़ा

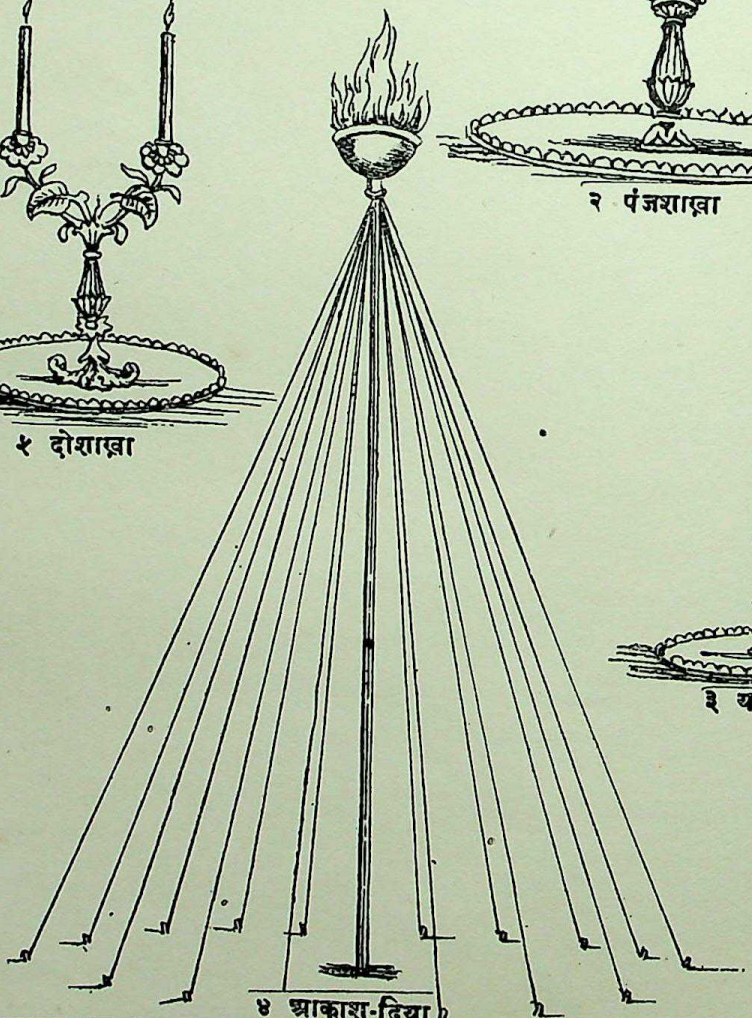

४ आकाश-दिया

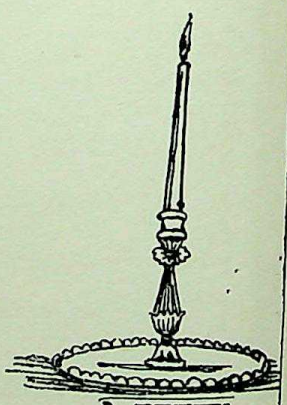

३ यकशाख़ा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मरियममकानी[१], **गुलबदन बेगम**[२], और अन्य पवित्र महिलाएँ तथा शाहज़ादा **दानियाल**[३] ठहरते हैं। दाहिनी ओर शाहज़ादा **सुलतानसलीम**[४] उतरते हैं, और बाईं ओर शाहज़ादा **शाहमुराद**[५]। इन ख़ेमों के पीछे कुछ दूरी पर कार्यालय (दफ़्तर और कारख़ाने) सुव्यवस्थित होते हैं। उनके पीछे ३० गज़ छोड़कर हर कोने में बाज़ार सजता है। अमीर लोग, अपने अपने पदों के अनुसार चारों ओर ठहरते हैं। बृहस्पति, शुक्र और शनिवार के पहरेदार मध्यस्थल में, रविवार और सोमवार के दाहिनी ओर, मङ्गल और बुधवार के बाईं तरफ़ अपने अपने दर्जे के अनुसार रहते हैं।

आईन १८।

दीप-प्रदीपन।

बुद्धिमान् सम्राट् ज्योति की उपासना को ईश्वर की आराधना एवं परमात्मा की वन्दना समझता है। अन्ध-हृदय मूर्ख उसे ईश-विस्मरण और अग्नि-पूजन ख़्याल करता है। पर सूक्ष्मदर्शी ज्ञानी इसे बहुत अच्छी तरह से जानता है कि जब शिष्टों की वाह्य-पूजा योग्यता का लक्षण माना जाता है और उसका न करना अशुभ समझा जाता है, तो यह उत्कृष्ट और श्रेष्ठतम तत्व (अग्नि)—जो मनुष्य-मात्र के जीवन-अस्तित्व और स्थिरता का साधन है—कैसे आराधनीय नहीं है। और ऐसे विषय में अनिष्ट विचारों को क्यों प्रविष्ट होने दिया जाय। शेख़-शरफ़ुद्दीन मुनैरी[६] ने क्या ही अच्छा कहा है:—"जिस किसी का सूर्य अस्त होजाय, यदि वह दीपक से अनुकूलता न करे, तो क्या करे।" ज्वाला उसी प्रधान ईश्वरीय स्रोत (सूर्य) की आभा है, और उसी पवित्र मणि (सूर्य) का चिह्न है।

१—यह अकबर की माता की उपाधि थी। इसका असली नाम हमीदाबानो बेगम था।

२—गुलबदन बेगम अकबर की बुआ का नाम था, अर्थात् वह हुमायूँ की बहिन थी और ख़िज्र ख़्वाजा की पत्नी थी।

३—अकबर का छोटा पुत्र, जो उसको अधिक प्रिय था।

४—अकबर का ज्येष्ठ पुत्र, जो पीछे से जहाँगीर बादशाह के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

५—शाह मुराद अकबर का मंझला पुत्र था।

६—मुनैर बिहार में एक क़स्बा है। शेख़ शरफ़ुद्दीन वहीं का प्रसिद्ध मुसलमान फ़क़ीर था। इसकी फ़ारसी की कृतियाँ एशियाटिक सोसायिटी बंगाल की लायब्रेरी में मौजूद हैं। इसकी मृत्यु पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में हुई थी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यदि अग्नि और सूर्य न होते तो भोजन और औषधियाँ क्योंकर उत्पन्न होतीं, और नेत्रों की चाक्षुष शक्ति किस काम आती। इस ऐश्वर्य दीप की अग्नि आकाशीय अग्नि है।

दोपहर को भास्कर के ऊपर चढ़ने पर, जब प्रकाश संसार में फैल जाता है, एक सफ़ेद चमकदार गोल पत्थर जिसको हिन्दी में **सूरजक्रान्त**[१] कहते हैं, उसको सूर्य के सामने रखते हैं। और कुछ रुई उसके समीप रख देते हैं। पत्थर के द्वारा गर्मी से उसमें आग लगजाती है। वह आसमानी आग कार्य कुशल व्यक्तियों को सौंप दीजाती है। चिराग़ची मशालची इसी आग से अपना काम निकालते हैं। जब वर्ष प्रसन्नतापूर्वक समाप्त होजाता है तो फिर उसी रीति से नई आग लेलेते हैं। वह पात्र, जिसमें इस अग्नि को सुरक्षित रखते हैं, **अग्निगिर** अथत् "अंगीठी" कहलाता है।

एक और श्वेत रंग का चमकदार पाषाण है, जिसको **चन्द्रक्रान्त**[२] कहते हैं। जब उसको चन्द्रमा के सामने रखते हैं, पानी टपकने लगता है।

जब एक घड़ी दिन शेष रहता है, सम्राट् यदि सवार होता है, तो उतर पड़ता है, और यदि सोता होता है, तो जगाया जाता है। वह अपने राजसी ठाठ को उतार कर एक ओर रख देता है और अपने वाह्य (आकृति) को अन्तःकरण के अनुरूप बनाता है। जब विश्वभास्कर अस्ताचल को जाते हैं, सौभाग्यवान् सेवक सोने और चांदी के बारह दीपदानों में कपूर की बत्तियां जलाकर सम्राट् के समक्ष लाते हैं, और एक उत्तम सुरीला गायक, बत्ती हाथ में लेकर ईश-बन्दना करता है, और अनेक प्रकार से गाता है। अन्त में, सदा राजा की बढ़ती बनी रहने के लिए प्रार्थना करता है, और इसी पर अपना कथन समाप्त करता है। सम्राट् विनय और प्रार्थना को बहुत महत्व देता है, और नवीन प्रकाश की प्राप्ति के लिए याचना करता है।

शमादानों और फ़ानूसों के रूप रंग और भेदों की प्रशंसा करना असंभव है और गुणियों के कृत्यों का वर्णन लेखनी की शक्ति से बाहर है। कुछ दसमनी बनाये गये हैं और कुछ इससे भी अधिक भारी, साथ ही वे अनेक आकृतियों से विभूषित किये गये हैं। कुछ यकशाख़ा हैं, कुछ दोशाख़ा और कुछ इससे भी अधिक शाख़ा वाले हैं, वे आभ्यान्तरिक नेत्रों का भी प्रकाश बढ़ाने वाले हैं। सम्राट् ने एक फ़ानूस[३] ईजाद किया है, जिसकी उँचाई एक इलाही गज़ है। उसके ऊपरी

१—शुद्ध शब्द सूर्यकांत है। यह एक प्रकार का स्फटिक या बिल्लौर है, जिसको यदि सूर्य के सामने रक्खा जाय तो आग निकलने लगती है।

२—शुद्धरूप चन्द्रकांत है। इसे चन्द्रमणि भी कहते हैं। प्राचीन ग्रंथों में इसका उल्लेख है। परन्तु आजकल यह दुष्प्राप्य सा है।

३—फ़ानूस अरबी भाषा का शब्द है। इसका अर्थ चुग़लख़ोर है। फ़ानूस से रोशनी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

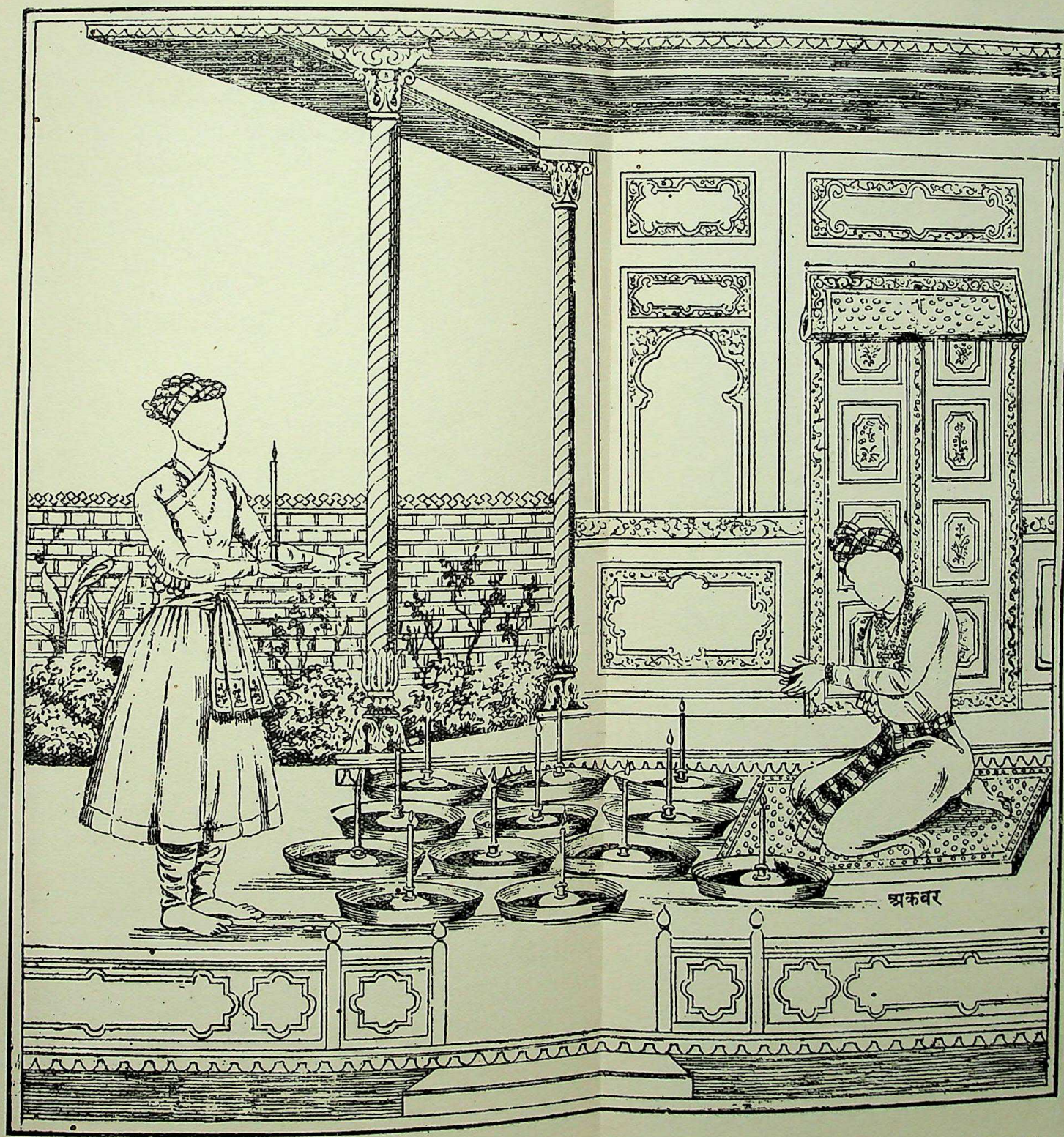

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिरे पर पाँच फ़ानूस लगाये गये हैं। इनमें से हर एक पर एक जानवर की आकृति बनीहुई है। इसमें कुछ, काफ़ूरी बत्तियाँ तीन गज़ी तथा इससे भी ज्यादा ऊँची लगाई जाती हैं, और सीढ़ी से चढ़कर उनका गुल काटा जाता है। अन्दर और बाहर रोशनी की ज्यादती के लिए मशालें भी जलाते हैं। चंद्रमास की पहली दूसरी और तीसरी रात को, जबकि प्रकाश बहुत कम होता है, आठ फ़तीले (पलीते) जलाते हैं। चौथी से दसवीं रात तक एक एक कम करते जाते हैं। यहाँ तक कि दसवीं को जब ज्योत्स्ना का आधिक्य होता है, एक ही पलीता जलाने पर सन्तोष करते हैं। पन्द्रहवीं रात्रि तक दसवीं की तरह एक ही बत्ती जलाते रहते हैं, और सोल्हवीं से उन्नीसवीं तक एक एक बत्ती बढ़ाते जाते हैं। बीसवीं को उन्नीसवीं की तरह रोशनी होती है। इक्कीसवीं और बाइसवीं को एक एक बढ़ाते हैं। तेइसवीं को बाइसवों की भाँति प्रकाश का प्रबन्ध होता है। चौबीसवीं रात्रि से अन्तिम निशा तक आठ बत्तियाँ जलाते हैं। हर फ़तीले में एक सेर तेल और आधा सेर रुई इस्तेमाल करते हैं। किसी किसी जगह पर चर्बीदान जलाते हैं और तेल की बत्तियों के स्थान पर चर्बी की बत्तियाँ जलाते हैं। फ़तीले की छोटाई-बड़ाई पर तेल और रुई के जलने का परिमाण निर्भर है।

इसके अतिरिक्त सम्राट् ने दरबार खोजनेवालों के पथप्रदर्शन के लिए एक दीपक जलवाया है। कर्मचारी ४० गज़ से ज्यादा ऊँचा एक खंभा खड़ा करते हैं और उसको सोलह रस्सियों से कस देते हैं। उसके ऊपर एक बड़ा फ़ानूस जलाते हैं, उसे **आकाश-दिया** कहते हैं। वह बहुत दूर से उजाला देता है। ढूंढ़ने वाले उसके द्वारा दरबार तक आजाते हैं, और फिर अपने परिचित स्थान पर पहुँच जाते हैं। इस दिये के (प्रचार के) पहले, लोग यात्राओं में कष्ट उठाते थे और निश्चित मार्ग नहीं पाते थे।

इस कारख़ाने में बहुत से मंसबदार, अहदी और सैनिक सेवा करते हैं। प्यादे का मासिक वेतन २४०० दाम से अधिक और ८० दाम से कम नहीं है।

बाहर को चली जाती है, इससे इसका यह नाम पड़ गया। यह पिंजड़े के आकार का एक गोल या अठपहल अथवा चौकोर मंडप सा होता था। यह काग़ज़ या पतले कपड़े से मढ़ा जाता था। इसके अन्दर चिराग़दान पर पहले चिराग़ रक्खा जाता था, फिर यह फ़र्श पर रख दिया जाता था। बड़ी क़ंदील को भी फ़ानूस कहते हैं। शीशे के मृदंग, कमल तथा ग्लास आदि आकृतियों के पात्रों को भी—जिनमें बत्तियाँ जलाई जाती हैं—फ़ानूस कहते हैं। आजकल बड़े बड़े नगरों में फ़ानूस के स्थान में बिजली की बत्तियां प्रयुक्त होती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आईन १६।

राज्य के वैभव की सामग्री।

राज्य के तंबू का शम्सा[1] ईश्वरीय तेज है, जो मानवीय सामर्थ्योचित-प्रयत्नों के बिना दैवी शक्ति के द्वारा राजाओं को प्राप्त होता है। बुद्धिमान् शासक ऊपरी बनाव चुनाव में चित्त लगाते हैं और उसको ईश्वरीय प्रकाश का मुखोद्घाटन करना ख्याल करते हैं। उसका कुछ हाल लिखता हूँ और अपने समय की व्यवस्था चित्रित करता हूँ।

१. **औरंग**—(सिंहासन) नाना प्रकार की आकृतियों के बनाये जाते हैं। उन पर मूल्यवान् मणियों तथा सोने और चांदी आदि का जड़ाऊ काम होता है।

२. **चत्र**—(छत्र) बहुमूल्य रत्नों से जड़ा जाता है। वे सात से कम नहीं होते।

३. **सायबान**—यह अंडाकार बना होता है, एक गज़ लंबा। उसका दस्ता छत्र की तरह का होता है, और उस पर ज़रबफ़्त आदि लपेट देते हैं तथा उत्तम मणिमुक्ताओं से उसे जड़ते हैं। फ़ुर्तीले अनुचर उसे लिए रहते हैं, और सूर्य की धूप में लगाते हैं। उसको **आफ़ताब-गीर** भी कहते हैं।

४. **कौकबा**—कुछएक दरबार के सामने लटकाए जाते हैं।

ये चारों चीज़ें वर्तमान सम्राट् को छोड़कर और किसी का वैभव नहीं बढ़ाती हैं, अर्थात् और कोई इन्हें धारण नहीं कर सकता।

५. **अलम**—(झंडा) सवारी के समय क़ोर[2] के साथ पांच से कम नहीं होते हैं। सदा सुक़रलात के ग़िलाफ़ों में रखे जाते हैं। उत्सवों और युद्ध-क्षेत्रों में वे निकालकर फहराये जाते हैं।

६. **चत्र-तौक़**—एक प्रकार का अलम ही है, परन्तु उससे छोटा होता है। उस पर सुरागाय की पूँछ के गुच्छे[3] लगाते हैं।

१—शम्सा—उस रोशनदान को कहते हैं, जिससे प्रकाश आवे। गुम्बजों तथा कलशों पर के लट्टुओं को भी शम्सा कहते हैं। पर यहां पर शम्सा से अभिप्राय उस सूर्य के चित्र से है, जो प्रासादों के फाटकों और दीवारों पर लगाया जाता था, और वह रात्रि में झिलमिलाता था।

२—यह तुर्की भाषा का शब्द है। झंडों, शस्त्रों, एवं अन्य वैभव-सामग्री के समूह को क़ोर कहते हैं। जहां सम्राट् जाता था, क़ोर भी साथ जाता था।

३—चँवर।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज्य के वैभव की सामग्री

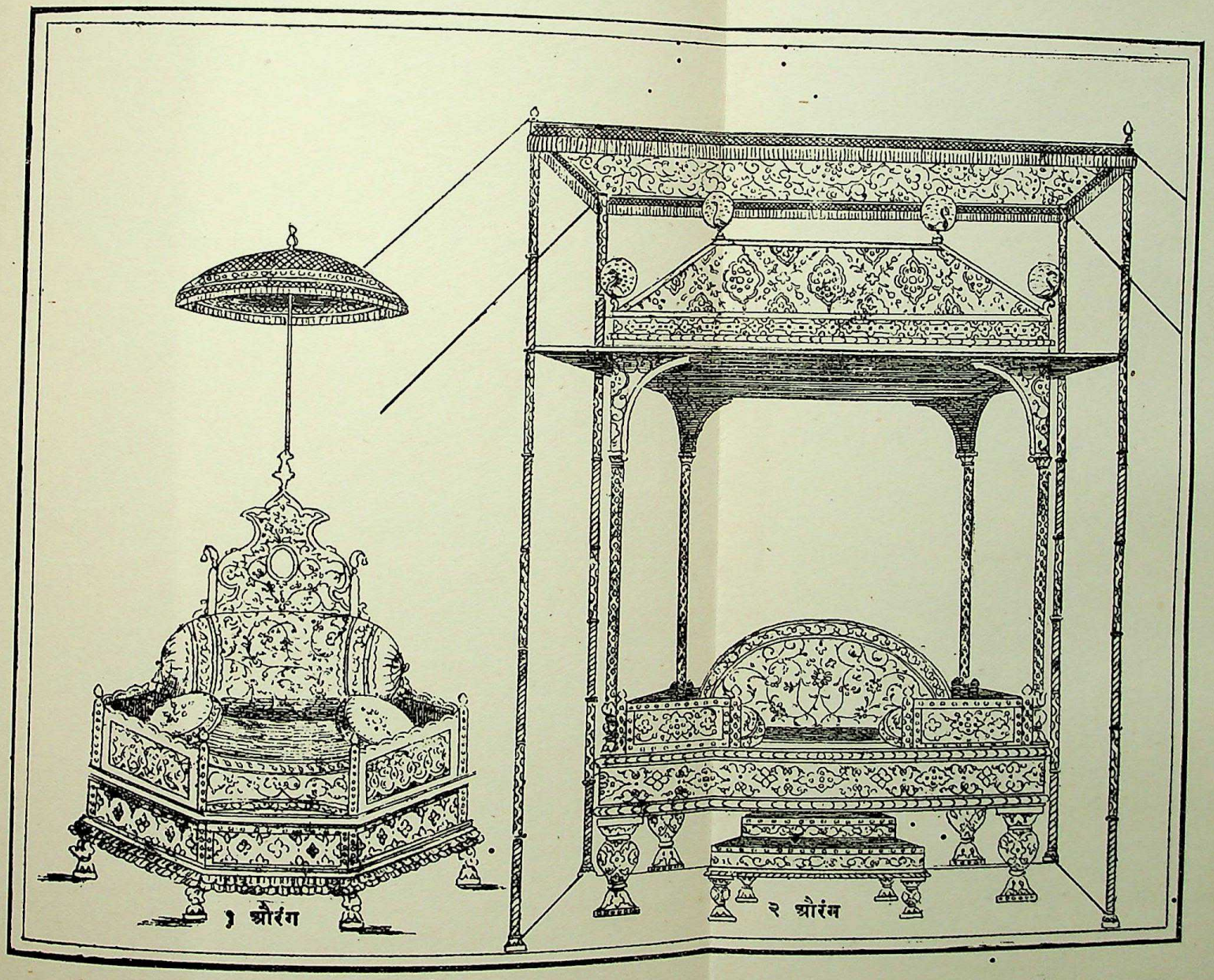

१ औरंग

२ औरंग

पृष्ठ १०२–१०४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज्य के वैभव की सामग्री

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

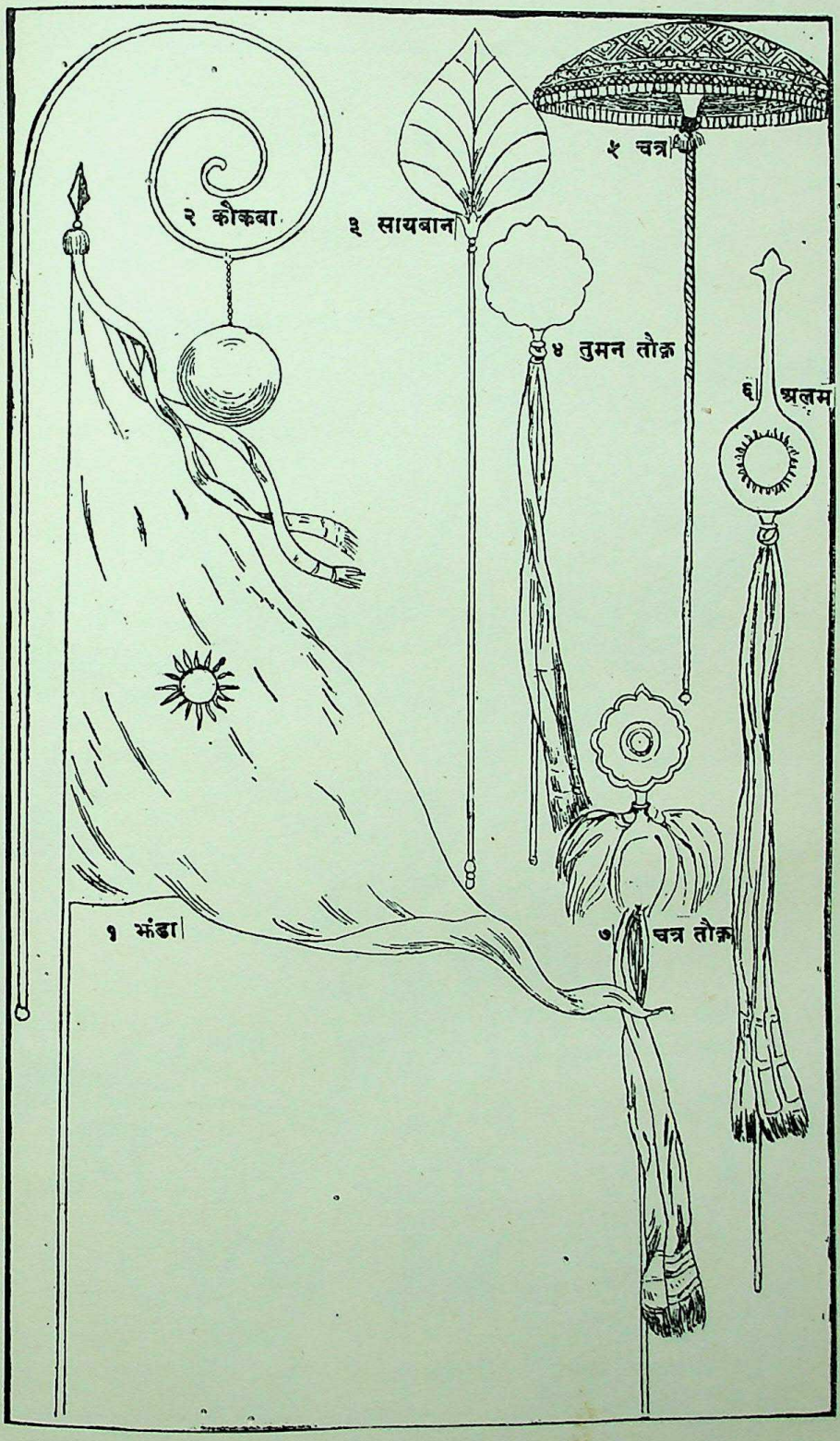

पृष्ठ १०२–१०४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज्य के वैभव की सामग्री

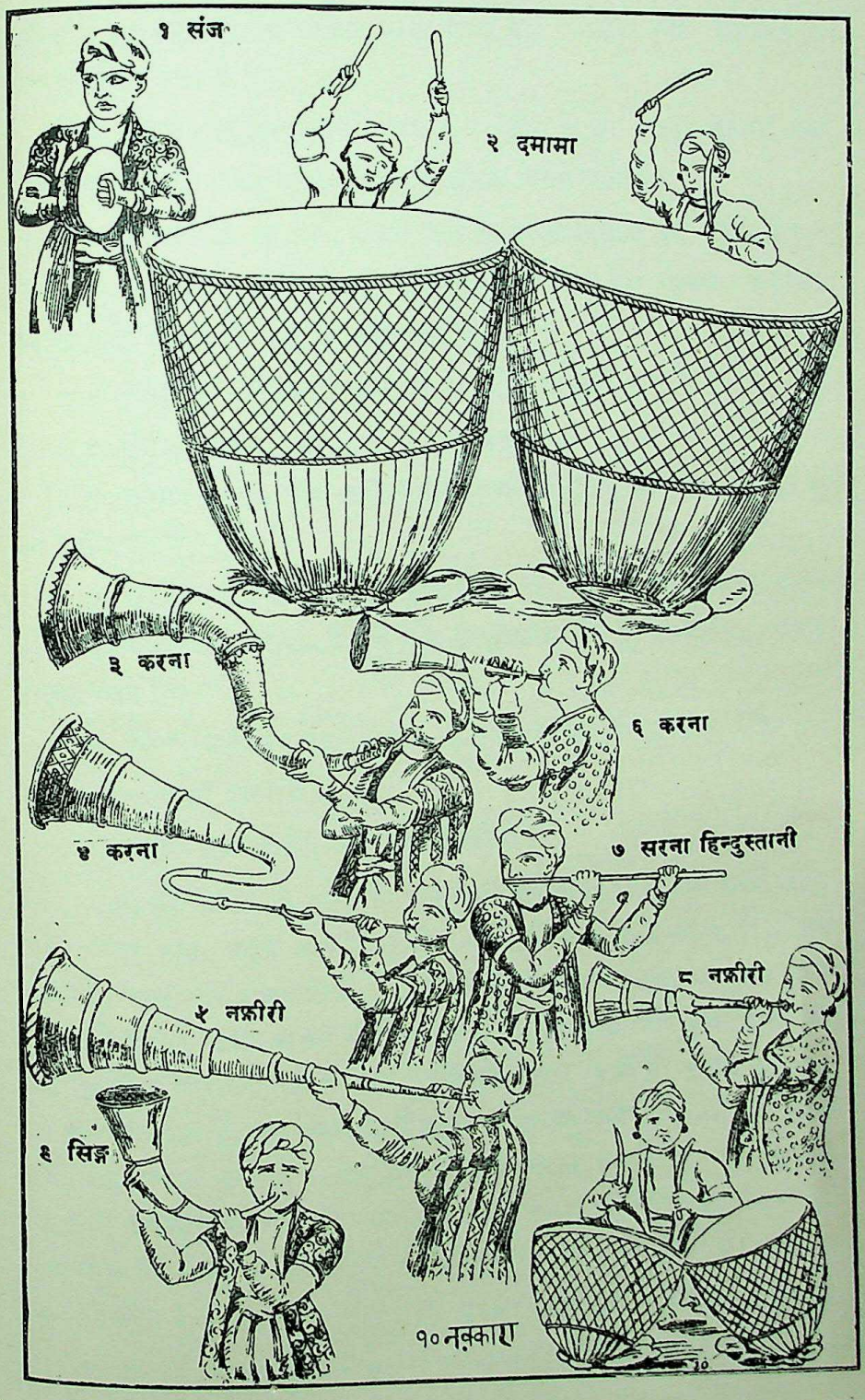

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

७. **तुमन-तौक़**—चत्र तौक़ के सदृश होता है, परन्तु उससे कुछ लम्बा। अलमों में इन दोनों का पद उच्चतर माना जाता है। अमीरों तथा शाहज़ादों के लिए चत्रतौक़ नियत है।

८. **झंडा**—यह हिन्दुस्तानी पताका है। क़ोर में हर प्रकार का एक झंडा होना अनिवार्य है। बड़े अवसरों पर वे अधिक बनाये जाते हैं।

नक्क़ारख़ाने में, जो बाजे बजाये जाते हैं, उनका विवरण इस प्रकार हैं :—

१. **कुवर्गा**—अरबी भाषा में इसे **दमामा** कहते हैं। इनके न्यूनाधिक अठारह जोड़े हैं, जो बड़े ज़ोर के साथ बजते हैं।

२. **नक्क़ारा**—(नगाड़ा) कमोबेश २० जोड़े बजते हैं।

३. **दुहुल**—(ढोल) कितनों में से चार बजते हैं।

४. **करना**—सोने, चाँदी और पीतल इत्यादि के बनाये जाते हैं, और चार से कम नहीं बजते हैं।

५. **सरना**—ये ईरानी और हिन्दुस्तानी हैं, और एक साथ नौ तक बजते हैं।

६. **नफ़ीर**—ये ईरानी, फ़िरंगी और हिन्दुस्तानी होते हैं, उनमें से हर प्रकार के कुछ बजते हैं।

७. **सिंग**—इसे तांबे का, गाय के सींग की शक्ल का बनाते हैं, और एक साथ दो का उपयोग करते हैं।

८. **संज**—(झांझ) तीन जोड़े बजाये जाते हैं।

पहले जब चार घड़ी रात और चार घड़ी दिन रहता था, नौबत बजाई जाती थी। परन्तु अब, पहले आधी रात को, जब सूर्य ऊपर चढ़ने लगता है, नौबत बजती है; और फिर प्रातःकाल में। सूर्योदय के एक घड़ी पहले, जादू सा काम करने वाले सुरीले गायक सरना बजाकर सबको सचेत करते और सोने वालों को जगा देते हैं। फिर एक घड़ी के बाद, प्रारम्भिक बादन करते हैं; कुवर्गा को कुछ ऊँचे स्वर में बजाते हैं, और नक्क़ारे को छोड़ कर करना, नफ़ीर तथा वैभव के अन्य वाद्यों का उपयोग करते हैं। कुछ देर बाद फिर सरना बजाते हैं, और आनन्द प्रदायिनी नफ़ीरियों से ताल देते रहते हैं। जब एक घड़ी और बीत जाती है, नक्क़ारा बजाने लगते हैं, और सभी गुणी कर्मचारी बड़े उच्च स्वर से राज्य का जय घोष करते हैं। फिर सात चीजें आनन्द बढ़ाती हैं। १, **मुरसली**—यह एक ध्वनि या गति है, जो **मुर्सिल** से आरंभ की जाती है। फिर बर्दाश्त पर आजाते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं, इसकी भी कई गतियां हैं। इस अवसर पर सभी गुणी बाजे बजाने लगते हैं। इसके बाद धीमे पड़ जाते हैं और ऊँचे स्वर से नीचे स्वर में लाते हैं। २, चार ताल स्वरों का गाना, अर्थात् **इख़लाती, इब्तिदाई, शीराज़ी, क़लन्दरी निगर क़तरा**[1] **या नख़ुद क़तरा;** ये एक घड़ी भर आमोद बढ़ाते हैं। ३, तीसरे नए और पुराने ख़्वारज्मियों की आलापें; सम्राट् ने दो सौ से अधिक निकाली हैं। छोटे बड़े सभी इनसे आनन्दमग्न होते हैं; विषेष कर **जलालशाही, महामीर, करकत** और **नौरीज़ी** से। ४, **शादियाने** का जोश पर रखना। ५, **बमियाने-दौर** की गति का बजाना। ६, **अज़फ़र** की ताल और गति पर ध्यान रखना। यह गति 'राहे-बाला' कहलाती है और पीछे से नीचे स्वर में लाई जाती है। ७, **मुर्सिल ख़्वारज़मी** बजाकर, मुर्सिली की ओर झुक पड़ते हैं। फिर उसे बन्द करके मंगलात्मक आशीर्वाद के साथ समाप्त करते हैं। इसके बाद नौबत नीचे कर देते हैं और चित्तापहारक वाक्य एवं प्राणप्रवर्द्धक कविताएं पढ़ते हैं; इस प्रकार एक घड़ी और मनोरंजन रहता है। इसके पश्चात् सरना वाले बजाने में जादू का सा काम दिखाते हैं, और एक घड़ी और आनन्द में व्यतीत होती है। इस प्रकार यह मनोरंजक काम समाप्त होता है।

सम्राट् को संगीत-विद्या में ऐसा ज्ञान है, जैसा कि इस कला के विशेषज्ञों को भी नहीं है। उसी प्रकार, वह उसके व्यावहारिक साधनों पर भी अधिकार रखता है, विशेषकर नक्क़ारा बजाने में।

इस विभाग में मंसबदार, अहदी और दूसरे सैनिक सेवा में संलग्न हैं। प्यादों का मासिक वेतन ३४० दाम से अधिक और ७४ दाम से कम नहीं है।

आईन २०

शाही छाप।

राज्य के तीनों स्तम्भों[2] की आज्ञाएं उस (शाही मोहर) से जारी होती हैं; इतना ही नहीं वरन् काम काज में हर समुदाय के लिए वह अनिवार्य है। शासन के आरम्भ में मौलाना मक़सूद मोहरकन, मोहर बनाने का काम करते थे। उन्होंने पहले एक गोल फ़ौलादी टुकड़े के समतल पर, सम्राट् का तथा तैमूरलंग

१—इनमें से अनेक अलापें अस्पष्ट हैं। २—शाला या गृह, सेना और साम्राज्य विभाग।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तक उसके प्रतिष्ठित पुरुखों के नाम रिक़ा ख़त में खोदे; फिर केवल सम्राट् का नाम नस्तालीक़ ख़त में लिखा। न्याय सम्बन्धी कार्यों के लिए महराबी शक्ल की मोहर[१] बनाई गई, और उसमें सम्राट् के नाम के चारों ओर यह शेर खोद दिया गया :—

रास्ती मूजिबे रज़ाए ख़ुदास्त,
कस न दीदम कि गुम शुद अज़ रहे-रास्त।

अर्थात् सत्यता ईश्वर की प्रसन्नता का साधन है; मैंने किसी को नहीं देखा, जो सत्यमार्ग से भटका हो।

तमकीन ने दूसरे नम्बर की मोहर को नए ढंग से बनाया। उसके बाद मौलाना अलीअहमद देहलवी ने दोनों पर सुधारात्मक अक्षर लिखने में जादूगरी दिखलाई। उनमें से छोटी गोल छाप **उज़ूक**[२] कहलाती है, और वह फ़रमाने सब्ती[३] पर लगाई जाती है। बड़ी मोहर, जिसमें सम्राट् के पुरुखों के नाम अंकित हैं, पहले केवल विदेशी राजाओं के पत्र-व्यवहार पर लगाये जाने के लिए नियत थी, पर आज वह दोनों कामों के लिए इस्तेमाल की जाती है। दूसरे हुक्मों के लिए एक और चौकोर मोहर रहती है, जिस पर "अल्लाहो अकबर जल्ल जलालहू" खुदा हुआ है। राजमहल के उपयोग के लिए एक ख़ास मोहर मनोनीत की गई है। दूसरे फ़रमानों पर शाही छाप लगाने के लिए एक पृथक् मोहर बनाई गई है, जिस पर कई प्रकार की लिखावट है।

मोहर खोदने वालों में से कुछ का हाल लिखा जाता है[४] :—

१, **मौलाना मक़सूद हिरवी**[५]—यह हुमायूँ के सेवकों में से था। यह

१—चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में भी राजकीय मुद्रा का चलन था। कौटिल्य-अर्थशास्त्र में लिखा है :—"अन्दर आने वाले तथा बाहर जाने वाले सभी माल पर कड़ी निगाह रक्खी जाय। बिना राजमुद्रा लगा हुआ कोई माल न अन्दर जाने पावे और न बाहर भेजा जावे (कौटिल्य-अर्थशास्त्र, अन्तःपुर का प्रबन्ध, अधिकरण १)।

२—उज़ूक चग़ताई भाषा का शब्द है।

३—इस फ़रमान का वर्णन द्वितीयग्रंथ के ग्यारहवें आईन में है।

४—यह वाक्य मूल में नहीं है। आवश्यकता समझ कर ब्लाक्मैन के भाषान्तरानुसार जोड़ दिया गया है।

५—पृ० ५२ देखिये। हिरवी अर्थात् हिरात निवासी। हिरात अफ़ग़ानिस्तान में है। यह नगर भी है और एक प्रान्त भी। इसमें काफ़ी सेनाएं रहती हैं, और यह "भारतवर्ष की कुंजी" कहलाता है; क्योंकि इस स्थान पर, भारत, रूस, मध्य एशिया तथा ईरान को जाने वाले कई मार्ग मिलते हैं। यह उपजाऊ तराई में स्थित है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रिक़ा और नस्तालीक़[१] ख़त अच्छा लिखता था। उसने उस्तुर्लाब[२], कुरा[३] और कुछ मिस्तरे[४] ऐसे बनाये कि उन्हें देखकर गुणी लोग चक्कर में पड़ गये। सम्राट् की कृपा दृष्टि से उसने उन्नति की, और इस कला में अलौकिकता प्राप्त की।

२, **तमकीन काबुली**—उसने अपने घर में ही शिक्षा प्राप्त की और उन्नति की। इस कला को तमकीन ने उस स्थान पर पहुँचाया कि मौ० मक़सूद ईर्ष्या करने लगा। इसने नस्तालीक़ लिखने में उसे (मक़सूद को) मात दे दिया।

३, **मीरदोस्त काबुली**—यह अक़ीक़[५] पर रिक़ा और नस्तालीक़ खोदता है। यद्यपि यह मक़सूद और तमकीन की समता नहीं कर सकता, तथापि इसका रिक़ा ख़त नस्तालीक़ से ज़्यादा अच्छा होता है। उसको इस कला के परखने का भी पर्याप्त ज्ञान है।

१—रिक़ा और नस्तालीक़—ये लेखों के भेद हैं। ख़त का अर्थ लेख या लिखावट है।

२—यह एक यन्त्र था, जिससे पुराने पाश्चात्य ज्योतिषी सूर्य का उच्च और नीचा होना मालूम करते थे। इसके द्वारा वे आकाश सम्बन्धी शुभ और अशुभ लक्षणों को भी जान लेते थे। इसका आविष्कारक दार्शनिक अरस्तू माना जाता है। यूनानी भाषा में उस्तर तराज़ू को कहते हैं और लाब सूर्य को। इससे सूर्य सम्बन्धी बातें मालूम की जाती थीं, इस लिए यह उस्तुर्लाब कहलाता था। यह पीतल का बनता था और इसकी आकृति गोल टिकिया के समान होती थी। उसके अन्दर पीतल के कुछ पत्र से होते थे। उन पर अनेक वृत्त एवं रेखाएं खिंची रहती थीं।

३—गोला।

४—पहले इसके तैयार करने की क्रिया इस प्रकार थी। कापीनवीस जितने बड़े काग़ज़ पर लिखना चाहते थे, उसी के बराबर एक दफ़्ती लेते थे। पहले उस पर लम्बाई में दोनों ओर, दफ़्ती के किनारों से लगभग एक एक इंच जगह छोड़ कर, सीधी रेखाएं खींचते थे। इन लाइनों पर बराबर की दूरी पर दोनों ओर छेद करते थे। उन छेदों में से पहले, दोनों ओर के पहले छेदों में डोरी डालते थे, फिर दूसरों में, फिर तीसरों में, इसी प्रकार सब में। यह ध्यान रखते थे कि आड़ी डोरियां समानान्तर पर रहें। इसे मिस्तर कहते थे। मिस्तर सतर से बना है। सतर पंक्ति या रेखा को कहते हैं। कापीनवीस सादे काग़ज़ को मिस्तर पर रख कर दबाते थे, जिससे उसकी डोरियों के चिन्ह काग़ज़ पर आजाते थे। उन चिन्हों के बन जाने से लेख की पंक्तियां टेढ़ी नहीं होने पाती थीं (Blochmann's translation of Ain., Vol. 1. P. 52, note 5.)। आजकल डिवाइडर आदि के द्वारा मिस्तर बड़ी सरलता से तैयार हो जाता है। दफ़्ती और डोरियों की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह बहुधा पीले रंग का होता है, और लीथो की छपाई में काम आता है।

५—एक प्रकार का लाल पत्थर, जिसके नगीने बनते और मोहरें भी खोदी जाती हैं। यह बम्बई, बांदा, खंभात, बग़दाद और यमन में पाया जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४, **मौ० इबराहीम**—अक़ीक़ लिखने में यह अपने भाई शर्फ़ एज़्दी का शागिर्द है, पर काम में अगले उस्तादों से भी बाज़ी मार ले गया है। इसका रिक़ा और नस्तालीक़ ख़त, ख़ुशनवीसों[१] से अलग नहीं किया जासकता। राज्य के बहुमूल्य लालों पर शब्द "लालजलाली" इसी का खोदा हुआ है।

५, **मौ० अलीअहमद देहलवी**—फ़ौलाद पर कोई भी इसके सदृश नहीं लिख सका है। सुन्दर लेखन-कला के पारखी इसको इस गुण में अलौकिक मानते हैं। लोग इसकी लिखावट से उस्तादी सीखते हैं। तालीक़ को छोड़कर दूसरे ख़तों को इसने ऊंचे दर्जे पर पहुँचा दिया है, परन्तु यह नस्तालीक़ बहुत ही सुन्दर लिखता है। इसने इस पेशे को अपने पिता शेख़हुसेन से सीखा, मौ० मक़सूद के काम को देखकर उन्नति की, और अन्त में सब से आगे निकल गया।

आईन २१।

फ़र्राश ख़ाना।

आन्तरिक और वाह्य जगत को भूषित करने वाला सम्राट् इस कारख़ाने को उत्तम निवास, शीतोष्ण के लिए त्राण, वर्षा का रक्षक और राज्य का भूषण मानता है। वह उसकी सजावट को शासन का वैभव समझ कर उसकी पूर्ति को ईश्वरोपासना ख़्याल करता है। सम्राट् के अनुभव से इस कारख़ाने की स्थिति सुधरी और सामग्री के परिमाण एवं उत्तमता में उन्नति हुई तथा नई नई वज़्एं और तर्ज़ें निकाली गईं। मैं उसका कुछ हाल लिखता हूँ और अन्वेषकों के लिए आदर्श उपस्थित करता हूँ।[२]

१. **बारगाह**[३]—जब वह विशाल होती है, तो दस हज़ार मनुष्य उसकी

१—वह व्यक्ति जिसकी लिखावट बढ़िया हो।

२—"आईने-अकबरी में जो कुछ लिखा है, उसे आजकल लोग अतिशयोक्ति समझते हैं। पर उस समय यूरोप के जो यात्री भारत में आये थे, उनके लिखे हुये विवरणों से भी आईने-अकबरी के लेखों की पुष्टि होती है। भला उसकी वह शोभा काग़ज़ी सजावट में क्योंकर आसकती है" (देखिये दरबारे-अकबरी)।

३—बारगाह फ़ारसी भाषा का शब्द है। बार का अर्थ प्रतिष्ठा है और गाह स्थान को कहते हैं। बारगाह से आशय प्रतिष्ठा की जगह अर्थात् कचहरी का स्थान, राजभवन, किसी प्रतिष्ठित का प्रासाद और शाही ख़ेमे से है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

छाया में बैठ सकते हैं। एक हज़ार फ़ुर्त्तीले फ़र्राश, एक सप्ताह में, ऊपर उठाने वाले यन्त्रों की सहायता से खड़ा करते हैं। वह अधिकतर दो सरग़ों[१] की बनाई जाती है और लोहे की चादरों से दृढ़ की जाती है। जब सादी बारगाह के बनाने में, जिसमें ज़रबफ़्त मख़मल, और सोना नहीं लगाते हैं, दस हज़ार रुपए और इससे भी अधिक व्यय होते हैं तो फिर कामदार बारगाह की लागत का तो कुछ ठिकाना ही नहीं है। इसके आधार पर दूसरों की लागत का अनुमान किया जा सकता है।

२. **चोबीं-रावटी**—(काठ की रावटी) दस खंभों पर खड़ी की जाती है। प्रत्येक खंभे का कुछ भाग ज़मीन में गाड़ा जाता है। सब तो उँचाई में बराबर होते हैं, परन्तु दो खंभे, जिन पर कड़ी पड़ती है, कुछ अधिक ऊँचे रहते हैं। खम्भों को, ऊपर नीचे दासा लगाकर दृढ़ करते हैं और कुछ तड़कें, बँडेरी तथा दासों पर डालते हैं। फिर सबको नरमादा के तरीक़े पर लोहे की चादरों से जोड़ देते हैं। दीवारें और छतें नरसल की चटाइयों की बनाते हैं, और एक या दो दरवाज़े रखते हैं। नीचे के दासे के अनुसार चबूतरा बनाते हैं। उसको अन्दर ज़रबफ़्त और मख़मल से और बाहर बानात से सजाते हैं, और रेशमी निवाड़ से उसमें कमर-बन्द लगाते हैं।

३. **दो आशियाना मंज़िल**—(दो खंडा मकान) इसे अट्ठारह खंभों पर खड़ा करते हैं। ये खम्भे छे छे गज़ के होते हैं। उनको तख़्तों से पाट देते हैं। उसके ऊपर चार चार हाथ के खम्भे खड़े कर के नरमादा के तरीक़े पर जोड़ देते हैं, बालाख़ाना तैयार हो जाता है। यह बाहर और भीतर चोबीं-रावटी की तरह सजाया जाता है। यात्राओं में यह सम्राट् का शयनागार होता है। यह पवित्र गृह उस ज्ञानी मनुष्य के सदृश है, जो लोक और परलोक दोनों स्थानों के कर्तव्यों को पालन करता हो। इस भवन का एक खंड एकाग्रता के भाव का उत्पादक है, और दूसरा विचित्र सृष्टि के बाहुल्य का प्रदर्शक। ईश्वरोपासना इसी दिव्य मन्दिर में होती है, और श्रेष्ठ सूर्य की आराधना का श्रीगणेश यहीं से होता है। इसके बाद राजभवन को बेगमें सम्राट् के दर्शन लाभ के लिए उपस्थित होती

१—"दरवाज़े जो चोबों को लगाकर बनाये जाँय" (तारीख़ हिन्दुस्तान, जिल्द पंजुम, पृ० ६३६, ले० मो० ज़काउल्ला)। ब्लाक्मैन ने सरग़ा का अर्थ Door poles अर्थात् दरवाज़े के खम्भे किया है (Blochmann's translation of Ain-i-Akbari, P. 53)। "दरबारे-अकबरी" में बारगाह के प्रसंग में "खम्भों पर दो कड़ियों" का उल्लेख है। सरग़ा को विशेष रूप से समझने के लिए चित्र देखिये।

from तुर्की सुरुग़ = tent-pole

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१ बारगाह पर लगी हुई क़लन्दरी

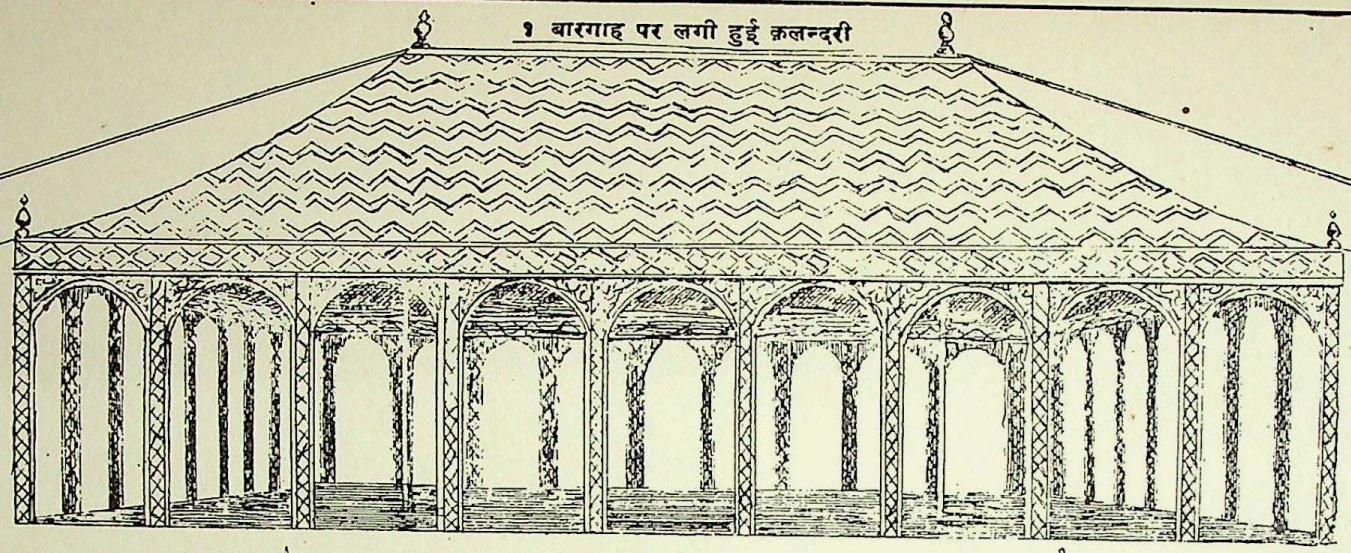

२ दोआशियाना मंज़िल

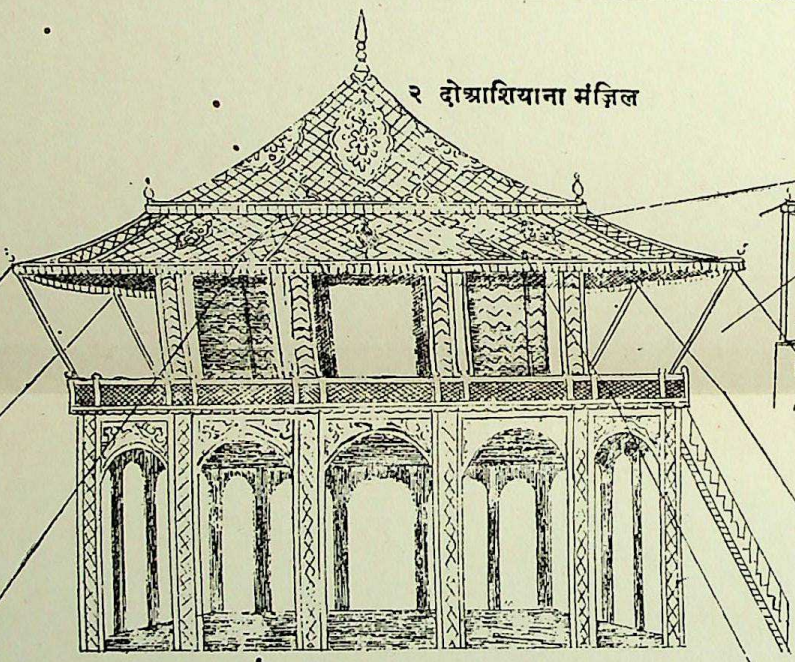

३ चोबीं रावटी

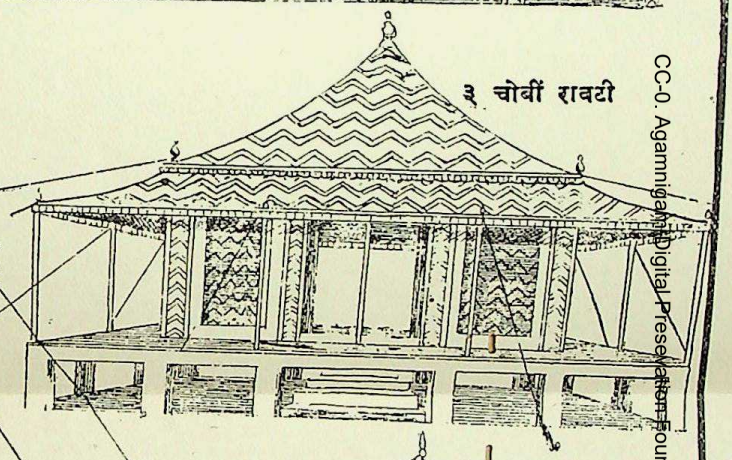

४ ज़मींदोज़ यकसिरग़ा

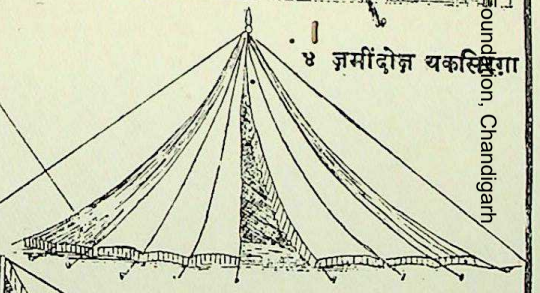

५ ज़मींदोज़ दोसिरग़ा

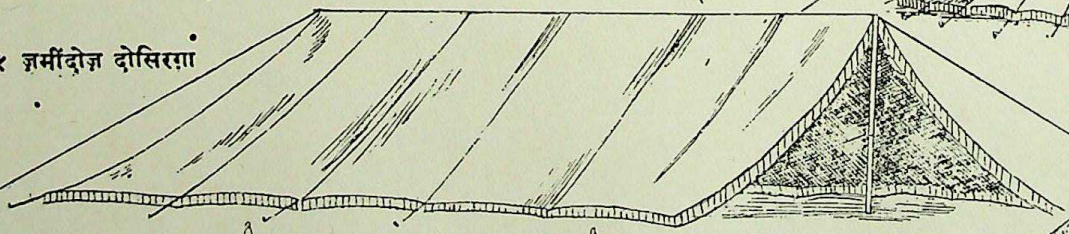

६ मंडल

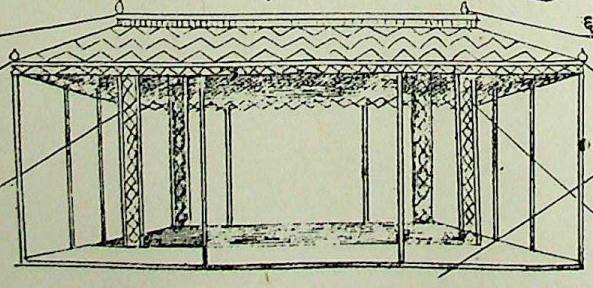

७ अजायबी

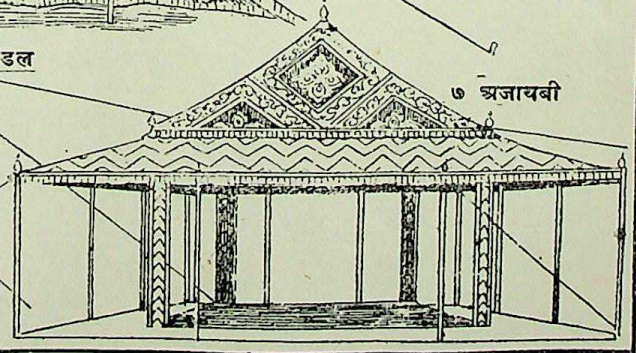

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हैं, और फिर बाहर के लोग प्रणाम द्वारा कृतकृत्य होते हैं। यात्राओं में इसी स्थान में बैठकर सम्राट् बहुधा निरीक्षण-कार्य करता है। इसे **झरोखा** कहते हैं।

४. **ज़मीनदोज़**—एक प्रकार का ख़ेमा है, जो नाना प्रकार के आकारों का बनाया जाता है। यह एक या दो कड़ियों का होता है। बीच में पर्दे डालकर कोठे अलग अलग कर देते हैं।

५. **अजायबी**—नौ शामियाने चार खम्भों पर तानते हैं, पांच चौकोन और चार शुंडाकार। केवल एक कोठे वाली भी बनाते हैं, और एक खम्भा खड़ा कर देते हैं।

६. **मंडल**—पांच शामियाने मिले रहते हैं, जो चार खंभों पर खड़े किये जाते हैं। कभी कभी चार को लटका देते हैं, ख़िलवतख़ाना (एकांत स्थान) तैयार हो जाता है। कभी चारों शामियानों को ऊपर खींच देते हैं और कभी एक ही ओर को खोलते हैं, और आनन्द मनाते हैं।

७. **अठ-खंभा**—सत्तरह शामियाने अलग अलग या मिलाकर लगाये जाते हैं, और आठ खंभों पर खड़े किये जाते हैं।

८. **ख़रगाह**—इसे कई प्रकार की बनाते हैं। कभी एक दर की और कभी दो दर की।

९. **शामियाना**—तरह तरह के होते हैं; परन्तु बारह बर्गगज़ से ज्यादा बड़ा शामियाना नहीं बनाते हैं।

१०. **क़लन्दरी**—इसका वर्णन पहले हो चुका है।[1]

११. **सरा-परदा**—पूर्वकाल में इसे मोटी दुसूती से बनाते थे। सम्राट् ने इसको गलीम का तैयार कराया है, जो ठाठ भी बढ़ाता है और अधिक लाभदायक भी है।

१२. **गुलालबार**—काठ का सरा-परदा है, ख़र-गाह की दीवार के समान। यह चमड़े के तसमों से कसा जाता है। कैम्प उखाड़ते समय यह सिमट आता है। इसमें लाल कपड़ा लगाया जाता है, और निवाड़ के कमरबन्द बांधे जाते हैं।

१३. **गलीम**[2]—सम्राट् ने विलक्षण प्रकार के बनवाये हैं, और चित्ताकर्षक गाठें लगवाई हैं। उसने इस कार्य पर अनुभवी कर्मचारियों को नियुक्त किया है

१—देखिये आईन १६।

२—ऊनी क़ालीन, कम्बल आदि।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और बहुत उत्तम काम होने लगा है। लोग ईरानी और तूरानी गलीमों को भूल गये हैं; यद्यपि व्यापारी उनको अब भी गोशकान[1], ख़ोज़िस्तान, किरमान सब्ज़-वार आदि स्थानों से हर साल लाते हैं। हर प्रकार के क़ालीन बुनने वालों ने यहां अपने घर बना लिये हैं और ख़ूब लाभ उठा रहे हैं। गलीम हर शहर में तैयार होते हैं, पर विशेषतया आगरा फ़तहपुर और लाहोर में वे बहुत बढ़िया बनते हैं। ख़ास शाही कारख़ाने में एक अपूर्व गलीम—जो २० गज़ ७ तस्सूज लम्बा और ६ गज़ ११½ तस्सूज चौड़ा है—बुना गया है। उस पर १८१० रु० व्यय हुये हैं। इस कला के विशेषज्ञों ने इसका मूल्य २७२५ रुपए आंका है।

१४. **तकिया-नमद**—विदेश (काबुल और फ़ारस) से लाते हैं, इस देश में भी बहुत बनते हैं।

जाजम, शतरंजी, बलूची और अद्भुत चटाइयों का हाल—जो रेशम की बुनी हुई मालूम होती हैं—क्या लिखूँ, क्योंकि इनकी कथा बहुत लम्बी है।

आईन २२।

आबदार ख़ाना[2]।

सम्राट् जीवन के इस स्रोत को 'अमृत' कहता है, और उसने उसकी रक्षा का भार संतुष्ट-हृदय योग्य कर्मचारियों को सौंपा है। वह अधिक पानी नहीं पीता है, और इस विषय में विशेष ध्यान भी रखता है। घर और यात्राओं में वह गंगा-जल पीता है। कुछ भाग्यवान् विश्वासपात्र व्यक्ति गंगा के तट पर रहा करते हैं, वे सावधानी से जल भरते हैं और घड़ों पर मोहर लगाकर भेज देते हैं। जब सम्राट् का दरबार राजधानी आगरा और फ़तहपुर में होता था, क़स्बा सोरों से जल लाया जाता था। पर आज के दिन जबकि पंजाब सम्राट् के चरणों का विश्राम-स्थल बना हुआ है[3], हरिद्वार से जल आता है। भोजन बनाने में यमुना चनाब और वर्षा का जल ख़र्च किया जाता है। इस पानी में कुछ गंगा-जल भी

१—गोशकान या जोशकान, इराक़ में एक क़स्बा है। ख़ोज़िस्तान, फ़ारस का एक सूबा है। किरमान, फ़ारस का एक शहर या प्रान्त है। सब्ज़वार, फ़ारस के प्रान्त ख़ुरासान का एक नगर है।

२—वह स्थान, जिसमें जल का प्रबन्ध हो।

३—अर्थात् पंजाब में रहता है। यह घटना १५९६ ई० की है। १५८६ ई० से फ़तहपुर राजधानी नहीं रहा था। उस समय से सम्राट् बहुधा पंजाब में रहा करता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिला देते हैं। सैर और शिकार में, वह इस काम के लिए सूक्ष्मदर्शी अनुभवी व्यक्ति नियत करता है, और दूरदर्शिता से वे लोग जलों की जाँच करते हैं।

सम्राट् ने अपनी दूरदर्शी बुद्धि के प्रकाश से शोरे को—जो बन्दूक़ के मसाले में आग लगाता है—पानी को ठंढा करने का साधन बनाया। और छोटे बड़े हर्षित होगये। शोरा-मिट्टी एक मिट्टी होती है। उसको एक छेददार घड़े में भर देते हैं और उस पर कुछ पानी छिड़क देते हैं। टपके हुये पानी को औटा लेते हैं, और उसको मिट्टी से पृथक् करके जमा लेते हैं। फिर एक सेर पानी को, जस्ते, चाँदी या ऐसी ही धातु के बर्तन में भरते हैं, और उसके मुँह को कसकर बाँध देते हैं, एक दूसरे घड़े में ढाई सेर शोरा और पाँच सेर पानी मिलाते हैं, और मुँह बंधे बर्तन को उसमें डालकर आधी घड़ी[१] तक हिलाते हैं, पानी बहुत ठंढा होजाता है। शोरा एक रुपए का पौन मन से चार मन तक मिलता है।

सन् ३० इलाही[२] में, जब सम्राट् पंजाब (लाहोर) में ठहरा, तो हिम और बर्फ़ का रिवाज हो गया। लाहोर से पैंतालीस कोस की दूरी पर एक क़स्बा पनहां[३] है; उसके निकटस्थ उत्तरी पहाड़ से, डाक चौकी के द्वारा, बहलों तथा कहारों पर जल और स्थल मार्ग से, बर्फ़[४] लाई जाती है। व्यापारी लाभ प्राप्त करते हैं और छोटे बड़े आनन्दित होते हैं। वह रुपए की दो तीन सेर बिकती है। सबसे अधिक

१—१२ मिनट का समय।

२—१५८६ ई०

३—यह पठान या पठानकोट है (Blochmann's trans. P. 616)।

४—भाप के अत्यन्त सूक्ष्म अणु, जो हवा में मिलकर ठंढक पाने पर भारी होकर ज़मीन पर आकर जम जाते हैं। उस जमी हुई तह को बर्फ़ कहते हैं। गिरते समय बर्फ़ रुई की तरह मुलायम होती है। ज़मीन पर जमने के पहले यदि एकत्र करके कोई उसका ठोस गोला बनाना चाहे तो बना सकता है। जमने पर बर्फ़ बिल्कुल सफ़ेद हो जाती है। जमे हुये पानी की बर्फ़ पारदर्शी होती है। पहाड़ों पर बर्फ़ गिरती है किन्तु अधिक सर्दी पड़ने पर समुद्र आदि का जल भी जम कर बर्फ़ बन जाता है। जब जल का तापमान ३२° होता है तो वह जमने लगता है। ज्यों ज्यों पानी जमता जाता है, उसका आकार बढ़ता जाता है। पूर्णतया जम जाने पर उसके आकार में $\frac{१}{११}$ अंश की अभिवृद्धि हो जाती है। तापमान ४ अंश होने तक पानी सिमटता रहता और नीचे बैठता रहता है, किन्तु चार अंश से भी कम होने पर वह हल्का होने लगता और पानी पर तैरने लगता है। साधारणतः पानी में तैरती हुई बर्फ़ का $\frac{९}{१०}$ भाग पानी की सतह के नीचे और $\frac{१}{१०}$ भाग पानी के ऊपर होता है (Encyclopædia Britannica, Vol. 12, P. 39, 1929)।

वैद्यक और संस्कृत साहित्य के ग्रंथों में बर्फ़ के उपयोग का स्पष्ट उल्लेख है। कुमारसंभव में लिखा है कि पिता के घर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सुविधा नाव पर लाने में है, उसके बाद बहल पर और फिर कहार पर। पहाड़ी लोग, उसके गट्ठे बाँध कर उपत्यका में लाते और ढेर के ढेर बेंचते हैं। प्रति ढेर ३० सेर से अधिक और २५ सेर से कम नहीं होता। उसका मूल्य पाँच दाम लेते हैं। जब बर्फ़ ज्यादा दूर हो जाती है, तो एक ढेर चौबीस दाम सत्रह जीतल को बेचते हैं। और जब दूरी सामान्य होती है तो ग्राहकों को पन्द्रह दाम देने पड़ते हैं। बर्फ़ ढोने के लिए दस नावें नियत हैं, उनमें से एक नित्य राजधानी में

में बर्फ़ीले चट्टानों के ऊपर लेटने पर भी स्मरज्वर तप्ता पार्वती शान्ति नहीं पाती थी (न जातु बाला लभतेस्मनिर्वृतिं तुषार संघात शिला तलेष्वपि—कुमारसंभव, ५-५५)। इसी प्रकार चरक में कहा है कि अति मदिरा पान के दाह से जो रोगी पीड़ित हो उसके शरीर पर सोने, चांदी और कांसे के बर्तनों में ठंढा पानी भर कर लगाये, ओर चमड़े की पतली थैलियों में बर्फ़ भर कर टांग दे, जिससे उनसे संचारित होकर वायु रोगी के लगे अथवा उसके शरीर को उन थैलियों से स्पर्श करावे (हेमराजत कांस्यानां पात्राणां शीत वारिभिः, पूर्णानां हिम पूर्णानां दृतीनां पवनाहताः। चरक संहिता, चिकित्सा-स्थान, अध्याय २४, श्लोक १५२)। ऐसे ही सुश्रुत में बतलाया है कि मदजनित दुःख से युक्त पुरुष के लिए सारे शरीर में चन्दन का पतला लेप, चन्द्रमा की किरणें और बर्फ़ का शीतल जल लाभदायक है (शीतं विधान मतमूर्ध्वमहं प्रवच्ये, दाह प्रशान्तकरमृद्धिमतां नराणाम्; तत्रादितो मलयजेन हितप्रदेह-श्चन्द्रांशुहार तुहिनोदक शीतलेन—सुश्रुत-संहिता, उत्तर तंत्र, अ० ४७, श्लोक ५५)।

उपर्युक्त प्रमाणों से चिकित्सा के रूप में बर्फ़ का उपयोग होना सिद्ध है। पर्वतों की निकटवर्ती जातियां ग्रीष्म ऋतु में बर्फ़ का पानी प्राचीनकाल से पीती चली आती हैं। इतना ही नहीं उपत्यकाओं के अधिवासी ताज़े बर्फ़ के साथ गुड़ बड़े चाव से खाते हैं। उन्हीं के संसर्ग से कदाचित् बर्फ़ के पानी पीने का शनैः शनैः रिवाज हो गया। पहाड़ी बर्फ़ के चलन के साथ साथ कृत्रिम बर्फ़ बनाने के भी तरीक़े निकाले गये। उन तरीक़ों से भारतवर्ष के अनेक स्थानों में पहले बर्फ़ बनाई जाती थी। उनमें से एक तरीक़े का—जोकि कानपुर के पास भज्जापुरवा में बर्फ़ बनाने में इस्तेमाल किया जाता था—उल्लेख किया जाता है। शिशिर ऋतु में भज्जापुरवा के नाले के इधर उधर खेतों में क्यारियां बनाते थे और उन पर पयाल बिछा देते थे। खेत के चारों कोनों पर बहुत बड़े बड़े मिट्टी के मटके पानी से लबालब भर देते थे। जिस दिन पाला या तुषार पड़ने की संभावना होती थी, उस दिन सैकड़ों मिट्टी के ख़ूब पके हुये बड़े बड़े प्याले सीधी पंक्तियों में पुराल के ऊपर जमा देते थे। जिस समय पाला गिरने को होता था, उसके कुछ ही पहिले उन प्यालों को मटकों के पानी से भर देते थे। पाले के संयोग से प्यालों का पानी सरलता से जम जाता था। सूर्योदय के पहले ही प्याले एकत्र करलिये जाते थे। इस बर्फ़ के सुरक्षित रखने का तरीक़ा यह था। एक कुंआ खोदते थे, किन्तु उतनाही गहरा कि उसमें पानी नहीं निकलने पाता था। उसके अन्दर एक मचान बनाते थे। उस पर पयार आदि बिछा देते थे। प्यालों की बर्फ़ को लोहे की अंकुरी आदि से निकाल कर मचान पर जमा देते थे। फिर उसे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहुँचती है। हर नाव पर चार मल्लाह रहते हैं। बर्फ़ का प्रत्येक पिण्ड बारह से छे सेर तक रह जाता है, क्योंकि गर्मी और सर्दी से उनमें अन्तर पड़ जाता है। एक बहल दो गट्ठे लाती है। रास्ते में चौदह चौकी पड़ती हैं[१]। एक हाथी से भी काम लिया जाता है। नित्य प्रति बारह टुकड़े आते हैं; उनमें से प्रत्येक तौल में दस सेर से चार सेर तक होता है। इस प्रकार से लाई हुई एक सेर बर्फ़ का मूल्य जाड़े में ३ दाम २१ जीतल, वर्षा ऋतु में १४ दाम २० जीतल और मध्यवर्ती समय में ६ दाम २१॥ जीतल होता है। साधारणतया वह ५ दाम १५$\frac{१}{२}$ जीतल को बिकती है। यदि बर्फ़ कहारों पर लाई जाती है तो चौदह चौकियों के लिए अट्ठाइस कहारों की आवश्यकता होती है। वे प्रति दिन एक गट्ठा लाते हैं, जिसमें चार टुकड़े होते हैं। प्रारम्भ में एक सेर बर्फ़ ५ दाम १६॥ जीतल को, बीच में १३ दाम २$\frac{१}{८}$ जीतल को और अन्त में १६ दाम १५$\frac{५}{८}$ जीतल को मिलती है और सामान्यतः ८$\frac{७}{८}$ जीतल को। जन साधारण केवल ग्रीष्म ऋतु में बर्फ़ का उपयोग करते हैं, पर बड़े आदमी साल भर उससे आनन्द भोगते हैं।

आईन २३।

पाकशाला।

सम्राट् ने इस कार्य में भी दूरदर्शिताओं से काम लिया और उत्तम नियम निर्धारित किये। वह इस पर कैसे ध्यान न देता, क्योंकि मानवीय स्वभाव का

कूट कर इकट्ठा कर देते, उसका थक्का बंध जाता था। कुएं का मुंह छोटा रहता था। गरमी में उसे निकाल कर बेचते थे। इस प्रकार बनाई हुई बर्फ़ पुराने लोगों के कथनानुसार अधिक स्वादिष्ट और गुण-कारी थी। इस बर्फ़ के साथ साथ पहाड़ों से भी बर्फ़ आती थी, और वह बड़े बड़े शहरों में बिकती थी। धीरे धीरे मैशीनरी का प्रचार हुआ और मशीनों के द्वारा बर्फ़ बनने लगी। अब प्रायः समस्त देश के बड़े बड़े शहरों में मशीनों की ही बनी हुई बर्फ़ इस्तेमाल की जाती है। छोटे क़स्बों और देहातों में बर्फ़ का बिल्कुल चलन नहीं है। वहाँ कुओं से ताज़ा पानी खींच कर पिया जाता है। कितने ही लोग दूसरे तरीक़ों से पानी ठंढा करते हैं और उसको पीते हैं। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका (Encyclopædia Britannica vol. 12, P. 39, 1929) में लिखा है कि भारतवर्ष में शुद्ध ठंढी रात्रियों में पानी जमाया जाता है। पानी को एक छेददार बर्तन (शाटी या चटी) में भर देते हैं। उसके छिद्रों से जो भाप उठती है वह पानी की काफ़ी गर्मी खींच लेती है।

१—जहां घोड़े या बैल बदले जाते थे, चौकी कहलाती थी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सामंजस्य, शारीरिक शक्तिमत्ता, आध्यात्मिक और आधिभौतिक प्रसादों की उपलब्धि का सामर्थ्य तथा लौकिक और पारलौकिक सौभाग्य की प्राप्ति, उपयुक्त आहार और यथार्थ विचार पर निर्भर है। आहार के विषय में मनुष्य पशु के समान है, परन्तु इन बातों के ज्ञान से वह उससे पृथक् हो जाता और योग्यता के गुण से भूषित होजाता है। यदि सम्राट् में विशाल साहस, उत्कृष्ट बुद्धि और विश्वव्यापी दयालुता का भाव न होता तो वह वैराग्य-पथ ग्रहण कर लेता और भोजन, विश्राम भूल जाता। आज के दिन, जब कि उसको दोनों समुदायों (गृहस्थों और विरक्तों) का नेतृत्व प्राप्त है, उसकी मोती बरसाने वाली ज़बान पर यह बात कभी नहीं आती कि "आज कौनसा भोजन तैयार किया गया है ?" रात दिन में वह केवल एक बार भोजन करता है, और तृप्त होने के पहले ही हाथ खींच लेता है। फिर इस भोजन का भी कोई समय नियत नहीं है। कर्मचारी इस प्रकार की तैयारी रखते हैं, कि आज्ञा पाने के पश्चात् केवल ढाई घड़ी में सौ थालियाँ परोस देते हैं। राजप्रसाद की महिलाओं की जो ख़ूराक नियत है, उसका वितरण प्रातःकाल से आरम्भ हो जाता है, और बहुधा रात तक भोजन बंटता रहता है।[१]

१—महाभारत काल में भोजन के पदार्थों में चावल, गेहूं, ज्वार और सत्तू आदि मुख्य थे। कितने ही लोग मांस और चावल मिलाकर भी खाते थे। उद्योगपर्व की विदुर नीति में एक श्लोक है:—आढ्यानां मांस परमं मध्यानां गोरसोत्तरम्, तैलोत्तरं दरिद्राणां भोजनं भरतर्षभ। अर्थात् धनवान् लोग बहुधा ऐसा भोजन करते हैं जिसमें मांस विशेष होता है; मध्यम स्थिति के लोगों की ख़ूराक में दूध, घी आदि गोरस की प्रधानता रहती है, और ग़रीब आदमियों के आहार में तेल की अधिकता रहती है। पर इसका यह आशय नहीं है कि सभी धनवान् मांस खाते थे। महाभारत में सत्तू की प्रशंसा अनेक स्थलों पर है। शक्कर में मिलाकर सत्तू खाये जाते थे। उस समय गोरस का चलन बहुत था। दूध घी बहुधा गौओं का ही खाया जाता था। भैंस का दूध बर्ताजाय, महाभारत में ऐसा वर्णन नहीं है। उस समय भैंस और भैंसे निन्द्य माने जाते थे। गोवंश की वृद्धि के कारण गौओं का दूध प्रचुरता से प्राप्त होता था। महाभारत बनपर्व अध्याय १९० में लिखा है—दुहन्ताश्चाप्यजैडकं गोषु नष्टासु पुरुषा:—अर्थात् कलियुग में गौएं नष्ट हो जाने से भेड़ बकरियां दुही जांयगी। ब्राह्मणों को अजा (भेड़), घोड़ी, गधी, स्त्री और हरिणी के दूध पीने की मनाही की गई है। बासी भोजन और पुराने आटे, गन्ने, शाक, दूध और भुने हुये सत्तू से तैयार किये हुये पदार्थ—यदि अधिक समय तक रक्खे रहे हों तो उन्हें न खाना चाहिये। (शन्तिपर्व अ० ३६)। लहसुन और प्याज़ अखाद्य पदार्थों में बतलाये गये हैं।

महाभारत-काल में भोजन करते समय लोग चुप रहते थे और रसोई की निन्दा भी नहीं करते थे :— (प्राङ्मुखो नित्यमश्नीयात् वाग्यतोन्नमकुत्सयन्—महाभारत अनुशासन पर्व)। युधिष्ठिर के अश्वमेधयज्ञ के अवसर पर सहस्रों ब्राह्मणों क्षत्रियों और वैश्यों ने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्राट् इस काम पर विश्वासपात्र और कार्यकुशल व्यक्तियों को नियत करता है। राजभवन के नौकरों का—जोकि योग्यता के गुण से संपन्न हैं—यह ध्यान रहता है कि जो कार्य उनको सौंपा जाय, उत्तमोत्तम सेवा द्वारा पूर्ण हो। इस समुदाय के अध्यक्ष का सहायक **नाज़िमे-कुल** (प्रधान-मंत्री) है। सम्राट्

मौनव्रत से ही भोजन किया था। आश्रमवासी पर्व के अनुसार तीन प्रकार के रसोइये भोजन बनाते थे—आरालिकाः सूपकारा रागखाण्ड-विकास्तथा, उपातिष्ठन्त राजानं धृतराष्ट्रं पुरा यथा—अर्थात् राजा धृतराष्ट्र को पहले की ही भांति युधिष्ठिर के यहां भी आरालिक, सूपकार और रागखाण्डविक पक्वान्न बना बनाकर परोसते थे। रागखाण्डविक मीठी चीज़ें बनाते थे और सूपकार शाक भाजी, कढ़ी, रायते आदि तैयार करते थे। "आरालिक लोग मांस पकाते होंगे।" भक्ष्य पदार्थों के अतिरिक्त पेय पदार्थ अर्थात् खीर और रबड़ी आदि भी बनाये जाते थे। मोदकों का प्रचार था। घी सब चीज़ों में श्रेष्ठ था।

कुछ विद्वानों का मत है कि ऋषि-प्रणीत ग्रन्थों में ऋषियों तथा सत्पुरुषों के सम्बन्ध में मांस भक्षण के पक्ष में जो श्लोक, सूत्र या मंत्र अथवा व्यवस्थाएं पाई जाती हैं, वे प्रक्षिप्त हैं। जो जिस बात का प्रेमी है, उसने अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिए ऋषियों के ग्रंथों में उन्हीं बातों को बढ़ा दिया है। ऐसी ही बातों के लिखने वाले सज्जनों को भोज की "संजीवनी" के अनुसार राज भोज के द्वारा हस्तच्छेदनादि दंड की सज़ा दी गई थी। यह संजीवनी नामक इतिहास ग्वालियर राज्य के अन्तर्गत भिण्ड के तिवाड़ियों के यहां मौजूद था और उसको लखना के राव साहब तथा उनके गुमाश्ते रामदयाल चौबे ने अपनी आँखों से देखा था। "उसमें स्पष्ट लिखा है कि व्यास जी ने ४४०० और उनके शिष्यों ने ५६०० श्लोक युक्त अर्थात् सब १०,००० श्लोकों का महाभारत बनाया था। वही महाराज विक्रमादित्य के समय में २०,००० और मेरे पिता (भोज के पिता) के समय में २५,००० और मेरी आधी उमर में ३०,००० श्लोकों का महाभारत मिलता है। यदि ऐसे ही बढ़ता चला गया तो महाभारत एक ऊँट का बोझा हो जायगा" (सत्यार्थप्रकाश, स्वामीदयानन्द सरस्वती कृत पृ० ३१५—१६, १९६६ वि०)। श्लोकों के बढ़ाये जाने की बात तो 'महाभारत मीमांसा' के लेखक श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य ने भी स्वीकार की है। पर मांस भक्षण वाले श्लोक बढ़ा दिये गये हैं यह उनको मंज़ूर नहीं है। (महाभारत मीमांसा पृ० ३, तथा २६०, १९७७ वि०)।

चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन के प्रसंग में, फ़ाहियान ने लिखा है :—"समस्त देश में कोई किसी जीवधारी की हत्या नहीं करता और न मदिरा पीता, न प्याज़ और लहसुन खाता है। सुअर और मुर्ग़ी भी नहीं पाले जाते हैं। बाज़ार में शराब और माँस की दूकानें नहीं हैं। (The Oxford History of India, by V. A. Smith, Ed., 1923, P. 155)।

हर्ष (६०६—६४७ ई०) के राजत्वकाल में यूआनचांग् ने मनुष्यों की शारीरिक शुद्धि को अवलोकन किया था, और लिखा है, "वे स्वतः पवित्र हैं, दबाव से नहीं। हरबार भोजन के पहले वे शरीर धोते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने राज्य का कार्य भार इसी बुद्धिमान् व्यक्ति (प्रधान मंत्री) पर छोड़ रखा है, और विशेषकर यह श्रेष्ट कार्य। इन सब बातों के होने पर भी, सम्राट् स्वयं चौकसी करने से नहीं चूकता। पहले वह एक शुद्ध हृदय और परिश्रमी व्यक्ति को **मीरबकावल** (रसोईघर का अध्यक्ष) बनाता है, जो अपनी देखरेख और दूरदृष्टि से इस विभाग को परिपूर्ण रखता है। फिर उस की सहायता के लिए अनेक सुशील व्यक्ति मनोनीत करता है। उनमें से कुछ को छोटे बकावल (रसोइये) बनाता है, और कुछ सत्प्रकृति मनुष्यों को नगदी और जिंस का ख़ज़ांची नियुक्त करता है। इसके पश्चात् शुभचिन्तक व्यंजनपारखी नियत करता है और ठीक लिखने वाले बितक्चियों में से एक को मुशरिफ़ (हिसाब-किताब लेखक) बनाता है।

सब देशों के पाचक (रसोइये) सदा नाना प्रकार के व्यंजन बनाते हैं, और हर प्रकार के अन्न, शाक, भाजी, मांस, तेल, मिठाई और भांति भांति के मसाले के भोजन तैयार रहते हैं। प्रति दिन का भोजन इतना बढ़िया बनाया जाता है कि

टूकटाक और बचाखुचा भोजन दुबारा नहीं परोसा जाता। ·····मिट्टी और लकड़ी के बर्तन उपयोग के बाद फेंक दिये जाते हैं; किन्तु धातु के पात्र जो सोने, चांदी, ताँबे या लोहे के होते हैं, साफ़ करने के बाद इस्तेमाल किये जाते हैं। लहसुन और प्याज़ बहुत कम खाये जाते हैं, और जो लोग खाते हैं, वे निर्वासित कर दिये जाते हैं। मांस खाने की मनाही थी, किन्तु मृग-मांस और मेष-मांस अपवाद स्वरूप था। मछली खाने की भी आज्ञा थी; परन्तु साधारण भोजन में दूध, घी, दानादार शकर, मिसरी, रोटी और तेल में भुना या बघारा हुआ अन्न था" (Harsha by Dr. Radhakumud Mookerji, P. 174—75)।

उपर्युक्त विवरणों से तीन कालों के भोजन का चित्र किसी अंश में हमारे सम्मुख खिंच जाता है। अकबर भी मांस युक्त और निरामिष—दोनों प्रकार के भोजन करता था। परन्तु वह मांसाहार का प्रशंसक नहीं था, प्रत्युत समय समय पर उसकी निन्दा ही करता था (देखिये आईन २६, और पंचम ग्रंथ में सम्राट् की मनोरंजक उक्तियां)। इस आईन में कहीं भी गोमांस का या गोहत्या का ज़िक्र नहीं है, जिससे प्रकट है कि अकबर हिन्दुओं के हार्दिक भावों को ख़ूब पहिचानता था, और उनकी रक्षा करने का उपाय भी करता था।

आजकल भारतवर्ष में मनुष्यों के आहार की वस्तुएं विशेषतर गेहूं, जौ, चावल, मटर, उर्द, अरहर, मूंग, ज्वार और बाजरा आदि हैं। शाकों में सोवा, पालक, मूली, आलू, बैंगन, अरुई, सीताफल, लौकी, तुरई, करेला, फूलगोभी, गांठगोभी, कटहल, बन्दगोभी, कुलफ़ा, ज़िमीक़न्द, भंसीडे, केला की फली आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। मांसाहार कितने ही पुरुष नहीं करते और कितने ही आमिष भोजी हैं। हिन्दू गोमांस नहीं खाते किन्तु गोरी पल्टनें, मुसलमान और ईसाई आदि उसे विशेषरूप से खाते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बड़ों बड़ों को उत्सवों और त्योहारों में भी वैसा खाना बहुत कम प्राप्त होता है। ख़ासे (सम्राट्) के भोजन की उत्तमता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है।

नौरोज़[१] के प्रारम्भ में उपकोषाध्यक्ष एक वर्ष के व्यय का अनुमान-पत्र (बरावुर्द) बनाकर देते और रुपया ले लेते हैं। रुपए के थैलों के मुंह पर और भंडार के दरवाज़े पर मीरबकावल और मुशरिफ़ की मोहरों से मोहर की जाती है। दैनिक व्यय के आधार पर महीने महीने का हिसाब बनाया जाता है। इसी हिसाब के अनुसार तथा उक्त दोनों अधिकारियों की मोहर से हिसाब की फ़र्द तैयार की जाती है, फिर वह व्यय के खाते में दर्ज की जाती है। हर फ़सल के शुरू में दीवाने-बयूतात और मीरबकावल दूरदर्शिता से आवश्यकीय सामग्री संचय करलेते हैं। प्रायः सुखदास (चावल) बहराइच से, देवज़ीरा (चावल) ग्वालियर से, जिंजिन (चावल) राजोरी[२] और नीमला[२] से, घी हिसार फ़ीरोज़ा से; बतखें, मुरग़ाबियां और कुछ शाकभाजी कश्मीर से लाते हैं। सबके नमूने अलहदा रख छोड़ते हैं। भेड़, बकरी, बरबरी, मुर्ग़ और बतखों आदि का पालन पोषण बावर्ची करते हैं। मुर्ग़ी को एक महीने से कम नहीं रखते हैं। उनकी हलाली शहर और लश्कर के बाहर होती है, इस कार्य के लिए नहर या तालाब का होना ज़रूरी है। फिर उसे धोकर बोरों में भरते हैं और सूपकार (बावर्ची) की मोहर होकर वह रसोई घर में जाता है। वहां उसे दोबारा धोकर देग में डालते हैं। पानी खींचनेवाले मशक से पानी लाकर घड़े भरते हैं और उनका मुंह कपड़ों से बांध देते हैं। अनुभवी लोगों की उन पर मोहर होती है। जब पानी थिरा जाता है, तब उसे काम में लाते हैं। शाक भाजी खेत में बोते हैं और ताज़ी ताज़ी ख़र्च करते हैं। मीरबकावल और मुशरिफ़ हर खाद्य पदार्थ का मूल्य कूतते हैं, वही फिर नियम बन जाता है। वे रोज़-नामचा, आय-व्यय का अनुमान-पत्र, तहवील की क़ब्ज़ और नौकरों के मासिक वेतन के चिट्ठे पर, हस्ताक्षर करते हैं, और इस विभाग की रक्षा करते हैं। दुराचारी, बेहूदा, निकम्मा और अपरिचित व्यक्ति

१—जितने दिनों तक सूर्य मेषराशि में रहता है, उतना समय फ़ारसी में फ़रवर्दीन मास कहलाता है। यह संयोग बहुधा चैत्र वैसाख में होता है। यह महीना ३१ दिन का होता है। फ़रवर्दीन का पहला दिन—जिस दिन कि सूर्य मेषराशि में प्रवेश करता है और जो दिन प्रति वर्ष प्रायः २२ मार्च को पड़ता है,—नौरोज़ कहलाता है।

२—आईने अकबरी के चतुर्थ-ग्रंथ में सूबा काबुल के वर्णन में राजोरी और नीमला का उल्लेख हुआ है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वहां स्थान (नौकरी) नहीं पाता; बिना ज़मानत के कोई नहीं रखा जाता है। किसी की व्यक्तिगत पहचान वहां काम नहीं देती।

ख़ासे (सम्राट्) का भोजन सोने, चांदी, पत्थर और मिट्टी के पात्रों में तैयार होता है। उनमें से कुछ पात्र एक सहकारी बकावल को सौंप देते हैं, और उसके चातुर्य से कार्य संचलित होता है। पकाने और परोसने के समय एक सायबान तान देते हैं और किसी को उधर देखने नहीं देते। रसोइये अपने कपड़ों की आस्तीनें और दामन चढ़ाते रखते तथा मुंह और नाक बांधे रहते हैं। परोसने के पहले खाने को बावर्ची और बकावल चखते हैं; फिर मीरबकावल चखता है, इसके बाद थालियों में परोसा जाता है। सोने और चांदी के पात्रों (थालियों) को लाल रंग के कपड़ों में बांधते हैं; और चीनी और तांबे के बर्तनों को सफ़ेद कपड़ों में। फिर मीरबकावल अपनी मोहर लगाता तथा व्यंजनों के नाम लिख देता है। बावर्चीख़ाने का मुशरिफ़ सब बर्तनों को एक काग़ज़ पर लिखकर, मीरबकावल की मोहर करा के, अन्दर भेजता है, जिससे वे बदलने नहीं पाते। सब सामान को छोटे बकावल, बावर्ची और दूसरे कर्मचारी ले चलते हैं। चोबदार आदमियों को आसपास आने से रोके रहते हैं। जब उपर्युक्त सामान भीतर भेजते हैं तो उसी समय रकाबदार,[१] तरह तरह की रोटियाँ, चक्का दही, और ख्वाँचे की चीज़ें,—जिनमें कुछ प्याले, अचार, अदरख, नीबू और भांति भांति के हरे शाकों से भरे रहते हैं—थालियों में चुनकर, मीरबकावल की मोहर कराके रवाना करते हैं। राजभवन के कर्मचारी उसको फिर से चख कर दस्तरख़्वान पर चुन देते हैं। जब कुछ देर होजाती है, सम्राट् जीमने लगता है। भोजन परोसने वाले आज्ञा-पालन के लिए उपस्थित रहते हैं। पहले दरवेशों (फ़क़ीरों) का भाग निकाला जाता है। खाने का आरम्भ दूध या दही से होता है। जब सम्राट् भोजन कर चुकता है, तो कृतज्ञता स्वरूप मत्था टेक कर ईश-विनय करता है। मीरबकावल आज्ञा पाने के लिए तत्पर रहता है। पूर्वोक्त सूची के अनुसार पात्र वापस लिए जाते हैं। आकस्मिक अवसरों के लिए कुछ अधपका भोजन एहतियात के तौर पर सदा रख छोड़ते हैं।

तांबे के बर्तनों पर महीने में दो बार क़लई कराई जाती है; और शाहज़ादों तथा अमीरों के पात्रों पर एक बार। टूटे फूटे बर्तन तंबेड़ों को दिये जाते हैं, और नए बनवा लिये जाते हैं।

१—सम्राट् को भोजन तथा अचार आदि परोसने वाला।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आईन २४।

व्यंजनों की सामग्री।

व्यंजन बहुत से हैं, और उनका हाल वर्णन करना कठिन है। मैं उनमें से कुछ का उल्लेख करता हूँ और दूसरों के लिए पथ प्रदर्शित करता हूँ। सब भोजन, जो पकाये जाते हैं, तीन प्रकार से अधिक नहीं होते, यथा—(१) **बेगोश्त** (निरामिष) —जिसको प्रचिलित भाषा में सूफ़ियाना कहते हैं; (२) **गोश्त बाबिरंज** आदि (जो मांस और चावल आदि को मिलाकर बनाया जाय); (३) **गोश्त व अबाज़ेर** (मसालेदार मांस)। प्रत्येक के दस भेद लिखता हूँ :—

पहला—१. **ज़र्द-बिरंज**—१० सेर चावल; ५ सेर क़ंद; $3\frac{1}{2}$ सेर घी; आध आध सेर किशमिश, बादाम और पिस्ताकी गूदी; $\frac{1}{4}$ सेर नमक; $\frac{1}{8}$ सेर अदरक; $1\frac{1}{2}$ दाम केसर; $2\frac{1}{2}$ मिसक़ाल दारचीनी। चार मामूली थालियां तैयार होंगी। इससे कम मसाला डाल कर भी बनाते हैं, और बिना मसाले का भी तैयार करते हैं। इसे मांसवाला भी बनाते हैं और नमकीन भी।

२. **खुश्का**—१० सेर चावल में $\frac{1}{2}$ सेर नमक डालते हैं। यह कई प्रकार का बनता है। ४ थालियां लबालब भर जाती हैं। १ मन देवज़ीरा धान से २५ सेर चावल निकलते हैं। १७ सेर से देग भर जाती है; जिंजिन चावल के २२ सेर से।

३. **खिचरी**—(खिचड़ी), चावल, मूंग की दाल और घी पांच पांच सेर; नमक $\frac{1}{3}$ सेर। ७ थालियां तैयार होंगी।

४. **शीर बिरंज**—(खीर) १० सेर दूध; १ सेर चावल; १ सेर क़ंद, १ दाम नमक। ५ थालियां लबालब भर जाती हैं।

५. **थूली**—१० सेर गेहूँ का दलिया जिसमें से तिहाई निकल जाता है; इसका आधा घी; १० मिसक़ाल काली मिर्च; ४ मिसक़ाल दारचीनी; $3\frac{1}{2}$ मिसक़ाल लौंग और बड़ी इलायची; $\frac{1}{3}$ सेर नमक। कुछ लोग दूध और मीठा भी मिलाते हैं। चार थालियां तैयार होती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

६. **चिखी**—१० सेर गेहूँ के आटे को ख़मीर बनाकर ख़ूब धोते हैं, और उसमें से शुद्ध २ सेर निकाल लेते हैं। फिर मसाला मिलाकर अनेक प्रकार से मांस बना लेते हैं। एक एक सेर घी और प्याज़; आधा आधा दाम केसर, बड़ी इलायची और लौंग; एक एक दाम दारचीनी, गोल मिर्च और धनियां; तीन तीन दाम अदरक और नमक। दो थालियां तैयार होती हैं। कुछ लोग नींबू का रस भी डालते हैं।

७. **बादिंजां**—१० सेर चावल; १½ सेर घा; २¾ सेर प्याज़; ¼ सेर अदरक और नींबू का रस; पांच पांच मिसक़ाल काली मिर्च और धनियां; आधा आधा मिसक़ाल लौंग, इलायची और हींग। छे थालियां बनती हैं।

८. **पहित**—बे छिलके की मसूर, उरद, चना और मूंग आदि की दाल से बनती है। १० सेर दाल; २½ सेर घी; आधा आधा सेर नमक और अदरक; २ मिसक़ाल ज़ीरा; १½ मिसक़ाल हींग। १५ थालियाँ तैयार होंगी। बहुधा ख़ुश्का के साथ खाते हैं।

९. **साग**—इसे पालक तथा और बहुत से शाकों से बनाते हैं। और बहुत से स्वादिष्ट व्यंजनों में से है। सोआ, पालक इत्यादि १० सेर; घी १½ सेर; प्याज़ १ सेर; अदरक ½ सेर; काली मिर्च ५½ मिसक़ाल; लौंग और इलायची आधा आधा मिसक़ाल। ६ थालियाँ बनती हैं।

१०. **हलवा**—मैदा, क़ंद और घी दस दस सेर। ५ थालियाँ तैयार होती हैं; यह कई प्रकार से खाया जाता है।

इसी प्रकार तरह तरह के मुरब्बे और शरबत हैं, जिनका हाल यहाँ पर बयान नहीं किया जा सकता।

दूसरा—१. **क़बूली**—१० सेर चावल; ७ सेर मांस; ३½ सेर घी; १ सेर चने की दाल; २ सेर प्याज़; ½ सेर नमक; ¼ सेर अदरक; एक एक दाम दारचीनी, गोल मिर्च और ज़ीरा; आधा आधा दाम इलायची और लौंग। कुछ बादाम और किशमिश भी डालते हैं। पाँच थालियाँ बनती हैं।

२. **दुज़्द बिरियां**—१० सेर चावल; ३½ सेर घी; १० सेर माँस; ½ सेर नमक। पाँच थालियाँ तैयार होती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३. **क़ीमापुलाव**—१० सेर चावल, १० सेर माँस; ४ सेर घी; १ सेर चने की दाल; २ सेर प्याज़; $\frac{१}{२}$ सेर नमक; $\frac{१}{४}$ सेर अदरक; एक एक दाम काली मिर्च, ज़ीरा, इलायची और लौंग। पाँच थालियाँ तैयार होती हैं।

४. **शुल्ला**—१० सेर माँस; $३\frac{१}{२}$ सेर चावल; २ सेर घी; १ सेर चना, २ सेर प्याज़; $\frac{१}{२}$ सेर नमक; $\frac{१}{४}$ सेर अदरक; दो दो दाम लहसुन और काली मिर्च; एक एक दाम दारचीनी, इलायची और लौंग। ६ थालियाँ बनती हैं।

५. **बुग़रा**—१० सेर मांस; ३ सेर मैदा; $१\frac{१}{२}$ सेर घी; १ सेर चना; $१\frac{१}{२}$ सेर सिरका; १ सेर क़ंद, चौथाई चौथाई सेर प्याज़, हल्दी, चुकन्दर, शलग़म, पालक, सोआ, और सोंठि; एक एक दाम केसर, लौंग, इलायची और ज़ीरा; २ दाम दारचीनी; ८ मिसक़ाल गोल मिर्च। १२ थालियां बनेंगी।

६. **क़ीमा-शोरबा**—१० सेर मांस; १ सेर चावल; १ सेर घी; $\frac{१}{२}$ सेर नमक; बाक़ी चीज़ें शुल्ले की तरह। १० थालियां भर जांयगी।

७. **हरीसा**—१० सेर मांस; ५ सेर कुटा हुआ गेहूं; २ सेर घी; $\frac{१}{२}$ सेर नमक; २ दाम दारचीनी। ५ थालियां तैयार होंगी।

८. **कश्क**—१० सेर मांस; ५ सेर कुटा हुआ गेहूं; ३ सेर घी; १ सेर चना; $\frac{१}{४}$ सेर नमक; $१\frac{१}{२}$ सेर प्याज़; $\frac{१}{२}$ सेर सोंठि; एक दाम दारचीनी; दो दो मिसक़ाल केसर, लौंग, इलायची और ज़ीरा। पांच थालियां ऊपर तक भर जांयगी।

९. **हलीम**—मांस, गेहूं, चना, मसाला और केसर कश्क के समान; १ सेर घी; चौथाई चौथाई सेर शलजम, हल्दी, पालक और सोआ। १० थालियां बनती हैं।

१०. **कुताब**—हिन्दुस्तानी इसे संबोसा कहते हैं। इसे कई प्रकार से बनाते हैं। १० सेर मांस; ४ सेर मैदा; २ सेर घी; १ सेर प्याज़; $\frac{१}{४}$ सेर अदरक; $\frac{१}{२}$ सेर नमक; दो दो दाम काली मिर्च और धनियां, एक एक दाम इलायची, ज़ीरा और लौंग; चौथाई सेर सुम्माक़[१]। २० संबोसे तैयार होते हैं। चार थाल भर जाते हैं।

तीसरा—१. **बिरयां**—पूरी दाशमंदी भेड़ के लिए २ सेर नमक;

१—यह एक फल है जो खट्टा होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१ सेर घी; २ मिसक़ाल केसर, लौंग, काली मिर्च और ज़ीरा इस्तेमाल करते हैं; और तरह तरह से बनाते हैं।

२. **यख़नी**—१० सेर मांस; १ सेर प्याज़; $\frac{१}{२}$ सेर नमक।

३. **योल्मा**—एक भेड़ को पानी में इस क़दर उबालते हैं कि सब बाल साफ़ हो जाते हैं और उसे यख़नी आदि की तरह बना लेते हैं। मेमने या बकरी का योल्मा बहुत बढ़िया होता है।

४. **कबाब**—बहुत तरह का होता है। १० सेर माँस; $\frac{१}{२}$ सेर घी; चौथाई चौथाई सेर नमक, अदरक और प्याज़; डेढ़ डेढ़ दाम ज़ीरा, धनियाँ, काली मिर्च, इलायची और लौंग।

५. **मुसम्मन**—गरदन के रास्ते से एक मुर्ग़ की सब हड्डियाँ निकाल लेते हैं, और उसका शरीर ज़िन्दा की तरह बना रहता है। आध आध सेर कुटा हुआ माँस और घी; ५ मुर्ग़ के अंडे; $\frac{१}{४}$ सेर प्याज़; दस दस मिसक़ाल धनियाँ और अदरक; ५ मिसक़ाल नमक; ३ मिसक़ाल गोल मिर्च; $\frac{१}{२}$ मिसक़ाल केसर। कबाब की तरह पका लेते हैं।

६. **दुप्याज़ा**—१० सेर माँस मध्यम मोटी बोटी का; २ सेर घी; २ सेर प्याज़; $\frac{१}{४}$ सेर नमक; $\frac{१}{८}$ सेर अदरक; एक एक दाम ज़ीरा, धनियाँ, इलायची और लौंग; २ दाम काली मिर्च। ५ थालियाँ तैयार होती हैं।

७. **भेड़ का मुतंजना**—१० सेर मध्यम मोटी बोटी का माँस; २ सेर घी; $\frac{१}{२}$ सेर चना; $\frac{१}{४}$ सेर सोंठ; १ दाम ज़ीरा, दो दो दाम गोल मिर्च, लौंग, इलायची, और धनियाँ। ७ थालियाँ लबालब भर जाती हैं। यह मुर्ग़ और मछली का भी बनाया जाता है।

८. **दम-पुख़्त**—१० सेर माँस; २ सेर घी; १ सेर प्याज़; ११ मिसक़ाल अदरक; १० मिसक़ाल काली मिर्च; दो दो दाम लौंग और इलायची डाल कर बनाते हैं।

९. **क़लिया**—१० सेर माँस; २ सेर घी; १ सेर प्याज़; २ दाम काली मिर्च; एक एक दाम लौंग और इलायची; $\frac{१}{८}$ सेर नमक। ७ थालियाँ तैयार होती हैं। क़लिया में माँस की बोटी मुतंजना के विरुद्ध ज्यादा छोटी रहती है और शोरवा ज्यादा गाढ़ा होता है। हिन्दुस्तान में इसे बहुत प्रकार से बनाते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१०. **मलग़ूबा**—१० सेर मांस; १० सेर दही; एक एक सेर घी और प्याज़ $\frac{१}{४}$ सेर अदरक; ५ दाम लौंग। १० थालियाँ तैयार होती हैं।

आईन २५।

रोटी।

यह व्यंजनों से पृथक् नहीं है, परन्तु पद-विशेषता के कारण उसका वृत्तान्त अलग लिखा गया है।

रोटी रकाबख़ाने (भंडारे) में तैयार होती है। **बुज़ुर्ग-तनूरी** (बड़ी तन्दूरी रोटी)—१० सेर मैदा; ५ सेर गाय का दूध; $१\frac{१}{२}$ सेर घी; और $\frac{१}{४}$ सेर नमक से बनती है। इसे छोटी भी बनाते हैं। **तुनके-ताबगी** (हल्की, तवे पर सेकी जाती है)। एक सेर में १५ तथा इससे भी अधिक तैयार होती हैं। यह कई प्रकार की बनाई जाती है। इसकी एक क़िस्म चपाती कहलाती है; जिसे कुछ लोग ख़ुश्के से भी बनाते हैं। जब यह गरम गरम दस्तरख़्वान पर लाई जाती है तो बहुत स्वादिष्ट मालूम होती है।

ख़ासे (दरबार) के भोजन के लिए एक मन गेहूँ से आधा मन मैदा निकालते हैं, और २ सेर दलिया और शेष भूसी। यदि मैदा इस दर्जे की नहीं चाहते, तो दलिया और भूसी घटा बढ़ा देते हैं।

आईन २६।

संयम-व्यवस्था।

सम्राट् अपने ज्ञान के कारण मांस से बहुत कम अभिरुचि रखता है, और बहुधा मोतियों से भरी हुई ज़बान से कहा करता है कि यद्यपि मनुष्य के लिए भाँति भाँति के व्यंजन विद्यमान हैं तथापि वह अपनी अज्ञानता और निर्दयता से प्राणियों के सताने में मन लगाता है तथा उनकी हत्या करने और खाने से हाथ नहीं खींचता। कोई व्यक्ति पशुओं के न सताने की ख़ूबी पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपनी आँखें नहीं खोलता, वरन् अपने को जानवरों की क़ब्र बनाता है। यदि उसके कंधों पर संसार का बोझ न होता, तो एकदम मांस खाना छोड़ देता; तथापि उसका विचार यह है कि शनैः शनैः उसे नितान्त त्याग दे[१]। कुछ दिनों तक वह अपने समय के लोगों की चाल पर चलता रहा; परन्तु बाद को उसने पहले कुछ शुक्रवारों को माँस खाना बन्द किया, और फिर रविवारों को। किन्तु अब प्रत्येक सौर-मास की प्रतिपदा, रविवार, सूर्य और चन्द्र ग्रहण के दिन, संयमवाले दो दिवसों के बीच का दिन, रजब[२]-मास के सोमवार, हर इलाही महीने के उत्सव का दिन, फ़रवरदीन का पूरा महीना, और समस्त आबान-मास—जोकि सम्राट् का जन्म-मास है—संयम के दिनों में और बढ़ा दिये गये हैं। आबान[३]-मास के लिए यह निश्चय हुआ था कि सम्राट् की अवस्था के जितने साल हों, उतने दिन वह उक्त महीने में माँस न खाये। परन्तु अब उसकी अवस्था के साल आबान-मास के दिनों से अधिक होगये हैं, इसलिए आज़ुर-महीने के भी कुछ दिनों में उसने व्रत रक्खा। परन्तु इस समय उक्त-मास के सभी दिन सूफ़ियाना (संयमवाले) हो गये हैं। ईश चिन्तन की अधिकता के कारण उनमें प्रति वर्ष वृद्धि होती जाती है, और वह पाँच दिन से कम नहीं होती। जब व्रत के दिन एक साथ पड़ जाते हैं, तो उपवास के दिनों की कमी को पूरा कर लेते हैं, और वे दिन दूसरे महीनों में बाँट देते हैं। जब प्रतिष्ठित संयम-दिवस समाप्त होते हैं, तो आमिष-भोजन पहले मरियम मकानी के घर से आता है, फिर दूसरी बेगमों, शाहज़ादों और निकटस्थ सम्बन्धियों के यहाँ से।

इस विभाग में अमीर, अहदी और दूसरे सवार सेवा करते हैं। प्यादे का वेतन १०० से ४०० दाम तक है।

१—"अकबरनामे" में लिखा है कि सम्राट् ने मांस खाना बिल्कुल इसलिए नहीं छोड़ा कि उसके त्यागने से और भी अनेक व्यक्ति छोड़ देते, जिससे उन लोगों को बहुत कष्ट होता और उनके स्वास्थ्य में अन्तर पड़जाता।

२—अकबर का जन्म रविवार के दिन ५ रजब सन् ९४९ हिजरी को हुआ था। यह तारीख़ १५ अक्टूबर सन् १५४२ को पड़ती है। रजब-मास के सोमवारों को इसलिए व्रत रखा जाता था, कि रविवार पहले ही व्रतों की सूची में सम्मिलित हो चुके थे। दीनइलाही-मत के अनुयायी इसी प्रकार अपने अपने जन्म-मासों में व्रत रखते थे।

३—इन महीनों का पूरा हाल तृतीय-ग्रंथ में है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आइन २७।

जिंसों के भाव।

यद्यपि चढ़ाइयों और वर्षा-ऋतु आदि में, जिंसों के भाव में बहुत अंतर हो जाता है, तथापि इस तालिका में मैं उनके सामान्य मूल्य का उल्लेख करता हूँ और अन्वेषकों के लिए ज्ञान की सामग्री उपस्थित करता हूँ।

रबी की जिंसों की तालिका।

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
गेहूँ	प्रतिमन[1]	१२ दाम	अलसी	प्रतिमन	१० दाम
काबुली चना	,,	१६ ,,	कुसुंभ के बीज	,,	८ ,,
काला चना	,,	८ ,,	मेथी	,,	१० ,,
मसूर	,,	१२ ,,	मटर	,,	६ ,,
जौ	,,	८ ,,	सरसों	,,	१२ ,,
चेना	,,	६ ,,	केवू	,,	७ ,,

ख़रीफ़ की जिंसें।

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
मुश्कीं शालि[2]	प्रतिमन	११० दाम	सामज़ीरा चावल	प्रतिमन	६० दाम
सादा शालि	,,	१०० ,,	शकर चीनी ,,	,,	६० ,,
सुखदास चावल	,,	१०० ,,	देवज़ीरा ,,	,,	६० ,,
दूनाप्रसाद चावल	,,	६० ,,	जिंजिन ,,	,,	८० ,,

१—अकबर का मन ४० सेर का था किन्तु वह तौल में कम था। "जिस समय अकबर ने मन की तौल में परिवर्तन करना चाहा था उसके पहले उत्तर भारत में २८ या २९ पौण्ड अवाइरडुपाइज़ का मन चलता था। अकबर ने सेर ३० दाम भर का चालू किया। दाम तांबे का मुख्य सिक्का था। अकबर का ४० सेरी मन तौल में ३,८८,२७५ ग्रेन या $55\frac{1}{2}$ पौण्ड अवाइरडुपाइज़ था। साधारण कार्यों में वह ५६ पौण्ड माना जाता था"। (India At the Death of Akbar, P. 53, 1920) इस हिसाब से अकबरी मन आज कल की तौल के अनुसार लगभग २७ सेर का था।

२—कस्तूरी के समान सुगन्धित धान।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
दका चावल	प्रतिमन	५० दाम	लोबिया	प्रतिमन	१२ दाम
ज़िरही ,,	,,	४० ,,	जुआरी	,,	१० ,,
साठी ,,	,,	२० ,,	लहड़रा[१]	,,	८ ,,
मूंग	,,	१८ ,,	कोदरम	,,	७ ,,
उरद	,,	१६ ,,	कूरी	,,	७ ,,
मोठ	,,	१२ ,,	साँवाँ	,,	६ ,,
सफ़ेद तिल	,,	२० ,,	कंगनी[२]	,,	८ ,,
काले तिल	,,	१६ ,,	चेना	,,	८ ,,

दाल।

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
मूंग की दाल	प्रतिमन	१८ दाम	मसूर की दाल	प्रतिमन	१६ दाम
चने की दाल	,,	१६½ ,,	मोठ की दाल	,,	१२ ,,

आटा।

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
मैदा (गेहूँ की)	प्रतिमन	२२ दाम	चने का आटा	प्रतिमन	२२ दाम
खुश्का (गेहूँ का आटा)	,,	१५ ,,	जौ का आटा	,,	११ ,,

शाक भाजी।

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
सोआ	प्रतिमन	१० दाम	गोभी (करमकल्ला)	प्रतिसेर	१ दाम
पालक	,,	१६ ,,	कंकछू (कश्मीर के		
पोदीना	,,	४० ,,	जंगल में होता है)	,,	४ ,,
प्याज़	,,	६ ,,	दुंरीतू (अखरोट के फूल)	,,	२ ,,
लहसुन	,,	४० ,,	शक़ाक़ुल (जंगली गाजर)	,,	३ ,,
मूली	,,	२०½ ,,	लहसुन के बीज	प्रतिमन	१ ,,

१—बाजरा। २—काकुन।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
उपलहाक (कश्मीर में होता है)।	प्रतिमन	१ दाम	कचनार की कली	प्रतिसेर	$\frac{१}{२}$ दाम
			चूका	,,	$\frac{१}{२}$,,
जीतू (लाल साग)	,,	३ ,,	बथुआ	,,	$\frac{१}{४}$,,
अदरक	प्रतिसेर	$२\frac{१}{२}$,,	रतसका	,,	१ ,,
पोई	,,	१ ,,	चौलाई	,,	$\frac{१}{४}$,,

जीवित पशु पक्षी और मांस।

नाम	तौल या संख्या	मूल्य	नाम	तौल या संख्या	मूल्य
दाशमंदी भेड़	१ नग	$६\frac{१}{२}$ रुपए	बतख़	१ नग	१ रुपया
अफ़ग़ानीभेड़ प्रमथश्रेणी	,,	२ ,,	तुग़दरी	,,	२० दाम
,, द्वितीयश्रेणी	,,	$१\frac{१}{२}$,,	कुलंग	,,	२० ,,
,, तृतीयश्रेणी	,,	$१\frac{१}{४}$,,	चर्ज़	,,	१८ ,,
काश्मीरी भेड़	,,	$१\frac{१}{२}$,,	दुर्राज	,,	३ ,,
हिन्दुस्तानी भेड़	,,	$१\frac{१}{२}$,,	चकोर	,,	२० ,,
बरबरी बकरी प्रथमश्रेणी	,,	१ ,,	बोदना	,,	१ ,,
,, बकरी द्वितीयश्रेणी	,,	$\frac{३}{४}$ रु०	लवा	,,	१ ,,
भेड़ का मांस	प्रतिमन	६५ दाम	करवानक	,,	२० ,,
बकरे का मांस	,,	५४ ,,	फ़ाख़्ता	,,	४ ,,
क़ाज़	१ नग	२० ,,			

घी, तेल आदि।

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
घी	१ मन	१०५ दाम	दूध	१ मन	२५ दाम
तेल	,,	८० ,,	दही	,,	१८ ,,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शक्कर आदि ।

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
मिस्री	१ सेर	६ दाम	सफ़ेद शक्कर	प्रति मन	१२८ दाम
सफ़ेद क़ंद	,,	५½ ,,	लाल शक्कर	,,	५६ ,,

मसाले ।

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
केसर	१ सेर	४०० दाम	अजवाइन	प्रतिसेर	२ ,,
लौंग	,,	६० ,,	हल्दी	,,	१० ,,
बड़ी इलायची	,,	५२ ,,	धनियाँ	,,	३ ,,
काली मिर्च	,,	१७ ,,	कलौंजी	,,	१½ ,,
लाल मिर्च	प्रति सेर	१६ दाम	हाग	,,	२ ,,
सोंठि	,,	४ ,,	सौंफ	,,	१ ,,
अदरक	,,	२½ ,,	दारचीनी	,,	४० ,,
ज़ीरा	,,	२ ,,	नमक	प्रतिमन	१६ ,,

खटाइयाँ ।

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
नींबू की खटाई	प्रति सेर	६ दाम	गाजर का अचार	प्रति सेर	½ दाम
नींबू का रस	,,	५ ,,	सिरके के नींबू	,,	२ ,,
अंगूर का सिरका	,,	५ ,,	नमक के पानी के नींबू	,,	१½ ,,
शक्कर का सिरका	,,	१ ,,	नींबू के रस के नींबू	,,	३ ,,
अश्तरग़ार का अचार	,,	८ ,,	अदरक का अचार	,,	२½ ,,
तेल के आम का अचार	,,	२ ,,	अदरशाख़	,,	२½ ,,
सिरके का आम	,,	२ ,,	सिरके का शलग़म	,,	१ ,,
तेल के नींबू	,,	२ ,,	बांस का अचार	,,	४ ,,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

A few opinions of eminent scholars.

Sir Abdur Rahim, Ex. Chief Justice, Madras High Court, President, Legislative Assembly.—I have read some of the opinions expressed on the translation of Ain-i-Akbari into Hindi in which Pandit Ramlal Pandey is engaged. It is an undertaking which is bound to prove very useful to students of Indian History, and I trust that learned Pandit is certain to receive encouragement and support.

The Honorable Justice Uma Shanker Bajpai, Additional Puisne Judge, Allahabad High Court.—Pandit Ramlal Pandey is a Hindi scholar of repute and he has added greatly to that reputation by his translation of Abul Fazl's immortal work, the Ain-i-Akbari. This book is written in highly ornate Persian and any one who attempts at its translation must have a wonderful command over two languages. The learned Pandit is to be warmly congratulated for his work and I am sure his efforts extending over a period of about 8 years will receive recognition at the hands of an appreciative public.

Dr. Bhagwandas, M.A., D. Litt., M.L.A., Benares—I have been convinced that the translation is accurate and has been done with much literary skill and excellence besides. The translator has enhanced the value of the work by copious biographical and other notes based on industrious reading and research. He has self-denyingly and single-mindedly spent his energies on the work. I earnestly hope that all those who are interested in the healthy growth of really good Hindi literature will help him in ensuring the successful publication and circulation of this fine book.

Principal A. B. Dhruva, Pro-Vice-Chancellor, Benares Hindu University—Pandit Ramlal Pandey has shown me his translation of "Ain-i-Akbari". I have read the opinions expressed by several of my friends who are competent to judge, and am glad to say that they have pronounced it to be simply superb.

Sir G. Ross Masood, Vice-Chancellor, Aligarh Muslim University—I have had the Hindi extracts of your translation of the Ain-i-Akbari, compared with the original and am amazed at the excellence of your book. You have indeed rendered a great service to Hindi and Persian learning which must command the esteem of all orientalists and lovers of Indo-Persian Culture. The "Ain-i-Akbari" is a highly technical erudite and scholarly work. Your translation has succeeded in preserving the richness of the original remarkably well. I once more congratulate you on your translation.

Pandit Lalta Prasad Sukul, M.A., Head of the Hindi Department, Calcutta University—In keeping with the accuracy, literary polish has not been lost sight of. The translator rightly deserves our congratulations and every encouragement possible and I hope the work shall receive its due honour and appreciation.

Maulana Hasrat Mohani, B.A.,—My learned friend Pandit Ram Lall Pande has indeed rendered a very valuable service to the country by translating Ain-i-Akbari in Hindi. From my personal knowledge and experience I would like to say, not by way of any exaggeration, that nowhere and in no language Ain-i-Akbari, has been translated with a greater precision and refinement.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Acharya Narendra Deo, M.A., Principal, Kashi Vidyapith—In my opinion the work is of great literary and historical merit. It is not difficult for any one to find out that the writer has bestowed much thought and care over the work and has made conscious efforts to make the Hindi version a faithful translation of the original with due regard to the peculiarities of the Hindi idiom.

Dr. S. K. Banerji, M.A., Lt., Ph. D., (Lond.) Reader, Lucknow University—It was with some scepticism that I commenced the review of Pandit Ram Lal Pandey's Hindi translation of Abdul Fazl's Ain-i-Akbari and was agreeably surprised to find it to be a work of a high order and considerable merit. On comparison with the Persian text, Panditji's work can easily be pronounced to be a faithful and accurate rendering of the original. His erudition is seen in every line of the work, his complete mastery of Persian and the rich and lucid style of his Hindi translation. I was particularly pleased at his attempt at thoroughness and clearing the allusions in the text and settling the different readings of the manuscripts. It is the dearth of such scholars that has hindered the progress of research-work on mediaeval India, those that command mastery over several languages. I firmly believe, it is going to be a monumental work in the Hindi historical world and will be hailed by all lovers of Hindi.

Dr. Ishwari Prasad, M.A., D. Litt., University of Allahabad—The Ain-i-Akbari is a monumental work in Persian written by one of India's greatest literary giants in a style which does not easily lend itself to translation. An attempt to translate such a work in Hindi requires not merely ability and knowledge of Persian but indefatigable labour and inexhaustible patience. I was delighted to come across a learned man in the United Provinces who has had the rare patience to go through the work and critically examine the text. I have no doubt Mr. Pandey's labours in the field of scholarship will receive, at the hands of historians and orientalists, the recognition which they so really deserve. The translation seems to have been prepared with great care and reproduces, in my judgment, the spirit of the original. The copious foot-notes supplied by the translator greatly add to the value of this work. As for me I can only bow before such a heroic labour of love.

Dr. Ram Prasad Tripathi, M.A., D. Sc., (London) Depart. of History, University of Allahabad—I was extremely delighted to see the herculean translation of the Ain-i-Akbari into Hindi. Pt. Ram Lal Pandey deserves our highest congratulation for not only undertaking the difficult task but also for having accomplished it with extraordinary ability and singular success. He is one of those high-souled workers who undertake labour of love for no other object but service of knowledge and literature. His translation of the Ain-i-Akbari will add to Hindi literature a precious gem which will enrich the treasure of our vernacular literature as a whole.

Dr. Har Dutt Sharma, M.A., Ph. D., German University, Prague, S. D. College, Cawnpore, U.P.—Mr. Ramlal Pande is to be congratulated and he has earned the everlasting gratitude of the scholars of Hindi. Not only this, but the Hindi literature is richer today by this translation. It will instil the spirit of research and awaken the critical faculty of all who read this work. This, of course, would have been impossible for any other person except Mr. Pande who has a wonderful command over the Persian idiom and who is quite at home in Hindi and English also.

11.11.42

आईने-अकबरी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

खंड १, अंक ३

भाषान्तरकार तथा सम्पादक

रामलाल पाण्डेय

We have to acknowledge with sincere gratitude the very kind help and generous appreciation that we have received from:—

1. His Highness Maharajadhiraj Maharana Sri Sri Sir Bhupal Sing Ji Bahadur, G. C. S I., K. C. I. E., Udaipur (Mewar).
2. The Rt. Hon'ble Dr. Sir Tej Bahadur Sapru, M. A., LL. D., K. C. S. I., P. C., Allahabad.
3. Lt. Col. James Leslie Rose Weir, C. I. E., Agent to the Governor-General for the Gujerat States and Resident at Baroda.

प्रकाशक

विद्या-मन्दिर, कानपुर

G1
15 C

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

OUR PATRONS.

1. L. Chunni Lal Garg, Rais & Mill-owner, Cawnpore.
2. Rai Sahib B. Gopinath Mehrotra, Rais, Manager, Gurnarain Khatri High School, Cawnpore.
3. B. Ram Chandra Khanna (Abuwala) Landlord and Banker, Cawnpore.
4. P. Shiva Kumar Shukla, Ram Charan Shukla Road, Cawnpore.
5. B. Bankey Behari Lal Agrawal, Pro. Firm Kishorilal Matadin, Cawnpore.
6. B. Mohan Lal, Pro. Firm Moolchand Mohanlal, Cawnpore.
7. L. Ram Ratan Gupta, Director, Lakshmi-Ratan Cotton Mills, Cawnpore.
8. B. Ram Chandra, Pro. Firm Rupnarain Ramchandra, Cawnpore.
9. B. Ram Narain Garg, B. A., Rais and Mill-owner, Cawnpore.
10. L. Manohar Lal Jain, Firm Lachmandass Baburam, Cawnpore.
11. Vanijyabhushan, Seth Lalchand B. Sethi, Pro. Binod Mills, Ujjain.
12. P. Rama Kant Misra 'Ramesh', Cawnpore.
13. L. Hardyal Nevatiya, Dealer in sugar, Cawnpore.
14. Rt. Hon'ble Dr. Sir Tej Bahadur Sapru, P. C., Allahabad.
15. P. Lakshmi Kant Tripathi, M. A., Lecturer in Indian History, Christ Church College, Cawnpore.
16. H. H. Maharana Shri Jorawar Singh Ji Pratap Singh Ji, Sant State, Sant Rampur (Gujerat).
17. H. H. Babi Shri Jamait Khanji Manvar Khanji, Nawab of Balasinor, (Gujerat).
18. Raja Bahadur Narayan Lal Bansi Lal Pitti, Kalbadevi Road, Bombay.
19. Seth Madan Mohan Ram Narain Ruiya, Mill-owners, Bombay.
20. Syt. Chiranji Lal R. Loyalka, Share and Stock Brokers, Fort, Bombay.
21. H. H. Maharajadhiraj Maharana Sahib Bahadur of Udaipur, (Mewar).
22. Shrimant Yeshwant Rao Vikramshah, minor Rajah of Jawhar State (Gujerat).
23. Hazur Office, Rajpipla State, Rajpipla.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
बाँस का अचार	प्रतिसेर	४ दाम	करील के फूलों का अचार	प्रतिसेर	$\frac{१}{२}$ दाम
सेव का अचार	,,	८ ,,	करील के फलों का अचार	,,	$\frac{१}{२}$,,
बिही का अचार	,,	६ ,,	ज़मीक़ंद का अचार	,,	१ ,,
लहसुन का अचार	,,	१ ,,	सरसों का अचार	,,	$\frac{१}{४}$,,
प्याज़ का अचार	,,	$\frac{१}{२}$,,	तुरई का अचार	,,	$\frac{१}{२}$,,
बैंगन का अचार	,,	१ ,,	ककड़ी का अचार	,,	$\frac{१}{२}$,,
किशमिश और मुनक़्क़े का अचार	,,	८ ,,	खीरे का अचार	,,	$\frac{१}{२}$,,
कचनार का अचार	,,	२ ,,	कचालू (बंडे) का अचार	,,	$\frac{१}{२}$,,
आड़ू का अचार	,,	१ ,,	मूली का अचार[१]	,,	$\frac{१}{२}$,,
संहजने का अचार	,,	१ ,,			

आईन २८।

मेवाख़ाना।

सम्राट् फलों को अनुपम न्यायकारी (ईश्वर) का बड़ा ही दुर्लभ पदार्थ समझता और उन पर बहुत ध्यान देता है। इस कारण ईरान और तूरान के

१—मूल आइने-अकबरी (दफ़्तरे-अव्वल दरमंज़िले-आबादी, पृ० ६०, एशियाटिक सोसायिटी बँगाल द्वारा प्रकाशित) में रबी की जिंसों की तालिका में एक अन्न का नाम केवू (हिन्दी अनुवाद पृ० १२५) लिखा हुआ है। आईने-अकबरी के तृतीय ग्रन्थ में 'आईने-नोज़दह-साला' के प्रकरण में सूबा आगरा, इलाहाबाद, अवध, दिल्ली, लाहौर और मुल्तान में भी इस का उल्लेख हुआ है। आईने-अकबरी के मराठी और गुजराती भाषा में जो संक्षिप्त अनुवाद श्री बी. बी. लेले तथा सेठना रतुन जी फ़ाम जी कृत क्रमशः उपलब्ध हैं, उनमें कीवू या केव या केवू के लिये क्रमशः कोद्रू और कोद्रा शब्द प्रयुक्त हुये हैं। उक्त दोनों शब्दों के लिये हिन्दी में कोदों शब्द है (आयुर्वेद का गुजराती ग्रन्थ 'आर्यभिषक्' पृष्ठ २२५)। प्रथम ग्रन्थ की ख़रीफ़ की जिंसों के प्रसंग में भी कोदरम आया है। जो कोदों का ही दूसरा नाम है। फ़ारसी के एक कोष में 'केएव' का अर्थ मटर लिखा हुआ है, परन्तु मटर के लिये आईन में दूसरा शब्द मुशंग दिया हुआ है। इससे मालूम होता है कि केवू कोई दूसरी ही चीज़ है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उद्यानकला-विशारद यहाँ आकर बस गये हैं और उनकी खेती-बारी बहुत बढ़ गई है। यहाँ ख़रबूज़ा तथा अंगूर बढ़िया और अधिकता से होने लगे हैं। इसी

जेरट् ने आईने अकबरी के अपने अनुवाद में इसके लिये Lettuce शब्द प्रयोग किया है (Jarret's translation of Ain-i-Akbari, Vol. II, P. 71), जिसका अर्थ .सहिजन और काहू है (Mathuraprasad's Trilingual Dictionary)। काहू का पौधा गोभी की तरह का होता है। उसकी पत्तियाँ लम्बी, मुलायम और दलदार होती हैं। भारतवर्ष के बाग़ीचों में यह बोया जाता है। पाश्चात्य देशों में इसका शाक खाया जाता है। अनेक स्थानों में इससे एक प्रकार की अफ़ीम निकाली जाती है, जो पोस्ते की अफ़ीम से बहुत हलके नशे वाली होती है। इसके बीज दवा के काम में आते हैं। उससे तेल निकलता है, जो सिर दर्द में लगाया जाता है (शब्दसागर)। पर काहू ही केवू है, इसमें सन्देह है।

कई चावलों के नाम आजकल बदल गये हैं। आईने-अकबरी की एक प्रति में जिंजिन का पाठ झिंजिन है। दका के पाठान्तर दख, दकह, डीकर और वकमनह हैं। देहरादून आदि में नक्का नाम का एक चावल होता है, कदाचित् वही दका हो।

कुरी—अरहर की फलियाँ (शब्द सागर)। खुदिरी या कुरी एक प्रकार का छोटी जाति का अन्न जैसे बाजरा, साँवाँ, कोदों आदि (India at the death of Akbar, Appendix A)।

चेना—कंगनी या साँवाँ की जाति का एक अन्न, जो चैत-वैसाख में बोया और आषाढ़ में काटा जाता है। .कटाई के तीन चार दिन पहले तक इसे सींचते रहते हैं। यह हिमालय में दस हज़ार फ़ुट की ऊँचाई तक होता है। यह पानी और दूध में चावल की तरह पका कर खाया जाता है और इसकी रोटियाँ भी बनाई जाती हैं। इसे लोग पौष्टिक मानते हैं। पंजाब में बहुधा यह चारे के लिये बोया जाता है।

कंकछू—इसका शुद्ध नाम कनगुछू है। यह एक शाक है, जो भूमि से स्वतः उत्पन्न होता है।

उपलहाक—देहात में होता है। बहुधा सुखाकर खाया जाता है। यह प्रसूता स्त्रियों को शाक में दिया जाता है।

जीतू—कदाचित् यह बंगाल देश का प्रसिद्ध शाक जीवन्ती या जन्तुका है। नवलकिशोरी आईने-अकबरी के हाशिये में जीतू या जैतू का अर्थ लालशाक लिखा हुआ है।

चूका—यह शाक खट्टा होता है। वैद्य इसे हलका, रुचिकारक और दीपक मानते हैं।

लालमिर्च—(देखिये पृष्ठ १२८, काली मिर्च और सोंठ के बीच में) वास्तव में यह बड़ी पीपल है, लालमिर्च नहीं।

अश्तरग़ार—यह ईरान तूरान में होता है। इसके पेड़ में काँटे होते हैं। जड़ का अचार डाला जाता है। यह दो प्रकार का होता है।

मूल ग्रन्थ की एक प्रति के फ़ुट-नोट में शाकों की उपज की ऋतुएँ भी दी हुई हैं:— सोआ, पालक, मूली, शक़ाक़ुल और अदरक जाड़े में; दुँरीतू, लहसुन के बीज और पोई वसन्त ऋतु में; प्याज़, लहसुन, गोभी, जीतू, चूका, बथुआ, और चौलाई ग्रीष्म ऋतु में; पोदीना सब ऋतुओं में होता है। कंकछू, उपलहाक और रतसका की ऋतुयें नहीं लिखी हैं।

तुलनात्मक अध्ययन के लिए विभिन्न समयों की जिंसों के भावों की तालिका दी जाती है:—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकार तरबूज़, आड़ू, बादाम, पिस्ता और अनार आदि भी फलने लगे हैं। जब

जिंसों की दरों की तालिका।

जिंस	अलाउद्दीन का नियत किया हुआ भाव १२९५-१३१६ ई०		मुहम्मद तुग़लक़ के समय का भाव १३२५-५१ ई०		फ़ीरोज़ तुग़लक़ के समय की दरें। १३५१-८८ ई०		ज़िला दिल्ली की सामान्य दरें। १८५४-७४ ई०		कानपुर का थोक बाज़ार भाव* १२ जून १९३६ ई० आषाढ कृ० ८ सं० १९९३ वि०	
								सेर छटाँक	रु.† आ.	से० छ०
गेहूँ	७½ जीतल	प्रतिमन	१२ जीतल	प्रतिमन	८ जीतल	प्रतिमन	प्र० रु०	२७ ११	१ ०	१४ ०
जौ	४ ,,	,,	८ ,,	,,	४ ,,	,,	,,	३९ ०	१ ०	२३ ८
चना	५ ,,	,,	४ ,,	,,	४ ,,	,,	,,	३४ ५	१ ०	२० ०
शालि(धान)	५ ,,	,,	१५ ,,	,,	..	..	,,	३७ ०	..	..
चावल	..	..	..	..	..	..	..	..	१ ०	११ ०
दाल	..	..	..	..	१ ,,	१० सेर	..	..	..	..
उरद	५ ,,	,,	..	..	..	..	,,	२८ ०	१ ०	१२ १२
घी	१ ,,	२½ सेर	..	..	२½ ,,	१ सेर	..	..	४१ ०	४८ ८
शकर	१¼ ,,	१ ,,	१ टंका सफ़ेद	,,	३-३¾ ,,	१ ,,	..	..	८ ०	४० ०
गुड़	¾ ,,	१ ,,	..	..	..	..	..	..	१ ०	१६ ०
मिसरी			१¼ टंका ४ सफ़ेद	,,	..	..	..	..	१ ०	४ ३
तिल का तेल	१ ,,	¾ ,,	..	..	..	..	..	..	१२ ८	प्रतिमन
नमक	५ ,,	२½ सेर	..	..	..	..	..	..	२ ८	,,
सोना			..	..	..	..	..	..	३४ १२	१ रु. भर
चाँदी			..	..	..	..	..	..	४९ १२	१०० ,,
बैल			२ रुपया	प्रति रास					..	..
भेड़			१ ,,	,,						से० छ०
मूँग							..		१ ०	१२ ८
अरहर							..		१ ०	१६ ०
मटर सफ़ेद							..		१ ०	१९ ०
जुआर							..		१ ०	१८ १२
बाजरा							..		१ ०	२२ ८
मकाई							..		१ ०	२५ ८
लाही							..		१ ०	८ १२
सरसों पीली							..		१ ०	७ १४
अंडी							..		१ ०	१० ८
अलसी							..		१ ०	९ ८
तिल काला							..		१ ०	७ ०
पोस्ता							..		१ ०	४ १२

अलाउद्दीन का मन ४० सेर का था और वह तौल में लगभग २१ पौण्ड अवायरडुपायाज़ या १४½ सेर अंग्रेज़ी के बराबर था। तंका या टंका में ६४ जीतल (पैसे) होते थे। १ जीतल १½ फ़ार्दिङ्ग....का था। तंका १७½ ग्रेन का चाँदी का रुपया था। Thomas, Chronicles of Pathan Kings, P. 161-62

Masalik-ul-Absar in Elliot & Dowson Vol III, P. 582-83.

Tarikh-i-Firoz Shahi of Shams-i-Siraj Afif quoted in Ishwari Prasad's Mediæval India P. 273 Note 2.

मुहम्मद हुसैन, अजायबुलअसफ़ार, जिल्द २, पृ० १३५, १८६८ ई०

* स्थानीय दैनिक पत्रों के आधार पर।

† तौल में १ रुपया १८० ग्रेन का होता है और ८० रु० भर का सेर तथा ४० सेर का मन।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

से काबुल, क़ंधार और कश्मीर के प्रदेश साम्राज्य में सम्मिलित हो गये हैं, तब से फलों की मोटों पर मोटें आने लगी हैं। साल भर उनसे मेवाफ़रोशों के घर भरे रहते हैं और बाज़ारों में खलिहान लगे रहते हैं।

हिन्दुस्तान के ख़रबूज़े इलाही महीने फ़रवरदीन (चैत-बैशाख) से फलने लगते हैं और उर्दीबिहिश्ति (बैशाख-ज्येष्ठ) में बहुत ज़्यादा होते हैं। वे मिष्ट, कोमल, पोले और सुगंधित होते हैं, विशेषकर नाशपाती, बाबाशेख़ी, अलीशेरी, अल्चह वर्गे-नै और दूदे-चिराग़ इत्यादि जातियों के ख़रबूज़े। वे दो मास तक और रहते हैं। शहरेवर (लगभग कुंवार) के आरम्भ में कश्मीर से आने लगते हैं। इनके समाप्त होने के पहले से ही काबुली ख़रबूज़े भरने शुरू हो जाते हैं। आज़ुर महीने (लगभग पूस) में बदख़शाँ से कारवाओं (व्यापारियों या यात्रियों का समूह) द्वारा आने लगते हैं; और दई मास (लगभग माघ) तक उनका तारतम्य नहीं टूटता। जिस ऋतु में वे ज़ाबुलिस्तान में फलते हैं, पंजाब प्रदेश में भी बढ़िया

अकबर के समय की जिंसों की सूची को वर्तमान-काल की सूची से मिलान करने पर ज्ञात होता है कि ३०० वर्ष में कई चीज़ों के नाम बदल गये और कुछ में लेखकों की असावधानी से पाठान्तर होगये जैसे, केवू, रतसका और अदरशाख़ आदि। कुछ ऐसी भी जिंसें हैं जो नष्ट होगईं या होती जा रही हैं, जैसे, साँवाँ, चेना, आल और नील आदि। साथ ही अकबर के बाद भारतवर्ष में कई नईं जिंसें भी आगई हैं, जैसे अन्नों में मकाई, ओट्स; शाकों में शाक-शिरोमणि आलू (पोटैटो या बटाटा जो १५८० ई० में अमेरिका से यूरोप गया। भारतवर्ष में इसका उल्लेख उस भोज के प्रसंग में मिलता है, जो आसफ़ख़ाँ ने सर टामस रो को १६१५ ई० में अजमेर में दिया था), टमाटर (टोमैटो); फलाहार में शकरकन्द; चर्वण और तिलहन में मूँगफली; पेय-पत्तियों में चाय और काफ़ी; राह-चलते खाने, पीने और सूँघने के पदार्थों में तम्बाकू।

अकबर के समय से अब तक खाद्यान्नों के पारस्परिक सापेक्ष्य मूल्य में बहुत कम परिवर्तन हुआ है, अर्थात् जौ, जुआर और चना के मूल्य का जैसा आनुपातिक सम्बन्ध इस समय है, अकबर के समय में भी लगभग वैसा ही था (India at the Death of Akbar, P. 102-3) यद्यपि जिंसों की दरें अकबर के समय से सन् १६१२-१४ ई० में सात गुनी अधिक होगईं (Moreland, From Akbar to Aurangzeb P. 171)। युद्ध काल में जिंसों के मूल्य में अट्ठारह से बीस गुने तक की अधिकता होगई, जैसा कि यूरोपीय महासमर के समय सन् १६१४ से १८ ई० तक देखने में आया। उस समय कानपुर के बाज़ार में घी छै छटाँक का और गेहूँ पाँच सेर तक का बिक गया। परन्तु युद्ध समाप्त होने पर मूल्य फिर सामान्य स्थिति पर आगया। अकबर के समय में घी तथा तिलहन अन्न की अपेक्षा अधिक सस्ता था। परन्तु साफ़ शकर और नमक आजकल से मंहगे थे। खाने की सामग्री जैसी उस समय थी, प्रायः वैसी ही आजकल है। यद्यपि उनके मूल्यों में बहुत अन्तर होगया है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

होने लगते हैं; और चिल्ला जाड़े के अतिरिक्त भक्कर और उसके आस-पास बहुत ख़रबूज़े होते हैं। ख़ुरदाद (आषाढ़) से अमुरदाद (सावन-भादों) तक अनेक प्रकार के अंगूर आनन्द देते हैं। शहरेवर में कश्मीरी अंगूर फलता है और बाज़ारें भर जाती हैं। कश्मीर में एक दाम के आठ सेर अंगूर मिलते हैं, और एक मन पर दो रुपए किराया लगता है। कश्मीरी लोग उनको शंकुकार (गाजर जैसी शक्ल की बनी हुई) टोकरियों में पीठ पर लाद कर चलते हैं और देखने में बड़े भले मालूम होते हैं। मेहर (कार्तिक) से उर्दीबिहिश्त तक अंगूर काबुल से आते हैं; साथ ही कीलास[1], जिसको सम्राट् शाहआलू कहता है, अनार-बेदाना, सेब, नाशपाती, बिही, अमरूद, शफ़्तालू[2], ज़र्दआलू[3], गिर्दआलू और आलूचा[4] आदि भी लाये जाते हैं। बहुत से फल हिन्दुस्तान में भी पैदा होते हैं। ख़रबूज़े, नाशपाती और सेब समरक़ंद से भी आते हैं।

सम्राट् जब कभी शराब पीता, अफ़ीम खाता या कोकनार[5] (सम्राट् इसको सवरस कहता है) ग्रहण करता है, तो मेवेवाले नौकर मेवे के ख़्वांचे भर कर उसके सामने लाते हैं; थोड़ी सी मेवा तो वह खाता है और अधिकतर बाँट देता है। सेवक हर मेवे में निशान लगा देते हैं, और उससे उसकी श्रेणी जान लेते हैं। प्रथम श्रेणी के ख़रबूज़े पर सिर की ओर से दो भागों में विभाजित करता हुआ एक रेखा का चिह्न लगाते हैं; इसी प्रकार दूसरे ख़रबूज़ों पर उनकी श्रेणियों के अनुसार एक-एक लकीर बढ़ाते जाते हैं।

१—ब्लाक्मैन ने अपने अनुवाद में इस शब्द के लिए Cherries शब्द का प्रयोग किया है। जिसका अर्थ आलूबालू, शाहदाना या विलायती मकोय होता है। एफ़. एस. ग्रौस (F. S. Growse, C. S.) के लेखानुसार कश्मीरी भाषा में चेरीज़ के लिए गीलास शब्द आज तक प्रयोग किया जाता है, जो कीलास से मिलता-जुलता है (Blochmann's translation of Ain, P. 65, note 1, and P. 616, note 2)।

२—आड़ू। ३—ख़ूबानी।

४—आलूचे का पेड़ गढ़वाल से कश्मीर तक हिमालय पर होता है। इसका फल गोल, पकने पर पीला और स्वाद में खट-मिट्ठा होता है, और पंजाब में बहुत खाया जाता है। अफ़ग़ानिस्तान में आलूचे की जाति का एक फल आलूबुख़ारा के नाम से भारतवर्ष में आता है। फल की गुठली से जो तेल निकलता है, वह कहीं-कहीं जलाया जाता है। पेड़ से एक प्रकार का पीला गोंद निकलता है। लकड़ी मुलायम होती है। उससे रंगीन और नक़्क़ाशीदार संदूक़ बनाते हैं।

५—पोस्ते की बोंड़ी, जिसके अन्दर पोस्ता रहता है और उसको आँकने से—अर्थात् उसके ऊपर लोहे की अंकनी से रेखाएँ खींचने से—अफ़ीम का प्राथमिक रूप (दूध) निकलता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस कार्यालय में मंसबदार, अहदी और अन्य सैनिक काम करते हैं। प्यादों का वेतन १४० दाम से १०० दाम तक है।

विभिन्न प्रकार के फलों के नाम, ऋतु, स्वाद और मूल्य का विवरण तालिका में लिखता हूँ और अपने समय की दशा का परिचय देता हूँ :—

तूरान आदि देशों के फल।

नाम	परिमाण[१]	मूल्य	नाम	परिमाण	मूल्य
अरहंग[२] का ख़रबूज़ा (प्रथम श्रेणी)	१	२½ रु०	काबुली और फ़िरंगी सेब	५ से १० तक	१ रु०
अरहंग का ख़रबूज़ा (दूसरी वा तीसरी श्रेणी)	,,	१ रु० से २½ रु० तक	कश्मीरी अंगूर	१ मन	१०८ दाम
काबुली ख़रबूज़ा (प्रथम श्रेणी)	,,	१ रु० से १½ रु० तक	छुहारा	प्रतिसेर	१० दाम
काबुली ख़रबूज़ा (दूसरी श्रेणी)	,,	¾ रु० से १ रु० तक	किशमिश	,,	६ दाम
काबुली ख़रबूज़ा (तीसरी श्रेणी)	,,	½ रु० से ¾ रु० तक	आबजोश[३]	,,	६ दाम
समरक़ंदी सेब	७ से १५ तक	१ रु०	आलू बुख़ारा	,,	८ दाम
बिही	१० से ३० तक	१ रु०	ख़ूबानी	,,	८ दाम
अमरूद	१० से १०० तक	१ रु०	क़न्धारी दाख	,,	७ दाम
अनार	प्रतिमन	६½ रु० से १५ रु० तक	अंजीर	,,	७ दाम
			मुनक़्क़ा	,,	६¾ दाम
			उन्नाब	,,	३½ दाम
			बादाम की गिरी	,,	२८ दाम
			बादाम	,,	११ दाम
			पिस्ता	,,	६ दाम
			चिलग़ोज़ा	,,	८ दाम
			सिंजिद[४]	,,	६½ दाम

१—परिमाण में तौल, नाप और संख्या शामिल हैं। जिन संख्याओं के सामने तौल नहीं लिखी है, उनको उतने नग (तादाद) समझना चाहिये। मूल ग्रंथ में फलों के नाम तो दिये हैं, किन्तु उनमें से कुछ के मूल्य, परिमाण और ऋतु का उल्लेख नहीं हैं।

२—बदख़शां में एक क़स्बा है।

३—गरम पानी के साथ उबाला हुआ मुनक़्क़ा, बड़ी किशमिश।

४—इसका उच्चारण संजिद भी है। यह उन्नाब के समान होता है। कानपुर में अत्तारों के यहाँ मिलता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तूरान आदि देशों के फल (शेषांश)

नाम	परिमाण	मूल्य	नाम	परिमाण	मूल्य
पिस्ता की मींगी	प्रतिसेर	६ दाम	फ़ुन्दुक़[1]	प्रतिसेर	३ दाम
अख़रोट की गिरी	,,	४½ दाम	अख़रोट	,,	२½ दाम

हिन्दुस्तानी मीठे फल।

नाम	ऋतु	परिमाण	मूल्य	नाम	ऋतु	परिमाण	मूल्य
आम[2]	वर्षा	१००	४० दाम	तूत	वसन्त	प्रतिसेर	२ दाम
अनन्नास	जाड़ा	१	४ ,,	सदाफल[5]	हमेशा	१	१ दाम
कमला[3]	जाड़ा	२	१ ,,	ख़रबूज़ा	ग्रीष्म	प्रतिमन	४० दाम
ऊख	जाड़ा	२	१ ,,	तरबूज़	वर्षा के	१	२दाम से १०
कटहल	ग्रीष्म	२	१ ,,		अंत में	..	दाम तक
केला	वर्षा	२	१ ,,	खिरनी	वर्षा	प्रतिसेर	४ दाम
बेर	जाड़ा	प्रतिसेर	२ ,,	महुआ	ग्रीष्म	,,	१ दाम
अनार	वर्षा	प्रतिमन	८० से १०० दाम तक	डीफल[6]	शरद	,,	४ दाम
				तेंदू	ग्रीष्म	,,	२ दाम
अमृतफल[4]	,,	२	१ दाम	उसीरा[7]	जाड़ा	..	..
अंजीर	ग्रीष्म	प्रतिसेर	१ दाम	खजूर	वर्षा	प्रतिसेर	४ दाम

१—फ़िलबर्ट(Filbert) नामक विलायती मेवा (Blochmann)। यह फल बेर के समान लाल रंग का होता है। इसकी बनावट मनुष्य की अंगुलियों की पोरों जैसी होती है। कवि प्रायः प्रियतम के होठों की इससे उपमा देते हैं। किन्तु मैंने जो कानपुर के अत्तारों के यहाँ फुन्दुक़ देखा है, वह कंजे की शक्ल से मिलता-जुलता है। उसकी मींगी बहेरे की मींगी के सदृश, परन्तु कुछ बड़ी होती है।

२—फलों के विवरण आगे देखिये।

३—आसाम-बँगाल की मीठी नारंगी।

४—संस्कृत के कोषों में नाशपाती; गुजराती और मराठी में रामफल; ब्लाक्मैन के "आईन" के अनुवाद में अमरूद।

५—संस्कृत में श्रीफल या बेल। ब्लाक्-मैन के अनुवाद में शरीफ़ा (Custard apple); किन्तु फ़ुटनोट में लिखा है कि मूलग्रंथ में जो यह लिखा है कि यह बारहो मास फलता है, सो ग़लत है। यह बात अगले फल अर्थात् ख़रबूज़े पर लागू होती है। (Blochmann's translation P. 66).

६—इसका उच्चारण डेफल भी है।

७—यह शब्द कोषों में नहीं मिलता है। मालूम होता है कि यह उशीर का अपभ्रंश है। उशीर का अर्थ गंडरे की जड़ या ख़स है, जो टट्टी और इत्र बनाने के काम आता है। पर उशीर की गणना फलों में नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हिन्दुस्तानी मीठे फल (शेषांश)

नाम	ऋतु	परिमाण	मूल्य	नाम	ऋतु	परिमाण	मूल्य
अंगुहल[१]	..	..	..	गुंभी	शरद	प्रतिसेर	४ दाम
डेला[२]	वर्षा	प्रतिसेर	१ दाम	करहरी[३]	ग्रीष्म	,,	४ ,,
गूला	,,	..	..	तररी[४]	..	..	..
भूलश्री	जाड़ा	प्रतिसेर	४ दाम	बंगा	वर्षा	२	१ दाम
तरकुल (ताड़ का फल)	ग्रीष्म	२	१ दाम	गूलर	वसन्त	प्रतिसेर	२ ,,
				पीलू[५]	ग्रीष्म	,,	२ ,,
पनियाला	वर्षा	,,	२ दाम	बरौता	ग्रीष्म	..	..
लहसोड़ा	ग्रीष्म	१ सेर	१ दाम	पियार	वर्षा	प्रतिसेर	४ दाम

सूखे फल।

नाम	ऋतु	परिमाण	मूल्य	नाम	ऋतु	परिमाण	मूल्य
नारियल	शरद	१	४ दाम	मखाना	शरद	प्रतिसेर	४ दाम
पिंडखजूर	ग्रीष्म	प्रतिसेर	६ ,,	सुपारी	,,	,,	८ ,,
अख़रोट	,,	,,	८ ,,	कँवलगट्टा	ग्रीष्म	,,	२ ,,
चिरौंजी	,,	,,	४ ,,	×	×	×	×

पकाकर खाये जानेवाले फल।

नाम	ऋतु	परिमाण	मूल्य	नाम	ऋतु	परिमाण	मूल्य
परवल	वर्षा	प्रतिसेर	१२ दाम	तुरई	वर्षा	प्रतिसेर	१½ दाम
कद्दू	,,	१	२ ,,	कंदूरी[६]	,,	,,	१½ ,,
बैंगन	सर्वदा	प्रतिसेर	१½ ,,	सेंब (सेम)	,,	,,	१½ ,,

१—अकोहर।

२—शेख़ूपुरा (पंजाब) में होता है।

३—पकने पर इसका फल काले अकोहर के समान होता है।

४—मराठी तरड़ी, कांटेदार वृक्ष, लाल बीज, तिक्त मधुर बन्यफल; शोलापुर ज़िले में होता है।

५—दक्षिणी भारत के एक कांटेदार वृक्ष का फल, जो लाल और काले रंग का होता है। यह वायु और गुल्म रोग नाशक होता है। किन्तु आबनूस का फल तेंदू कहलाता है।

६—कुंदुरू।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पकाकर खाये-जानेवाले फल (शेषांश)

नाम	ऋतु	परिमाण	मूल्य	नाम	ऋतु	परिमाण	मूल्य
पेठा	वर्षा	प्रतिसेर	८ दाम	गाजर	शरद	प्रतिसेर	१ दाम
करेला	,,	,,	१½ ,,	सिंघाड़ा	वर्षा	,,	३ ,,
ककोरा[१]	,,	,,	१½ ,,	सालक[२]	शरद	,,	२ ,,
कचालू (बंडा)	,,	,,	२ ,,	पिंडालू	,,	,,	२ ,,
चचेंडा	,,	,,	२ ,,	सियाली[३]	ग्रीष्म	,,	..
ज़मीक़न्द	,,	,,	१ ,,	कसेरू	शरद	,,	३ दाम

हिन्दुस्तानी खट्टे फल।

नाम	ऋतु	परिमाण	मूल्य	नाम	ऋतु	परिमाण	मूल्य
नींबू	ग्रीष्म	४	१ दाम	घीप[४]	वर्षा	—	—
अमलबेत	वर्षा	४	१ ,,	बिजौरा	,,	१	८ दाम
गलगल	,,	२	१ ,,	आँवला	ग्रीष्म	प्रतिसेर	२ ,,

खटमिट्ठे फल।

नाम	ऋतु	परिमाण	मूल्य	नाम	ऋतु	परिमाण	मूल्य
इमली	ग्रीष्म	प्रतिसेर	२ दाम	कैथ	वर्षा	४	१ दाम
बड़हल	,,	१	१ ,,	कांकू	—	—	—
कमरख	शरद	४	१ ,,	पाकर	वर्षा	२ सेर	१ दाम
नारंगी	,,	२	१ ,,	करना	,,	१	१ ,,
पहाड़ी अंगूर	ग्रीष्म	—	—	लभेड़ा	ग्रीष्म	—	—
जामुन	वर्षा	प्रतिसेर	१ ,,	जंभीरी	वर्षा	५	१ दाम
फालसा	ग्रीष्म	,,	१½ ,,	गरना	—	—	—
करौंदा	वर्षा	,,	१ ,,				

१—बन करेला।
२—भसींड़ा, कमल की जड़।
३—बिदारीकंद।
४—एक अप्रसिद्ध फल (लुग़ाते-कबीर)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिन्दुस्तान के फल मीठे, खटमिट्टे और खट्टे होते हैं, और हर एक फल नाना प्रकार का होता है। उनमें से कुछ सूखे भी मज़ा देते हैं और कुछ आग में पकाकर उपयोग में लाये जाते हैं। अस्तु मैं कई-एक को गिनाता हूँ, और कुछ का थोड़ा-सा विवरण लिखता हूँ।

आम—इसे फ़ारसी भाषा में नग़ज़क कहते हैं; जैसा कि मीरख़ुसरो अपने एक पद्य[1] में कहता है। रंग, सुगंध और स्वाद में यह फल अद्वितीय होता है। ईरान और तूरान के कुछ विचारवान् आम को, ख़रबूज़े और अंगूर से भी अधिक उच्चपद प्रदान करते हैं। आकार-प्रकार में वह ज़र्दआलू, बिही, नाशपाती और ख़रबूज़े के समान होता है। तौल में वह सेर भर का और कभी इससे भी भारी होता है। वह हरा, पीला, लाल विभिन्न रंगों का तथा स्वाद में मीठा और खटमिट्ठा होता है। आम[2] का वृक्ष सुहावना होता है, विशेषकर नौरस। वह अख़रोट के पेड़ से अधिक बड़ा होता है। उसके पत्ते बेंत के पत्तों के सदृश, परन्तु उनसे बड़े होते हैं। पतझड़ में गिर जाने के बाद, वे नए-नए हरे पीले, नारंगी, आड़ू तथा आग के रंग के निकल आते हैं। वह वसन्त ऋतु के आरम्भ में फूलता है, और उसका फूल अंगूर के फूल के समान होता है। वौर सुगंधित होता है, और वृक्ष में लगा हुआ बहुत ही विलक्षण मालूम पड़ता है। जब फल आ जाता है, तो उसमें एक मास के पश्चात् खटाई आती है तब उससे मुरब्बे और अचार बनाते हैं।

१—नग़ज़क ख़ुश नग़ज़कुने बोस्तां;
नग़ज़-तरीं नेमते हिन्दोस्तां।
मेवए नग़ज़क हमज़ आग़ाज़ तर;
ताहद अंजाम सज़ावारख़ुर।

अर्थात् भारतवर्ष का यह अपूर्वतम फल प्रारंभ से समाप्ति तक खाने योग्य होता है। नग़ज़क का अर्थ अपूर्व, उत्तम और स्वादिष्ट है। "क़ुरानुरसादैन"

२—आम उत्तर पश्चिमी सीमा-प्रान्त को छोड़कर, सारे भारतवर्ष में होता है। भूटान से कुमायूँ तक हिमालय पर इसके जंगली पेड़ भी पाये जाते हैं। बीज से पैदा हुये आमों को बीजू या तुख़्मी आम कहते हैं। अकबर के राजत्व-काल में कदाचित् क़लमी आम लगाने की प्रथा अप्रचलित थी। 'आईने-अकबरी' में क़लमी आमों का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। क़लमी आम लगाने की तरकीब यह है :—

एक गमले में बीज रखकर पौधा उत्पन्न करते हैं, और उसे उत्तम पेड़ के पास लेजाकर इसकी एक डाली उत्तम पेड़ की डाली से कसकर बाँध देते हैं। जब दोनों डालें एक होजाती हैं तो गमले के पौधे को अलग कर लेते हैं। दूसरी रीति यह है कि बढ़िया आम की पतली डाली को काट कर बीजू पौधे के ठूँठ में मिट्टी के साथ कसकर बाँध देते हैं। कुछ दिनों में वे दोनों जुड़ जाते हैं। आम के लिए हड्डियों की खाद अधिक उपयोगी है। आम के अनेक भेद हैं; जैसे बम्बई, मालदह, लंगड़ा, दशहरी, सफ़ेदा आदि।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जब तक उसकी गुठली कड़ी नहीं होती, क़लिये[1] में स्वाद बढ़ाता है। जब पेड़ पर उसको चोट पहुँचती है, अधिक सुगंधित हो जाता है, उस आम को **कोयलास** कहते हैं। बहुधा कच्चा तोड़ लेते हैं, और विशेष विधि से सुरक्षित रखते हैं; इस रीति से पकाया हुआ आम अधिक स्वादिष्ट होता है। अधिकतर आम ग्रीष्म ऋतु में पकने लगते हैं और वर्षा तक पक जाते हैं। कुछ वर्षा काल के आरम्भ में पकना शुरू होते हैं और जाड़े के आरंभ तक परिपक्व होजाते हैं, उनको **भद्दिया** (भदैयाँ) कहते हैं। बहुत कम पेड़ पूरे साल भर फूलते और फलते हैं। कुछ आम कच्चेपन में ही पक्के का काम करते हैं; वे शीघ्रता से तोड़ लिये जाते हैं। यदि कुछ दिन और पेड़ में लगे रहें तो मिठास की अधिकता से उनमें कीड़े पड़ जाँय। आम हिन्दुस्तान में सब जगह फलता है, परन्तु बँगाला, गुजरात, मालवा, खानदेश और दक्षिण में बहुत फलता है। वह पंजाब में बहुत कम होता है। पर जब से सम्राट् ने लाहौर को राजधानी बना लिया है, तब से वहाँ भी कुछ अधिक होने लगे हैं। आम का वृक्ष चार वर्ष में फलता है। पेड़ को दूध और शीरे से भी सींचते हैं, इससे मिठास बढ़ जाती है। वह एक साल अधिक फलता है और दूसरे साल उससे कम। परन्तु कोई वृक्ष एक साल बिलकुल नहीं फलते। जब आम अधिक खाया जाता है, तो उसकी गुठली के गूदे को दूध के साथ पीते हैं, इससे वह पच जाता है। पुरानी गुठली का गूदा स्वादिष्ट और खटमिट्ठा होता है। दो-तीन साल की गुठली ज़हरमोहरे का काम देती है। यदि अधपका आम दो अंगुल डाली सहित तोड़ लें, और टूटी डाली के सिरे पर गर्म मोम लगाकर गाय के घी या शहद में रख दें, तो दो-तीन महीने तक स्वाद नहीं बदलेगा और एक वर्ष तक रंग नहीं परिवर्तित होगा।

अनन्नास—इसको सफ़री कटहल भी कहते हैं। आश्चर्य यह है कि अनन्नास के पौधे को नाँद में लगाकर यात्राओं में साथ रखते हैं और वह फलता है। रंग और शक्ल में वह लम्बे खट्टे के समान होता है और सुगंध तथा स्वाद में आम के सदृश। उसका पौधा एक गज़ लंबा होता है, और पत्ते हाथ के आकार के आरेदार होते हैं। फल पौधे के ऊपर लगता है और उस पर कुछ पत्तियाँ उग आती हैं। जब फल पेड़ से तोड़ते हैं तो उन पत्तियों को पृथक् करके अलग-अलग लगा देते हैं, वे फलती हैं। अनन्नास एक बार से अधिक नहीं फलता और उसमें एक से ज्यादा फल नहीं आता।

१—देखिये व्यंजनों की सामग्री—पृ० १२२।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कमला—(नारंगी) केसरिया रंग का, बिही जैसा; हिन्दुस्तान के श्रेष्ट फलों में से है। उसका वृक्ष नींबू के पेड़ के समान होता है और फूल कुछ सुगंधित होते हैं।

ऊख—फ़ारसी भाषा में इसे नैशकर कहते हैं। यह अनेक प्रकार की होती है। एक क़िस्म की ईख इतनी रसीली और कोमल होती है कि गौरैया के चोंच मारने पर उससे रस टपकने लगता है। यदि वह हाथ से छूट कर ज़मीन पर गिर पड़े तो चूर-चूर हो जाय। यह दो तरह की होती है—**कोमल** और **कठोर**। गुड़, शक्कर, क़ंद और मिस्री कठोर ईख से बनाये जाते हैं, जिनसे नाना प्रकार की मिठाइयाँ बनती हैं[१]।

१—भारतवर्ष में ऊख, गुड़ और शक्कर बहुत प्राचीन काल से हैं। ऋग्वेद् १०, ६१, १४ (ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिश्रुतम्) में मिश्री का उल्लेख हुआ है। पं० रघुनन्दन शर्मा ने "वैदिक सम्पत्ति" पृ० ७१५ में वैदिक कालीन आर्यों के भोजन पर विचार करते हुये सप्रमाण सिद्ध किया है कि घी, दूध, मिश्री, जल और फल ही आर्यों के प्रधान आहार रहे हैं। महाभारत आश्रम वासी पर्व अ० १ में खाण्डविकों द्वारा खांड (खाण्डव गुजराती में खांड या शक्कर को कहते हैं और खांड से खाद्य पदार्थ बनाने वाले को खाण्डविक) के मिष्ट पदार्थ बनाये जाने का वर्णन है (चिन्तामणि विनायक वैद्य, महाभारत मीमांसा, पृ० २६०-६१)। पुराणों में ऊख या उक्ष की उत्पत्ति उस अस्थायी स्वर्ग में बतलाई गई है, जिसको विश्वामित्र ने राजा सत्यव्रत या त्रिशंकु (सत्यव्रती राजा हरिश्चन्द्र के पिता) को सशरीर स्वर्ग भेजने के लिए निर्मित किया था। ऊख, गुड़ और शक्कर में कब और कहां कैसे-कैसे परिवर्तन हुये, इसका उल्लेख 'नोयल डियर' की प्रसिद्ध पुस्तक 'केन-शुगर' (Noel Deerr, Cane-Sugar) के आधार पर किया जाता है :—

इतिहास—३२७ ईसा के पूर्व—सिकन्दर महान् के सैनिकों ने, यूरोप के सब से पहले आगन्तुकों में, भारतवर्ष की इस अपूर्व निधि—ऊख—को देखा था।

६०० ई०—चीन के सम्राट् तसाई हेंग (Tasai Heng) ने अपने गुमाश्तों को शक्कर बनाने की कला सीखने के लिए बिहार भेजा। उस समय बाज़ार में गुड़ का प्रचलन था। फिर यह धंधा पश्चिम दिशा को गया और फ़ारस तथा उसके आस-पास के प्रदेशों में इसकी उन्नति होने लगी। नेस्टोरियन साधुओं (ये लोग पाँचवीं शताब्दी में कुस्तुन्तुनिया के चर्च के अध्यक्ष नेस्टोरियस के अनुयायी थे। उसका कहना था कि ईसा देवरूप भी है और मानवरूप भी। उसका देवत्व ईश्वर से और मानवता 'मेरी' से है। इस मत के अनुयायी आजकल अर्थात् बीसवीं शताब्दी में मेडीटेरैनियन प्रदेश, ग्रीस और मिस्र तथा कहीं-कहीं अमेरिका और लंदन में भी पाये जाते हैं) ने फ़रात के मुहाने गौडीशापुर में पहले-पहल साफ़ करके सफ़ेद शक्कर बनाई।

६२७ ई०—बाईज़ैंटाइन्स् (Byzantines) द्वारा दस्तगर्द (फ़ारस) लेने पर लूट के प्रसंग में शक्कर का उल्लेख हुआ है।

६४१ ई०—अरबों ने मिस्र को जीता और वहाँ ऊख को प्रविष्ट किया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसकी खेतीबारी का तरीक़ा यह है कि बढ़िया ऊखें ठंढी जगह में रख छोड़ते हैं और उन पर नित्य-प्रति पानी छिड़कते रहते हैं। जब सूर्य कुम्भ-राशि में होता है, तो कृषक उनके बालिश्त-बालिश्त भर के अथवा उससे ज्यादा लंबे

मेडीटेरैनियन प्रदेश में इस धंधे का आरम्भ यहीं से हुआ।

७५५ ई०—अब्दुर्रहमान प्रथम ने स्पेन में ऊख का चलन चलाया।

८२७ ई०—अरबों ने ऊख को सिसली में पहुँचाया। इसी बीच में उच्चकोटि की क़लमी शक्कर मिस्र में तैयार हुई। (मिस्र देश में तैयार होने से बाहर वालों ने उसका नाम मिस्री रक्खा)।

११५० ई० तक स्पेन में भी इस उद्योग ने बड़ी उन्नति की। इसके बाद ईसाइयों ने मुसलमानों को भगा दिया। यह अरबों की सभ्यता के स्मारक के रूप में अब भी विद्यमान है।

१२६४ ई०—इंग्लैण्ड के शाही घराने में सब से पहले शक्कर इस्तेमाल की गई।

१३१६ ई०—विनीशियन व्यापारी टोमासो लोरेनो (Tommaso Loredno, a Venetian merchant) ने उनके बदले में शक्कर के दो जहाज़ इंग्लैण्ड भेजे। उनको समुद्री डाकुओं ने लूट लिया।

१३४० ई०—पुर्तगीज़ों द्वारा ऊख वेस्ट इंडीज़ में पहुँची और मेडीटेरैनियन इण्डस्ट्री की तबाही हो गई।

१४४६—पीत्रो स्पेसियाले (Pietro Speciale) ने तीन बेलनों का कोल्हू बनाया।

१५००-१६००—शक्कर का धंधा यूरोपियन देशों में फैला।

१५४०—ऐण्टवर्प (बेलजियम) ने इंग्लैण्ड को शक्कर भेजी।

१५४४—इंग्लैण्ड के दो कारख़ानों (Refineries) में शक्कर का काम जारी हुआ।

१५७३—जर्मनी में शक्कर बनाने का काम शुरू हुआ।

१६१५—जापान में पहले-पहल शक्कर बनी।

१६३७—जावा से विदेश को पहली बार शक्कर भेजी गई।

१८०२—आर्चर्ड फ़र्स्ट ने साइलेशिया में चुक़न्दर की शक्कर (Beet Sugar) बनाई।

१८०२-१४—नैपोलियन प्रथम ने चुक़न्दर की शक्कर का उद्योग स्थापित किया।

१८०५—शक्कर के उद्योग में स्टीम-इंजिन (Steam Engine) का अधिक प्रयोग हुआ।

१८१०—हड्डी के कोयले (Animal Charcoal) से रस छानने की प्रथा जारी हुई। इससे रस साफ़ हो जाता है।

१८३२—लोज़ियाना (अमेरिका) में वायु रहित बन्द कड़ाह (Vacuum Pan) चालू हुआ। इसके प्रयोग से स्टीम का ख़र्च कम होता और शक्कर का दाना छोटा बड़ा बनाया जा सकता है।

१८३६—जावा में वायु रहित कड़ाह का प्रचार हुआ।

१८३७—पेनज़ोल्ट (Penzoldt) ने सेण्ट्रीफ़्यूगल मशीन (Centrifugal machine) का आविष्कार किया। यह टोकरी या ड्रम के आकार की होती है और इसके आस-पास जाली लगी रहती है। सिलेण्डर के घूमने पर यह ख़ूब घूमती है, जिससे शीरा निकल जाता है।

१८४०—भारतवर्ष में ऊख सम्बन्धी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

टुकड़े करते हैं, और पहले से मुलायम बनाई हुई जमीन में उसको लिटा देते हैं तथा मिट्टी से ढांक देते हैं। जो ऊख अधिक कड़ी होती है, उसे और ज़्यादा

अनुसन्धान-कार्य आरम्भ हुआ।

१८४९—सफ़ेद शक्कर बनाने के लिए गंधक का प्रयोग आरम्भ हुआ।

१८५९—चुक़न्दर की शक्कर में डबल कार्बोनेशेन (Double Carbonation) का प्रयोग आरम्भ हुआ। रस में ज़्यादा चूना डालकर कार्बन डाईआक्साइड गैस से उसे बिठला देते हैं, जिससे रस का मैल बैठ जाता है; फिर रस को छान लेते हैं।

१८७६—ऊख की शक्कर में उपर्युक्त प्रक्रिया की गई। (विशेष विवरण के लिए Dictionary of Economical Products देखिए)।

उपर्युक्त विवरण से संसार में शक्कर-व्यवसाय के प्रचार तथा उसकी उन्नति का पता लगता है। ऊख और चुक़न्दर के अतिरिक्त मैप्ल वृक्ष (Maple-tree विशेषतर कनाडा और अमेरिका के पूर्वीय भागों में होता है। कनाडा का राष्ट्रीय चिन्ह इसी वृक्ष की पत्ती की आकृति का है), हिन्दुस्तानी जुआर, एक घास (Sorghum grass) और खजूर की अनेक जातियों से भी शक्कर बनती है। परन्तु इनमें से आज कल यह विशेष रूप में ऊख और चुक़न्दर से ही बनाई जाती है। गन्ना २० फ़ुट तक बढ़ता है, किन्तु बहुधा वह १२ फ़ुट से अधिक नहीं जाता। [आजकल जाति-संकरी-प्रथा (Cross-breeding) द्वारा कोयमबटोर (Imperial Sugarcane station, Coimbatore) में उत्तम गुण सम्पन्न गन्ना पैदा करने का यत्न किया जा रहा है (Review of the Sugar Industry of India 1934-35)] इसे गर्म और तर ऋतु चाहिये। गन्ने में ११ से १६ फ़ीसदी तक शुद्ध शक्कर का अंश (Sucrose) रहता है किन्तु उसका औसत १३ फ़ीसदी तक का है। १८९० ई० से इस तरफ़ ऊख की समुन्नत जातियों की उपज का यत्न किया गया। शक्कर बनाये जानेवाले चुक़न्दर (Sugar Beet) की उत्पत्ति उस सफ़ेद चुक़न्दर से हुई, जो पहले साइलेशिया में घोड़ों के चारे के लिए बोया जाता था। क्रम-क्रम उत्तम बीज की छंटनी होते-होते उसके सुकरोज़ (Sucrose) में ५ से २० सैकड़ा तक की उन्नति हुई। इसका पौधा, गाजर की तरह ऊपर मोटा होता, और पत्तियाँ पौधे की चोटी पर लगतीं तथा भूमि तक छितर जाती हैं। फूल बहुत छोटे किन्तु हरापन लिये होते हैं, जो पीछे से बीज या फल के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। वर्तमान कालीन समस्त शक्कर बनाये जाने वाले चुक़न्दर फ्रान्स और जर्मनी के शुगर-बीट के दो समुन्नत भेदों से निकले हैं। चुक़न्दर की कुछ जातियों में २० फ़ीसदी तक सुकरोज़ होता है किन्तु औसत १६ फ़ीसदी का है, जैसा कि ऊख में १३ फ़ीसदी। १९१०-११ ई० में चुक़न्दर की व्यावसायिक शक्कर की उपज जर्मनी में प्रति एकड़ २·१९ टन थी और १९२५-२६ ई० में जावा में गन्ने की शक्कर की उपज प्रति एकड़ ५·५ फ़ी सैकड़ा थी, जो कि चुक़न्दर की शक्कर की उपज से लगभग २$\frac{१}{२}$ गुना अधिक थी। दोनों जिंसों के एक-एक एकड़ में १२ टन धुला हुआ चुक़न्दर और ४२ टन ऊख पैदा हुई थी। (Encyclopaedia Britannica, 14th Ed. 1929)

शक्कर-विशेषज्ञों का मत है कि शुद्ध शक्कर में सौ में सौ या ९९·९ फ़ीसदी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गहराई में गाड़ते हैं, और निरन्तर सिंचाई करते रहते हैं। सात-आठ महीने के बाद वह तैयार हो जाती है।

शक्कर (सुकरोज़) होती है, और गेंहुँआं रंगवाली में ९८·८ फ़ीसदी।

भारतवर्ष में पहले तेलियों के कोल्हुओं के आकार के लकड़ी और पत्थर के कोल्हू चलते थे। उन्हीं में ऊखें पेरी जाती थीं। रस को छानकर कड़ाह में औटाकर राब या गुड़ बनाते थे। फिर राब से सिवार के सम्पर्क से शक्कर बनाते थे। यह शक्कर सिवारी शक्कर कहलाती थी, जो खाने में अधिक लाभदायक बतलाई जाती है। ज्यों-ज्यों गुड़ या गन्ने से शक्कर बनाने के कारख़ाने बढ़ते गये, त्यों-त्यों पुराने ढंग से शक्कर बनाने का काम कम होता गया।

भारतवर्षमें शक्कर की उपज और खपत—पहले ज़माने से अब शक्कर की उपज भारतवर्ष में अधिक हो रही है। सन् १९३४-३५ ई० में भारतवर्ष में इस व्यवसाय के सब १५५ कारख़ाने थे, जिनमें से १४४ गन्ने की फ़ैक्ट्री और ११ गुड़ से शक्कर बनाने के कारख़ाने थे:—इन में से १० पंजाब में, ७४ युक्तप्रान्त में, ३४ बिहार वा उड़ीसा में, ७ बंगाल में, ३ बर्मा में, १२ मद्रास में, ६ बम्बई में, और ९ देशी राज्यों में। १९२६-२७ ई० में शक्कर के कुल ४७ कारख़ाने थे। उनमें गन्ने और गुड़ दोनों को मिलाकर (देशी तरीक़े से बनाई हुई शक्कर को छोड़कर) कुल १,२१,०२६ टन शक्कर बनी थी। पर १९३४-३५ ई० में ७,६८,११५ टन शक्कर बनी। इसमें से १३० कारख़ानों में गन्ने से ५,७८,११५ टन; १२ कारख़ानों में गुड़ से क़रीब-क़रीब ४०,००० टन और देशी तरीक़े से लगभग १,५०,००० टन शक्कर बनाई गई। भारतवर्ष में सब से अधिक ऊख की खेती संयुक्त-प्रान्त आगरा व अवध में होती है, जैसा कि सन् १९३४-३५ ई० की उपज सम्बन्धी नीचे की तालिका से प्रकट होता है:—

प्रान्त या देशी राज्य	ऊख का क्षेत्रफल एकड़ों में	गुड़ की पैदावार टनों में
संयुक्त प्रान्त (रामपुर राज्य सहित)	१८,३९,०००	२७,५८,०००
पंजाब	४,६२,०००	३,१६,०००
बिहार और उड़ीसा	४,४५,०००	६,७३,०००
बँगाल	२,७६,०००	४,९२,०००
मद्रास	१,२२,०००	३,२१,०००
बंबई (सिंध और देशी राज्यों सहित)	१,१२,०००	२,५८,०००
उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त	४३,०००	४३,०००
आसाम	३३,०००	३२,०००
मध्य-प्रदेश और बरार	२८,०००	४६,०००
दिल्ली	८,०००	५,०००
मैसोर	४५,०००	४१,०००
हैदराबाद	५१,०००	९३,०००
बड़ौदा	२,०००	३,०००
भूपाल	५,०००	४,०००
जोड़ ..	३४,७१,०००	५०,८५,०००

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यद्यपि लोग ईख के शीरे की भी शराब बनाते हैं, परन्तु गुड़ की मदिरा ज़्यादा अच्छी होती है। उसके खींचने के बहुत तरीक़े हैं। उनमें से एक यह है—

इसके अतिरिक्त बर्मा, अजमेर-मेरवाड़ा, ग्वालियर, कश्मीर, मध्यभारत, राजपूताना, बनारस राज्य, पंजाब के देशी राज्य और मद्रास के देशी राज्यों में ऊख की खेती के क्षेत्रफल का पंचवर्षीय औसत १,२५,००० एकड़ है, और गुड़ की उपज का अनुमान १,४३,००० टन है।

बर्मा के सीमा-मार्ग से १९३४-३५ ई० में २४ टन गुड़ भारतवर्ष में आया। उक्त वर्ष में जलमार्ग से भारतवर्ष से ११५३ टन ऊख और खजूर का असाढ़ा (Jaggery) बाहर गया। स्थल मार्ग से ४,१७६ टन गुड़ विदेश गया। भारतवर्ष से ६३,०८६ रुपए की ३६३ टन शक्कर जल मार्ग से बाहर गई। स्थलमार्ग अर्थात् भारतीय और बर्मी सीमा-मार्गों से होकर ३४,०३४ टन शक्कर बाहर गई। इसी वर्ष (१९३४-३५ ई०) २,११ लाख रुपए की २,२२,९०० टन शक्कर गुड़ के अतिरिक्त विदेशों से इस देश में आई। नीचे की तालिका से मालूम होता है कि किस देश से किस सन् में कितनी शक्कर यहां आई :—

शक्कर भेजनेवाले देश	१९१३-१४ ई० (युद्ध के पूर्व) टन	१९३४-३५ ई० टन
यूनाइटेड किंगडम	९००	१६,८००
सीलोन	१००	..
जावा	५,८३,०००	१,७५,९००
मारिशस	१,३९,६००	..
स्ट्रेट्स सेटिलमेण्ट्स	२,९००	२००
चीन और हांग-कांग	१,५००	३,९००
पुर्तगीज़ ईस्ट एफ्रिका	—	११,१००
जापान	१००	२,७००
जर्मनी	७००	२००
आस्ट्रिया-हंगरी	७४,०००	..
नेदरलैण्ड्स	—	१,८००
बेल्जियम	—	२,१००
फ्रान्स	—	१,०००
ज़िकोस्लोवैकिया	—	१००
यूनाइटेड स्टेट्स	—	..
अन्य देश	२००	७,१००
जोड़ ..	८,०३,०००	२,२२,९००
मूल्य (लाखों में)	१४,२९	२,११*

*(Review of the Sugar Industry of India 1934—35.)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एक मन गुड़ में, दस सेर बबूल की छाल को चूरा करके मिलाते हैं, और उसके ऊपर उससे तिगुना पानी डालते हैं। उससे मटके भर कर ज़मीन में गाड़ देते हैं और उनके आस-पास घोड़े की सूखी लीद छोड़ देते हैं। उसमें सात से दस

उपर्युक्त अंकों से मालूम होता है कि शक्कर की आयात में शनैः-शनैः कमी हो रही है। इसका कारण भारतवर्ष में शक्कर का अधिक परिमाण में बनने लगना है। "अब इस देश का ऊख-उपजाऊ देशों में एक महत्वपूर्ण स्थान है" (The Indian Year Book, 1934-35, P. 923)। स्थल-मार्ग से भारतवर्ष में विदेशी शक्कर नहीं आई। काठियावाड़ के बन्दरगाहों से होकर जो विदेशी शक्कर ब्रिटिश राज्य में आई, वह तौल में २७,५८० टन थी।

भारतवर्ष में शक्कर की खपत का पता नीचे के अंकों से चलता है :—

सप्लाई	टन
१ अप्रैल १९३४ का स्टाक	२५,३५०
१९३४-३५ में बिक्री के लिए १९३३-३४ में तैयार की हुई भारतीय शक्कर :—	
गन्ने की शक्कर ..	४,५३,९६५
गुड़ की शक्कर ..	६१,०९४
खंड़सारी रीति से बनाई हुई शक्कर ..	२,००,०००
जल-मार्ग से आई हुई	२,२२,९००
जल-मार्ग से काठियावाड़ के बन्दरों में आई हुई	१,१०,९६३
सप्लाई का जोड़	१०,७४,२७२
घटाया जाने वाला परिमाण	
जल-मार्ग द्वारा पुनर्निर्यात	२,६०४
जल-मार्ग द्वारा निर्यात ..	३६३
स्थल-मार्ग से निर्यात ..	३४,०३४
३१ मार्च १९३५ को जो माल स्टाक में था ..	२२,३७३
	५९,३७४
१९३४-३५ में खपने वाला माल ..	१०,१४,८९८

शीरा और मिठाइयाँ—१९३३-३४ ई० में ८,३७१ रुपए का ४१५ टन शीरा विदेश से इस देश में आया। १९३४-३५ में अनुमानतः ४,१०,००० टन शीरे की उपज भारतवर्ष में हुई। जाम और जेलीज़ (Jellies) को छोड़कर १३६० टन (मूल्य १७·९३ लाख रु०) की मिठाइयाँ आईं। इसी वर्ष २,४२,४४७ रुपए की ३५,४१८ पौण्ड सैकेराइन (Saccharine, शक्कर संबंधी पदार्थ) आई।

संसार में शक्कर की उपज—१९३४-३५ ई० में चुक़न्दर और ऊख की २,४९,०४,०० मीट्रिक टन शक्कर संसार में तैयार की गई, जिसका ब्योरा सहस्रों के मीट्रिक (१ टन=२७ मन ८$\frac{८}{९}$ सेर) टनों में दिया जाता है:—

बीट शुगर—(चुक़न्दर की शक्कर) यूरोप में, जर्मनी १६७३, डैनज़िग ३३, ज़िको स्लोवैकिया ६३८, आस्ट्रिया २२३, हंगरी १२०, फ्राँस १२२३, बेल्जियम २७०, नीदरलैण्ड्स २४३, पोलैण्ड ४४७, डेन्मार्क ९०, स्वीडेन २७२, इटली ३४५, स्पेन ३४९, युगोस्लैविया ६३, रूमानिया १०७, बलगेरिया २, स्वीज़रलैण्ड १०, यूनाइटेड किंगडम ६९४, आइरिश फ्री स्टेट ७५, फ़िनलैण्ड १२,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दिनों तक में उबाल आजाता है। उसके पक-जाने की पहचान यह है कि मिठास कसैली हो जाती है। यदि नशा ज्यादा तेज़ चाहते हैं, तो थोड़ा गुड़

लिटविया ६१, लिथुआनिया १७, टर्की (यूरोपीय और एशियाई) ६६ और एजोरेज़ ३—जोड़ ७०३६ मीट्रिक टन। सोवियट यूनियन १४६० मीट्रिक टन। अमेरिका में—यूनाइटेड स्टेट्स ११७८, कनाडा ५७, अर्जेन्टाइन ३, उरूग्वे १—जोड़ १२३६ मीट्रिक टन। एशिया में—जापान (होक्काइडो) ३६, मंचूरिया ४, ईरान ६—जोड़ ५२ मीट्रिक टन। आस्ट्रेलिया में—विक्टोरिया ६ मीट्रिक टन। बीट शुगर (चुक़न्दर की शक्कर) की कुल उपज ६७६३ मीट्रिक टन।

केन शुगर (गन्ने की शक्कर)—यूरोप में—स्पेन १८। अमेरिका में—लौज़ियाना और फ़्लोरिडा २५०, पोर्टोरिको ७०८, हवाई ८६२, वर्जिन आइलैण्ड्स २, क्युबा २६११, ट्रिनिदाद १२०, बरबडोस ४५, जमैका ७६, ऐंटीगुआ और सेण्ट किट्स आदि ५४, मार्टिनिक और ग्वाडेलोप ६०, डोमीनिकैन रिपब्लिक और हैटी ४६७, मेक्सिको २६६, ग्वाटेमाला, कोस्टारिका, हंडुरास, निकाराग्वा, सनसल्वाडोर, पनामा ३७, ब्रिटिश गाइना १३४, डच गाइना १८, अर्जेण्टाइना ३४२, ब्रैज़िल ६७५, पेरू ४००, वेनेज़ुयेला, कोलम्बिया, इक्वाडोर, बोलिविया और पाराग्वे ८१—जोड़ ७,५६८ मीट्रिक टन। एशिया में—ब्रिटिश इण्डिया ३१२०, जावा ७०३, जापानीज़ इम्पायर ११५४, फ़िलिपाइन आइलैण्ड्स ६३०, चीन, इण्डोचीन और स्याम २७५: जोड़ ५,८८२ मीट्रिक टन। एफ्रिक़ा से—मिस्र १३७, मारिशस १८३, रियूनियन ६४, साउथ एफ्रिकन यूनियन ३२५, मुज़म्बिक़ ८२, अंगोला, मडेरिया, मेडागास्कर, केनिया, यूगंडा, सोमालीलैण्ड, बेल्जियम कांगो और केप वर्डे ८६: जोड़ ८७७ मीट्रिक टन। आस्ट्रेलिया में—क्विन्सलैंड और न्यू साउथ वेल्स ६५१, फ़िजी आइलैण्ड्स ११५—जोड़ ७६६ मीट्रिक टन। केन शुगर (गन्ने की शक्कर) की कुल उपज १५,१११ मीट्रिक टन।

सन् १६३४-३५ में ६७,६३,००० मीट्रिक टन चुक़न्दर की और १,५१,११,००० मीट्रिक टन गन्ने की अर्थात् सब मिलाकर २,४६,०४,००० मीट्रिक टन शक्कर संसार में तैयार हुई। संसार भर में शक्कर की आयात का योग ८४,२२,००० मीट्रिक टन, निर्यात का जोड़ ८१,७५,००० मीट्रिक टन और खपत (Consumption) का जोड़ २,५६,३७,००० मीट्रिक टन रहा (Review of the Sugar Industry of India, During the Official year 1934-35, Supplement to the "Indian Trade Journal", May 21, 1936.)।

शक्कर का संरक्षण—जब शक्कर की उपज अधिक होती है तो उसके खपाने के लिए बाज़ारों की आवश्यकता पड़ती है। स्पर्धा होने पर संरक्षण का प्रश्न उपस्थित होता है। कभी अपने देश के माल को प्रोत्साहन देने के लिए भी बाज़ार पर अधिकार करना पड़ता है। दूसरों के मुक़ाबिले में लागत से बिना कम मूल्य पर बेचे बाज़ार पर अधिकार नहीं हो सकता। उस अवसर पर उसके संरक्षण के लिए सरकार की ओर से लागत सम्बन्धी क्षति-पूर्ति के लिए जो कर लगाया जाता है वह बाउण्टी ड्यूटी (Bounty Duty) कहलाती है। प्राचीन काल में इस प्रकार के संरक्षण का पता स्पष्टरूप

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और मिलाते हैं, और कुछ दवाइयाँ तथा सुगंधियाँ जैसे अंबर और कपूर आदि भी डालते हैं। वे इस मिश्रित में माँस भी गलाते हैं। कुछ लोग इसी मिश्रित को मैल छानकर इस्तेमाल करते हैं, पर अधिकतर उसका अर्क़ खींचते हैं।

अर्क़ कई प्रकार से खींचा जाता है। पहला तरीक़ा—वे उपर्युक्त मिश्रित (शराब) को तांबे की देग में भरते हैं, और उसके बीच में एक प्याला इस प्रकार रखते हैं कि न वह हिलता है और न उसमें पानी जाने पाता है। फिर देग के मुँह पर औंधा ढक्कन जमा देते हैं और उसे ख़मीर से जोड़कर मज़बूत कर देते हैं। इस ढक्कन में पानी भरते हैं, फिर आग जलाते हैं। जब पानी गरम हो जाता है, तो उसके स्थान पर ठंडा पानी भरते हैं। जब अन्दर की भाप ढक्कन तक पहुँचती है, तो उसकी ठंढक से अर्क़ हो जाती है और प्याले में भर जाती है। दूसरा तरीक़ा—देग को मिट्टी के प्याले से ढाँकते हैं, और उसी रीति से दृढ़ करते हैं। फिर दो नालियों के सिरों को उसमें जोड़ देते हैं। नालियों के दूसरे सिरों को एक-एक घड़े से, जो ठंढे पानी पर रक्खे रहते हैं, जोड़ देते हैं। भाप नलियों के द्वारा घड़ों में पहुँचती है और अर्क़ हो जाती है। तीसरा तरीक़ा—एक मिट्टी के मटके को उक्त काढ़े से भरते हैं और उसमें एक नालीदार चम्मच लगा देते हैं। चम्मच के दस्ते के सिरे को एक नली से जोड़ते हैं और उसे एक घड़े में लगा देते

से नहीं लगता है। परन्तु इधर मैशीनरी की वृद्धि के साथ-साथ शक्कर की उपज में भी अधिकता हुई, जिसके कारण सबको अपने-अपने माल की खपत की चिंता हुई। १८४० ई० में यूरोप के खुले बाज़ार में लागत से कम मूल्य पर बिकने से शक्कर की बिक्री और निर्यात पर बाउण्टी-सिस्टम द्वारा व्यवसाय को सहायता पहुँचाई गई। इसी प्रकार, १८९७ ई० में डिंगले टैरिफ़ (The Dingley Tariff) ने शक्कर की उपज पर यूनाइटेड स्टेट्स में बाउण्टी पर साम्यकर लगाया। १८९९ ई० में बाउण्टी-शुगर पर भारतवर्ष में कर लगाया गया। १९०२ ई० में बाउण्टी सिस्टम का अन्त हो गया। बिना संरक्षण के इस युग में किसी भी व्यवसाय का चलना असम्भव होता है। इस बात को दृष्टि में रखकर भारतवर्ष की वर्तमान ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने इस समय भी भारतीय शक्कर के संरक्षण के उपाय निकाले हैं।

गुड़, असाढ़ा और शक्कर के गुण दोष—विशेषज्ञों का मत है कि शुद्ध शक्कर में ९९·८ सुकरोज़ होता है। इससे उसमें सत्वांश (Vitamin) और क्षार (Mineral salt) जो कि जीवन के लिए परमोपयोगी पदार्थ हैं, शेष नहीं रहते और यदि रहते भी हैं तो नग्न मात्र को। इस कारण स्वास्थ्य के लिए शक्कर उतनी उपयोगी नहीं मानी जाती, जितनी कि वे वस्तुएँ जिनमें उपयुर्क्त दोनों पदार्थ विद्यमान रहते हैं। असाढ़े या शर्करा में शुद्ध शक्कर से सत्वांश और क्षार कुछ अधिक परिमाण में होता है। गुड़ में उक्त दोनों तत्व पर्याप्त अंश में वर्तमान रहते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं तथा मटके के ढक्कन में ताज़ा-ताज़ा ठंढा पानी भरते रहते हैं। अर्क़ पनालेदार चम्मच से होकर घड़े में आजाता है। कुछ लोग अर्क़ को दुबारा टपकाते हैं, उसको **दोआतशा** कहते हैं। यह अर्क़ बहुत तेज़ होता है। यदि शराब में हाथ डुबोकर आग में रख दें, तो आग लग जायगी और रंग-रंग की लपटें उठेंगी, परन्तु हाथ को हानि न पहुँचेगी। आश्चर्य यह है कि जब अर्क़ के बरतन में आग लग जाती है तो किसी चीज़ से नहीं बुझती; परन्तु जब उस बरतन का मुँह ढाँक देते हैं तो आग तुरन्त बुझ जाती है।

कटहल—कीपा[१] की शकल का, हरे रंग का, एक गज़ लंबा और आधा गज़ चौड़ा होता है। छोटा कटहल तरबूज़ के समान होता है। उसका छिलका काँटेदार होता है। फल तना, जड़ और शाखाओं में लगते हैं। ज़मीन के अन्दर का कटहल ज़्यादा मीठा होता है। जब दो टुकड़े करते हैं, तो उनमें चारों ओर कोये निकलते हैं, वे लसदार होते हैं; उनको खाते समय अंगुलियाँ चिपक जाती हैं। कटहल का पेड़ अखरोट के वृक्ष के समान होता है, वरन् उससे कुछ अधिक बड़ा, और पत्तियाँ ज़्यादा बड़ीं। उसका फूल, फल की तरह सुगंधित होता है। कटहल कच्चा भी तोड़ते हैं और चूना आदि से पका लेते हैं।

केला—उसका पेड़[२] भाले की तरह का होता है। उसके पत्ते मोटे तने से निकलते हैं; और अधिक मुलायम होते हैं। वे उत्तू की हुई बिना सिली बाँह

१—एक प्रकार का खाना है, जो भेड़ की अंतड़ियों को साफ़ करके, पचौनी में मसाला, चने की दाल और मांसादि रखकर पकाया जाता है। यह पेड़ भारतवर्ष के सब गर्म भागों में लगाया जाता है। किन्तु पूर्वी और पश्चिमी घाटों की पहाड़ियों पर स्वतः उगता है। इसमें फल माघ-फागुन में लगते और जेठ-असाढ़ में पकते हैं। ५०० तक फल लगते हैं। २५ सेर तक के फल देखे गये हैं। खुजा और घीला जातियों में से खुजा जाति का फल बढ़िया होता है। फल आठवें वर्ष में लगता और पन्दरहवें तक फलता है। नए पेड़ की डाली में, पुराने के तने में और बहुत पुराने की जड़ में फल लगते हैं। जड़ में फल लगने पर ज़मीन फट जाती और फल नज़र आने लगते हैं। इसकी छाल से ऐसा दूध निकलता है, जिससे रबर बन सकना संभव है। इसकी लकड़ी की नावें और चौखटें बनतीं हैं। इसकी छाल और बुरादे को उबालने से पीला रंग निकलता है, जिससे वर्मी-साधु अपने वस्त्र रंगते हैं।

२—यह गर्म स्थानों में होता है, जैसे भारतवर्ष, बर्मा, चीन, मलायाद्वीप, अमेरिका, दक्षिणी यूरोप और अफ़्रीका आदि। मर्तबान, चंपा, चीनिया, मालभोग आदि केले की अनेक जातियाँ हैं। फलियों की पंक्ति को पंजा और फलियों से भरे हुये पूरे डंठल को घौद कहते हैं। जावा द्वीप में केले की एक जाति ऐसी है, जिसका फूल पेड़ी के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के सदृश मालूम होते हैं, किन्तु बहुत लम्बे और बहुत चौड़े। बीच से सनोबरी शक्ल की और सौसनी रंग की जो चीज़ निकलती है, वही कली होती है। प्रत्येक गुच्छे में सत्तर-अस्सी केले होते हैं। केला आकार-प्रकार में छोटी ककड़ी के समान होता है और छिलका आसानी से उतर आता है। गरिष्ट होने के कारण केले अधिक नहीं खाये जा सकते। वह कई प्रकार का होता है। हर साल ठूँठ छोड़ कर उसका धड़ काट डालते हैं; यदि ऐसा न किया जाय तो वह न फले। साधारण मनुष्य जानते हैं कि कपूर इसी पेड़ से निकलता है; पर यथार्थ बात यह है कि वह इसी नाम का दूसरा पेड़ है, जिसका हाल आगे वर्णन किया जायगा। वे यह भी कहते हैं कि मोती केले से पैदा होता है, यह कथन भी सत्यता के प्रकाश से रहित है।

महुआ—इसका वृक्ष[१] आम के सदृश होता है। इसकी लकड़ी घर बनाने के काम आती है। इसके फूलों से शराब खींचते हैं। फल को गिलौंदा (गुलैंदा, कलेंदी) भी कहते हैं।

बाहर नहीं निकलता, वरन् वह भीतर ही भीतर फूलता और फलता है। इसके पेड़ में एक ही फल लगता है, जिसके पकने पर पेड़ी फट जाती है। इसका फल इतना बड़ा होता है, कि खाने पर चार आदमियों का पेट भर जाता है। फ़िलिपाइन द्वीप में भी बहुत बड़े-बड़े केले होते हैं। कुछ केले बिजारू भी होते हैं, जिनकी फलियों में गोल-गोल बीज भरे रहते हैं। इन्हें कठ-केला कहते हैं। आसाम और चटगाँव की ओर केलों के जंगल भी हैं। कच्चे केले को सुखाकर लोग आटा भी बनाते हैं। जो, हलका होने के कारण औषधि के काम में आता है। पत्तों के डंठलों के रेशों से चटाइयाँ बनाई जातीं तथा काग़ज़ भी तैयार किया जाता है।

१—हिमालय की तराई तथा पंजाब को छोड़कर सारे भारतवर्ष में इसके जंगल हैं। पंजाब में भी बाग़ों में यह लगाया जाता है। बीस-पच्चीस वर्ष में इसका फूलना-फलना आरम्भ होता और सैकड़ों वर्ष तक इसमें फल-फूल आते रहते हैं। महुए के फूल में शक्कर का आधा अंश होता है। इसके रस में रोटियाँ पूड़ी की तरह पकाई जा सकती हैं। महुए के फूल को कुचल कर आटे में मिलाकर जो रोटियाँ बनाई जाती हैं, उन्हें "महुअरी" और महुए की मदिरा को संस्कृत में "माध्वी" तथा गँवारू-भाषा में "ठर्रा" कहते हैं। वैद्यक के अनुसार इसका फूल मधुर, शीतल, धातुवर्द्धक तथा दाह, पित्त और वात-नाशक और हृदय-हितकारी एवं भारी होता है। इसका फल शीतल, वीर्यवर्द्धक, बलकारी, तथा वात, पित्त, दाह, तृषा, श्वास, क्षय-नाशक; छाल रक्त-पित्त शामक और व्रणशोधक तथा तेल कफ़, पित्त और दाह-नाशक होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भोलश्री—(मोलश्री) फूलदार और फलदार वृक्षों में से है[१]। उसका वृक्ष बड़ा और सुहावना होता है। फल नारंगी रंग का उन्नाब के सदृश होता है।

तरकुल—(ताड़) उसका फल और वृक्ष[२] नारियल के फल और पेड़ के समान होता है। जब बिना पत्ती का डंठल निकल आता है तो उसका सिरा काटकर एक घड़ा बाँध देते हैं। उससे रस टपकता है। बरतन दिन में दो तीन बार भर जाता है। इस रस को **ताड़ी** कहते हैं। टटकी ताड़ी मीठी होती है; यदि वह कुछ देर रक्खी रहे तो खटमिट्ठी हो जाती है और नशा करती है।

पनियाला—इसका फल ज़र्द-आलू के सदृश होता है, वृक्ष नीबू के समान और पत्ते बेत की तरह। फल कच्चेपन में हरा रहता है और पक जाने पर लाल।

गुंभी—इसका पौधा बेलदार होता है; पत्ते और फल कुनार की तरह वृक्ष की जड़ से निकलते हैं।

तर्री—जड़ में लगती है और अधिकतर पहाड़ों में होती है। साल भर की बेल में चक्की के समान वह न्यूनाधिक एक मन की होजाती है और दो साल में दो मन की। इसी प्रकार ज्यादा दिन रहने पर और अधिक भारी होजाती है। उसके पत्ते तरबूज़ के पत्तों के तुल्य होते हैं।

पियार—छोटे अंगूर के समान होता है जिगरी रंग का। वह खाने में स्वादिष्ट होता है[३]। उसकी गुठली की मींगी, एक प्रकार का तिलहन है और

१—मूल ग्रंथ में "बर दरख़्त-ओ गुल-ओ मेवा बरगुज़ारन्द" पाठ है। जो अशुद्ध है। ब्लाक्मैन ने लिखा है कि उक्त शब्दों का अर्थ समझ में नहीं आता (Blochmann's translation P. 70, note)। पर पाठ अशुद्ध होते हुये भी मैं वाक्यार्थ का जो निष्कर्ष निकाल सका हूँ उसे ऊपर व्यक्त किया है।

२—ताड़-वृक्ष में चैत के महीने में फूल और वैशाख में फल लगते हैं, जो भादों में पक जाते हैं। फलों के अन्दर का गूदा खाने-योग्य होता है। तामिल-भाषा के 'ताल-विलास' नामक ग्रंथ में सात सौ एक प्रकार के ताड़ बतलाये गये हैं। यह, बर्मा, सिंहल, सुमात्रा, जावा, और फ़ारस की खाड़ी में भी होता है। दक्षिणी भारत में बहुत ताल-वन हैं। प्राचीन काल में ताल-पत्रों पर ग्रंथ लिखे जाते थे। ताड़ की पुलटिस फोड़े के लिए बहुत उपयोगी है। ताड़ का रस कफ़, पित्त, दाह और शोथनाशक तथा कफ़, वात, कृमि, कुष्ट और रक्त-पित्त शामक माना जाता है। पहले ज़फना (सिंहल) से ताड़ की लकड़ी दूर-देशों को भेजी जाती थी।

३—पियार का वृक्ष लगाया नहीं जाता, प्रत्युत स्वतः उत्पन्न होता है। भारतवर्ष में यह विशेषकर विंध्याचल पर्वत के जंगलों में उगता है। दक्षिण भारत और थोड़ी ऊँचाई

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

खाने के काम में आती है। उसको चिरौंजी कहते हैं। उसका पेड़ एक गज़ी होता है।

नारियल—इसको जौज़े-हिन्दी भी कहते हैं[१]। इसका वृक्ष छुहारे के समान होता है, परन्तु उससे ज़्यादा बड़ा। इसकी लकड़ी सुहावने रंग की, और पत्ते बहुत बड़े होते हैं। यह सालभर बराबर फलता है, और तीन महीने में पक जाता है। कच्चे फल को, जब हरा होता है, तोड़ लेते हैं, और कुछ दिन तक सुरक्षित रखते हैं। उससे एक प्याला दूध के तुल्य पदार्थ निकाल लेते हैं, वह स्वादिष्ट होता है। बहुधा उसमें मिसरी मिलाकर ग्रीष्म ऋतु में पीते हैं। जब पक जाता है, चने के रंग का हो जाता है, और दूध जम जाता है। जब उस पर तेल चुपड़ देते हैं, काला हो जाता है। वह मीठा और चिकना होता है। उसे ताम्बूल में डालकर खाते हैं। ज़बान मुलायम और ताज़ी हो जाती है। उसके छिलके से, चमचे, प्याले और चिकारों के तूंबे बनाते हैं। वह चार आँखों का, तीन आँखों का, दो आँखों का और एक आँख का होता है।

तक हिमालय में भी इसके वृक्ष पाये जाते हैं। इसके पेड़ और पत्ते देखने में मझोले महुए के पेड़ और पत्तों के समान मालूम होते हैं। वसन्त ऋतु में आम के समान बौर आता और फिर फालसे के बराबर गोल फल लगते हैं। इन्हीं को पियार और अचार कहते हैं। इन फलों के अन्दर गुठली होती है। गुठली की ऊपरी तह खाई जाती है। इसका गोंद कहीं-कहीं माड़ी के काम में आता है। और छींपी इसका उपयोग करते हैं। छाल और फलों की वार्निश तैयार हो सकती है। लकड़ी यद्यपि कमज़ोर होती है तथापि उसके दरवाज़े और खिलौने आदि बनाये जाते हैं।

१—नारियल भारतवर्ष में समुद्र-तट से लगाकर सौ कोस की दूरी तक होता है। इससे अधिक दूरी पर यदि वह लगाया जाता है तो उसमें अच्छा फल नहीं आता। फूल सफ़ेद-सफ़ेद पतली-पतली मंजरी के रूप में लगते हैं। फल गुच्छों में फलते हैं। वैद्यक में इसका फल शीतल, दुर्ज़र, वृष्य, पित्त और दाह-नाशक तथा ताज़े फल का पानी ठंढा, हृदय के लिए हितकारी, दीपक और वीर्यवर्द्धक माना गया है। इसके पके फल को डेढ़ महीने तक घर में रखते हैं। फिर बरसात में हाथ-डेढ़ हाथ गहरे गड्ढे खोद कर उसे गाढ़ देते और राख तथा क्षार ऊपर से डाल देते हैं। कुछ समय पश्चात् उससे कल्ले फूटते हैं। छे महीने या वर्ष भर में वह पौधा दूसरी जगह लगाया जा सकता है। भारतवर्ष में नारियल बँगाल, मद्रास और बम्बई में लगाये जाते हैं। महाभारत और सुश्रुत में नारियल का "नारिकेल" के नाम से उल्लेख हुआ है। कथा सरित्सागर में "नारिकेल-द्वीप" का भी ज़िक्र है। एक प्रकार का नारियल "दरियाई-नारियल" कहलाता है। जो अफ़्रीका और अमरीका में समुद्र के किनारे-किनारे होता है। इसकी गिरी सूखने पर पत्थर के समान कड़ी हो जाती है। गिरी बहुधा औषधि के काम में आती है, और कड़े ख़ोल का संन्यासियों का कमंडल (जल-पात्र) बनता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रत्येक के पृथक्-पृथक् गुण वर्णन किये गये हैं? किन्तु लोग, अंतिम (एकाक्ष) को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। एक प्रकार का नारियल विष-नाशक औषधि होता है। नारियल बारह सेर तक का तथा इससे भी भारी होता है। उसके वृक्ष की छाल की रस्सियाँ बनाते हैं और बड़े-बड़े जहाज़ों के रस्से भी उसी से तैयार होते हैं।

पिंडखजूर—छुहारे को कहते हैं। उसका छोटा बिरवा ज़मीन से मिला रहता है। उसमें चार-पाँच सौ फल लगते हैं।

सुप्यारी—(सुपारी) फ़ारसी में इसको फ़ूफ़ल कहते हैं। उसका वृक्ष सुहावना होता है और सरो के समान बहुत लम्बा। तेज़ हवा में उसकी चोटी भूमि पर आ लगती है और फिर उठ खड़ी होती है। सुपारी कई प्रकार की होती है। कच्ची सुपारी का स्वाद क़रीब-क़रीब बादाम जैसा होता है। पकने पर वह कड़ी हो जाती है। उसे पान के साथ खाते हैं।

सिंघाड़ा—यह तीन कोने का होता है। उसकी बेल तालाबों में होती है और फल पानी की सतह पर तैरता रहता है। उसे कच्चा और भून कर खाते हैं।

सालिक—तालाबों में ज़मीन के नीचे होता है, और पानी में घुस कर निकाल लाते हैं।

पिंडालू—उसकी बेल लकड़ी पर दौड़ा देते हैं; वह दो गज़ तक बढ़ती है। उसके पत्ते पान के पत्तों के सदृश होते हैं। उसे जड़ खोद कर निकाल लेते हैं।

कसेरू—तालाबों में पैदा होता है। जब पानी सूख जाता है, ज़मीन से खोद कर निकाल लेते हैं। लोग उसे कच्चा खाते हैं और उबाल कर भी।

सीयाली—(एक कंद है, जो) गाजर की शक्ल का, पर उससे अधिक लम्बा होता है। वह लता की जड़ में लगता है।

नीबू—वह मुर्ग़े के अंडे के सदृश होता है। एक प्रकार का नीबू काग़ज़ी कहलाता है। उसके छिलके और गूदे के बीच में हलका सफ़ेद परदा होता है। फल रसीला और स्वादिष्ट होता है। एक प्रकार का नीबू सदा फलता है।

अमलबेत—नीबू के समान, बहुत खट्टा होता है। यदि उसमें फ़ौलादी सुई चुभो दें, तो थोड़ी देर में वह (सुई) पानी हो जायगी। कौड़ी या शंख उसके रस में गल जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

करना—सेब जैसा होता है। तीन साल के बाद उसमें फल लगता है। वह आरम्भ में हरा होता है तथा कड़वा और खट्टापन लिए रहता है; फिर पीला पड़ने लगता है और कड़वा हो जाता है। पकने पर लाल और मीठा हो जाता है। यदि देर तक रक्खा रहता है तो फिर हरा हो जाता है। उसका पेड़ नीबू के समान, पत्ते कुछ अधिक चौड़े, कलियाँ खाकी तीर के सदृश, फूल सफ़ेद और चार-चार पंखड़ियों के होते हैं। उसका सुनहला पराग बहुत सुगंधित होता है। उससे सुगंधियाँ तैयार करते हैं। उसका वृत्तान्त-वर्णन मुझ अनभिज्ञ की शक्ति से बाहर है; इसलिए[1] मैं इतने ही कथन पर सन्तोष करता हूँ।

तास्बूल—हरे शाकों में से है, परन्तु अनुभवी व्यक्ति उसको उत्तम फल मानते हैं, जैसा कि दिल्ली के मीर खुसरो का कथन है:—

नादिरा बर्गे चु गुले बोस्ताँ;
खूबतरीं मेवये हिन्दोस्ताँ।[2]

इसके खाने से मुँह सुगंधित और सभा सुरभित होजाती है। इससे दाँतों की जड़ मज़बूत होती है। क्षुधित खाने पर तृप्त और तृप्त खाने पर भूखा हो जाता है। पान कई प्रकार के होते हैं, मैं यहाँ पर कुछ का हाल लिखता हूँ। **१, बिलहरी**—यह सफ़ेद और चमकीला होता है। जीभ को खुरदरा और कठोर नहीं बनाता; और पानों में सबसे स्वादिष्ट होता है। जब उसे बेल से तोड़ लेते हैं, तो एक महीने तक सुरक्षित रखने पर सफ़ेद हो जाता है, और यदि यत्न करें तो केवल बीस दिन में। **२, काकेर**—यह पान सफ़ेद, चित्तीदार और भरा हुआ होता है। इसकी नसें कड़ी होती हैं। ज़्यादा खाने पर ज़बान सख़्त हो जाती है। **३, जैंसवार**—यह सफ़ेद नहीं होता। लोग लाभ-प्राप्ति के लिए इसे दूसरे पानों के साथ मिलाकर बेचते हैं। **४, कपूरी**—पीले रंग का, कड़ा और नसदार होता है, परन्तु स्वादिष्ट और सुगंधित। **५, कपूरकान्त**—हरे रंग का पीलापन लिये हुए होता है, और गोल मिर्च की तरह चरपरा। यह कपूर की तरह महकता है। दस पानों से अधिक नहीं खाये जा सकते। बनारस के अतिरिक्त और कहीं नहीं होता; और वहाँ भी हर ज़मीन में नहीं। **६, बँगला**—चौड़ा, भरा हुआ, कड़ा, रोयेंदार, गर्म और चरपरा होता है।

१—ब्लाक्मैन के अनुवाद में यह वाक्य नहीं है। (देखिये ब्लाक्मैन का अनुवाद पृ० ७२)।

२—फुलवाड़ी के फूल के सदृश यह अनोखा पत्ता है; भारतवर्ष का यह अत्युत्तम फल है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पान की खेतीबारी इस प्रकार होती है। चैत मास में नौरोज़[१] के आरम्भ में, करहंज पान को चार-पाँच अंगुल बेल सहित पृथक् कर लेते हैं और बनाई हुई ज़मीन में इस प्रकार गाड़ते हैं कि पत्ता और सिरे की गाँठ ऊपर निकली रहे। पन्द्रह से बीस दिन में उस गाँठ से नई दूसरी बेल उग आती है[२]। जब बेल में दूसरी गाँठ निकल आती है तो उससे नया पत्ता अंकुरित होता है। सात महीने तक बेल और पत्ते उगते रहते हैं; उसके बाद उनका पैदा होना बन्द हो जाता है। हर बेल में तीस पान से अधिक नहीं होते। जितना पौधा बढ़ता जाता है, उसे नरकुलों पर चढ़ाते जाते हैं। बेल के ऊपर और आस-पास लकड़ी और फूस से छा देते हैं और छाया में उसकी सेवा करते हैं। बरसात को छोड़कर उसे सदा सींचते रहते हैं। कभी-कभी दूध, तिल्ली का तेल और तिल की खली भी खेत में डालते हैं। पत्ते सात प्रकार से अधिक नहीं होते, और उनके नौ नाम हैं। वे[३] क्रम-क्रम से पकते हैं। लोग तोड़ कर रक्षा करते और काम में लाते हैं। पहला **करहंज**—इस पान को बीज के लिए अलग कर

१—जिस दिन सूर्य का मेष राशि में प्रवेश होता है। नव वर्षारम्भ दिवस।

२—पान का नाम वेदों, सूत्र-ग्रंथों, वाल्मीकि रामायण और महाभारत में नहीं पाया जाता। हाँ, वैद्यक ग्रंथों और पुराणों में उसका उल्लेख मिलता है। विदेशी पर्यटकों ने भारतीयों की पान-खाने की आदत का ज़िक्र किया है। यह पंजाब और सीमाप्रान्त में नहीं होता। इन सूबों को छोड़कर शेष भारतवर्ष में सर्वत्र पैदा होता है। सिंहल, जावा और स्याम आदि उष्ण वायुजल वाले देशों में इसकी उपज अधिकता से होती है। जो लता पुरानी हो जाती है और जिससे पत्ते निकलना बन्द हो जाते हैं, उसी की क़लमें तैयार की जाती हैं, जो नई खेती के काम में आती हैं। उड़ीसा में और जगहों की अपेक्षा पुरानी बेल से अधिक समय तक नए पत्ते निकलते रहते हैं, इसलिए पान की खेती वहाँ सब से अधिक लाभदायक है। कहीं-कहीं बेल भीटों पर न लगाकर किसी वृक्ष पर—प्रायः सुपारी के पेड़ पर—चढ़ा देते हैं। अबुलफ़ज़ल ने आईने-अकबरी के तीसरे ग्रंथ में मगही पानों का उल्लेख किया है। गया के मगही पान आज भी भारतवर्ष में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। इसकी नसें बहुत मुलायम और पतली होती हैं, और बीड़ा मुंह में खाते ही गल जाता है तथा अपूर्व आनन्द देता है। इसके बाद बंगला का नंबर है, फिर महोबिआ आदि। वैद्यक के अनुसार पान उत्तेजक, दुर्गन्धि-नाशक, उष्ण, कटु, तिक्त, कषाय, कफ़ और वात-नाशक, श्रम-हारक, दाँत और जीभ का शोधक है।

३—"पाया-पाया बिरसद-ओ जुदा साख़्ता परवरिश नुमायन्द-ओ बकार बरन्द"—इस वाक्य का अनुवाद ब्लाक्मैन के भाषान्तर में नहीं है (देखिये मूल आईने-अकबरी बंगाल एशियाटिक सोसायिटी द्वारा प्रकाशित पृ० ८१ तथा ब्लाक्मैन का अंगरेज़ी अनुवाद पृ० ७३)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लेते हैं, और **पेड़ी** कहते हैं; तथा पत्ता **गड़ौता** कहलाता है। दूसरा **नौती**; तीसरा **बहुती**; चौथा **छीव**; पांचवां **अधेंड़ा** या **अधिनीड़ा**; छठा **अगहनियाँ** इसे **लीवार** भी कहते हैं; और सातवां **करहंज**। गड़ौता को छोड़कर शेष हर प्रकार के पान को एक-एक मास पश्चात् वेल से तोड़ कर उसकी रक्षा करते हैं। कुछ लोग आख़िरी क़िस्म के पान को खाने के लिए पृथक्-पृथक् कर लेते हैं और कोई-कोई उसे लता सहित रख छोड़ते हैं, जो बीज के काम आता है। इस पान को वे बहुत बढ़िया ख़्याल करते हैं; कुछ पारखी पेड़ी को अत्युत्तम मानते हैं, और उसका मूल्य अधिक लगाते हैं।

पहले ११००० पानों का गट्ठा **लहासा** कहलाता था, पर आज-कल १४००० ताम्बूलों के गड्डे को उक्त नाम से पुकारते हैं। २०० पान के मुट्ठे को **ढोली** कहते हैं; ल्हासा इन्हीं से बनता है। जाड़े में पानों को हर चौथे-पांचवें दिन के बाद उलटते-पलटते और हाथ से खुटकते हैं, और गर्मियों में प्रति दिन। पाँच से पच्चीस तक और कुछ लोग इनसे भी अधिक पान एक दूसरे पर रखकर तरह-तरह के तरीक़ों से बनाते चुनाते हैं। एक पान में कुछ सुपारी और कत्था तथा दूसरे में चूना लगाकर लपेट देते हैं; कुछ कपूर और कस्तूरी भी डालते हैं, और रेशमादि से बाँध देते हैं; उसको **बीड़ा** कहते हैं। कभी-कभी पानों को बिखरा कर रकाबियों में चुन देते हैं, और उपयोग में लाते हैं। लोग उससे एक प्रकार का भोजन भी तैयार करते हैं।

आईन २६।

रसोत्पत्ति[1]।

यतः मैं व्यंजनों (ख़ुरिश) का कुछ हाल वर्णन कर चुका, अब रसों[1]

१—मूलग्रंथ में "आईने पैंदायश तअ़म" पाठ है, जिसका अर्थ "स्वादोत्पत्ति का नियम" होता है। स्वाद के लिए वैद्यक ग्रंथों में 'रस' शब्द है, जिसकी उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार है:—

सांख्यदर्शन में पुरुष और प्रकृति दो पदार्थ मूल माने गये हैं। पुरुष चेतन है और प्रकृति जड़। जगत् प्रकृति का ही विकृत रूप है। प्रकृति से महत्तत्व, महत्तत्व से अहङ्कार, अहङ्कार से पंच तन्मात्रों अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध की उत्पत्ति हुई है। इनको तन्मात्र इसलिए

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(स्वादों) की भिन्नता पर लिखता हूँ। उष्णता सूक्ष्म पदार्थ को तीक्ष्ण, स्थूल को कड़ुआ और मध्यम प्रकृति वाले (मातदिल) को खारी बनाती

कहते हैं कि ये विशुद्ध रहते हैं। इन में एक दूसरे का मेल नहीं रहता। इन्हीं से पंच स्थूल भूतों—आकाश, वायु, अग्नि, जल, और पृथ्वी की क्रमशः उत्पत्ति हुई। पंच महाभूतों के एक-एक भूत में कई भूत सूक्ष्मरूप से मिले रहते हैं। जैसे आकाश सत्व तो अकेला है और उसका गुण शब्द है, किन्तु वायु में आकाश मिला है। इसलिए शब्द तो इसका गौण गुण है और स्पर्श मुख्य है। इसी प्रकार अग्नि का मुख्य गुण रूप है, किन्तु आकाश और वायु के मिले होने के कारण शब्द और स्पर्श गुण उसमें गौणरूप से हैं। जल का मुख्य गुण रस है तथा उसमें शब्द, स्पर्श और रूप गुण गौणरूप से हैं। पृथ्वी का मुख्य गुण गंध है, किन्तु उसमें शब्द, स्पर्श, रूप और रस गौणरूप से हैं।

संसर्ग, आनुकुल्य और मिश्रण के कारण एक भूत का अंश दूसरे में तो रहता ही है किन्तु उत्कृष्टता और अपकृष्टता के अनुसार वह विभिन्न रूप में निर्दिष्ट होता है। जलीय गुण से उत्पन्न रस का जब अन्य भूतों के गुणों के साथ संघात होता है तभी षड्रस उत्पन्न होते हैं (क्ष्मांभोऽग्नि क्ष्मांऽबुतेजः खवाय्वग्न्यनिलगोऽनिलैश्च। द्वयोल्बणैः क्रमाद् भूतैर्मधुरादि रसोद्भवः—अष्टाङ्गहृदय सूत्र स्थान, अध्याय १०) इनकी उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार है:—

पृथ्वी और जल की अधिकता से			मधुर
अग्नि	,, पृथ्वी	,,	अम्ल
जल	,, अग्नि	,,	लवण
आकाश	,, वायु	,,	तिक्त
अग्नि	,, वायु	,,	कटु
पृथ्वी	,, वायु	,,	कषाय

भारतीय वैद्यक के अनुसार ये ही छे रस मुख्य हैं। परन्तु किसी-किसी के मतानुसार सब रस आग्नेय और सौम्य रस के अन्तर्गत हैं। जगत् में अग्नि और सोम के गुण मुख्य हैं; इसलिए मधुर, तिक्त और कषाय रस सौम्य रस के अन्तर्भूत माने जाते हैं; और कटु, अम्ल तथा लवण रस आग्नेय रस के। मधुर, अम्ल और लवण रस स्निग्ध एवं गुरु होते हैं, किन्तु कटु, तिक्त और कषाय रस रुक्ष अर्थात् स्निग्धता रहित और लघु होते हैं। सौम्य रसों में शीतलता और आग्नेय रसों में उष्णता का प्राधान्य रहता है।

जिस रस से परितोष, आह्लाद, तृप्ति, जीवन-रक्षा तथा श्लेष्मा (कफ़) की वृद्धि होती है, उसे मधुर रस कहते हैं। जिस रस के द्वारा दंत-हर्ष और रुचि उत्पन्न होती है वह अम्ल (खट्टा) रस है। जिस रस से जिह्वा के अग्रभाग में जलन तथा उद्वेग उत्पन्न होता, शिर दर्द पैदा होता और नाक से पानी गिरता है, वह कटु (चर्परा, कड़वा—जैसे सोंठि, मिर्च का स्वाद) रस कहलाता है। जिसके द्वारा मुख में निर्मलता, अन्न में रुचि तथा हर्ष उत्पन्न होता है; किन्तु जिसका निजी स्वाद अरुचिकर होता है (जैसे नीम और चिरायता आदि) उसे तिक्त रस कहते हैं। जिसके द्वारा वक्त्र (मुख) देश परिशुष्क, जीभ स्तंभित, कंठ बद्ध, हृदय-देश तक आकृष्ट और कुछ पीड़ित-सा मालूम होता है, उसे कषाय (कसेला, बकठा) रस कहते हैं। लवण रस प्रसिद्ध है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है। शीतलता हलके को खट्टा, भारी को मुंह-जकड़ाऊ और मातदिल को कसैला कर देती है। संकोचन-अवस्था (क़ब्ज़) के प्रभाव में केवल स्थूल जिह्वा जकड़ती

मधुररस के सेवन से रक्त, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि, ओज और शुक्र की वृद्धि होती है। यह दृष्टि, केश, वर्ण और बल-वर्द्धक है। घाव जुड़ जाता और रक्त शुद्ध हो जाता है। बाल, वृद्ध, युवा, क्षयरोग-ग्रस्त और दुर्बल के लिए हितकारी है। यह तृष्णा, मूर्छा और दाह-शामक है। किन्तु इसके अधिक सेवन से कृमि, श्वास, खांसी, आलस्य बढ़ते और वमनेच्छा होती है। सेवन-कर्ता का स्वरभङ्ग होता, गल-गंड, अर्बुद (बतौरी) और श्लीपद (फ़ील-पाव) जैसे रोग हो जाते तथा मूत्राशय और मलद्वार पर उपलेप हो जाता तथा नेत्रों में पीड़ा होती है। अम्लरस—जारक और पाचक है। इससे वायु शान्त और उसकी गति अनुलोम होती तथा कोष्ठ में जलन उत्पन्न होती है। यह क्लेदजनक और मुखप्रिय है। अधिक मात्रा में सेवन करने से दन्त हर्ष और लोम हर्ष होता है। इसी प्रकार, लवणरस—पाचक और संशोधक; कटुरस—पाचक, रेचक, अग्नि-दीपक तथा संशोधक; तिक्तरस—रुचिकर और दीप्तिवर्द्धक; कषायरस—संग्राहक और मल, मूत्र तथा श्लेष्मा आदि का रोकने वाला होता है।

उपर्युक्त छे रसों के मिश्रण से छत्तीस प्रकार के रस पैदा होते हैं, जैसे—मधुराम्ल, मधुरतिक्त, अम्ललवण, अम्लकटु, लवणकटु, लवणतिक्त, कटुतिक्त और तिक्तकषाय आदि। न्याय दर्शन के अनुसार परमाणुरूप रस नित्य और रसना द्वारा गृहीत होने वाला रस अनित्य है (विशेष विवरण के लिए चरक, चक्रदत्त, वाग्भट्ट और न्याय-दर्शन देखिये)।

रसों के सम्बन्ध में डाक्टरी मत कुछ भिन्न है। प्रो० स्टार्लिङ्ग ने ह्यूमन फ़िज़ियालोजी (Pro. Starling, Principles of Human Physiology, P.500, Second Ed., 1915) में लिखा है कि "प्रत्येक पदार्थ का स्वाद उसके रासायनिक अवयवों के संगठन पर निर्भर है, जैसे खटास हाइड्रोजेनाइन्स (Hions) पर और क्षार विशिष्ट आक्सीजन-हाइड्रोजेनाइन्स (O Hions) पर। सब अलफ़ा-अमाइनो-एसिडों (α-amino-acids) का स्वाद मधुर होता है। पालीपेप्टाइड्स (Poly-peptides) जो कि एमाइनों-एसिडों से बनते हैं तथा पेप्टोन्स (Peptones) जो कि प्रोटीनों (Proteins) के अवयवों से निर्मित होते हैं, कड़वे होते हैं। अल्कोहलें और शुगरें अधिकतर मीठी होती हैं किन्तु इनसे जो धातु पदार्थ बनते हैं, वे कड़वे होते हैं। हम लोग अभी तक कोई ऐसा केमिकल-ला (रासायनिक-नियम) नहीं जान सके हैं, जो यह बतलाता हो कि किसी पदार्थ का अमुक स्वाद क्या और क्यों होना चाहिये।" इस विषय में अन्य विशेषज्ञों का भी प्रायः ऐसा ही मत है। प्रो० हैलीबर्टन की फ़िज़ियालोजी के अनुसार डाक्टरी मत में चार रस मुख्य माने जाते हैं—मधुर, कटु, अम्ल और लवण (Sweet, Bitter, Acid, Saline)। मधुर रस का ज्ञान रसना के अग्र भाग से, अम्ल (खटास) का जिह्वा के किनारों से, और कटु या कड़वास का जीभ के पिछले भाग से होता है। रसनेन्द्रिय इतनी सूक्ष्म है कि वह गंधक के तेज़ाब के एक भाग को पानी के १००० भागों में से पृथक् कर देती है। भारतीय छुप गुड़हर (Gmnema Sylvestre)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है किन्तु कसैलेपन (अफ़ूसत) में अन्तर भी। माध्यमिक ताप पहले (सूक्ष्म) को चिकना, दूसरे (स्थूल) को मधुर और अन्तिम (माध्यमिक) को स्वाद रहित बनाता है। प्राकृतिक स्वाद इनसे अधिक नहीं हैं। कुछ लोग मौलिक स्वादों के चार भेद करते हैं, अर्थात्—मिठास, कड़वास, खटास और नमकीनी। इनके मिलने पर जो स्वाद उत्पन्न होते हैं, वे अगणित हैं। कुछ के नाम इस प्रकार हैं:—जैसे, बशाअ़त कड़वास और तीखेपन के मिश्रण को कहते हैं तथा ज़ऊक़ा नमकीनी और कड़वास के मिश्रण को।

आईन ३०।

सुगंधालय।

सम्राट् सुगंधियों[१] से प्रेम करता है, और इसको ईश्वरोपासना का साधन समझता है। अंबर और ऊद (अगर) से तथा उन सुगंधियों से जो कि सम्राट्

की पत्तियाँ चबाने के पश्चात् मधुर और कड़वे रस का स्वाद नहीं रहता है, किन्तु खट्टा और नमकीन स्वाद बना रहता है (Pro. Halliburton, Hand-Book of Physiology, P. 709-10, Fifth Edition, 1903)। प्रो० स्टुअर्ट ने अपने प्राणि-धर्म-विद्या-विषयक ग्रंथ (Pro. Stewart, Manual of Physiology, P. 966-67, 6th Ed., 1910) में लिखा है:—"जीभ का अग्रभाग, किनारे, जीभ की जड़, कोमल तालू के निकटवर्ती भाग और तालू का मध्यस्थान वास्तव में रसेन्द्रिय के अन्तर्गत हैं। किन्तु रसों के ज्ञान-प्रदायक क्षेत्र की निश्चित् सीमाएँ अभी निर्धारित नहीं हो सकी हैं। इस विषय में विद्वानों में मतभेद है।" उपर्युक्त मुख्य चार रस मानते हुये भी स्टुअर्ट का कहना है कि शेष अनेक गौण स्वाद हैं, जो इन्हीं के मिश्रणों से बनते हैं। हैलीबर्टन के विरुद्ध स्टुअर्ट के मतानुसार मिठास और खटास दोनों ही का ज्ञान जिह्वा की नोक से अच्छी तरह से होता है। स्टारलिङ्ग का कथन है कि यद्यपि उक्त चार ही रस प्रधान हैं तथापि कुछ ग्रंथकार जवाखार और धातु संबंधी (alkaline and metallic) दो रस और मानते हैं।

१—वैशेषिक दर्शन के अनुसार (व्यवस्थितः पृथिव्यां गन्धः) गन्ध गुण पृथ्वी का है। परन्तु अनेक आधुनिक विज्ञानवेत्ता जल में भी गंध मानते हैं। गंध घ्राणेन्द्रिय का विषय है। गंध के साधारणतया दो भेद हैं—एक सुगन्ध और दूसरा दुर्गन्ध। किन्तु "भारत" में इसके दस भेद लिखे हैं—इष्ट, अनिष्ट, मधुर, अम्ल, कटु, निर्हारी संहत, स्निग्ध, रुक्ष और विशद (इष्टश्चानिष्टगंधश्च मधुरोऽम्लः कटुस्तथा, निर्हारी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ने आविष्कृत की हैं एवं उन मिश्रणों से जो कि प्राचीन-विधि से तैयार किये जाते हैं, श्रेष्ठ राज-परिषद सदा सुरभित रहा करती है। सोने और चाँदी के विभिन्न आकृतियों के बने हुये धूप-पात्रों में सर्वदा धूप सुलगाई जाती है। सुगंधित पुष्प ढेरों संचय किए जाते हैं। फूलों से तेल बनाते हैं और उसे शिर के बालों तथा शरीर पर मलते हैं। बहुत से मन-मोहक एकत्र किये हुए सम्मिश्रणों में से कुछ का हाल लिख कर विषय को मनोरंजक बनाता हूँ।

१, संतोक्र—१½ तो० जवाद[1], १ तोला चोवा, २ माशा चमेली का तेल और २ शीशा गुलाब मिलाते हैं। शरीर पर मलने से आनन्द बढ़ाता है।

संघतः स्निग्धो रुक्षो विशद एव च)। इष्ट—जैसी कस्तूरी आदि की; अनिष्ट—जैसी मुर्दे आदि की; मधुर—जैसी मधु और फूल आदि की; अम्ल—जैसी आम और इमली आदि की; कटु—जैसी मिर्च आदि की; निर्हारी—जैसी हींग आदि की; संहृत—जैसी हरताल की; स्निग्ध—जैसी घी की; रुक्ष—जैसी सरसों और राई आदि की; विशद—जैसी चावल आदि की।

भारतवर्ष में सुगंधियों का प्रचार बहुत प्राचीन काल से है। क़न्नौज, जौनपुर, गाज़ीपुर और काश्मीर आदि अनेक स्थानों में सुगंधि द्रव्यों की उपज के लिए अनेक प्रक्रियाएं की जाती रही हैं। और उनका देश-विदेश में प्रयोग होता रहा है। आज-कल भी इस देश में बहुत उत्तम-उत्तम इत्र, तेल, धूप, अगरबत्ती, साबुन तथा अन्य सुगंधित पदार्थ तैयार होते हैं। सुगंधियों की खपत इस देश में इतनी अधिक है कि नाना प्रकार की सुगंधियाँ जैसे सेण्ट्स आदि पर्याप्त परिमाण में बाहर से आती हैं।

विदेशों में इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (Encyclopædia Britannica, Vol. 9 Ed. 13, 1929) के अनुसार इंग्लैण्ड, यूनाइटेड स्टेट्स, फ्रान्स और हालैण्ड में फूलों की उपज बहुत ज़्यादा होती है। फ्रान्स के अनेक भागों में और विशेषकर पैरिस के आस-पास गुलाब और काटदार फूलों के लिए काँच-घर (Glass-houses) बनाये गये हैं। हालैण्ड में नरगिसें-शहला, पीला नरगिस, लाला और संबुल (narcissi, daffodils, tulips and hyacinths) के रंगों की वसन्त ऋतु में ऐसी आग लगती है कि संसार में वैसा दृश्य कहीं नहीं दिखलाई पड़ता। यहाँ के खेत संसार की बीजू-पुतियों के मुख्य उत्पादक स्थान हैं, और प्रतिवर्ष बहुत बड़े परिमाण में सभी भागों को उनका निर्यात होता है फूल की खेती का क्षेत्रफल १५००० एकड़ है। और यह एम्सटर्डम तथा लेडेन के बीच में स्थित है। काटदार फूलों की उपज के लिए यहाँ भी कांच-घरों में बीजू-पुतियां लगाई जाती हैं। यहाँ से फूल बहुत बड़ी तौल में विशेषकर लाला इंग्लैण्ड, जर्मनी और फ्रान्स को भेजा जाता है। यूनाइटेड स्टेट्स में पुष्प-कृषि की बड़ी उन्नति हुई है, किन्तु कनाडा में उससे कम।"

१—इन पदार्थों का वर्णन आगे इसी आईन में हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२, अरगजा—$\frac{३}{४}$ सेर चन्दन, २ तोला इक्सीर और मेद, ३ तोला चोवा, १ तोला बनफ़्शा की जड़, १ तोला गेहला (एक जड़ी की जड़), $\frac{१}{२}$ माशा कपूर और ११ शीशे गुलाब इस्तेमाल करते हैं। गरमी में उसे बदन पर मलते हैं।

३, गुलकामा—१ तोला अंबर अशहब, $\frac{१}{२}$ तोला लादन, २ तोला बढ़िया कस्तूरी, ४ तो० बढ़िया अगर, ८ तो० इक्सीरे-अबीर[१]; इन सब को चूर्ण करके चीनी की थालियों में रखते हैं। एक सेर गुलाब के फूलों का रस निकालकर उसमें मिला देते हैं और सूर्य की धूप में सुखाते हैं। सायङ्काल, उसको गुलाब और अर्क़बहार (नारंगी के फूलों का अर्क़) से तर करके समाक़[२] पत्थर पर पीसते हैं। जब इसी प्रकार दस दिन बीत जाते हैं तो बहारनारंज (नारंगी के फूलों) का रस मिलाकर उसे सुखा लेते हैं। फिर अगले बीस दिनों में थोड़ा-थोड़ा स्याह रैहाँ का रस—जिसको नाज़बूएस्याह[३] भी कहते हैं—मिलाते हैं। इस मिश्रण का कुछ अंश अरगजा में भी मिलाया जाता है।

४, रूहअफ़्ज़ा—५ सेर अगर; १$\frac{१}{४}$ सेर चन्दन; १$\frac{१}{४}$ सेर लादन; इकसीर[४], लोबान और धूप (एक जड़ है, जो काश्मीर से लाई जाती है) में से हर एक ३$\frac{१}{२}$ तोला; २० तोला बनफ़्शा की जड़; १० तोला छरीला। इन सब औषधियों को कूटकर क़वाम[५] बनाकर मिलाते हैं। उसमें ४ शीशे गुलाब डालते हैं। फिर टिकियाँ बनाते और धूपदानियों में जलाते हैं। बहुत बढ़िया गंध आती है।

५, उबटना—एक प्रकार का सुगंधित साबुन है। २$\frac{३}{४}$ सेर लादन; १$\frac{१}{२}$ सेर ५ दाम अगर; उतना ही बहारनारंज; १$\frac{१}{२}$ सेर उसी का छिलका; १ सेर

१—बनाने की विधि इसी आईन में आगे है। देखिये नं० १२।

२—पत्थर जो सफ़ेद और मुलायम होता है।

३—श्यामा तुलसी।

४—इक्सीर या अक्सीर का अर्थ रसायन या अचूक-औषधि है। लुग़ाते-कबीर में इक्सीर का अर्थ छरीला लिखा हुआ है। तिब्बिया-कालेज दिल्ली के प्रिन्सिपल ने भी मेरे पत्रों के उत्तर में यही अर्थ लिख भेजा है। परन्तु यहाँ पर छरीला से अभिप्राय नहीं है; क्योंकि रूहअफ़्ज़ा के नुसख़े में छरीला और इक्सीर दोनों पड़ते हैं। उपर्युक्त आशय के जो पत्र अन्य महोदयों को लिखे गये हैं, उनके उत्तर अभी तक नहीं मिले हैं। इक्सीर शब्द की काफ़ी छानबीन की गई है किन्तु किसी भी हकीम से सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला। किसी कोष के अवलोकन से भी अभीष्ट सिद्ध नहीं हुआ।

५—पकाते-पकाते शहद की तरह गाढ़ा किया हुआ रस।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१० दाम चन्दन; १ सेर ५ दाम संबुलुत्तीब, जिसे हिन्दी भाषा में छड़ (बालछड़) कहते हैं; १ सेर ५ दाम छरीला; ३८½ तोला कस्तूरी; ½ सेर ४ तोला पाची[1] के पत्ते; ३६ तोला सेब; ११ तोला सुअ़द जिसे हिन्दी में मोथा (नागर मोथा) कहते हैं; ५ दाम बनफ़्शा; १ तोला २ माशा धूप; १½ तोला इकनकी (विशेष प्रकार की एक घास है।); उतना ही जुरम्बाद जिसे कचूर कहते हैं; १ तोला २ माशा लोबान; १०६ शीशा गुलाब; और ५ शीशा अर्क़बहार लेते हैं। सब को कूट-छान कर मंद-मंद आँच से गुलाब में पकाते हैं। जब तरी कम हो जाती है, उसे उतार कर सुखा लेते हैं।

६, **अबीरमाया**—अगर ४ दाम; चन्दन २ दाम; बनफ़्शे की जड़ १ दाम; बालछड़ ३½ दाम[2]; द्वालक ३ दाम; ख़ताई मुश्क ४ तोला; लादन २½ दाम; बहार नारंज ७½ दाम। सबको कूट-छान कर १० शीशे गुलाब में मंद-मंद आंच से पकाकर छाया में सुखा लेते हैं।

७, **किश्ता**[3]—२४ तोला अगर; छे-छे[4] तोला लादन, लोबान और चन्दन; चार-चार[5] तोला इक्सीर और धूप; दो-दो तोला बनफ़्शा की जड़ और कस्तूरी; १ तोला छरीला इन सब को ५० तोला मिस्री में मिलाकर दो शीशे गुलाब में मध्यम आंच से पकाकर टिकियां बांध लेते हैं। इनको (आग में) जलाने पर सुगंधि फैलती है और मन आह्लादित होता है।

१—मूल आईन में 'पाचा' और 'माचा' पाठ है; जो अशुद्ध है। वास्तव में यह शब्द पाची है, जिसे पची, मर्कतपत्री और हरितपत्रिका भी कहते हैं। यह एक लता है, जो वैद्यक के अनुसार कटु, तिक्त, कषाय और उष्ण है, तथा वातविकार, चर्मरोग और फोड़े-फुंसियों के लिए उपकारक है (शब्दसागर)।

२—३ दाम—ब्लाक्मैन (Blochmann's trans. P. 74)। किन्तु मूल ग्रन्थ में "सेध्ह्वनीम" अर्थात् ३½ पाठ है।

३—आलूबुख़ारा, शफ़्तालू, ज़र्दआलू तथा ऐसे ही फल, जिनको, गुठलियां निकालकर, सुखा लेते हैं; किन्तु यहां पर सुगंधित मिश्रण से अभिप्राय है।

४—६½ तोला—ब्लाक्मैन, (Blochmann's trans, P, 74)। किन्तु मूल आईन में "शश शश" अर्थात् छे छे पाठ है।

५—२ तोला—ब्लाक्मैन (ibid, P. 74) मूल आईन में "चहार चहार" अर्थात् चार चार पाठ है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

८, **बुख़ूर**—१ सेर अगर; १ सेर चन्दन; $\frac{१}{४}$ सेर लादन; २ तोला कस्तूरी; ५ तोला इक्सीर; २ सेर मिस्री; और १ शीशा गुलाब डालकर धीमी आंच देकर मिला लेते हैं।

९, **फ़तीला**—५ सेर अगर; ७२ तोला चन्दन; २५ तोला[१] इक्सीर; २५ तोला[२] लादन; २५ तोला[३] बनफ़्शा; १० तोला लोबान; ३ तोला मिस्री; सब को कूट-छानकर २ शीशे गुलाब में बत्तियां बना लेते हैं।

१०, **बारजात**—१ सेर अगर, ५ तोला लादन, २ तोला कस्तूरी, २ तोला चन्दन, १ तोला लोबान, $\frac{१}{२}$ तोला कपूर। चोये की तरह चुआ लेते हैं।

११, **अबीरइक्सीर**—$\frac{३}{४}$ सेर चन्दन, २६ तोला इक्सीर, २ तोला ८ माशा कस्तूरी। पीस कर छाया में सुखा लेते और इस्तेमाल करते हैं।

१२, **ग़सूल**[४]—३५ तोला चन्दन, १७ तोला कंतूल[५], १ तोला कस्तूरी, १ तोला चोआ, २ माशा कपूर, २ माशा मीद, २ शीशा गुलाब के साथ मिलाकर बना लेते हैं।

सुगंधियों की तालिका।

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
अम्बर अशहब	प्रति तो०	१ से ३ मोहर[६] तक	भीमसेनी कपूर	प्रति तो०	३ रु० से २ मो० तक
ज़बाद	,,	$\frac{१}{२}$ रु० से १ रु० तक	मीद	,,	१ ,, से ३ रु० ,,
कस्तूरी	,,	१ ,, ४$\frac{१}{२}$,,	केशर	प्रति सेर	१२ ,, २२ ,,
अगर	प्रति सेर	२ रु० से ५ मो० तक	कमंदी केशर	,,	१ ,, ३ मो० तक
चोआ	प्रति तो०	$\frac{१}{८}$,, १ रु० तक	काश्मीरी केशर	,,	८ ,, १२ रु० तक
गौरा	,,	३ ,, ५ ,,	चन्दन	प्रति मन	३२ ,, ५५ ,,

१, २—२० तोला—ब्लाकमैन् (ibid, P. 75)। आईन में "बीस्त-ओ पंज" अर्थात् २५ पाठ हैं।

३—५ तोला—ब्लाक्मैन (ibid, P. 75)। आईन में "बीस्त-ओ पंज" अर्थात् २५ पाठ हैं।

४—वह वस्तु जिससे शिर इत्यादि धोयें।

५—किसी-किसी प्रति में कँवल पाठ है।

६—१ मोहर—ब्लाक्मैन (Bloch mann's trans. P. 75)। आईन में 'पंज' अर्थात् पांच पाठ हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सुगंधियों की तालिका (शेषांश)

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
अर्क़-फ़ितना	प्रतिशीशा	१ रु० से ३ रु० तक	अन्य लोबान	प्रतिसेर	१ रु० से २ रु० तक
अर्क़-बेदमुश्क	,,	१ ,, ४ ,,	छड़	,,	¼ ,, ½ ,,
गुलाब	,,	½ ,, १ ,,	कस्तूरी-नाभि	,,	३ मो० से १२ मो० तक
अर्क़-बहार	,,	१ ,, ५ ,,	कलम्बक[३]	प्रतिमन	१० रु० से ४० रु० तक
अर्क़-चमेली	,,	⅛ ,, ¼ ,,	शिलारस	प्रतिसेर	३ रु० से ५ रु० तक
बनफ़्शा की जड़	प्रतिसेर	½ ,, १ ,,	अम्बर-लादन	,,	१½ रु० से ४ रु० तक
नख	,,	१½ ,, २ ,,	चीना-कपूर	,,	१ रु० से २ रु० तक
माजपत्र[१] गुजरात से लाये जाते हैं	,,	½ ,, १ ,,	छरीला	,,	३ दाम से ४ दाम तक
सुगंधकोकिला	,,	१० ,,१३ ,,	गेहला	..	..
लोबान (सरगर्द[२] का)	प्रति तो०	⅓ ,, ३ ,,	सुञ्जद (नागर मोथा)	..	..
			इकनकी	..	..
			ज़ुरंबाद (कचूर)	..	..

सुगंधित पुष्प ।

नाम	रंग	ऋतु	नाम	रंग	ऋतु
सेवती	सफ़ेदी लिये हुए	साल भर फूलती है, वर्षा के अंत में बहुत ज्यादा ।	केतकी	ऊपरी पत्तियाँ हरी और अंरदकी सफ़ेद पीलापन लिए हुए ।	ग्रीष्म
चमेली	सफ़ेद, पीली और नीली	वर्षा में और कुछ जाड़े में भी ।	केवड़ा	..	सिंह से तुला राशि तक ।
रायबेल	श्वेत चंद्रवर्ण	ग्रीष्म के अंत और वर्षा के आरम्भ में ।	चलता	...	..
मोंगरा	पीला	ग्रीष्म ।	गुलाल	..	वसन्त
चम्पा	,,	सदा खिलबा है, विशेषकर उस समय जब सूर्य मीन और मेष राशि में होते हैं ।	तसबीहगुलाल	सफ़ेद	शरद
			सिंगार हार	पंखड़ियाँ छोटी और सफ़ेद होती हैं ।	ग्रीष्म

१—किसी-किसी प्रांत में बाज और ताज पाठ है ।

२—इस स्थान का पता नहीं चलता ।

३—किसी-किसी मूल ग्रन्थ में कलबंक, कलबनक, कलीनक और कलनबक पाठ है । मि० ब्लाक्मैन ने (Calembic) पाठ माना है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सुगंधित पुष्प (शेषांश)

नाम	रंग	ऋतु	नाम	रंग	ऋतु
मोलश्री	सफ़ेदी लिये हुये	वर्षा	नरगिस	सफ़ेद	वसन्त
कूज़ा	सफ़ेद	ग्रीष्म	गुल-बनफ़्शा	बनफ़्शई	ग्रीष्म
पाडल	लाली लिए नीला	वसन्त	गुलेकरना	सफ़ेद	वसन्त
जूही	सफ़ेद और पीली चमेली के समान	वर्षा	कपूर बेल	..	..
निवारी	कुछ सफ़ेदी लिये हुये	वसन्त	गुले-ज़ाफ़रां	बनफ़्शई	ख़रीफ़

सुहावने सुमन।

नाम	रंग	ऋतु	नाम	रंग	ऋतु
सूर्यमुखी	पीला	—	श्रीखंडी	अन्दर सफ़ेद पीलापन लिये हुये और बाहर सुर्ख़ी मायल।	वसन्त
कँवल (कमल)	सफ़ेद, और नीला भी होता है।	वर्षा			
जाफ़री	पीला, सुनहला, नारंजी और काही।	वसंत			
गुड़हल	पंखड़ियों का रंग विभिन्न प्रकार का होता है, जैसे लाल, पीला, नारंजी और सफ़ेद।	वर्षा	गुले-हिना	..	..
			दुपहरिया	लाल अग्नि-वर्ण और सफ़ेद।	बारहमासी
रत्नमंजनी	लाल आग की तरह चमेली से बहुत छोटा।	सर्वदा	भुवनचंपा	आड़ू जैसा	..
केसू (टेसू)	—	ग्रीष्म	सुदर्शन	पीला, कुमुदिनी के फूल के सदृश, पर उससे छोटा।	वर्षा[1]
कनेर	लाल और सफ़ेद				
कदम	बाहर हरा, बीच में पीला, अंदर के रेशे सफ़ेद।	वसन्त	सेंबल	गहरा लाल	वसन्त
			रत्नमाला	पीला	,,
नागकेसर	..	,,	सोनज़र्द	पीला	,,
सुरपन	सफ़ेद; बीच में लाल और पीली धारियाँ।	वर्षा	मालती	..	..
			कर्णफूल	सुनहला पीला	..
			करील	..	वसन्त

१—ब्लाक्मैन (Blochmann's trans. P. 77) के अनुवाद में ऋतु नहीं लिखी है, किन्तु आईन में है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सुहावने सुमन (शेषांश)

नाम	रंग	ऋतु	नाम	रंग	ऋतु
जैत	अन्दर पीला, बाहर लाल, कालापन लिए हुए।	वर्षा	करौंदा का फूल	सफ़ेद, चमेली के फूल से छोटा।	वर्षा
			धनन्तर	कुमुदिनी के फूल की तरह।	वर्षा
चम्पला	सफ़ेद नीबू के फूल की तरह।	वसन्त	कँगलाई	दो प्रकार का, लाल और पीला।	..
लाही	..	मीन राशि में खिलता है	सिरस	हरा पीलापन लिये हुए रेशेदार।	वसन्त
			सन	पीला	वर्षा

सुगंधियों की उत्पत्ति।

१, **अम्बर**[१]—कुछ लोग कहते हैं कि अम्बर समुद्र की तलहटी में उगता है, जल-जन्तु उसे खाते और तृप्त होने पर उगल देते हैं। अनेक व्यक्तियों का कथन है कि मछली उसे खाती और मर जाती है, अम्बर उसके पेट से निकाल लेते हैं। कुछ लोगों के मतानुसार वह दरियाई गाय का गोबर है, जिसे सारा कहते हैं। अनेक समुदाय उसे समुद्र-फेन समझते हैं। अनेक व्यक्तियों का मत है कि यह टापुओं के पर्वतों से टपकता है। कई जन-समूह इसे दरियाई पेड़ का गोंद बतलाते हैं। कुछ व्यक्ति उसे मोम मानते हैं। आईने-अकबरी के लेखक (अबुलफ़ज़ल) का विचार भी लगभग ऐसा ही है। लोग कहते हैं कि कुछ पहाड़ों में इतना ज्यादा शहद पैदा होता है कि बहने लगता है और समुद्र में जा गिरता है।

१—यह ह्वेल मछली की अंतड़ियों में जमी हुई एक चीज़ है, जो भारतवर्ष अफ्रिका और ब्रेज़िल के समुद्री किनारों पर बहती हुई पाई जाती है। ह्वेल का शिकार इसी के लिए होता है। अंबर बहुत हलका और शीघ्र जलने वाला होता है तथा आंच दिखाते रहने से बिल्कुल भाप होकर उड़ जाता है। इस का व्यवहार औषधियों में होने के कारण यह नीकोबार तथा भारत-समुद्र के और-और टापुओं से आता है। प्राचीन काल में अरब यूनानी और रोमन लोग इसे भारतवर्ष से ले जाते थे। जहाँगीर ने इस से राज-सिंहासन का सुगंधित किया जाना लिखा है (शब्द सागर)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मोम ऊपर तैरने लगता है और गर्मी से सूख जाता है। यतः मधु-मक्खियों का आहार सुगंधित जड़ी बूटियाँ हैं, इस कारण अंबर भी सुगंधित हो जाता है, कुछ मधु-मक्खियां उस में पाई भी गई हैं। पूरे-सेना का विश्वास है कि समुद्र की तलहटी में एक सोता उमड़ता है, अंबर उससे चूता है, और लहर उसे किनारे पर ठेल देती है। टटका अंबर गीला होता है, सूर्य की धूप से सूख जाता है और उसके तरह-तरह के रंग हो जाते हैं। वह[1] कम धूप से सफ़ेद, अधिक से काला और मध्यम से पिस्तई तथा पीले रंग का हो जाता है। सबसे अच्छा **अशहब** होता है। वह बहुत चिकना और पर्तदार होता है। जब उसे तोड़ते हैं, तो पीलापन लिये हुये सफ़ेद निकल आता है। वह जितना ही ज्यादा सफ़ेद, हलका और मुलायम होता है, उतना ही अधिक उत्तम होता है। इससे उतरकर पिस्तई रंग का; और इससे भी घटकर पीले रंग वाला, जिसे **ख़शख़ाशी** कहते हैं, होता है। सब से निकृष्ट काले रंग का होता है, जो अधिक दहनशील होने के कारण भस्म हो जाता है। लोभी सौदागर उसमें मोम, मंदल, लादन आदि मिला देते हैं, जिसको प्रत्येक व्यक्ति नहीं पहचान सकता।

२, **मन्दल**[2]—एक प्रकार का अंबर है; जिसको लोग मरी हुई मछली के उदर से निकालते हैं। उसमें सुगंध कम होती है।

१—ब्लक्मैन (Blochmann's trans. P. 78) ने इस वाक्य (व अज़ कमतर सफ़ेद-ओ अज़ बेशतर सियाह-ओ अज़ मियाना फ़िस्तक़ी-ओ ज़र्द—मूल आईन पृ० ९२) का अनुवाद "सफ़ेद सर्वोत्तम, और काला सब से निकृष्ट है तथा मध्यवर्ती पीला और पिस्तई रंग का होता है" किया है। यह शुद्ध नहीं मालूम होता, क्योंकि एक तो यह अर्थ शब्दों से नहीं मिलता है दूसरे 'वाव' से आरंभ होने के कारण यह वाक्य पहले वाक्य का अनुषंगी है। पहले में अंबर के रंगों का वर्णन है, जो धूप से परिवर्तित होते हैं। उन्हीं का इसमें विवरण है।

२—संस्कृत में मंडल व्याघ्रनख या नख को कहते हैं। यह सीपी या घोंघे की जाति के एक जंतु के मुंह का ढक्कन होता है। इसकी शक्ल नाख़ून, घोड़े के खुर या हाथी के कान की तरह की या कभी-कभी बिल्कुल गोल होती है। इसका रंग नीला, सफ़ेद तथा और कई प्रकार का होता है। परन्तु छोटे आकार वाले और सफ़ेद रंग के नख को लोग अच्छा समझते हैं। इसे जलाने सें दुर्गन्ध आती है, किन्तु तेल में डालने से सुगन्ध। नवलकिशोरी आईने-अकबरी के हाशिये पर लिखा है कि "मंदल कच्चा ऊद (अगर) है और कोई-कोई कहते हैं कि हिन्दुस्तान में एक नगर है, जिसमें ऊद बहुत होता है।"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

३, लादन—भी अंबर कहलाता है[१]। इसकी उत्पत्ति एक वृक्ष से है, जो क़िबरस[२] और क़ीसूस[३] अथवा क़िस्तूस की सीमाओं में पैदा होता है। उसके पत्तों पर गीला रस स्थिर हो जाता है, जब बकरियाँ चरती हुई उसके पास जाती हैं तो उनकी जंघाओं के बाल और खुर उससे सौंद जाते हैं और वह सूख जाता है। बालों में सौंदे हुए लादन को लोग बढ़िया मानते हैं, वह हरापन लिए होता है और उसमें बड़ी अच्छी गंध आती है। खुरों में भरे हुए लादन को बहुत निकृष्ट समझते हैं। कभी-कभी लोग उसके वृक्ष में रस्सियाँ बांध देते हैं, जो लादन

१—एक सुगंधित पदार्थ है, जो दुशाब (दो-एक रात रखकर खट्टा किया हुआ अंगूर या छुहारे का रस) के समान काला और पतला होता है। इसे अंबर असली भी कहते हैं (बुरहानक़ाते)।

२—क़िबरस (Cyprus) मेडीटरेनियन-सागर में एक द्वीप है। इसकी राजधानी निकोसिया (Nicosia) है। इसका क्षेत्रफल ३५८४ वर्ग मील है। गेहूं, जौ, दाल की जिंसें, जई, ज़ैतून, कपास, पाट, किशमिश, लोकस्टबीन, तथा अन्य फल पैदा होते हैं। भेड़, बकरी एवं दूसरे पशु पाले जाते हैं। रेशेदार न जलने वाला एक खनिज पदार्थ, खरिया मिट्टी, अम्बर, संगमर्मर, आतशी पत्थर तथा नमक तैयार होते हैं। प्राचीन फ़ोइनीशियन और रूमियों की खानें तांबे के लिए खोदी जाती हैं। जंगल सुरक्षित हैं। सड़कें और रेलवे हैं।

पहले फ़ोइनीशियन्स ने इसे अपना उपनिवेश बनाया था। फिर यह ग्रीकों के हाथ में चला गया। यूनानियों ने इसको पफ़ोस (Paphos) के एक मन्दिर सहित एफ़्रोडाइट (Aphrodite) को समर्पित कर दिया। फिर यह पारी-पारी से असीरियों, फ़ारसवालों, मिस्रियों, रूमियों और बाइज़ैण्टाइनियों के अधिकार में रहा। १८७८ ई० में तुर्की के सुल्तान ने एक परिषद् में शासन-व्यवस्था के लिए इसे ग्रेट-ब्रिटेन को दे दिया। १९१४ ई० में यूरोपीय महा-समर में तुर्की के भाग लेने पर उसी वर्ष ५ नवम्बर को एक राजकीय घोषणा द्वारा, यह टापू ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया। १९२५ ई० में यह एक उपनिवेश क़रार दिया गया। इस समय इसका शासन-भार एक गवर्नर-जनरल तथा उसकी कौन्सिल के आधीन है। १९३१ ई० में इसकी जन-संख्या ३,४७,९३२ थी (Hammerton, World Pictorial Gazetteer and Atlas, P. 338.)।

३—क़ीसूस या क़िस्तूस (Chios—Khios or Scio) एजियन-सागर में एक टापू है। यह यूनानियों के अधिकार में है। एशिया माइनर के पश्चिमी किनारे से आठ मील की दूरी पर है। इसका क्षेत्रफल ३२१ वर्ग मील है। यह लेवैण्ट (मेडीटरेनियन के पूर्वी किनारे का फ्रांसीसी तथा इटैलियन नाम, जिसमें कि यूनान और मिस्र भी सम्मिलित हैं) के सर्व सुन्दर टापुओं में से एक है। सुरमा और संगमर्मर पत्थर खान से निकाला जाता है। राजधानी कीयोस है, और जन-संख्या ७५,६८० है (Ibid, P. 159)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उन पर चिपट जाता है उसे एकत्र कर लेते हैं, और पानी में औटा कर साफ़ कर लेते तथा टिकियाँ बांध लेते हैं।

४, **कपूर**—एक बड़ा वृक्ष है, जो हिन्द-सागर और चीन की घाटियों में होता है। सौ से भी अधिक सवार उसकी छाया में बैठ सकते हैं। कपूर उसके धड़ और शाखाओं में पैदा होता है। कुछ लोग कहते हैं कि गर्मी में बहुत से सांप, ठंढक के लिए उससे लिपट जाते हैं। इनके द्वारा पेड़ को पहचान कर लोग उस पर तीर से निशान लगा देते हैं और जाड़े में अपनी मनोकामना पूरी करते हैं। कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि उसके आसपास चीते रहते हैं, और अनुरक्त होने के कारण उससे पृथक् नहीं होते। कपूर लकड़ी के अन्दर नमक की बहुत छोटी डलियों के सदृश दिखलाई पड़ता है, और लकड़ी के बाहर गोंद के समान। वह कभी-कभी पेड़ से बह चलता है, और थोड़ी देर के बाद जम जाता है। जिस साल भूडोल अधिक आते और आसमानी हलचल ज्यादा होती है, वह विशेष पैदा होता है। कपूर कई प्रकार का होता है, सब से बढ़िया रिबाही[१] और क़ैसूरी[२] है। वास्तव में ये दोनों एक ही चीज़ हैं। जिसके दो नाम पड़ गये हैं। कहते हैं कि कपूर को पहले रिबाह नामक एक पुराने शासक ने सरानदीप (लङ्का) के निकट क़ैसूर गांव में पाया था। कुछ ग्रन्थों में लिखा है कि कपूर बरफ़ की तरह सफ़ेद होता है। मैंने अपने हाथ से कपूर को पेड़ से निकाला था, और वह वैसा ही निकला, जैसा कि उनमें लिखा था। परन्तु इब्ने-बेतार का कहना है कि वह लाल और चमकीला होता है और साफ़ करने से सफ़ेद हो जाता है। वास्तव में एक प्रकार का कपूर ऐसा ही होता है, और यह सब प्रकार के कपूरों में अधिक शुद्ध, विशेष श्वेत, बहुत हलका, ज्यादा साफ़ और श्रेष्ठतर होता है। इससे उतर कर कुरकूई है, यह गाढ़ा काले रंग का होता है। इससे घटिया कौकब है, जो गेंहुआं रंग का होता है। सबसे निकृष्ट बालूस है, जिसमें लकड़ी का चूरा मिला रहता है। हर प्रकार का कपूर साफ़ करने से सफ़ेद हो जाता है। कुछ पुस्तकों में ऐसा उल्लेख है कि जो कपूर पेड़ से निकाला जाता है, उसे **जौदाना** या **भीमसेनी** कहते हैं। जौ, काली मिर्च और सुर्ख़ दाना उसके साथ रख देते हैं,

---

१—मूल आईन में 'व' अर्थात् और पाठ है, ब्लाक्मैन ने भावानुसार 'या' अनुवाद किया है।

२—"कर्नल यूल ने मुझे क़ैसूरी का शुद्ध नाम फ़ंसूरी बतलाया है। मार्कोपोलो के अनुसार फ़ंसूर (Fancur) सुमात्रा में एक राज्य था। कदाचित् उसी का नाम बरूस है" (ब्लाक्मैन)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जिससे उसमें कमी नहीं होने पाती। यूनानी[१] लोग कपूर[२] को, ठंढे पदार्थों में तीसरे दर्जे का ख़्याल करते हैं। पर हिन्दुस्तानी उसे गरम मानते हैं। जो कपूर नरकचूर में दूसरी चीज़ें मिलाकर बनाया जाता है, उसे **चीनी** कहते हैं, और **मैईत** कपूर भी। सफ़ेद नरकचूर को ख़ूब पीस कर गाय या भैंस का खट्टा मट्ठा मिलाते हैं; चौथे दिन उसमें फिर ताज़ा मट्ठा डालते हैं, और हाथ से इतना थपथपाते हैं कि फेन ऊपर आजाता है। उसको निकाल लेते हैं और उसमें थोड़ा सा कपूर मिलाते हैं। उसको डिब्बे में भरकर कुछ देर तक अन्न की ढेरी में रख देते हैं। या ऐसा करते हैं कि सफ़ेद पत्थर को ख़ूब पीसते हैं, और इसके दस दिरम[३] चूर्ण के लिए दो दिरम मोम, आधा दिरम बनफ़्शे का तेल या लाल गुलाब (सुर्ख़गुल)

१—"यूनानी ऊरा सर्द दर सोम पायः अंगारंद-ओ हिन्दी गर्म दानन्द" (आईन पृष्ठ ६३) अर्थात् "यूनानी.....गरम मानते हैं।" यह वाक्य ब्लाक्मैन के अनुवाद में अनूदित होने से छूट गया है (Blochmann's Trans. P. 79)।

२—आजकल कपूर कई वृक्षों से निकाला जाता है। ये सबके-सब वृक्ष प्रायः दारचीनी जाति के हैं। इनमें प्रधान पेड़ दारचीनी कपूरी मियाने क़द का सदाबहार पेड़ है, जो चीन, जापान, कोचीन और फ़ारमूसा में होता है। अब इसके पेड़ हिन्दुस्तान में भी देहरादून और नीलगिरि पर लगाये गये हैं, और कलकत्ते तथा सहारनपुर के कंपनी बाग़ों में भी इसके पेड़ हैं। इस से कपूर निकालने की विधि यह है। इसकी पतली-पतली चैलियों तथा डालियों और जड़ों के टुकड़े बन्द बर्तन में, जिसमें कुछ दूर तक पानी भरा रहता है, इस ढंग से रक्खे जाते हैं कि उनका लगाव पानी से न रहे। बर्तन के नीचे आग जलाई जाती है। आंच लगने से लकड़ियों में से कपूर उड़कर ऊपर के ढक्कन में जम जाता है। इसकी लकड़ी भी संदूक़ आदि बनाने के काम आती है। दारचीनी जीलानी से भी—जिसका पत्ता तेजपात और छाल दारचीनी होती है, जिसका पेड़ दक्खिन में कोकन से दक्खिन पश्चिमी घाट तक और लंका, टनासरम, बर्मा आदि स्थानों में होता है—कपूर निकलता है। बरास नामक पेड़ से भी—जो सुमात्रा और बोर्नियों में होता है, कपूर का डला निकलता है। जापान में भी कपूर बनाया जाता है (शब्दसागर)। मैटीरिया मेडिका के अनुसार कपूर में कार्बन १० भाग, हाईड्रोजन १६ भाग और आक्सीजन १ भाग होता है। इसके तीन भेद हैं:—(१) फ़ार्मूसा-कपूर, (२) बोर्नियो या बारस-कपूर जो कि भीमसेनी कहलाता है, (३) ब्लूमिया कपूर। भीमसेनी कपूर बहुमूल्य समझा जाता और बहुत ज़्यादा क़ीमत में बिकता है। यह डच-सुमात्रा में पैदा होने वाले ड्रायोबालानाप्स कैम्फ़ोरा (Dryobalanops Camphora) नामक वृक्ष के तने में आप-से-आप बन जाता है, और पानी में डूब जाता है (Rakhaldas Ghosh, Materia Medica and Therapeutics, P. 573, 1918)।

३—दिरम या दिरहम=३$\frac{१}{२}$ माशा (ग़यासुल्लुग़ात)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रयोग करते हैं। पहले मोम को तेल के साथ औटाते हैं, फिर उस चूर्ण को उस में सानते हैं, और दो पत्थरों के बीच में रखके दबाकर हलका (चौड़ा) बनाते हैं। जब वह ठंढा हो जाता है, तो कपूर के समान मालूम होता है। स्वार्थी लोग इसके चूरे को असली कपूर में मिला देते हैं और इस प्रकार दूसरों की हानि करके अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं।

५, ज़बाद—इसको शाख़[१] भी कहते हैं। यह एक पशु का चुआ हुआ मद है, जो बिल्ली के समान होता है, पर उससे कुछ बड़ा। उसका चेहरा और थूथन अधिक बड़े होते हैं। जब लोग ज़बाद आचीन इलाक़े के सामतराई (सुमात्रा) बन्दर से लाते हैं, तो उस (ज़बाद) को सामतराई कहते हैं। वह बहुत बढ़िया होता है। वह टपका हुआ ज़बाद, सफ़ेद पीलापन लिये हुये रहता है। पशु की पूँछ के नीचे छोटे अख़रोट के अनुरूप ज़बाद की थैली होती है। उसमें पाँच-छे छेद होते हैं। सात से पन्दरह दिन तक में उस नाफ़े से एक बार ज़बाद लेते हैं; वह आधा तोला या आठ माशा होता है। कुछ पशु हिल जाते हैं और ज़बाद लेते समय चुप खड़े रहते हैं। बहुतेरों की पूँछ पिंजड़े के बाहर खींचते हैं और सीपी में धीरे से ज़बाद ले लेते हैं अथवा उस नाफ़े को सावधानी से निचोड़ लेते हैं। उस पशु को लोग तीन सौ से पाँच सौ रुपए तक में मोल लेते हैं। नर का ज़बाद ज़्यादा अच्छा होता है, क्योंकि मादा का नाफ़ा उसके मूत्र-स्थान पर होता है। कार्यविज्ञ ज़बाद को धो-धाकर उपयोग में लाते हैं। फिर यह उत्तमोत्तम सुगन्धियों में हो जाता है। उसकी सुगंध शरीर और वस्त्रों से बहुत देर में जाती है। उसे कई प्रकार से धोते हैं। उत्तम विधि यह है कि यदि ज़बाद कम हो तो प्याले में, अन्यथा बड़े बर्तन में तीस बार ठंढे पानी से और तीन बार गरम पानी से धोते हैं। वह गर्मी से कुछ हलका होजाता और मैल अलग होजाता है। फिर तीन बार ठंढे पानी से और धोते हैं, तब वह जम जाता है। पश्चात् तीन बार उसे नीबू के रस से धोते हैं, जिससे उसकी दुर्गन्ध नष्ट होजाती है। तीन बार फिर ठंढे पानी से धोकर और कपड़े से छानकर चीनी के प्याले में रख लेते हैं। तत्पश्चात् तीन बार गुलाब जल में धोकर, ज़बाद को उस प्याले में लेस देते हैं। रात में उसको चँबेली,

---

१—इसको हिन्दी में जवादि कहते हैं। यह गंधबिलाव नामक जंतु से, जो नेवले की तरह का होता है, निकलता है। यह जंतु अफ़्रिका और हबश में पाया जाता है। इसे लोग जवादि के लिए ही पालते हैं। यह दो फ़ुट लंबा, पीलापन लिये हुये भूरे रंग का होता है। इसके सारे बदन में मटमैले रंग के दाग़ होते हैं। इसे कच्चा माँस खाने को दिया जाता है। इसे मुश्क बिलाव भी कहते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रायबेल, गुलाब या करना के फूलों में औंधाकर रखते हैं, और दिन में उसके मुँह पर सफ़ेद कपड़ा बाँधकर धूप में धरते हैं। गीलापन जाता रहता है। उसमें से कुछ लेकर और गुलाब मिलाकर काम में लाते हैं।

६, **गौरा**—कालापन लिये हुये सफ़ेद होता है, पर ज़बाद के समान सुगन्धित नहीं होता। यह गन्धबिलाव के सदृश एक पशु का चुआ हुआ मद है। पर यह जंतु उस से कुछ बड़ा होता है। इसे भी आचीन[1] के आस-पास से लाते हैं। इसका मूल्य सौ से दो सौ रुपए तक होता है।

७, **मीद**—गौरा के तुल्य है, परन्तु उससे अधिक निकृष्ट। कोई वस्तु मिलाकर सुगंध बढ़ा लेते हैं। मीद-जंतु अनेक देशों में पाया जाता है। उसका मूल्य पाँच-छे दाम से अधिक नहीं होता। कुछ लोग कहते हैं कि उपर्युक्त जंतु के सूखे नाफ़ों को कूटकर पानी में औटाते हैं, तेल ऊपर आजाता है। उसी को इस नाम से पुकारते हैं।

८, **ऊद**—हिन्दी में इसे **अगर**[2] कहते हैं। यह एक वृक्ष की जड़ है। खोदकर उसे ज़मीन में गाड़ देते हैं; रद्दी भाग गल जाता और शेष शुद्ध ऊद रह जाता है। कुछ लोग कहते हैं कि सम्पूर्ण पेड़ गाड़ते हैं। कुछ पुरानी पुस्तकों

१—आचीन एक क़सबा है और राज्य भी। यह सुमात्रा द्वीप के उत्तर-पश्चिम ईस्ट इण्डीज़ में है।

२—अगर का पेड़ आसाम, बंगाल, खसिया और मर्तवान की पहाड़ियों तथा भूटान में होता है। यह १०० फ़ुट तक ऊंचा और ८ फ़ुट तक मोटा होता है। बीस वर्ष का होने पर इसकी लकड़ी अगर के उपयोग के लिए काटी जाती है। किसी-किसी के मत से ५०-६० वर्ष में वह पककर उपयोग के योग्य होती है। रस और गंध इसमें बहुत पीछे से आती है। रस आने पर लकड़ी भारी हो जाती और काटकर अगर के नाम से बिकती है। अच्छे पेड़ में २०० रुपए से अधिक का अगर निकलता है। पेड़ का कम रस वाला भाग 'दूम' कहलाता और उसकी लकड़ी अधिक से अधिक दो रुपए सेर बिकती है, किन्तु जो लकड़ी काली होजाती तथा पानी में डूब जाती है और जिसमें गोंद अधिक होता है वह २० रुपए सेर तक बिकती है। सिलहट में अगर का इत्र बनाया जाता, बम्बई और मद्रास प्रान्त में अगर की बत्तियाँ तैयार होती हैं। नासमझ लोग तगर को ही अगर समझते हैं। किन्तु तगर एक दूसरी ही सुगन्धित लकड़ी होती है। इसका पेड़ अफ़ग़ानिस्तान, काश्मीर, भूटान और कोंकण में नदियों के किनारे तथा मडगास्कर और ज़ंज़ीबार में पाया जाता है। इसमें अधिक मात्रा में तेल निकलता है। लकड़ी काले रंग की होती है। बुरादा जलाने के काम में आता है। 'भावप्रकाश' के अनुसार तगर की दो जातियाँ हैं। एक में सफेद रंग के और दूसरे में नीले रंग के फूल लगते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में जो यह लिखा है कि लोग, अगर मध्य भारत से लाते हैं, वास्तव में यह भूतों की सी कहानी है। कल्पना के अतिरिक्त इस कथन में कोई तथ्य नहीं है। अगर कई प्रकार का होता है। सब से बढ़िया मंदली है, उस से उतर कर जबली, जिसे हिन्दुस्तानी भी कहते हैं। इसकी गंध से जुआं, लीख उत्पन्न नहीं होते। इस कारण इसको प्रथमोक्त अगर से अधिक उत्तम मानते हैं। कुछ लोग दोनों को बराबर ख़्याल करते हैं। अगर के अन्य उत्तम भेदों में बढ़ कर समंदूरी है, उस से घटिया क़ुमारी, फिर क़ाक़ली, बर्दी, क़ितई और चीनी हैं। चीनी को क़िसमूरी भी कहते हैं, वह तर और मीठा होता है। इन से उतरकर जलाली, मायताक़ी, लवाक़ी और रैताली[१] हैं। परन्तु सब क़िस्मों में मंदली सबसे बढ़िया होता है। समंदूरी जाति में जो अगर नीला, मोटा, उभरा हुआ, कठोर, रसीला तथा जिसमें सफ़ेदी का निशान नहीं होता एवं आग में देर तक रहता है, अच्छा होता है। कुछ लोग काले अगर को ज्यादा अच्छा ख़्याल करते हैं। क़ुमारी जाति में, जो अगर नीला, श्वेतता रहित, मोटा, तर, और आग पर देर तक ठहरता है, बढ़िया होता है। सब से बढ़िया काला, कठोर और भारी होता है। वह पानी के तले में बैठ जाता है, और रेशेदार नहीं होता तथा आसानी से कुट जाता है। अगर की लकड़ी जो पानी पर तैरती है, निकृष्टतर समझी जाती है। अगले शासक अगर के वृक्ष को गुजरात में लाये थे, और आजकल चांपानेर[२] में पैदा होता है, लोग साधारणतया अगर को आचीन और धनाश्री[३] से लाते हैं। आजकल उन नगरों का जिनमें इसका होना पुरानी पुस्तकें बतलाती हैं, कहीं पता नहीं है। इसे सुगंधित

१—पिछले तीनों नाम संदिग्ध हैं (Blochmann's translation, Vol .I, P. 80, Note 2)।

२—चांपानेर या चंपानेर दिल्ली से बम्बई जाने वाली बाम्बे-बड़ोदा-सेण्ट्रल-इण्डिया-रेलवे लाइन पर, गोधरा से २२ मील की दूरी पर, एक उजाड़ बस्ती है, जो इसी नाम की पहाड़ी पर है, और जिसमें अब केवल दो ही चार घर शेष हैं। स्टेशन का नाम चांपानेररोड है। यह बम्बई प्रान्त में पंचमहल ज़िले के अन्तर्गत है। पहले यह एक आबाद बस्ती थी। पन्द्रहवीं शताब्दी के तीसरे भाग तक यह नगर एक राजपूत के अधीन था। राजपूतों के आक्रमण से तंग आकर १४८२ ई० में अहमदाबाद के बादशाह महमूद ने इस पर अधिकार कर लिया, और उक्त बस्ती के समीप महमूदाबाद-चंपानेर नामक एक नगर बसाया, जिसके अन्दर अनेक जीवित पशु रहते थे। हुमायूँ ने १५३३ ई० में इसे ध्वंस कर दिया। १८०३ ई० तक इसमें चार-पाँच सौ घर थे। आईने-अकबरी के तृतीय ग्रंथ में कई स्थानों पर इसका उल्लेख हुआ है।

३—धनाश्री या टनासरम लोअर बर्मा में स्याम की सीमा पर है। इसका क्षेत्रफल ३६०८६ वर्ग मील है। शासन-केन्द्र मोलमीन है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मिश्रणों में मिलाते हैं। यह खाने में आनन्द-दायक होता है। अधिकतर मनुष्य इसकी धूनी से आनन्द प्राप्त करते हैं, और कुछ लोग बढ़िया अगर को पीस कर शरीर और वस्त्रों पर मलते हैं।

९, **चोवा**—यह अगर की लकड़ी से टपकाया जाता है। छोटे-बड़े सभी इसका प्रयोग करते हैं। इसके बनाने की विधि इस प्रकार है[१]। बढ़िया मिट्टी को रुई या धान की भूसी में मिलाकर कूटते हैं। जब वह अच्छी तरह मिल जाती है, तब एक छोटी बोतल पर उँगली के पोरों से उसे लेसते हैं और सुखा लेते हैं। फिर ऊद के चूरे को, जो एक सप्ताह पहले से भीगता रहता है, उसमें भरते हैं और कुछ जगह ख़ाली रखते हैं। एक और बर्तन जिसके बीच में छेद होता है, तिपाई पर रखते हैं। और बोतल को औंधाकर उसकी गर्दन उस बर्तन में लगा देते हैं। बर्तन की पेंदी में एक प्याला इस प्रकार रखते हैं कि बोतल का मुँह पानी की सतह तक पहुँच जाता है। बर्तन के ऊपर बिनवाँ कंडों की धीमी आग जलाते हैं। यदि लपट उठती है, तो पानी से बुझाते हैं। अगर के चूरे से भाप उठती है और टपक कर पानी पर स्थिर होजाती है। उसे एकत्र करके पानी और गुलाब जल से धोते हैं, जिससे धुएँ का अंश साफ़ होजाता है। जितना अधिक धोते हैं और जितना ही ज्यादा पुराना होता है, उतना ही अधिक सुगंधित होता है। चोवा काले-रंग का होता है। कोई-कोई गुणी उसे कारीगरी से सफ़ेद कर लेते हैं। एक सेर अगर में दो से पन्दरह तोले तक चोवा निकलता है। कुछ लालची लोग उसमें चन्दन और बादाम इत्यादि मिला देते हैं और दूसरों को हानि पहुँचाते हैं।

१०, **सन्दल**—हिन्दी में इसे चन्दन कहते हैं। इसका वृक्ष चीन[२] में होता है। इस प्रतापी राज्य में वह लाया गया और उसकी ख़ूब बढ़ती हुई। यह तीन प्रकार का होता है—सफ़ेद, पीला और लाल। बहुत लोग लाल चन्दन को सफ़ेद से ज्यादा

१—आजकल कई गंध द्रव्यों से चोया टपकाया जाता है, जैसे—(अ) देवदार के रस को गर्म करके चुआते, (ब) केशर और कस्तूरी आदि को मरसे के फूलों के रस में मिलाकर और औटाकर टपकाते तथा (स) चन्दन के बुरादे और देवदार के बुरादे मरसे के फूलों में मिलाकर गर्म करते और रस टपकाते हैं। "श्रीधर भाषा कोष" के अनुसार चोवा या चोआ अर्गजा का नाम है।

२—असली चन्दन मलयगिरि या मलयागिरि अथवा श्रीखंड है। इसका पेड़ मैसूर के दक्षिण और ट्रावंकोर के पूर्व में मलय पर्वत पर, जो कि पश्चिमीघाट में है, होता है। कुर्ग, हैदराबाद, करनाटक, नीलगिरि पर इसके अनेक पेड़ हैं। उत्तर भारत में भी यह यत्र-तत्र लगाया गया है। वृक्ष लगभग पच्चीस फ़ुट ऊँचा और उसकी पत्तियाँ डेढ़-डेढ़ इंच लंबी बेल-पत्रों के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ठंढा मानते हैं, किन्तु अनेक व्यक्ति सफ़ेद को। पर वास्तव में सफ़ेद लाल से अधिक शीतल होता है और लाल पीले से ज़्यादा ठंढा। सब से बढ़िया पीला और चिकना (तेलवाला) होता है। उसे मक़ासिरी कहते हैं। लोग चन्दन को घिसकर शरीर पर मलते हैं और आनन्द मनाते हैं। यह दूसरे तरीक़ों से भी इस्तेमाल किया जाता है।

११, सिलारस—इसको अरबी भाषा में मीयः[१] कहते है। यह रूम देश के एक वृक्ष का गोंद हैं। इसे उबालते हैं। साफ़ सिलारस को मीयए-सायला

आकार की होती हैं। फूल पत्तियों से निकली हुई डालियों में चार-चार फूलों के गुच्छों में लगते हैं। इसके हीर में तेल रहता है, जो जड़ में अधिक होता है। सुगंध के कारण इसकी लकड़ी की बनाई हुई चीज़ों में घुन नहीं लगता। चीन और बर्मा के मन्दिरों में चन्दन का बुरादा धूप के स्थान पर बहुत जलाया जाता है। सफ़ेद चन्दन और पीला चन्दन एक ही पेड़ से निकलता है, किन्तु लाल चन्दन का वृक्ष भिन्न होता है। एक प्रकार का चन्दन ज़ंज़िबार से भी आता है जो मलयागिरि के नाम से प्रायः बाज़ार में बिकता है। क़न्नौज में चन्दन से इत्र और तेल तैयार किया जाता है। तेल बनाने के लिए पहले कूट-कूटकर चन्दन की बुकनी बनाई जाती है। दो-तीन दिन पानी में भिगोने के बाद उसे भभके पर चढ़ाते हैं। भाप द्वारा जमा हुये पानी पर तेल तैरने लगता है। इसे साफ़ कर लेते हैं। एक मन चन्दन में दो-तीन सेर तेल निकलता है। बढ़िया चन्दन का तेल 'मलयागिरि' और घटिया का 'जहाज़ी' कहलाता है वनस्पति-विद्या विशारदों के मतानुसार यह वृक्ष बाँदा या कुकुरमुत्ता के समान अपना आहार दूसरे पौधों के रसों से ग्रहण करता है। 'शब्द-सागर' के अनुसार "अरब वाले पहले भारतवर्ष और लङ्का आदि से चन्दन पश्चिम देशों को ले जाते थे।" 'मख़ज़नुलअदवियः डाक्टरी' में लिखा है कि इसके फ़ारसी अरबी नाम 'सन्दल' संस्कृत से और लैटिन तथा अंगरेज़ी नाम क्रमशः 'सैण्टलाई' तथा 'सैण्डल' अरबी से लिये गये हैं। पुराने हिन्दुओं को चन्दन का पूर्णतया ज्ञान था। निरुक्त, रामायण, महाभारत आदि में इसका उल्लेख है। यूनानियों को सिकन्दर के समय में इसका परिचय मिला। यूरोप में सबसे पहले सलेरनो-शिक्षणालय (इटली में कैम्पैनिया का नगर तथा बन्दर) में एक चिकित्सक ने औषधि के रूप में इसका प्रयोग किया। इस्लामी तबीबों (चिकित्सकों) में मसीही और इब्ने-सीना ने पहले इसका वर्णन किया। इसके गुण और धर्म वर्णन करने में हिन्दुस्तानी वैद्यों का अनुसरण किया गया है (ग़ुलाम जीलानी, मख़ज़नुल-अदविया डाक्टरी, जिल्द दोम, पृ० २०३८, १९१५ ई०)।

१—सिलारस लोबान की तरह का एक गोंद है। इसका पेड़ १०० फ़ुट तक ऊंचा होता और आजकल पूर्वी बंगाल, आसाम, भूटान, पेगू, चीन, मलाया, मेरगुई, जावा और यूनान में पाया जाता है। इसके पत्ते चार-चार इंच लंबे कुछ-कुछ कंगूरेदार तथा घुंडीदार और फूल शाखाओं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(प्रवाहशील सिलारस) कहते हैं और दूसरों को मीयए-याबिसा (शुष्क सिलारस)। सब से बढ़िया वह है, जो स्वेच्छा से बह चले और पीले रंग का हो।

१२, कलंबक—एक पेड़ है भारी और जौहरदार। इसे ज़ीरबाद[1] से लाते हैं। कुछ लोग इसे कच्चा अगर ख़याल करते हैं। इसका बुरादा श्वेत कालिमा लिए हुए होता है। इसे सुगंधियों में मिलाते हैं, और इसकी मालाएँ भी बनाते हैं।

१३, मलागीर[2]—यह भी उसी (कलंबक) की तरह का एक पेड़ हैं। परन्तु यह उतना भारी और जौहरदार नहीं होता। इसका बुरादा सफ़ेद लाली लिये होता है।

१४, लोबान—एक सुगंधित गोंद है[3]; जिसको लोग जावा बन्दर से लाते हैं। कुछ लोग इसे मीयए-याबिसा समझते हैं। यह आग की गर्मी में कपूर की तरह

के छोर पर लगते हैं। फल बीजों से भरे होते हैं। आयुर्वेद में यह कड़वा, चर्परा, स्वादिष्ट, स्निग्ध, गर्म, सुगंधित, वर्ण को सुन्दर बनाने वाला तथा त्रिदोषशामक माना गया है। मेटीरिया-मेडिका (Rakhaldas Ghosh, Materia Medica, P. 536.) के अनुसार इसका उत्पत्ति-स्थान एशिया-माइनर है।

१—कलबनक या कलम्बक—मलागिर या पीला चन्दन—लुग़ाते-कबीर। धारा-कदंब, हल्दू—विश्व-कोष। कलंब, कदम, हरदू, करम—शब्द-सागर। हल्दू का रूख बहुत बड़ा होता और यमुना के पूर्व हिमालय पर ३००० फ़ुट की ऊंचाई तक पाया जाता है। इसकी लकड़ी पीले रंग की और मज़बूत होती है। ज़ीरबाद बंगाल की चरम सीमा पर है—गयासुल्लुग़ात। आईन की एक प्रति में जज़ीरए-बाज़ पाठ है, जिसका अर्थ बाज़द्वीप है, किन्तु बाज़द्वीप के अवस्थान का पता नहीं चलता। ब्लाक्मैन ने लिखा है कि यह ज़ेरबाद (वायु के नीचे) है जिसको मैले बावह अंगीन (Malay Bawah Angin) कहते हैं। मैले निवासी सुमात्रा के पूर्वीय टापुओं और देशों को इसी नाम से अभिव्यक्त करते हैं। ख़ाफ़ीख़ाँ ने ख़ता के साथ इसका उल्लेख किया है और बतलाया है कि दोनों स्थानों पर चंगेजख़ाँ के पुत्र तूलाख़ाँ का शासन था (Khafi Khan, I, P. 11)।

२—यह मलयगिरी है, जिसका पेड़ आसाम, कामरूप और दारजिलिङ्ग में होता है। वसंत ऋतु में इसका बीज बोया जाता है। इसकी छाल पाँच अंगुल तक मोटी और सुगंधित होती है। लकड़ी सफ़ेद पीलापन लिये हुये होती है, और साफ़ करने पर चमकती है तथा भारी, मज़बूत और सुगंधित होने के कारण उसमें कीड़े नहीं लगते।

३—यह वृक्ष अफ्रिका के पूर्वी किनारे पर शुमालीलैण्ड में और अरब के दक्षिणी समुद्र-तट पर होता है। कुहरजकर, कुहरउनस, कुहरघगा, कुहरकशफ़ा आदि इसी के भेद हैं। इनमें से कई दवा के काम में आते हैं। लोबानकशफ़ा, जिसे धूप भी कहते हैं, भारतवर्ष में लोबान के नाम से बिकता है। गोंद वृक्ष की छाल के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उड़ जाता है। एक प्रकार का लोबान, जिसको कुन्दुरे-दरियाई कहते हैं, यमन में पैदा होता है। उसमें सुगंध नहीं होती।

१५, अज़्फ़ारुत्तीब—हिन्दी-भाषा में इसे नख[१] कहते हैं और फ़ारसी में नाखुने-बोया। सीपी के समान दो टुकड़ों वाले एक जंतु के घर से यह उपलब्ध होता है, और संबुल खाने से यह सुगंधित होजाता है। यह हिन्दुस्तान, बसरा और बहरैन के बड़े-बड़े दरियाओं में होता है। पिछले स्थान का ज़्यादा अच्छा माना जाता है। क़ुल्ज़ुम (लाल सागर) में भी पैदा होता है। कुछ लोग क़ुलज़ुमी को बहुत बढ़िया ख़्याल करते हैं। बहुधा लोग उसे घी के साथ गर्म करते हैं और अनेक व्यक्ति उसे आग की आँच में रखकर पीसते और सुगंधियाँ मिलाते हैं।

१६, सुगंध कोकिला—(गूगुल[२]) एक पौधा है; हिन्दुस्तान में बहुत होता है। सुगंधियों में काम आता है।

साथ लगा रहता है। अरब से लोबान बम्बई आता है। वहाँ छाँट-छाँट कर उसके भेद किये जाते हैं। जो पीले रंग की बूँदों के रूप के साफ़ दाने होते हैं, वे कौड़िया कहलाते हैं; उनको छाँटकर यूरोप भेज देते हैं तथा मिले-जुले माल और चूरे को भारतवर्ष और चीन के लिए रख लेते हैं। एक और प्रकार का लोबान जावा, सुमात्रा आदि स्थानों से आता है, जिसे जावी लोबान कहते हैं। यूरोप में इससे एक प्रकार का क्षार बनाया जाता है, जिसे बेंज़ोइक-एसिड कहते हैं (शब्दसागर)। एक प्रकार का लोबान दक्षिणी अमेरिका से भी आता है। यह पाइनस-पैलसट्रिस या पाइनस-टेइडा नामक वृक्ष को खुरच कर प्राप्त किया जाता है।

१—इसका आकार बहुधा चंद्राकार और कभी-कभी घोड़े के सुम और हाथी के कान के सदृश तथा गोलाकार भी होता है। यह सफ़ेद नीला तथा और भी कई रंग का होता है। वैद्यक ग्रंथों में छोटे-बड़े के भेद से छोटे को क्षुद्रनखी और बड़े को बृहन्नखी कहते हैं। इसको जलाने से दुर्गन्ध निकलती है, किन्तु तेल में डालने से सुगंध। यह हलका, गर्म, स्वादिष्ट, शुक्रवर्द्धक तथा फोड़ा-फुंसी, घाव, विष, कुष्ट, वात श्लेष्मा आदि शामक एवं दुर्गन्ध-नाशक है। संबुल गेहूँ और जौ की बाली तथा बालछड़ को कहते हैं। यहाँ पर बालछड़ अभिप्रेत है।

२—इसका पेड़ कांटेदार होता है, जो राजपूताना, काठियावाड़, ख़ानदेश, सिंध, अरब, और अफ्रिका में पाया जाता है। जाड़े के दिनों में इसके छिलके को स्थान-स्थान पर छील देते हैं, जिनसे गोंद के रूप में गुग्गुल निकलता है। भारतवर्ष में इसका चालान विशेषकर अमरावती से होता है। बम्बई में दरजे बन्द करने के लिए यह गारे में मिलाया जाता है। वैद्यक के अनुसार यह हड्डी जोड़नेवाला, वात-व्याधि और कुष्ट-नाशक, स्वरशोधक और वीर्यवर्द्धक है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यतः सुगंधियों का कुछ हाल मैं निवेदन कर चुका, अब फूलों की कुछ विचित्रताएँ वर्णन करता हूँ।

१, **सेवती**—शक्ल में गुलाब के फूल की तरह का, परन्तु उससे अधिक छोटा१। उसके बीच में सुनहला पराग होता है। उसमें चार से छे तक पँखड़ियाँ होती हैं। गुजरात और दक्षिण-भारत में अधिक होता है।

२, **चमेली**—दो प्रकार की होती है। पहली राय चमेली, जिसके फूल में पाँच-छे पँखड़ियाँ होती हैं, जो बाहर की ओर लाली लिये रहती हैं। दूसरी चमेली, जिसका फूल ज्यादा छोटा होता है और उसके ऊपर लाल धारियाँ बनी रहती हैं। उसका पौधा डेढ़ से दो गज़ तक का होता है। वह ज़मीन पर बौंड़ता है, और उसमें लम्बी-चौड़ी बहुत सी शाखाएँ होती हैं। सालभर का पौधा फूलने लगता है।

३, **रायबेल**—इस का फूल चमेली के सदृश, कई प्रकार का, एक पर्त तथा अधिक पर्तवाला होता है। पांच पर्त का अधिक होता है। इसके हर पर्त का एक अलाहदा फूल बनाया जा सकता है। इसका पौधा एक गज़ तक बढ़ता है। इसके बूटे के पत्ते नीबू के पत्तों के समान, पर उनसे कुछ छोटे और मुलायम होते हैं।

४, **मोंगरा**—फूल रायबेल की तरह होता है, परन्तु उससे अधिक बड़ा। इसमें सौ से अधिक पंखड़ियाँ होती हैं। सुगंध में यह रायबेल की बराबरी नहीं कर सकता। इसका पेड़ बहुत बड़ा होता है।

५, **चम्पा**—इसका फूल शुण्डाकार एक अंगुल लम्बा होता है। इसमें दस तथा दस से अधिक पंखड़ियाँ होती हैं। वे पर्तदार होती हैं, उनमें परागकेसर रहता है। इसका वृक्ष सुहावना होता है। इसके पत्ते और प्रकाण्ड अखरोट के वृक्ष के समान होते हैं। सात साल का चम्पा फूलता है।

६, **केतकी**—सनोबरी सूरत का, चौथाई गज़ लम्बा और बारह तथा इससे भी अधिक पंखड़ियोंवाला होता है। इसकी सुगंध भीनी तथा आनन्द-दायक होती है। छे-सात साल का पेड़ फूलता है।

७, **केवड़ा**—केतकी के सदृश होता है, परन्तु उसके दुगने से भी अधिक बड़ा। इसकी पंखड़ियाँ काँटेदार होती हैं। ये एक ही स्थान पर नहीं उगते।

१—सफ़ेद गुलाब।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसलिए सब केवड़े बराबर नहीं होते। फूल के बीच से शहद के रंग की रेशेदार एक टहनी निकलती है, जो सुगंध रहित नहीं होती। केवड़े का फूल सूखने के बाद भी सुगंधित रहता है। लोग उसे कपड़ों में रखते हैं, उसकी गंध अर्से तक बनी रहती है। पेड़ का धड़ चार गज़ से अधिक लम्बा होता है। उसके पत्ते ज्वार के समान कुछ बड़े, तीन पहल के और तीनों पहल कांटेदार होते हैं। चतुर्वर्षीय केवड़ा पुष्पान्वित होता है। लोग प्रति वर्ष उसकी जड़ पर नई मिट्टी चढ़ाते हैं। दक्षिण गुजरात, मालवा और बिहार में बहुत होता है।

८, **चलता**—बड़े लाला (पोस्ते का फूल) के समान होता है। इसमें अठारह पंखड़ियाँ होती हैं; ऊपर की छे पंखड़ियाँ हरी, अन्य छे कुछ लाल, कुछ भूरी-पीली, शेष छे सफ़ेद। बीच में सदाबहार के फूल की तरह दो सौ छोटी पीली पंखड़ियाँ होती हैं, और उसके मध्य में लाल घुंडी होती है। तोड़ने के पश्चात् पांच-छे दिन तक फूल हरा-भरा बना रहता है। उसकी गंध बनफ़्शे से मिलती-जुलती है। जब फूल कुम्हला जाता है, तो उसे पकाते और खाते हैं। उसका पेड़ अनार के वृक्ष की तरह का होता है, और पत्तियाँ नीबू की तरह की। सप्त-वर्षीय वृक्ष[१] फूलता है।

९, **तसबीहगुलाल**—बहुत ज्यादा ख़ुशबूदार होता है। उसकी पंखड़ियाँ तलवार के सदृश होती हैं। पौधे की उँचाई दो गज़ होती है। चौसाला पेड़ फूलता है। उसकी मालाएँ बनाते हैं, जो एक सप्ताह तक हरी रहती हैं।

१०, **मौलश्री**—चमेली से छोटा, और उसकी पंखड़ियाँ कँगूरेदार होती हैं। सूखने पर फूल अधिक सुगंधित होजाता है। उसका वृक्ष अख़रोट के समान होता है, और दससाला पेड़ फूलता है[२]।

१—चलता बँगाल, मद्रास और मध्य-भारत में होता है। इसका पेड़ बड़ा, लकड़ी मज़बूत और अन्दर लाल होती है। इसके पुराने पत्तों से हाथी-दाँत साफ़ किया जाता है। इसमें बेल जैसा बड़ा फल लगता है। वह कच्चा भी खाया जाता और उसका शाक भी बनाया जाता है। किन्तु रेशे की अधिकता के कारण लोग उसे चूस-चूस कर खाते हैं।

२—मौलसिरी का पेड़ बीजों से पैदा होता है, किन्तु पश्चिमीघाट और कनारा के जंगलों में आपसे आप उत्पन्न होता है। फूलों से इत्र बनता, फल खाये जाते, बीजों से तेल निकलता और छाल औषधियों के काम में आती है। अन्दर की लकड़ी लाल होती है, जिससे मेज़, कुर्सी आदि बनाई जाती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

११, सिङ्गारहार—(शृङ्गारहार) लौंग की शक्ल का और डंडी नारंगी रंग की, पराग पोस्ते के दाने के तुल्य, पेड़ अनार के सदृश और पत्ते शफ़्तालू के पत्तों के समान होते हैं। पाँच साल का पेड़ फूलता है।

१२, कूज़ा—सूरत-शक्ल गुलाब के फूल की तरह, पेड़ उससे अधिक बड़ा और पत्तियाँ उसी के समान होती हैं। यह पाँच अथवा सौ पंखड़ियों वाला होता है। बीच में सुनहला पराग रहता है। इससे अबीरमाया बनाते और गुलाब खींचते हैं[१]।

१३, पाडल—इसमें पाँच-छे लम्बी पँखड़ियाँ होती हैं। यह जल को स्वादिष्ट और सुगंधित बनाता है। अधिकतर मनुष्य इसके फूल को मिट्टी में मिलाकर रख छोड़ते हैं, और दुष्प्राप्य समय में इसको पानी में डालते हैं। वृक्ष और पत्ते अख़रोट के समान; बारहसाला फूलता है[२]।

१४, जूही—पत्ते छोटे होते हैं। इसकी बेल पेड़ में लिपट जाती है। तिसाला पौधा फूलता है।

१५, निवारी—फूल रायबेल के समान होता है, पर केवल एक पत्ते का। इसका पौधा और पत्तियाँ उससे कुछ बड़ी होती हैं। इतना खिलता है कि पत्ते और डालियाँ छिप जाती हैं। एक साल का पौधा फूलता है।

१६, कपूरबेल—पाँच पंखड़ियों का, केसर के फूल की तरह होता है। यह पेड़ वर्तमान-शासन में यूरोप से लाया गया।

१७, ज़ाफ़रान—(केशर) उर्दीबिहिश्त[३] महीने के आरम्भ में बीज को, विशेष रीति से तैयार की हुई तथा मुलायम बनाई हुई ज़मीन में गाड़ देते हैं और

१—मोतिया या बेले का फूल। इसका एक भेद मदनबान है, जिसकी कली एक इंच लंबी होती है।

२—पाटला या पाडर के पेड़ में लाल और सफ़ेद फूल लगते हैं। 'लुग़ाते-कबीर' के अनुसार इसकी फली आध गज़ लंबी और चार अंगुल तक चौड़ी होती है। उसमें रुई जैसी एक चीज़ निकलती है। कोई-कोई फूल कालिमा और पीलापन लिये हुये भी होते हैं। पत्ते बेल-पत्र के समान होते हैं।

३—एक सौरमास का नाम, जो हिन्दुस्तानी जेठ या उसके आस-पास पड़ता है। यह शब्द यौगिक है। उर्द का अर्थ सदृश है और बहिश्त स्वर्ग या बाटिका को कहते हैं। अतः उर्दीबहिश्त का अर्थ 'स्वर्ग के समान' होता है। ईरान और तूरान में वसंत ऋतु लगभग इसी मास में पड़ा करती है, इस कारण यह मास उपर्युक्त नाम से प्रसिद्ध हुआ (ग़यासुल्लुग़ात)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वर्षा के पानी से सींचते हैं[१]। बीज एक गोल गाँठ होती है लहसुन के अनुरूप। केशर आबान (लगभग अगहन) मास के मध्य में फूलता है। उसकी डाली चौथाई गज़ लम्बी होती है। परन्तु भूमि-बल की भिन्नता के कारण कभी उसके दो भाग ज़मीन के ऊपर रहते हैं और कभी उसके नीचे। उसके सिरे पर फूल लगता है। उसमें छे पंखड़ियाँ और छे रेशे होते हैं। इनमें से पहली तीन पंखड़ियाँ नीले रंग की बहुत तर॰ होती हैं, शेष तीन और उन्हीं के तुल्य उनके आस-पास लगी रहती हैं। इन छे पंखड़ियों के बीच में तीन पीले रेशे होते हैं, जो तीन लाल रंग के रेशों के आस-पास रहते हैं। केशर से मतलब इन्हीं तीनों अंतिम ज़ीरों का है। लोग सुनहले ज़ीरे चालाकी से मिला देते हैं। पूर्वकाल में केशर चुनने के लिए मनुष्य बलपूर्वक लाये जाते थे, वे उसको पँखड़ियों और रेशों से पृथक् करते थे। उनको मज़दूरी में नमक दिया जाता था। जो आदमी दो पल साफ़ करता था, दो पल नमक पाता था। पर ग़ाज़ीख़ाँ चक[२] के समय में निम्नलिखित प्रथा प्रचलित हुई। लोग ग्यारह तर्क फूल[३] मज़दूरों को साफ़ करने

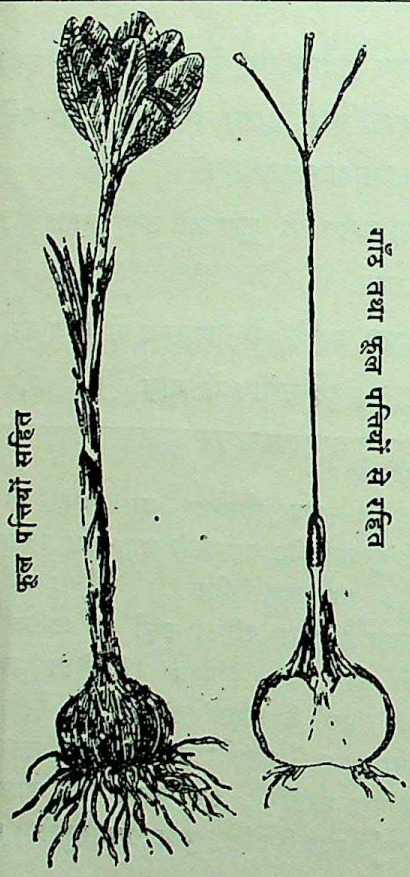

केशर का पौधा

१—केशर का सविस्तर वर्णन सूबा काबुल के अन्तर्गत कश्मीर सरकार के विस्तृत विवरण में देखिये।

२—"यह शेरख़ाँ का समकालीन था, जैसा कि तृतीय ग्रंथ में अबुलफ़ज़्लकृत कश्मीर के शासकों की सूची से प्रकट होता है। एशियाटिक सोसायिटी आफ़ बंगाल के हस्तलिखित ग्रंथ नं॰ ४५—मआसिरे-रहीमी—के आरम्भ में ग़ाज़ीख़ाँ का एक उत्तम जीवन-चरित्र दिया हुआ है" (Blochmann's trans. P. 84, Note 2)। इसके पिता का नाम काजी चक था।

३—केसर का पौधा स्पेन, फ़ारस, कश्मीर और चीन में होता है। पर कश्मीर का केसर सर्वोत्तम माना जाता है। इसका फूल बैंगनी रंग की झांई लिये बहुत रंग का होता है, और पौधे में फूल निकलने के बाद पत्तियाँ निकलती हैं। प्रत्येक फूल में केवल तीन केसर होते हैं, इसीलिए आधी छटाँक अस्ल केसर के लिए प्रायः ४००० फूलों की आवश्यकता होती है। केशर निकाल लेने के बाद फूल को धूप में सुखाकर हलके

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

को देते थे। उसमें से वे (मज़दूर) एक तर्क फूल, साफ़ करने की मज़दूरी के लिए निकाल लेते थे। शेष दस तर्क[1] फूलों के लिए उनसे दो सेर अकबरशाही ख़ालिस और सूखी केशर लेते थे। सारांश यह है कि दो मन अकबरशाही केशर के फूलों से दो सेर ख़ालिस केशर लेते थे। परन्तु जब सम्राट ने तीसरी बार कश्मीर में पदार्पण किया, तो इस प्रथा को रद्द कर दिया। लोगों को इससे बहुत आराम हो गया। बीज एक बार ज़मीन में गाड़ते हैं और वह छे साल तक फूलता है; परन्तु भूमि को प्रतिवर्ष मुलायम करते रहते हैं। पहले और दूसरे साल वह कम फूलता है, पर तीसरे साल पूर्णतया खिल जाता है। जब छे साल बीत जाते और यदि उस गांठ को भूमि से नहीं निकालते हैं, तो वह ख़राब हो जाती है। इसलिए वाध्य होकर उसे खोद कर दूसरे स्थान पर लगाते हैं। पर पुरानी ज़मीन को पांच साल और ख़ाली पड़ी रहने देते हैं। केशर विशेषकर ज़िला मरुराज के गांव पनपूर[2] में होती है। वहाँ अनुमानतः

डंडों से कूटते हैं और फिर उसे किसी जल-भरे बर्तन में डाल देते हैं। उसमें से, जो अंश नीचे बैठ जाता है, वह "मोंगला" कहलाता है और मध्यम श्रेणी का केसर होता है। जो अंश जल में न डूबकर पानी के ऊपर रह जाता है, वह फिर सुखाकर और कूटकर पानी में डाला जाता है। इस बार जो केसर जल में डूब जाता है वह निकृष्ट श्रेणी का होता है और "नीबल" या "निर्बल" कहलाता है। केसर का पौधा विशेष प्रकार की ढालुवाँ ज़मीन में होता है, जो इसी कार्य के लिए आठ वर्ष पहले से बिल्कुल परती छोड़ दी जाती है। इस पौधे की गाँठ ज़मीन में गाड़ दी जाती है, और एक बार की लगाई हुई गाँठों से चौदह वर्ष तक फूल निकलते रहते हैं। इसके फूल कार्तिक में लगते और संग्रह किये जाते हैं। वैद्यक में केसर को सुगंधित, तिक्त, रुचिकारक, कांतिवर्द्धक, कंडुनाशक, विरेचक और कास, वायु, कफ़, कृमि तथा त्रिदोष-नाशक माना है। डाक्टरी मत से यह ज्वर और यकृत-नाशक और रजोनिस्सारक है; पर आजकल के कुछ नए डाक्टर इसका कोई गुण स्वीकार नहीं करते (शब्द-सागर)। हिकमत की किताबों में इसका स्थान दूसरे दर्जे की गर्म और पहले दर्जे की ख़ुश्क दवाइयों में है।

१—१ कश्मीरी तर्क = ८ अकबरशाही सेर = ४ कश्मीरी मन। १ कश्मीरी मन = ४ कश्मीरी सेर। १ कश्मीरी सेर = ७½ पल। पल का फ़ारसी में शुद्धोच्चारण पुल है जो पूल का संक्षिप्तरूप है। अरब-वाले इसे फ़ल्स कहते हैं और हिन्दुस्तानी पैसा। पल संस्कृत शब्द है। साधारणतया १ पल = ४ कर्ष = ४ तोला। वैद्यक में १ कर्ष = ८ तोला, किन्तु अन्यत्र ३ तोला ४ माशा। तर्क का अर्थ भाग या अंश है।

२—ये स्थान कश्मीर की राजधानी श्रीनगर के दक्षिण में अवस्थित हैं। तृतीय ग्रंथ में सूबा काबुल के वर्णन में मरुराज के स्थान पर मरराज पाठ है (Blochmann's trans. P. 84, Note 4)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बारह कोस तक उसके खेत हैं। कमराज की ओर इन्द्रकूल के निकट परसपुर के परगने में भी एक कोस तक उसकी खेतीवाड़ी होती है।

१८, आफ़ताबी—(सूर्यमुखी) गोल, चौड़ा, बड़ा और पुष्पदलों से भरा हुआ, सदा सूर्य की ओर देखता रहता है। इसका पौधा तीन गज़ तक बढ़ता है।

१९, कँवल—(कमल[१]) दो प्रकार का होता है। इनमें से एक, सूर्य के प्रकाशित होने पर विकसित होता है। सूर्य, जिस ओर को जाता है, वह उसी तरफ़ को घूमता जाता है और सायङ्काल कली हो जाता है। यह लाला के फूल के सदृश होता है, परन्तु इसकी लालिमा श्वेतता लिये रहती है। इसमें छे से कम पंखड़ियाँ नहीं होतीं। इनके अन्दर पीले रेशे होते हैं। इनके बीच में गाजर की आकृति की एक गांठ सी होती है, जिसका आधार ऊपर को होता है। यही उसका फल है, जिसमें से बीज निकलते हैं। दूसरे प्रकार का कमल, चार पंखड़ियों का सफ़ेद रंग का होता है। यह उसी प्रकार चन्द्रमा के प्रकाश से खिलता और घूमता है; परन्तु बन्द नहीं होता।

२०, जाफ़री—(एक प्रकार का गेंदा) गोल सुहावना फूल है। यह गेंदे से ज़्यादा बढ़ता है। एक पंच-पंखुड़िया और दूसरा सौ-पंखुड़िया होता है। सौ-पंखुड़िया जाफ़री दो महीने तक हरा भरा बना रहता है। उसका पेड़ आदमी के बराबर ऊँचा होता है, और पत्तियाँ बेत की पत्तियों के सदृश, परन्तु कँगूरेदार। दो महीने का पेड़ फूलता है।

२१, गुड़हल—लाला जुग़ासू के फूल के समान, पंखड़ियों से परिपूर्ण,

---

१—कमल चैत-वैसाख से सावन-भादों तक फूलता है। 'शब्द-सागर' के अनुसार इसके डंठल के सूत से बटकर मन्दिरों में जलाने की बत्तियाँ बनाई जाती हैं। प्राचीन काल में इसके कपड़े भी बनते थे। वैद्यक के अनुसार इस सूत के कपड़े से ज्वर दूर हो जाता है। मधु-मक्खियाँ कमल के रस को लेकर जो मधु बनाती हैं, वह आँखों के लिए उपकारी होता है। उमरा (अमेरिका) टापू में एक प्रकार के कमल के पुष्प का व्यास १५ इंच और पत्ते का व्यास साढ़े छे फ़ुट होता है। एक प्रकार के लाल-कमल के बीज से, जिसमें गंध नहीं होती, तेल निकलता है। लाल-कमल भारतवर्ष में प्रायः सब प्रान्तों में मिलता है। श्वेत-कमल काशी के आस-पास के स्थानों में पाया जाता है। नील-कमल कश्मीर के उत्तर तिब्बत में और कहीं-कहीं चीन में होता है। पीत-कमल अमेरिका, साइबेरिया और जर्मनी इत्यादि में उगता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पौधा दो गज़ का तथा इससे भी बड़ा, और पत्ते शहतूत की तरह के होते हैं। दो साल का पौधा फूलता है[१]।

२२, रत्नमंजनी—चार पंखड़ियों का, चमेली से छोटा होता है। पेड़ और पत्ते रायबेल के सदृश होते हैं। दोसाला पौधा फूलता है।

२३, केसू—(टेसू[२]) पाँच पंखड़ियों का, और प्रत्येक दल व्याघ्रनख के सदृश होता है। उनके बीच में जीभ के आकार का एक पीला रेशा होता है। इसका वृक्ष बहुत बड़ा होता है और प्रत्येक बन में खिलता है, जिससे संसार में शोभा की आग लग जाती है।

२४, कनेर—अधिक समय तक खिला रहता है। देखने में भला मालूम होता है, परन्तु होता है ज़हरीला[३]। जो कोई उसे अपने शिर पर रखता है, लड़ने लगता है। विशेषकर पाँच पंखड़ियों का होता है। शाखाएँ पुष्पों से परिपूर्ण रहती हैं। वृक्ष दो गज़ से भी अधिक बढ़ता है। एक वर्षीय वृक्ष पुष्पान्वित होता है।

२५, कदम—तुमाग़ा[४] के सदृश होता है। पेड़ और पत्ते अख़रोट के समान होते हैं।

१—गुड़हर या अड़ुहल की दो-तीन पत्तियाँ चबाने के बाद यदि गुड़ खाया जाय तो उसका स्वाद ही नहीं जान पड़ता। पुराना विश्वास है कि गुड़हर का फूल घर में रहने से लड़ाई होती है। यह छोटा-बड़ा दो प्रकार का होता है।

२—इसकी पतली डालियों को उबाल कर एक प्रकार का घटिया कत्था तैयार किया जाता है, जो बंगाल में खाया जाता है। जड़ की छाल की रस्सियाँ बनाई जाती हैं। इससे दरी और काग़ज़ भी बनाया जाता है। कोयला, ईंधन, फूलों का रंग, फली की बुकनी का अबीर, नावों की दराज़ें बन्द करने के लिए बकेलू उदर-कृमि-नाशक बीज तथा उपयोगी गोंद इसी वृक्ष से उपलब्ध होता है। यह हिन्दुओं के पवित्र वृक्षों में है। श्रौत-सूत्रों में इसी के अनेक यज्ञ-पात्र बनाने की विधि है। उपनयन-संस्कार में ब्रह्मचारी इसी का दंड धारण करता है। यह ४००० फ़ुट की ऊंची पहाड़ियों तक मिलता है। यह भारतवर्ष के सब सूबों में बहुधा वृक्ष क्षुप (पौधा) और कहीं-कहीं लता के रूप में भी पाया जाता है।

३—सफ़ेद फूल का कनेर अधिक विषैला होता है। घोड़े के लिए कनेर भयङ्कर विष है। इसी लिए संस्कृत-कोषों में इसके नाम हयमार और अश्वघ्न आदि मिलते हैं। 'मख़ज़नुलमुफ़रिदात' के अनुसार गधा इसके पास नहीं जाता। 'निघंटुरत्नाकर' में काले रंग के फूल की कनेर का भी उल्लेख है।

४—शाही टोपी के समान (Blochmann's trans. P. 85)। प्राचीन काल में इसके फलों से एक प्रकार की मदिरा बनाई जाती थी, जिसे कादंबरी कहते थे (शब्द-सागर)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२६, **नागकेसर**—गुलाब के फूल के सदृश। पाँच पंखड़ियों का पराग से भरा होता है। पेड़[१] और पत्ते अखरोट के समान होते हैं। सात साल का पेड़ फूलता है।

२७, **सुरपन**—तिल के फूल के समान होता है। उसके बीच में पीत पुष्परज रहता है। उसका पौधा[२] हिना (मेहँदी) के सदृश और पत्ते बेंत के समान होते हैं।

२८, **श्रीखंडी**—चमेली के फूल के समान, परन्तु अधिक छोटा। दोसाला पौधा फूलता है।

२९, **हिना**—(मेहँदी[३]) इसमें चार पंखड़ियाँ होती हैं, और यह नाफ़रमान के फूल की शक्ल का होता है। विभिन्न पेड़ों में विभिन्न रंग के फूल खिलते हैं।

३०, **दुपहरिया**—गोल, छोटा, सदाबहार के अनुरूप। यह दोपहर को खिलता है। इसका पौधा दो गज़ का होता है।

३१, **भूंचम्पा**—कुमदनी के फूल के सदृश, पाँच पंखड़ियों का, और डंडी बालिश्तभर की होती है[४]। जिस ज़मीन में बहिया आकर निकल जाती है, यह उसी में उगता है। पानी के ऊपर एक-दो पौधों के अतिरिक्त नहीं दिखलाई पड़ते हैं।

१—इसका पेड़ बंगाल, आसाम, बर्मा, दक्षिण-भारत और सिंहल आदि में पाया जाता है। इसकी लकड़ी इतनी कठोर और उत्तम होती है कि काटने में तो कुल्हाड़ियाँ टूटती हैं, पर हाथ फेरने से ही वार्निश हो जाती है। सूखे फूलों से औषधियाँ, मसाले और रंग बनाये जाते हैं। रंग से रेशम रँगा जाता है। सिंहल में बीजों से तेल निकालकर दिया जलाते और दवा के काम में लाते हैं। मद्रास में यही तेल वात रोग में इस्तेमाल किया जाता है।

२—इसके पेड़ मद्रास, सिंहल, बर्मा और उड़ीसा में समुद्र-तट पर, जहाँ प्रायः अन्य वृक्ष नहीं उगते, आपसे आप अधिकता से होते हैं। इसकी लकड़ी अधिक मज़बूती के कारण जहाज़ के मस्तूल और रेल की पटरी के नीचे लगाने के काम आती है। लाल फूल गुच्छों में लगते हैं। उनके अन्दर का पराग पुन्नाग-केसर कहलाता है, जिससे दवाई बनाई जाती है। फलों के बीज से तेल निकलता है।

३—मेहँदी बिलोचिस्तान के जंगलों में आपसे आप होती है। भारतवर्ष में और सब कहीं लगाई जाती है।

४—भुइँचंपा या भूमिचंपक का पौधा भारतवर्ष, बर्मा, जावा और लङ्का आदि में होता है। इसके पत्ते लंबे और सुन्दर तथा फूल सुगंधित होते हैं। यह प्रायः बाग़ीचों में लगाया जाता है। इसकी छाल, पत्ते और जड़ औषधि के काम में आते हैं। इसकी जड़ फोड़ा पकाती और छाल का चूर्ण घाव भरता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

३२, **सुदर्शन**—रायबेल के समान होता है। फूल के अन्दर पीले रेशे रहते हैं। उसका पौधा सौसन[१] के तुल्य होता है।

३३, **सेंबल**—पाँच पंखड़ियों का होता है, हर पंखड़ी दस अंगुल लम्बी आर तीन अंगुल चौड़ी होती है।

३४, **रत्नमाला**—गोल और छोटा। उसके रस को औटाकर फटकरी और कुसुम में मिलाते हैं। उससे कपड़े रंगते हैं, पक्के लाल पड़ जाते हैं। गाय के घी और तिल के तेल को उसकी जड़ के साथ औटाते हैं, मिश्रण लाल नारंगी रंग का होजाता है।

३५, **सूनज़र्द**—फूल चमेली की तरह का, पर उससे कुछ बड़ा, पाँच-छे पंखड़ियों का होता है। उसका पौधा चमेली के अनुरूप होता है। दो साल का पौधा फूलता है।

३६, **मालती**—फूल चमेली की तरह का, परन्तु उससे कुछ छोटा होता है। उसके अन्दर पोस्ते के दाने के सदृश पराग होता है। न्यूनाधिक दो साल का बिरवा फूलता है।

३७, **करील**—छोटी तीन पंखड़ियों का होता है और अधिक फूलता है। इसके देखने से आनन्द प्राप्त होता है। लोग फूलों को उबालते और खाते हैं तथा अचार भी बनाते हैं।

३८, **जैत**—इसका क्षुप बड़ा रूखर[२] होजाता है। इसकी पत्तियाँ इमली की पत्तियों के समान होती हैं।

१—सोसन या सौसन का पौधा फ़ारस की ओर का है, और भारतवर्ष में कश्मीर आदि प्रदेशों में होता है। सफ़ेद और नीली इसकी दो जातियाँ हैं। सफ़ेद को आज़ाद और नीले को ईरसा कहते हैं। इसकी जड़ में एक साथ कई डंठल निकलते हैं। पत्ते हाथ-हाथ भर के, मुलायम, लंबे, आध-आध अंगुल चौड़े और नोकदार होते हैं। फूलों की पंखड़ियाँ नीलापन लिये हुये लाल-लाल, नुकीली और आध अंगुल चौड़ी होती हैं। बीज-कोष छे-पहले और चोंचदार होते हैं। हकीमी में यह औषधि के काम आता और उष्ण तथा शुष्क माना जाता है। इसके पत्तों को चबाकर निकाला हुआ रस आँख के घाव, रतोंधी, सबल और नाख़ूना के लिए लाभदायक है। शिर-पीड़ा, कफ़ और वात के लिए भी यह उपयोगी है। फ़ारसी-कवि जिह्वा की उपमा इसकी पंखड़ी से देते हैं।

२—जैत, जैंत, जैंता जयन्ती का नाम है। इसके फूल अरहर के फूलों के समान पीले होते हैं। फलियाँ एक या सवा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

३९, **चँपला**—इसका फूल गुलदस्ते के समान होता है। इसके वृक्ष के पत्ते अखरोट के पत्तों से मिलते-जुलते हैं। दो साल का पेड़ फूलता है। जब पेड़ की छाल को पानी में औटाते हैं, पानी लाल होजाता है। यह अधिकतर पहाड़ों में होता है। इसकी लकड़ी मोमबत्ती की तरह जलती है।

४०, **लाही**—इसका बिरवा डेढ़ गज़ का होता है। फूलने के पहले उसके डंठलों का बहुत बढ़िया शाक बनता है। ऊँट इसके खाने से मोटा और मस्त हो जाता है।

४१, **करौंदा**—फूल जुही के सदृश होता है।

४२, **धनन्तर**—कुमदिनी की तरह का बहुत सुहावना मालूम होता है। यह बेलदार होता है।

४३, **सिरस**—फूल में रेशमी धागों के सदृश डोरे होते हैं और तुमाग़ा के आकार का होता है। यह दूर से सुगंध देता है। यद्यपि लोग पीपल और बरगद की पूजा करते हैं किन्तु सिरस के पेड़ को वृक्ष-राज कहते हैं। इसका झाड़ बहुत बड़ा होता है और इसकी लकड़ी मकान बनाने में काम आती है। इसके प्रकाण्ड के अन्दर से काली लकड़ी निकलती है, उसमें बसूला नहीं गड़ता है।

४४, **कँगलाई**—इसके फूल में पाँच पंखड़ियाँ होती हैं, जिनमें से प्रत्येक चार अंगुल लंबी और बहुत शोभायमान होती है। हर डाल में एक से अधिक फूल नहीं खिलता है।

४५, **सन**—गुलदस्ते की तरह का होता है। इसके पौधे के पत्ते चनार के सदृश होते हैं। इसकी छाल की रस्सियाँ बनती हैं, वे बहुत मज़बूत होती हैं। एक प्रकार के सन का फूल कपास के फूल के समान होता है, उसको **पटसन** कहते हैं। उसकी रस्सी बहुत मुलायम होती है।

इस देश के फूलों का हाल वर्णन करना, मुझ जैसे अज्ञान के लिए बहुत ही कठिन है। केवल लोगों की जानकरी के लिए उनका कुछ वृत्तांत लिख दिया

बालिश्त तक लंबी होती हैं। इसकी छोटी जाति चक्र-भेद कहलाती है, जिसके रेशे से जाल बुना जाता है। फलियाँ दस्त की बीमारी में काम देतीं, उनसे खुजली का मरहम बनाया जाता, पत्तियाँ सूजन को पटकातीं और जड़ पीसकर लगाने से बिच्छू का विष दूर हो जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है। ईरानी और तूरानी फूल, जैसे गुले-सुर्ख़ (गुलाब), नरगिस[१], बनफ़शा[२], यास्मने-कबूद[३], सौसन[४], रैहाँ[५], राना[६], जेबा, शक़ायक़[७], ताजे-ख़ुरूस[८], क़लग़ा[९], नाफ़रमान, ख़तमी[१०] इत्यादि भी बहुत होते हैं। बाग़ और फुलवारियाँ जगह-जगह नेत्रों को विकसित कर रही हैं। पहले, लोग वाटिकाओं में पौधों के बोने का कोई क्रम नहीं रखते थे, परन्तु जब से बाबर ने हिन्दुस्तान में पदार्पण किया, तब से क्यारी बनाने और सजधज करने की पृथा प्रचलित होगई है। परिणामस्वरूप, यहाँ के चित्ताकर्षक भवनों एवं कलकलकारी झरनों ने विश्व-पर्यटकों को चकित कर दिया है।

इस राष्ट्र के उन वृक्षों के वृत्तान्त की व्याख्या करना, जिनके फल, फूल, कली, पत्ते और कंद-मूल आदि आहार और औषधियों के काम में आते हैं, असंभव है। हिन्दी (हिन्दुओं के) ग्रन्थों में यह लिखा हुआ है कि यदि प्रत्येक वृक्ष से केवल एक-एक पत्ता लेकर संग्रह करें, तो अट्ठारह **बार** एकत्र हो जायँगे। ५ रत्ती का १ माशा, १६ माशे का १ कर्ग, ४ कर्ग का १ पल, १०० पल का १ तुला, और २० तुला का १ बार होता है। यदि इस बार को वर्तमान

१—नरगिस की जड़ प्याज़ की गाँठ-जैसी और पौधा भी प्याज़ के पौधे के समान होता है। फूल सफ़ेद रंग का कटोरी के आकार का और बीच में गोल काले धब्बे-वाला होता है। इसकी सुगंध बड़ी मनोहर होती है। फूल का इत्र बहुत अच्छा होता है। फ़ारसी और उर्दू के शायर नरगिस के फूल से आँख की उपमा देते हैं।

२—यह वनस्पति नेपाल, कश्मीर और हिमालय पर्वत पर होती है। पौधा छोटा, पत्तियाँ अनार की पत्तियों-जैसी और फूल बैंगनी रंग के होते हैं।

३—यास्मन चमेली का फ़ारसी नाम है और कबूद का अर्थ नीला है। नीली चमेली। साधारणतया सफ़ेद और पीली दो प्रकार की चमेली होती है।

४—फूल नं० ३२ का फ़ुट-नोट नं० १, पृष्ठ १८५, देखिये।

५—नाज़बू, तुलसी।

६—रअ्ना का फूल अन्दर से लाल और बाहर से पीला होता है।

७—लाला या पोस्ता के फूल का एक भेद, जिसको शक़ायक़ुल नुअ्मान भी कहते हैं। नुअ्मानबिनमुंज़र एक जंगल में जा रहा था, उसमें लाला अधिक था। जब उसकी उत्कृष्ट सुन्दरता दृष्टि में पड़ी तो उसने आज्ञा दी कि उसका पोषण एवं रक्षा की जाय (मुन्तख़िबुल्लुग़ात)। लाला के अनेक भेद हैं, जैसे पहाड़ी, जंगली, नुअ्मानी, शक़ायक़, दिलसोख़्त, दिलसोज़, ख़ताई, ख़ुदरूई, सफ़ेद, ज़र्द, अब्बासी, पैकानी, मिक़राज़ी और दुख़्तरी। बाबर ने 'वाक़यातबाबरी' में लिखा है कि काबुल के किसी-किसी ओर पचास प्रकार के लाला दृष्टिगत हुये (ग़यासुल्लुग़ात)। गुलअब्बास में बरसात में लाल और पीले दोनों रंग के फूल लगते हैं।

८—मुर्ग़केस।

९—मुर्ग़केस का एक भेद।

१०—गुलख़ैरू। फूल नीले रंग का होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

समय के बांटों से तोलें, तो ६६ मन निकलेगा। उनका यह भी कथन है कि वृक्ष का जीवन-काल दो घड़ी से न्यून और दस हज़ार वर्ष से अधिक नहीं होता और उँचाई एक हज़ार योजन[१] तथा कुछ अधिक से विशेष नहीं होती। वे यह भी बतलाते हैं कि जब वृक्ष का जीवन समाप्त होता है, तो उसका प्राण निम्न-लिखित दस पदार्थों में से एक के साथ मिल जाता है:—अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, वनस्पति, पशु, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय प्राणी।

आईन ३१।

वस्त्रागार[२]।

सम्राट् के ध्यान देने से तरह-तरह के कपड़े तैयार होगये हैं तथा ईरानी, योरोपीय और ख़ताई[३] कपड़ों के ढेर लग गये हैं। निपुण शिल्पकों एवं अनोखे गुणियों ने आकर यहाँ के लोगों को कपड़ा बुनना सिखाया है। शाही कारख़ानों में, लाहौर, आगरा, फ़तहपुर, अहमदाबाद[४] और गुजरात में अत्युत्तम वस्त्र[५] बुने

१—देखिये पृ० १७३ नं० १०, सन्दल तथा नोट नं० २। ह्वेनसांग जब भारतवर्ष से अपने देश को वापस गया था तो वह अन्य वस्तुओं के साथ बुद्ध की सोने-चांदी की मूर्तियाँ, हस्त-लिखित ग्रंथ और चन्दन भी ले गया था (Mookerji's Harsh)। इससे उत्तम चन्दन का इस देश में होना तथा चीन का जाना स्पष्ट सिद्ध होता है।

२—मूल-ग्रंथ में 'करकराक़-ख़ाना व तोशक-ख़ाना' शीर्षक है। शब्द 'करकराक़' कोषों में ढूँढे नहीं मिलता। मि० ब्लाक्-मैन ने इस शब्द का शुद्धोच्चारण कुर्क + यराक़ = "कुर्कीराक़" माना है; जिससे शब्द का अर्थ विषय के अनुरूप हो जाता है। कुर्क से आशय उस सलोम चर्म से है, जिसको बहुधा यूरोपियन महिलाएं अपने कंधों पर डालती हैं। इसको अंग्रेज़ी भाषा में फ़र (Fur) कहते हैं। 'बहारे-अजम' के अनुसार इस ऊन से मुलायम और सुन्दर शाल-दुशाले भी तैयार किये जाते हैं। यराक़ का मतलब 'सामान' से है। हमने इन सबके लिए केवल वस्त्रागार शब्द प्रयोग किया है।

३—ख़ता देश के वस्त्र। ख़ता तुर्किस्तान तूरान और चीन के बीच का प्रदेश है—ग़यासुल्लुग़ात। मंगोलिया—ब्लाक्मैन।

४—मि० ब्लाक्मैन का कहना है कि अहमदाबाद के बाद 'और' शब्द अशुद्ध है क्योंकि, अहमदाबाद बहुधा अहमदाबादे-गुजरात कहलाता है।

५—भारतीयों को बहुत प्राचीन काल से कपास की उत्पत्ति, सूती, ऊनी और रेशमी कपड़े की कताई, बुनाई आदि का ज्ञान रहा है। 'ऋग्वेदिक-इण्डिया' में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जाने लगे हैं। भाँति-भाँति के चित्र, वेल-बूटे, गाँठें और अनूठी वज़ों का चलन होगया है, जिनको देखकर वस्तु-पारखी संसार-यात्री चकित होगये हैं। बुद्धिमान्

लिखा है कि "वैदिककाल में भेड़ों का ऊन काता जाता था, और उससे ऊनी कपड़े बुने जाते थे। अनेक व्यक्तियों ने इस कला को सीख लिया, और बिनाई का धंधा करने लगे, वे ही लोग तन्तुवाय कहलाये" (Avinash Chandradass, Rigvedic India, P. 126, 1925)। वैदिककाल में करघे का नाम तंत्र था (त एते वाचमभि पद्य पापया सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः—ऋग्वेद मंडल १०, सूक्त ७१, मंत्र ६) और सूत तन्तु कहलाता था (तन्तुं ततं संवयन्ती समीची—ऋ०, मं० २, सू० ३, मंत्र ६)। एक स्थल पर आदेश है कि माता अपने पुत्र के लिए वस्त्र बुने (वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति—ऋ०, मं० ५, सूक्त ४७, मंत्र ६)। वैदिककाल में हर कुटुम्ब अपने सामान्य उपयोग के लिए वस्त्र तैयार करता था, और बुनाई का काम साधारणतया स्त्रियों के सुपुर्द था (Rigvedic India, P. 126)।

"मोहेनजोदड़ों के मकानों में अनेक तकुलियों के तवों की प्राप्ति से यह सिद्ध होता है कि उन दिनों वहाँ कताई का बड़ा प्रचार था। यह भी अनुमान होता है कि ग़रीब और अमीर सभी कताई का काम करते थे, क्योंकि पहिये क़ीमती चीनी मिट्टी के तथा साधारण मिट्टी के और सीपी के बने हुये हैं। गर्म कपड़ों के लिए ऊन इस्तेमाल की जाती थी, और हलके वस्त्रों के लिए रुई। रुई के कुछ बारीक कपड़ों की, जो एक चाँदी के लोटे में लगे हुये थे, इण्डियन सेण्ट्रल काटन कमेटी की टेकनालोजिकल लेबोरेटरी में परीक्षा की गई। यह नमूना आजकल की मोटी जाति की भारतीय रुई के समान है। इसकी ऐंठन की बनावट से ज़ाहिर होता है कि यह सिन्ध में आजकल पाई जाने वाली गासीपियम् (Gossypium) जाति से नहीं होसकती, जो कि बिना ऐंठन-वाली होती है। इस अनुसन्धान से वर्तमान-काल के इस मत का खंडन होजाता है कि उत्तम भारतीय रुई—जो कि बेबिलियनों को 'सिन्धु' और यूनानियनों को 'सिंडन' नामों से ज्ञात थी—रुई के पेड़ की उपज थी, और वास्तविक रुई नहीं थी" (Indian Historical Quarterly Journal, Vol. 111, P. 146)। मोहेनजोदड़ों की सभ्यता आज से साढ़े चार हज़ार वर्ष पूर्व की मानी जाती है।

महाभारत में भी कई स्थानों पर रेशमी, सूती और ऊनी वस्त्रों का उल्लेख पाया जाता है। राजसूययज्ञ में युधिष्ठिर को जिन लोगों ने अनेक प्रकार के कर दिये थे, उनमें भरुकच्छ अर्थात् भड़ोंच के लोग कपास के सूक्ष्म वस्त्र पहने हुई एक लाख दासियों को कर के रूप में लेकर आये थे (शतं दासी सहस्राणां कार्पासिक निवासिनां, बलिं च कृत्स्नमादाय भरुकच्छ निवासिनः—सभा-पर्व ५१)। भड़ोंच आज भी कपास के लिए प्रसिद्ध है। वहाँ की कपास भारतवर्ष में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। कपास के सूक्ष्म वस्त्रों के लिये उन दिनों पाण्ड्य और चोल देश भी विख्यात थे (मणिरत्नानि भास्वन्ति कार्पास सूक्ष्म वस्त्रकं, चोल पाण्ड्या-वपि द्वारं न लेभाते ह्युपस्थितौ)। जिस प्रकार दक्षिणी देश सूती कपड़ों के लिए प्रसिद्ध थे, उसी प्रकार उत्तर के देश ऊनी और रेशमी वस्त्र बनाने के लिए ख्यातनामा थे। ये वस्त्र अनेक रंगों के होते थे और कलाबत्तू लगाकर बनाये जाते थे। और्ण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सम्राट् ने अल्पकाल में ही इस कला के ज्ञान और क्रिया-सम्बन्धी सम्पूर्ण बातों में दक्षता प्राप्त कर ली है और उसकी गुण-ग्राहकता के कारण इस देश के

अर्थात् ऊन से बनाये हुये, राकवं अर्थात् रंकु मृग से तैयार किये हुये, कीटजं अर्थात् रेशम के और कुटीकृत अर्थात् ऊन के बिना धागे बनाये हुये वस्त्र युधिष्ठिर को भेंट किये गये थे। कम्बोजराज (अफ़ग़ानिस्तान के समीप वाले प्रदेश का शासक) ने युधिष्ठिर को बकरे की ऊन के, बिलों में रहनेवाले जन्तुओं की ऊन के, बिल्लियों की ऊन के और कलाबत्तू के द्वारा बनाये हुये सुन्दर वस्त्र नज़राने में दिये थे। श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य ('महाभारत मीमांसा', पृ० ३७०-७१) में लिखते हैं कि "कपास से सूत निकाल कर उन से कपड़े बनाने की कला हिन्दुस्तान में अत्यन्त प्राचीनकाल से थी। महाभारत-काल में अतिशय सूक्ष्म वस्त्र बनाने की कला पूर्णता को पहुँच गई थी। ये महीन कपड़े पर्शिया, ग्रीस और रूम आदि स्थानों को भेजे जाते थे। ·····रोमन स्त्रियों को हिन्दुस्तान के बने हुये महीन कपड़ों से बड़ा प्रेम था।"

चन्द्रगुप्त मौर्य के राजत्वकाल में भी ऊनी, सूती और रेशमी कपड़ों का चलन था। कौटिल्य ने "कोश में ग्रहण करने योग्य रत्नों की परीक्षा" के प्रसंग में लिखा है :—"भेड़ का ऊन सफ़ेद, गुलाबी और लाल रंग का होता है। उससे चार प्रकार के कंबल बनाये जाते हैं, खचित (बिना बटे सूत का), वानचित्र (अनेक रंगों के ऊन का), खंड संघात्य (पट्टियां जोड़कर बनाया हुआ), और तन्तुविच्छिन्न (एक से ताने-बाने का बनाया हुआ)। प्रयोग के विचार से ऊनी कम्बल (वस्त्र) के दस भेद हैं—कम्बल (मोटा), कौचपक (चरवाहों वाला); कुलमितिका (पगड़ी), सौमितिका (बैल के ऊपर डालने योग्य), तुरंगास्तरण (घोड़े पर डालने योग्य), वर्णक (रंगीन), तलिच्छक (बिस्तर पर की चद्दर), वारवाण (लबादा, कोट), परिस्तोम (लम्बा-चौड़ा), समन्तभद्रक (हाथी पर डालने वाला)। इनमें महीन चिकना, कोमल और उत्तम ऊन का बढ़िया होता है। काले रंग की आठ पट्टियों से बने हुये कंबल का नाम भिंगसी है, यह वर्षा से बचाव के काम में आता है; अपसारक कंबल भी ऐसा ही होता है; ये दोनों कंबल नेपाल में बनते हैं। जंगली पशुओं की ऊन से बनाये जानेवाले वस्त्रों में संपुटिका (पायजामे-योग्य), चतुरश्रिका (नौ अंगुल लम्बा वस्त्र जिसके किनारे किसी विशेष रंग के न हों), लंबरा (ओढ़ने या परदे के योग्य), कटवानक (मोटे धागों का, पर्दा-योग्य), प्रावरक (कटवानक का एक भेद), सत्तलिका (गलीचे के योग्य) आदि भेद हैं। इनमें से बंगाल का (वाङ्गक) सफ़ेद और चिकना, पाण्ड्य देश का (पौण्ड्रक) काला और मणि के समान चिकना, सुवर्ण-कुड्य देश का (सौवर्ण कुड्य) सूर्य के समान रक्त-वर्ण और मणि के सदृश चिकना होता है। ये वस्त्र अद्धे, पूरे, तथा इकहरे, दोहरे, तेहरे और चौहरे भी बनाये जाते हैं। काशी और पुंड्र के वस्त्र-तन्तु इसी प्रकार के होते हैं। मगध, पुंड्र तथा सुवर्ण-कुड्य के वृक्षों की छालों या पत्तों के रेशे प्रसिद्ध हैं। नाग वृक्ष के पीले, बड़हर के गेहुँये, और अगस्त्य के सफ़ेद तथा अन्य वृक्षों के मक्खन की तरह सफ़ेद रेशे होते

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कुशाग्र-बुद्धि शिल्पकारों ने भी उक्त विषय की शिक्षा प्राप्त कर ली है। सब प्रकार के ऊनी और रेशमी कपड़ों की बुनाई चरम सीमा को पहुँच गई है। जो सामान

हैं। इनमें सुवर्णकुड्य के बने हुये कपड़े उत्तम होते हैं। इसी प्रकार चीन के बने हुये कौशेय, रेशमी वस्त्र तथा चीन-पट्ट भी होते हैं। सूती कपड़ों में मदुरा (माधुर), कोंकन (अपरान्तक), कलिंग (कलिङ्गक), काशी (काशिक), ढाका-बंगाल आदि (वाङ्गक), कौशाम्बी (वात्सक) तथा माहिष्मती (माहिषक) के आस-पास के प्रदेशों के वस्त्र सर्वोत्तम होते हैं (कौटिल्य-अर्थशास्त्र, अधिकरण २, प्रकरण २६)।

हर्ष (६०६—४७ ई०) के समय में अत्युत्तम वस्त्र तैयार हो रहे थे। हर्ष की बहिन राजश्री के विवाह के अवसर पर वस्त्रों का वर्णन करते हुये 'बाण' ने लिखा है कि अलसी या सन के रेशों से बने हुये, सूती वस्त्र, महीन कपड़े, रेशमी कपड़े, महीन रेशमी कपड़े, दुपट्टा, नेत्रवस्त्र कदाचित् नैनसुख, सांप की केंचुली के समान, कोमल केले के अन्दरूनी भाग के सदृश मुलायम, फूंक से उड़ जानेवाले, केवल छूने पर अनुभव होने वाले, तथा विभिन्न वर्ण वाले वस्त्रों से, मालूम होता था कि मानों सहस्रों इन्द्र-धनुष छा रहे हों, क्षौमैश्च बादरैश्च दुकूलैश्च लाला जन्तुजैश्च अंशुकैश्च नेत्रैश्च निर्मोकनिभैः अकठोरभा गर्भ कोमलैः निश्वास हार्यैः स्पर्शानुमेयैः वासोभिः सर्वतः स्फुरद्भिः इन्द्रायुध सहस्रैःइव संछादितम्—हर्ष-चरित, चतुर्थ उच्छ्वास)। युआनच्वांग ने भी उस समय के कई प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख किया है, जैसे (१) कौशेय—सूत और रेशम से बने हुये कपड़े, (२) क्षौम—पटसन और सन के रेशों से बने हुए कपड़े, (३) कम्बल—ऊनी वस्त्र तथा कम्बल, (४) वन्य-जन्तु-लोम-वस्त्र—जो बहुत उत्तम और मुलायम थे और सरलता से काते और बुने जाते थे (Mukerji's 'Harsh' P. 170)। "उन दिनों ऊन, रेशम और सूत से उत्तम वस्त्र बनाने की कला पूर्णता को पहुँच चुकी थी और यह विश्वास होता है कि जैसे उत्तम वस्त्र आजके दिन इंग्लैण्ड में बुने जाते हैं, उनसे भी बढ़िया उस समय यहाँ तैयार किये जाते थे, जैसे कि आज भी ढाका जैसे नगरों में तैयार होते हैं" (Vaidya, History of Mediæval India, Vol. I, P. 90 & 91, 1921)।

ढाका के वस्त्रों के सम्बन्ध में इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका (Ency. Bri. Vol. 22, 14th Ed.) में लिखा है कि "प्रायः सबसे अधिक प्रसिद्ध ढाका के बुने हुये वस्त्र हैं, जिनमें कुछ प्रौढ़ अलंकृत वस्त्र, और बिना रंगी हुई मकड़ी के जाले-जैसी महीन सूत की मलमलें हैं। मलमलें 'आबेरवाँ', 'हवा-बन्द' और 'शब-नम' जैसे काव्यमय नामों से विख्यात हैं। अन्तिमोक्त इतने बढ़िया सूत से बुनी जाती है कि उसके २५० मील लंबे धागे में एक पाउण्ड सूत लगता है, उसके १० गज लंबे १ इंच चौड़े सादे थान के लिए ५०० रुपए देने पड़ते हैं। अनेक आद्यकालीन मूर्तियों के देखने से विदित होता है कि उनके मलमल के वस्त्र बुने हुये तो हैं, किन्तु वे इतने बारीक और पारदर्शी हैं कि केवल उन स्थानों पर जहाँ किनारे हैं या सिमटे पड़ गये हैं, वस्त्र दिखलाई पड़ता है, शेष मूर्ति नग्न मालूम होती है।"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विदेशों में तैयार होता है, वह सब हुज़ूर (सम्राट्) के कारख़ानों में प्राप्त होजाता है। इससे जन-समूह अलंकार-प्रियता के वशीभूत होगये हैं और उत्सवों की सजावट अनुमान की सीमा उल्लंघन कर गई है। जो कपड़ा मोल लिया जाता, बुना जाता अथवा भेंट या सौग़ात में आता है, भली-भाँति सुरक्षित रक्खा जाता है। जो वस्त्र पहले का आया हुआ होता है, क्रमानुसार निरीक्षण के लिए पहले वही निकाला जाता, काटा जाता, सिला जाता, पहना जाता[1] और प्रदान किया जाता है।

१—अधिकतर इतिहासकार इस विषय में एकमत हैं कि आर्य लोग वैदिककाल में दो ही वस्त्र धारण करते थे—एक धोती और दूसरा दुपट्टा। कोई-कोई व्यक्ति पगड़ी भी बांधते थे। "वस्त्र बहुधा भेड़ की ऊन के बुने जाते थे, यद्यपि बल्कलों का भी उपयोग होता था। सुवर्ण से अलंकृत वस्त्रों तथा रंग विरंगे बेल-बूटेदार परिधानों में उस समय सुख-सामग्री का भी प्रदर्शन हुआ था" (Cambridge-History of India, P. 101)।

"महाभारत के समय भारती आर्यों की पोशाक बिल्कुल सादी थी। दो धोतियाँ ही उनकी पोषाक थी। एक धोती कमर के नीचे पहन ली जाती थी। ····इनका नाम अन्तरीय और उत्तरीय था। इसके अतिरिक्त सिर पर उष्णीष (पगड़ी) थी। ····क्या धनवान् और क्या ग़रीब, सभी के लिए यही मार्ग था, और धोती पहिनने की रीति एक ही ढंग की थी। ····पुरुषों की तरह, पर उनके वस्त्रों से लम्बे स्त्रियों के दो वस्त्र होते थे। प्राचीन समय में पाश्चात्य यूनानी और रोमन लोगों की पोशाक भी इसी ढंग की थी। ····होमर ने प्राचीन काल के यूनानी स्त्री-पुरुषों की जिस पोशाक का वर्णन किया है, वह अनेक अंशों में उल्लिखित भारती आर्यों की पोशाक के समान ही है" (महाभारत मीमांसा, पृ० २६३-६५)।

मोहेनजोदड़ों की खुदाई में निकले हुए पदार्थों के आधार पर पहनावे के सम्बन्ध में सर जान मार्शल ने लिखा है :—"उच्च श्रेणी के पुरुषों के पहनावे में दो वस्त्र थे, एक अँचला जो कि आदिम कालीन सुमेरियनों के अँचले के समान कमर के चारों तरफ़ बँधा रहता था, और दूसरा सादा या आदर्श शाल जो कि बायें कन्धे के ऊपर दाहने कंधे के नीचे से लाकर डाल लिया जाता था, जिससे कि दाहनी बाँह खुली रहती थी" (Sir John Marshall on Indus-valley Civilization, in the Illustrated Weekly of India, 22nd January 1928)।

ज़ेरक्सीज़ (४८५-६५ ई० पूर्व) ने जब फ़ारस से यूनान पर चढ़ाई की थी, तो उसकी ओर से भारतीयों की जो सेना युद्ध में गई थी उसमें पैदल और रिसाला दोनों थे। उसके संबंध में ग्रीक इतिहासकार हेरोडोटस (Herodotus, VII, 65) लिखता है कि "हिन्दुस्तानी सैनिक सूत के बने हुये वस्त्र पहने हुये थे, और बांस के धनुषवाण धारण किये हुये थे। बाणों में लोहे की नोकें थीं।"

चन्द्रगुप्त मौर्य और हर्षवर्द्धन के राजत्व-काल में भी प्रायः उपर्युक्त दो या तीन वस्त्रों (धोती, चद्दर, पगड़ी) के ही पहनने का रिवाज था। अनेक इतिहासकारों का मत है कि लोग प्राचीन काल से हर्ष के समय तक बिना सिले ही कपड़े पहनते थे।

WHAT DO SCHOLARS AND THE PRESS SAY ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विद्वद्वर पं० रमापति मिश्र शास्त्री, बम्बई—जिस समय लोलुप लेखक यह जानते हुये कि जिन इन्द्रियों को संयत बनाने से मनुष्य-जन्म सफल होता है, उन्हीं इन्द्रियों को असंयत बनाने वाले साहित्य की वृद्धि से संपत्ति का संग्रह करते हैं और उन्मत्त भारत-सन्तान को विलाप के मार्ग में ले जाकर देश के भविष्य को शोचनीय बनाते हैं। उसी समय आपने एक ऐसे साहित्य का संग्रह किया है जो नितान्त अपेक्षित था।

श्री विश्वेश्वरनाथ रेऊ, सुप्रेन्टेन्डेण्ट आर्क्योलोजिकल डिपार्टमेण्ट, जोधपुर—'आईने-अकबरी' का यह अनुवाद हिन्दी-प्रेमियों के लिए एक गौरव की वस्तु होगी। अनुवाद में दिये हुये फ़ुट-नोट और नक़शे ऐतिहासिकों के लिए सोने में सुगंध का काम करते हैं। आशा है समर्थ हिन्दी-प्रेमी जनता और ख़ासकर भारतीय पुस्तकालय इस अनुवाद को अपनाकर पाण्डेय जी का हाथ बटावेंगे।

दैनिक प्रताप, कानपुर—कानपुर नगर के ख्यातनामा विद्वान् पं० रामलाल जी पाण्डेय ने इधर अनेक वर्षों के परिश्रम से, जो एक महान् कार्य सम्पादित किया है, वह भूरि-भूरि प्रशंसनीय और वन्दनीय है। ·····आईने-अकबरी ग्रंथ नहीं है, वह विद्यार्णव है और पं० रामलाल पाण्डेय ने उस विद्यार्णव को जिस गहनता, परिश्रमशीलता, संलग्नता और कुशलता से मथित किया है, उसे देखकर संजय के कथनानुसार, "विस्मयो मे महान् हृष्यामि च पुनः पुनः।" ·····पं० रामलाल जी ने भयङ्कर आर्थिक संकट में रहकर यह बड़ा भारी कार्य किया है। साधारण आदमी वैसी परिस्थिति में इतना बड़ा काम नहीं कर सकता था। किन्तु रामलाल जी जन्मना ही नहीं कर्मणा भी ब्राह्मण हैं, और मुट्ठीभर चने और आजीवन विद्याव्यसन करना यह उनका स्वभाव धर्म है। इस कलिकाल में ऐसे विद्या-प्रेमी का होना गौरव और सन्तोष की बात है।

दैनिक अखंड भारत, बम्बई—पं० रामलाल पाण्डेय एक प्रतिष्ठित सम्पादक और विद्वान् हैं। सन् १९२६ ई० से लेकर सन् १९३६ ई० तक आपका जीवन केवल एक इसी लगन (आईने-अकबरी के अनुवाद) में बीता है और दश वर्ष के निरन्तर परिश्रम के पश्चात् अब यह ग्रंथ हमारे सामने है। अंगरेज़ी का अनुवाद, कहा जाता है कि सर्वथा शाब्दिक और पूर्ण नहीं है, किन्तु हिन्दी भाषान्तर की यह विशेषता है कि यह अक्षर-अक्षर मूल ग्रन्थ से मिलाकर किया गया है। तथा आवश्यक फ़ुट-नोटों की वृद्धि कर उसकी उपयोगिता बहुत अधिक बढ़ा दी गई है। ग्रंथ की उपयोगिता में तो कोई सन्देह किया ही नहीं जा सकता। अवश्य ही इससे हिन्दी-साहित्य का ज्ञान-भंडार बहुत बढ़ जायगा। और ऐसे समय में, जब हिन्दी राष्ट्र-भाषा हो रही है, इसकी उपयोगिता और भी हो जायगी। सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, तथा सांस्कृतिक, एवं नीति, विज्ञान, शिल्प, कला आदि कौन ऐसा विषय है जिसका समावेश इसमें नहीं किया गया है। विज्ञान की दृष्टि से, इतिहास की दृष्टि से, साम्प्रदायिकता की दृष्टि तथा राजनीति की दृष्टि से यह ग्रंथ अपने समय का सर्वोच्च ग्रन्थ है, और इससे हिन्दी-साहित्य तथा संसार की जो सेवा हो सकेगी, वह अवर्णनीय है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

The Rt. Hon'ble Sir Tej Bahadur Sapru.—I have taken interest in his literary activities. He deserves every encouragement for making such a contribution to the development of Hindi-literature and bringing knowledge of an important epoch in Indian History within reach of the Hindi-knowing public.

Sir Shafaat Ahmad Khan, Head of the History Department, University of Allahabad.—The translation is accurate and clear. I hope that Pt. Ram Pal Pandeya will be encouraged in this enterprise by the support of every one interested in the development of learning.

M. M. Dr. Ganga Nath Jha.—The language of the translation leaves nothing to be desired. I have read through the whole of the first part and did not find it necessary to pause over the unravelling of the syntactical construction of any single sentence, which cannot be said of many translations. The copious notes enhance the value of the original. They not only make the original more intelligible but also add to the knowledge provided by it. What makes the notes especially valuable is the citation of authorities and the references.

Dr. Benoytosh Bhattacharya, M.A., Ph.D., Director, Oriental Institute, Baroda.—The annotations are not only accurate but also very illuminating. This translation of *Ain-i-Akbari* promises to be an epoch-making publication of very high literary merit and value.

K. F. Nariman, Ex-Mayor, Bombay.—While, on the one hand, I have been greatly impressed by the extra-ordinary lucidity of its language, due to which, even for a man of my limited acquaintance with Hindi, it was easy to follow the translation, on the other hand, I have come to regard the *Ain* as a work, a wider reading of which is bound to help considerably the removal of deplorable and vitiating communal differences and lead to a lasting fusion of the Hindu and Muslim cultures, without which there can be little hope for the development of a single united Indian Nation. From this point of view the publication is extremely opportune and I congratulate Pt. Ram Lal Pandeya upon his having produced a work of such literary and national value.

The Bombay Chronicle.—He collected the materials in 1926 and the translation was commenced in 1927. After nine years of painstaking and continuous work the translation was completed in 1935. The value of the translation has been considerably enhanced by addition of numerous footnotes giving references and explanations prepared after the most modern research system. A large number of attractive illustrations add to the charm of this epic translation. The translation has been seen by many of the most reputed literary personalities of India, who have given opinions bestowing high tribute upon the excellence, correctness, and literary beauty of the translation. In the opinion of the scholars the *Ain-i-Akbari* in Hindi ought to lead to a better and more abiding understanding between Hindus and Musalmans. It will certainly enrich Hindi which is going to be the "Lingua Franca" of India. The publication will not only prove valuable to scholars and historians but bring within easy reach of the lay public the otherwise ill-knowing social, religious, political and cultural conditions obtaining in India in the 16th century and particularly during Akbar's reign.....any one can become a patron by paying Rs. 100/- in a lump-sum. Each patron will be entitled to receive all the 50 parts of the *Ain-i-Akbari* as and when published. Besides the names of all the patrons with other particulars will be printed at the end of the book. The price of each copy has been fixed at Rs. 2/- and thus every patron will nearly get back his money in the shape of the volumes of the *Ain*. But what is much more important, every patron will by his timely assistance ensure the publication of such a monumental work of great abiding value. It would be a pity and a shame if a work of such value were to remain unpublished for want of right appreciation and public spirit amongst us.

Printed at the Job Press, Cawnpore.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आइने-अकबरी

खंड १, अंक ४

Vol. 1, fasciculus 4

भाषान्तरकार तथा सम्पादक

रामलाल पाण्डेय

1. Every fasciculus of the Hindi-translation of *Ain-i-Akbari*, covering 64 pages of royal-octavo plus illustrations, is published in two editions—royal and popular—on 40 and 28 lbs. paper respectively. Four such fasciculi make one volume (*khand*).

2. Those paying Rs. 100/- or more in advance will get each fasciculus of the *Ain* post-free as and when it is issued. And the names of such donors will be published.

3. Rates of subscription will be as follows :—

(i) For Patrons as in para 2 above—Rs. 100/-.

(ii) For permanent subscribers per volume :—

	By M.O.	*Per V.P.P.*
Royal ed. ..	Rs. 7/-	Rs. 7/4/-.
Popular ed. ..	Rs. 4/8/-	Rs. 4/12/-.

(iii) For purchasers of each fasciculus separately :—

	By M.O.	*Per V.P.P.*
Royal ed. ..	Rs. 2/-	Rs. 2/5/-.
Popular ed. ..	Rs. 1/4/-	Rs. 1/9/-.

Manager,
VIDYA-MANDIR,
CAWNPORE.

प्रकाशक—

विद्या-मन्दिर, कानपुर

G1
15.D

स्थायी ग्राहकों से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस अङ्क के साथ आइने-अकबरी के ग्राहकों का पहले खंड का मूल्य समाप्त होता है। अतः श्रेष्ठ और लोक-प्रिय (साधारण) दोनों संस्करणों के ग्राहकों से निवेदन है कि नियमानुसार दूसरे खंड का मूल्य पेशगी भेजने की कृपा करें अथवा दूसरे खंड के पहले अङ्क को वी० पी० से भेजने की पत्र-द्वारा सूचना दें। रुपया या सूचना मिले बिना अगले अङ्क नहीं भेजे जायँगे।

मैनेजर

मराठी 'नवाकाल' बम्बई की सम्मति

प्रस्तुत ग्रंथाचीं भाषांतरें इग्रजीमध्यें दोन असून तीं जुनीं झालीं आहेत. अबुल फाजलच्या पुस्तकाचा आधार घेऊन अकबराचीं चरित्रे लिहिलीं गेलीं आहेत, पण आईने-अकबरीचें यथार्थ भाषांतर कोणत्याहि देशी भाषेंत अद्यापि झालेलें नव्हतें. ही उणीव कानपूरचे पं० रामलाल पाण्डेय यांनीं भरून काढण्याचें योजिलें आहे. आईनें-अकबरी हा ग्रंथ मुलांत फार मोठा असून त्याची भाषा बरीच क्लिष्ट समजली जाते. पण पाण्डेय यांनीं गेलीं दहा वर्षं तो ग्रंथ समजून घेऊन सरल हिंदी भाषेंत उतरविण्याचा यत्न चालविला होता. पाण्डेयजा स्वतः पर्शियन भाषेचे उत्तम विद्वान असून अबुल फाजलच्या पारिभाषिक अथवा समकालीन शब्दांचें लोकांस योग्य बिनचूक ज्ञान होण्यासाठीं शैंकडों इतर ऐतिहासिक व प्राचीन ग्रंथ चालून त्यांनीं आपल्या भाषांतराला टिपी जोडल्या आहेत. गेल्या ५० वर्षांमध्यें मोगल बादशहांच्या कारकीर्दीचें जें संशोधन झालें तें पाण्डेयनीं आपल्या भाषांतरास जोडल्यानें एक प्रकारें त्यांचा ग्रंथ आजतागायत संपूर्ण होइल हें निरालें सांगावयास नको. एकदम समग्र ग्रंथ छापणें शक्य न झाल्यामुळें रॉयल आकाराच्या ६४ पानांचे अंक दर तिमाहीला प्रसिद्ध करून ग्रंथ पुरा करावा, अशी पांडेयजीची योजना आहे. लोकाश्रय भरपूर मिलाल्यास ग्रंथ जलदीनें प्रकाशित होईल. पांडेयजींच्या भाषान्तराचा पुरस्कार सर तेजबहादुर सप्रू, डॉ राधाकुमुद मुकर्जी, सर रास मसूद, डॉ रामप्रसाद त्रिपाठी, सर अबदुर्रहीम, डॉ. वेणीप्रसाद, मौ. हसरत मोहानी, श्री सुन्दरलाल, डॉ. ईसरीप्रसाद अशा निरनिराल्या विद्यापीठांतील नामांकित इतिहासाचार्यांनीं व पुढाऱ्यांनीं आणि विद्वानांनीं केला असल्यामुळें पांडेयजींच्या कामाची योग्यता व महती वेगली येथें नमूद करण्याची गरज नाहीं. निवल इतिहासज्ञानाकरतांच नव्हे तर हिंदी राजकीय भवितव्याच्या दृष्टीनें हिंदु-मुसलमानांच्या सहकारी साहचर्याचें ज्ञान होण्याकरितां अशा पुस्तकाचें वाचन अवश्य आहे.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जो वस्तुएँ एक ही समय में आजाती हैं, वे मूल्यानुसार क्रमबद्ध की जाती हैं। अनुभवी कर्मचारी सदा पदार्थों की दरें मालूम करते रहते हैं, और वे नए और पुराने भावों पर विचार करते हैं। थोड़े ही समय में उनके निर्ख़ सब लोग जान गये और वस्त्रों के मूल्य घट गये। जैसे ग़यास नक़्शबन्द[1] का दस्तबाफ़, जो पहले

वे सिलाई जानते ही न थे, परन्तु कितने ही ऐतिहासिक इसे नहीं मानते, क्योंकि वेदों में सिलाई के साधनों का उल्लेख हुआ है। ऋग्वेद में सुई का नाम 'सूची' (सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया—ऋ० मण्डल २, सूक्त ३२, मंत्र ४) और क़ैंची का नाम 'भुरिजो' (ऋ० ८, ४, १६) मिलता है। सुश्रुत सूत्रस्थान अ० २५ में बारीक डोरे से सीने (सीव्येत सूक्ष्मेण सूत्रेण) का आदेश है। वैदिक काल में रेशमी चोग़ा 'तार्प्य' (वसानस्तार्प्यमाचर—अथर्व, कांड १८, अनुवाक ४, मंत्र ३१) और ऊनी कुर्ता 'शामूल' (जैमिनीय उपनिषद्) कहलाता था। एक सिला हुआ वस्त्र 'द्रापि' (ऋ० १, २५, १३) था, सायण के विचारानुसार वह युद्ध के समय पहना जाता था। मध्यकाल में महिलाएं प्रायः अन्तरीय अर्थात् साड़ी पहनती थीं, और उसका आधा हिस्सा ओढ़ती थीं। बाहर जाते समय उत्तरीय या डुपट्टा भी डालती थीं। नाचने के समय स्त्रियां 'पेशस' (ऋ० १, ६, ३,) नामक ज़री के काम का लँहगा जैसा वस्त्र पहनती थीं। इस कथन की पुष्टि वर्तमान काल में पुराने समय के पाये गये चित्रों से भी होती है। मथुरा के कंकाली टीले के पास की शिला पर एक रानी और उसकी दासियों के चित्र हैं। उनमें रानी लँहगा पहने हुये और ऊपर साड़ी डाले हुये है (Smith, Muttra Antiquities, plate XIV.)। इसी प्रकार दो जैन श्रावक और तीन श्राविकाओं की मूर्तियों के चित्र हैं; इनमें तीनों श्राविकायें लँहगे धारण किये हुये हैं (ibid., plate 85)। अजण्टा गुफा के एक चित्र में एक स्त्री बच्चे को गोद में लिए हुए है, वह बहुत ही सुन्दर

छींट का सिला हुआ शलूका पहने हुये है। वह शलूका आधी बाँह का कमर के नीचे तक है (Smith, Oxford Students' History of India, P. 159, 1919)।

उल्लिखित चित्र हर्ष के पहले के हैं। इससे सिद्ध है कि भारतीय सिलाई बहुत प्राचीन काल से जानते थे और उसका उपयोग भी आवश्यकतानुसार करते थे; किन्तु उसका प्रचार ऐसा नहीं था, जैसा कि आजकल है।

१—"तज़्किरए ताहर नसीराबादी" के अनुसार ग़यास नक़्शबन्द का जन्म यज़्द (फ़ारस का एक प्रान्त है। यज़्द में रेशम की उत्पत्ति तथा बुनाई का काम उत्तम होता है। भारतवर्ष के साथ उसका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सौ मोहर को मोल लिया जाता था, अब पचास मोहर को मिलता है। अनेक जिन्सों का मूल्य तीस के स्थान में दस[१] और चालीस के बजाय भी दस ही रह गया है। सम्राट् की हार्दिक उदारता के कारण प्रत्येक समुदाय अपनी इच्छानुसार वस्त्रों से अपने को सुसज्जित करता है और कोई रोक-टोक नहीं होती।

यह विषय बहुत विस्तृत है, अतएव बाध्य होकर, जो वस्त्र सम्राट् स्वयम् धारण करता है, उनमें से ही कुछ का हाल लिखता हूँ।

१, टकौचिया—यह हिन्दुस्तानी तर्ज़ का एक पर्त का जामा है। अगले समय में इसका दामन चाक़ (खुला हुआ) और तनी बाईं ओर को होती थी। पर सम्राट् ने इसको गोल दामन का बनवाया और बन्धन दाहिनी ओर को लगवाये। यह ७ गज़ और ८ गिरह में बनता है; ५ गिरह का बन्द होता है। सादी सिलाई की मज़दूरी एक से तीन रुपए तक है। जिस टकौचिया में बेल-बूटे बनाये जाते हैं, उसकी मज़दूरी एक रुपए से पौने पाँच तक होती है। उसमें एक मिस्क़ाल रेशम भी ख़र्च होता है।

२, पेशवाज़—उसी प्रकार का होता है, परन्तु बन्द सामने रहता है। कभी-कभी बिना तनी का भी बनवाया जाता है।

३, दुताही—६ गज़[२] ४ गिरह का उपल्ला, ६ गज़ का अस्तर, ४ गिरह के

व्यापारिक सम्बन्ध है।) में हुआ था। उक्त पुस्तक में उसकी यहाँ तक प्रशंसा लिखी है कि "संसार में वैसा बुननेवाला पैदा ही नहीं हुआ।" इसके अतिरिक्त वह कवि भी था। एक बार वह शाह अब्बास (१५८५-१६२८ ई०) के लिए एक ज़री का बेल-बूटेदार मुशज्जर ख़रीद लाया। उस वस्त्र में वृक्षों के चित्रों के बीच में एक भालू का भी चित्र था। एक दरबारी ने उस वस्त्र की प्रशंसा करते हुए रीछ की भी तारीफ़ की। ग़यास ने उसके व्यंग्य पर निम्नलिखित शेर कहा;—

ख़्वाजा दर 'ख़िर्स' बेश मी बीनद;
हरकसे नक़्शे-ख़ेश मीबीनद।

अर्थात् सरदार रीछ ही अधिक देखता है, हर मनुष्य अपनी ही आकृति देखता है।

अनेक व्यक्तियों के विचार में भालू एक अशुभ पशु है। जैसा कि 'बहारे-अजम' की एक कहावत से प्रकट होता है—"ख़िर्स दर कोह बूअ़ली सेना" पहाड़ पर रीछ ही दार्शनिक बूअ़ली सेना है, अर्थात् मूर्खाधिराजों में साधारण मूर्ख ही तत्ववेत्ता होता है।

१—अर्थात् सैकड़े में ६६$\frac{२}{३}$ और ७५ तक की कमी हो गई।

२—अकबर के समय में दर्ज़ियों का गज़ कितना लंबा था, इसका स्पष्ट उल्लेख 'आईन' में नहीं है। कदाचित् वह आजकल की तरह १६ गिरह का ही था। ८७ और ८८ आईनों में अन्य नापों के गज़ों का वर्णन है, किन्तु दर्ज़ी के गज़ का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

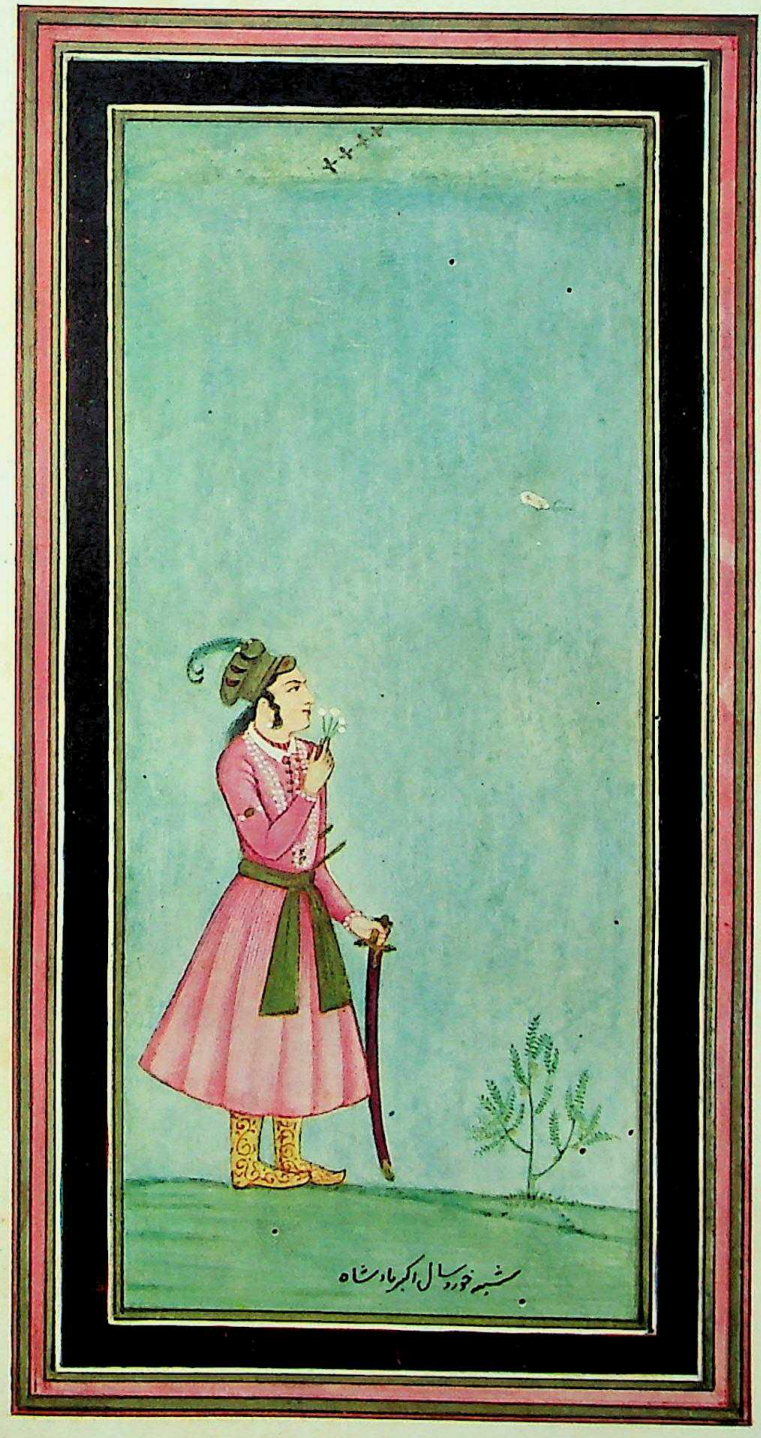

अकबर

(किशोर अवस्था में)

मूल चित्र इण्डिया-आफ़िस में सुरक्षित है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बन्द और ६ गिरह की संजाफ़ लगती है। सिलाई एक से तीन रुपए तक। १ मिस्क़ाल रेशम भी ख़र्च होता है।

४, शाह-आजीदा—इसके प्रत्येक गिरह में साठ नगंदे[1] बनाये जाते हैं, इसलिए इसको **शस्त-ख़त** (षष्टि-पंक्ति) भी कहते हैं। यह अधिकतर दो अस्तर का होता है। कुछ लोग, उसमें रुई भी डालते हैं। एक गज़ मुकस्सर[2] की सिलाई दो रुपए होती है।

५, सोज़नी—इसमें $\frac{१}{४}$ सेर रुई और २ दाम रेशम व्यय होता है। बख़ियादार सिली हुई सोज़नी की मज़दूरी आठ रुपए और आजीदादार सिलाई के चार रुपए होते हैं।

६, क़लमी—$\frac{३}{८}$ सेर रुई और १ दाम रेशम ख़र्च होता है। मज़दूरी दो रुपए।

७, क़बा—प्रचलित भाषा में इसको जामए-पुम्बादार (रुईदार अंगरखा) कहते हैं। इसमें १ सेर रुई और २ मिसक़ाल रेशम की आवश्यकता होती है। मज़दूरी $\frac{१}{४}$ रु० से १ रु० तक।

८, गदर—यह एक अंगरखा है क़बा से अधिक लंबा-चौड़ा और ज़्यादा रुई वाला। हिन्दुस्तान में यह पोस्तीन[3] का काम देता है। ७ गज़ उपल्ला, ६ गज़

नहीं। जो गज़ इलाही गज़ के नाम से अकबर ने उत्तर भारत में जारी किया था वह ३०$\frac{३}{४}$ इंच लम्बा था। दक्षिणी किनारे के व्यापारिक केन्द्रों में इलाही गज़ इस्तेमाल नहीं किया जाता था। वहाँ कोवाड का चलन था, किन्तु उसकी भी लंबाई में अन्तर था। वहाँ सूती कपड़ों की नाप वाला गज़ लगभग २६ इंच का था, और ऊनी कपड़ों की नाप वाला लगभग ३५ इंच का (Blochmann's trans., P. 88, note 3, and Moreland's 'India At the death of Akbar,' P. 54.)।

१—नगन्दा बख़िया, आजीदा जामा और सोज़नी को कहते हैं (सैयद अहमद द्वारा सम्पादित फ़ारसी आइने-अकबरी, पृ० ६६, नोट नं० २, १८९३ ई०)। किन्तु सोज़नी एक वस्त्र भी है, जिसमें बख़िया और आजीदा दोनों प्रकार की सिलाइयाँ होती हैं (देखिये वस्त्र नं० ५)।

२—मुकस्सर का अर्थ घन है। किसी संख्या का उसी में दो बार गुणित होकर जो गुणनफल लब्ध होता है, उसे मुकस्सर कहते हैं, जैसे ३×३×३=२७। लम्बाई चौड़ाई और मोटाई अथवा ऊँचाई या गहराई के गुणनफल को भी घन कहते हैं। परन्तु यहाँ पर कदाचित् मुकस्सर से अभिप्राय एक वर्ग गंज़ का है।

३—समूर आदि गरम और मुलायम रोएं वाले पशुओं की खाल की बनी हुई पोशाक, जिसे तुर्किस्तान और मध्य एशिया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भितल्ला, ४ गिरह तनी, ६ गिरह संजाफ़, २½ सेर रुई, और ३ मिस्क़ाल रेशम लगता है। मज़दूरी आधे रुपए से डेढ़ रुपए तक।

९, **फ़र्जी**—बे-तनी की, सामना खुला रहता है। कुछ लोग इसमें घुंडी भी लगाते हैं। यह बहुधा जामे के ऊपर पहनी जाती है। इसमें अबरा (उपल्ला) ५ गज़ १२ गिरह, अस्तर ५ गज़ ५ गिरह, संजाफ़ १४ गिरह, १ सेर रुई और १ मिस्क़ाल रेशम भी ख़र्च होता है। मज़दूरी ¼ रुपए से १ रुपए तक।

१०, **फ़र्गुल**—यह **यापंजी**[1] से मिलता जुलता है, परन्तु उससे अधिक सुखदायक और शोभायमान है। यह यूरोप[2] से लाया गया था, पर आज के दिन छोटे-बड़े सभी पहनते और अपनी शान बढ़ाते हैं। लोग इसे तरह-तरह की काट-छाँट का बनाते हैं। इसमें उपल्ला ६ गज़ ६½ गिरह, इतना ही अस्तर, रेशम ६ मिस्क़ाल, और १ सेर रुई इस्तेमाल करते हैं। इसे एक तह का और दो तह का अर्थात् दोनों प्रकार का बनाते हैं। मज़दूरी ½ रु० से २ रु० तक।

११, **चकमन**—यह बानात, ऊनी कपड़े अथवा मोमजामे का सिलाया जाता है। सम्राट् ने इसे दाराई मोमजामे का बनवाया है। यह बहुत ही हलका और सुहावना है। वर्षा का पानी उससे नहीं छनता। यह ६ गज़ में तैयार होता है। ५ गिरह की तनी लगती हैं और २ मिस्क़ाल रेशम ख़र्च होता है। बानाती चकमन की बनवाई २ रु०, ऊनी की १½ रु० और मोमजामे की ½ रु० होती है।

१२, **शलवार**—तरह-तरह के कपड़ों का सिलाते हैं। एक पर्त का, दो पर्त का, और रुईदार भी तैयार कराया जाता है। इसमें ३ गज़ ११ गिरह कपड़ा

तथा अन्य सर्द देशों के लोग पहनते हैं। इसमें रोंगटे अन्दर की ओर रहते हैं।

१—कोट जो कि वर्षा ऋतु में इस्तेमाल किया जाता है (Calcutta Chaghtai Dictionary)।

२—"फ़र्गुल की व्युत्पत्ति मुझे याद नहीं है। अनेक शब्दों के नाम जो कि भारतवर्ष में प्रचलित हैं, पुर्तगाली हैं। जैसे साया, फ़ीता, पादरी, गिर्जा (पोर्तगाली इग्रीजा), कोबी या गोभी (पोर्तगाली कुओवे), चाबी या चाभी (पोर्तगाली चावे)"—(Blochmann's trans., P. 89, note 3। इसी प्रकार अनेक सूती वस्त्रों के अंगरेज़ी नामों की उत्पत्ति हिन्दुस्तानी शब्दों से हुई है:—जैसे, 'कालिको' की कालीकट से, 'क़ैमाइज़ी' की क़मि (कीड़ा) से, 'चिन्ट्ज़' की छींट से, 'बैण्डना' की बँधना से और 'शाल' की साल से (Ency. Bri., Vol. 23, Ed. 14)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लगता है। नेफ़ा ६ गिरह, अस्तर ३ गज़ ५ गिरह, १$\frac{१}{४}$ मिस्क़ाल रेशम, और $\frac{१}{२}$ सेर रुई दरकार होती है। $\frac{१}{२}$ रु० से $\frac{१}{४}$ रु० तक मज़दूरी होती है।

इन पोशाकों में से हर एक अनेक प्रकार की होती है। चीरा (पगड़ी), फ़ौता (पटुका) और दुपट्टों की कथा वर्णन नहीं हो सकती। उन बहुमूल्य परिधानों का वृत्तान्त—जो उत्सवों में सम्राट् स्वयम् पहिनता तथा वर्तमान समय के अमीरों को प्रदान कर उच्च पदस्थ बनाता है—कथन में नहीं आ सकता। ख़ासे (राजकीय वस्त्रालय) के लिए प्रत्येक ऋतु में सब प्रकार के एक सहस्र पहनावे पूर्णतया तैयार कराये जाते हैं और एक सौ बीस वस्त्र बारह पुलिंदों में सदा तत्पर रक्खे जाते हैं। सांसारिक वस्तुओं से विरक्ति[१] रखने के कारण सम्राट् ऊनी वस्त्रों से बहुत प्रेम करता और पहिनता भी है विशेषतः शाल। सम्राट् के प्रताप की यह विचित्रता है कि उसके वस्त्र नाटे और लम्बे अर्थात् हर प्रकार के डील वाले मनुष्य के शरीर पर ठीक आजाते हैं। इसको देखकर छोटे-बड़े आश्चर्य करते हैं।

सम्राट् ने अनेक वस्त्रों के दूसरे नाम रक्खे हैं, और इस प्रकार कानों को नवीन और मनोरंजक ध्वनियों से परितृप्त किया है। जामा का नाम **सर्वगाती** अर्थात् सम्पूर्ण शरीर में होने वाला, रक्खा; इज़ार (सुथना) का **यार-पीराहन** (अंगरखे का साथी); नीमतना (शलूका) का **तनज़ेब** (शरीर-शोभा); फ़ौता (पटुका) का **पतगत**; बुर्क़ा का **चित्र-गुपित** (चित्र-गुप्त); कुलाह (टोपी) का **सीससोभा** (शीश-शोभा); मूएबाफ़ (ऊनी फ़ीता या पट्टी) का **केसगहन** (केश-गहन); पटुका का **कटि-ज़ेब** (कटि-शोभा); शाल का **परमनर्म**; फ़र्द का, जो कि ऊनी वस्त्र का एक भेद है, **परमगर्म**; कपूर धूर का, जो कि तिब्बत में बुना

१—अबुलफ़ज़्ल ने अनेक स्थलों पर सम्राट् को विरक्त सिद्ध किया है और उसमें वे गुण बतलाये हैं, जो उच्च कोटि के सूफ़ियों में पाये जाते हैं। सूफ़ी का शब्दार्थ ऊनी वस्त्र धारण करनेवाला है, क्योंकि 'सूफ़' ऊन को कहते हैं। परन्तु विरक्तों की परिभाषा में सूफ़ी उसे कहते हैं, जो उदाराशय अपने हृदय में ईश्वर के अतिरिक्त और किसी का विचार न आने दे तथा अपने चित्त को मल विक्षेपादि से शुद्ध रखे। प्राच्य देशों में ऊन सूत से अधिक शुद्ध माना जाता है, और आत्म-शुद्धि का सहायक साधन समझा जाता है। इसी लिए साधु, महात्मा और सूफ़ी स्नान के अतिरिक्त प्रायः हर समय तथा पूजन और भोजन आदि में समर्थ गृहस्थ भी ऊनी या रेशमी वस्त्र धारण करते हैं। आईन के अनुसार अकबर भी एक उदाराशय और विशेषतः सूफ़ी विचारों का मानने वाला था, इसी लिए ऊनी वस्त्रों से उसकी अधिक अभिरुचि थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाता है और बढ़िया होता है, **कपूरनूर**; और पायअफ़राज़[1] का नाम **चरनधरन** रक्खा। इसी प्रकार उसने और बहुत से वस्त्रों को श्रेष्ठ नामों से प्रसिद्ध किया।

आईन ३२।

शाल।

कार्यकुशल सम्राट् ने इस विभाग की उन्नति चार प्रकार से की है। वह निम्नलिखित वस्तुओं में दृष्टिगोचर होती है[2] :—

प्रथम, **तूस** शाल—जो एक जंतु की ऊन से बनाया जाता है, वह पशु इसी नाम का है। उसका प्राकृतिक रंग काला, सफ़ेद और लाल बतलाया जाता है, परन्तु अधिकतर काले रंग का होता है। किसी-किसी का रंग शुद्ध सफ़ेद भी होता है। ये शाल हलकेपन, गरमी और मुलायमियत में अद्वितीय होते हैं। मनुष्य उसकी सुन्दरता के कारण, दूसरे रंगों का नहीं लेते हैं। पर सम्राट् ने उसे कई रंगों का रंगाया है। आश्चर्य यह है कि उस पर लाल रंग नहीं चढ़ता। दूसरे, **सफ़ेद-अल्चा**—जिसको **तरहदार** भी कहते हैं। वह स्वभावतः रंगीन है। ऊन का रंग सफ़ेद या स्याह होता है। लोग अल्चे को तीन प्रकार का बुनते हैं—सफ़ेद, काला और मिश्रित। पहले समय में ऊन तीन चार रंगों से अधिक नहीं रंगी जाती थी, पर सम्राट् ने अनेक रंगों की तैयार कराई है। तीसरे, **ज़रदोज़ी, कलाबतून, कशीदा, क़लग़ा**[3],

---

१—ब्लाक्मैन के मूल फ़ारसी 'आईन' तथा अंगरेज़ी अनुवाद दोनों में 'पाय-अफ़ज़ार' पाठ है, किन्तु सैयद अहमद के फ़ारसीग्रंथ में 'पायअफ़राज़'। सैयद अहमद ने हाशिये पर पायअफ़राज़ का अर्थ पापोश या कफ़्श अर्थात् जूती लिखा है (ब्लाक्मैन, फ़ारसी एडीशन, पृ० १०३, Trans. P. 90; सैयद अहमद, फ़ारसी एडी० पृ० ६७)। पायअफ़राज़ शुद्ध है, (देखिये बहारे-अजम)।

२—मूल में "शहरे-यार कार आगाह चहार गूना बरसाख़्त" पाठ है, जिसका अर्थ, "कार्यकुशल सम्राट् ने चार भेद किये या चार प्रकार का बनाया", होता है। भाव के स्पष्टीकरण के लिए उपर्युक्त वाक्य की रचना की गई है।

३—क़लग़ाई—मुर्ग़केशी अर्थात् रेशमी धागों और सोने के तारों से मिलाकर बनाया हुआ वस्त्र।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बाँधनू[१], छींट, अल्चा[२] और पर्ज़दार[३] भी सम्राट् ही के हृदय के चमत्कार हैं, अर्थात् उसी के आविष्कृत हैं। चौथे, उसने कम अर्ज़ के कपड़ों को चौड़ा करवाया और उनको अंगरखों के योग्य बनवाया है।

दिन, महीना, साल तथा मूल्य, रंग एवं तोल के विचार से शालों की श्रेणियाँ नियत करके क्रमानुसार लगाते हैं। प्रचलित भाषा में इस विभाग को मिस्ल[४] कहते हैं। मुशरिफ़ (मोहर्रिर), श्रेणी का ध्यान रखकर, हर वस्त्र का दर्जा कपड़े के एक टुकड़े पर लिखकर उनके कोनों में बाँध देते हैं। जो वस्तुएँ एक ही प्रकार की, फ़र्वर्दीन महीने में उरमुज्द के दिन (पहले दिन) कारख़ाने में आती हैं, और जिनके मूल्य में अधिकता होती है, सर्व प्रथम श्रेणी में रक्खी जाती हैं। यदि आई हुई चीज़ें मूल्य में समान होती हैं, तो उनकी श्रेणी की उत्कृष्टता और निकृष्टता दिनों[५] के आधार पर नियत की जाती है। यदि जिंसों के आने के दिनों में समता होती है, तो ज्यादा हलके पदार्थ को उच्च पद दिया जाता है। अगर वे चीज़ें तौल में बराबर होती हैं, तो रंग की बड़ाई मानी जाती है। रंगों का क्रम इस प्रकार है :—

तूस, सफ़ेद, अल्चा, लाल[६], ज़र्री[७] नारंजी, बिरंजी[८], क़िरमिज़ी[९],

---

१—अनेक स्थानों पर बांध कर हर स्थान को भिन्न-भिन्न रंगों से रंगा हुआ वस्त्र।

२—अल्चा—यह शब्द तुर्की भाषा का है। जो माल, जिंस और दास दूसरे का देश लूटने पर प्राप्त हो, उसे अल्चा कहते हैं। रेशमी अलवान को भी अल्चा कहते हैं।

३—पर्ज़दार—वे कपड़े जिनके ऊपर घने रोंगटे होते हैं।

४—मिस्ल का अर्थ समान, तुल्य और बराबर है। मिस्ल उसे भी कहते हैं, जो सब विशेषणों में समान हो, किन्तु उदाहरणों के लिए विशेषणों की सर्वाङ्गीण समता अनिवार्य नहीं है। किसी मुक़दमे या विषय से सम्बन्ध रखने वाले सब काग़ज़-पत्रों का समूह भी मिस्ल कहलाता है। किसी पुस्तक के छपे हुए फ़ार्मों को भी, जो कि सिलाई के लिए क्रम से लगाकर रखे गये हों, मिस्ल कहते हैं। यहाँ पर मिस्ल से आशय क्रम या क्रम से लगाने वाला विभाग है।

५—अकबर सनातनधर्मियों तथा पार्सियों के समान दिनों के शुभ और अशुभ होने पर विश्वास रखता था।

६—लाल मणि के रंग के समान।

७—सुनहला।

८—पीतल का रंग।

९—संस्कृत कृमिज शब्द से अरबी क़िरमिज़ और क़िरमिज़ी शब्द बना है। कृमिज या क़िरमिज़ी हिरमिजी का नाम है, जो किरिमदाना नामक कीड़े से बनती है। ये कीड़े थूहर पर फैलते हैं। पाव भर में लगभग ३५००० कीड़े चढ़ते हैं। उन्हें सुखाकर पीस डालते हैं। वह बुकनी क़िरमिज़ी कहलाती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काही[१], गुलेपुंबई[२], संदली[३], बादामी, अरग़वानी[४], उन्नाबी[५], तोतकी[६], अ़सली[७], सौसनी[८], मंजनी[९], गुले-कासनी[१०], सेबकी[११], अ़लफ़ी[१२], फ़िस्तक़ी[१३], पुरगुल[१४], गुलख़ारबरन[१५], भोजपत्र, गुलाबी, आसमानी, क़लग़ी[१६], आबी[१७], ज़ैतूनी[१८], जिगरी[१९], ज़मुर्रदी[२०], चीनी[२१], बनफ़शई[२२], चेहरई[२३], अम्बोहई[२४], मुश्की[२५], फ़ाख़्तई[२६]। एक दिन की व्यवस्था से साल भर के प्रबन्ध का अनुमान लगाया जासकता है[२७]।

पहले समय में लोग शालों को बहुधा कश्मीर[२८] से समय-समय पर लाते

१—हरी घास के रंग के समान, कालापन लिये हुये हरा रंग।

२—कपासी।

३—हलका पीला रंग।

४—गहरा लाल रंग।

५—कालापन लिए हुए लाल रंग।

६—सुआपंखी रंग।

७—शहद जैसा रंग।

८—लाली लिए नीला।

९—रतनमंजनी के फूलों के रंग के सदृश।

१०—कासनी के फूल के रंग के समान।

११—सेब के रंग के समान।

१२—घोड़े की घास के रंग के तुल्य साधारण हरा।

१३—पिस्तई।

१४, १५—इन दोनों शब्दों के पाठ शुद्ध नहीं मालूम होते। अन्य मूल प्रतियों में बड़गुल, गुलख़ार, निजीबरन, गुलनारंजी, परनं, गुलख़ार, बरन पाठ हैं। ये शब्द कोशों में ढूंढे नहीं मिलते।

१६—मुर्ग़केश के फूल के रंग के समान।

१७—पानी के रंग के सदृश।

१८—पीलापन लिए हुए लाल रंग।

१९—कलेजे के रंग के सदृश।

२०—नीलापन लिये हुये हरा रंग।

२१—चीनी मिट्टी के समान नीलापन लिये हुए रंग।

२२—बैंगनी नीला रंग।

२३—बहुत हलका गुलाबी।

२४—आम के रंग के समान।

२५—कस्तूरी के रंग के समान।

२६—पड़खुड़ी के रंग के समान।

२७—"व अज़ हाल यक रोज़ अन्दाज़ए साल तवाँ बर गिरफ़्त"—इस वाक्य का अनुवाद ब्लाक्मैन के अंग्रेज़ी भाषान्तर में नहीं है (Blochmann's trans. P. 92; आईन, पृ० १०४)।

२८—ऊनी वस्त्र पुराने साधनों द्वारा विशेषतः कश्मीर और कंबल मुज़फ़्फ़रनगर में बुने जाते हैं। मुज़फ़्फ़रनगर के कंबल मोटे होते हैं, और सर्व-साधारण में उनका चलन है। परन्तु कश्मीर में ऊनी माल प्रायः उच्च कोटि का तैयार होता है। वह विदेशी माल से ख़ासी टक्कर लेता है। कश्मीर के दुशाले पुराने समय से प्रसिद्ध हैं। उनके उत्कृष्ट नमूने आज भी यूरोप, अमेरिका तथा अन्य देशों में और भारतवर्ष के राजा महाराजों के संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। वे इतने सुन्दर हैं कि स्काटलैण्ड तथा अन्य विदेशों के नक़ली वस्त्रों से एक क्षण में पहचाने जाकर पृथक् किये जा सकते हैं। वहाँ की ऊनी क़ालीनों के लिए अमेरिका और फ़्रांस जैसे फ़ैशन-प्रिय देशों से आर्डर आते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

थे और मालदार एक की चार तहें बनाकर मुद्दतों तक ओढ़ते थे परन्तु आजकल छोटे-बड़े सभी बिना परत के उन्हें कंधों पर डालते हैं। सम्राट् के

इन स्थानों के वस्त्रों के सम्बन्ध में विशेष बात यह है कि ये पुरानी चाल के चर्ख़ों और करघों तथा अन्य आवश्यक साधनों द्वारा तैयार किये जाते हैं। जिस ऊन से शाल, दुशाले, शाहतूस आदि बुने जाते हैं वह तूस नामक बकरी का रुआँ है। यह जन्तु कश्मीर से लेकर मध्य एशिया में अल्टाई पर्वत तक पाया जाता है। इसके शरीर पर घने और मुलायम रोयों की बड़ी मोटी तह होती है, जिसकी भीतरी ऊन को कश्मीरी लोग तूस कहते हैं। ऊपर का ऊन मोटा होता है, उससे पट्टू आदि बुने जाते और रस्सियां बनाई जाती हैं। किन्तु अन्दर के मुलायम ऊन से शाल या तूस बुने जाते हैं। इस ऊन पर वहाँ के जल-वायु का भी असर पड़ता है, जिसके कारण वह अधिक मुलायम, अनेक रंग वाला, गर्म और नफ़ीस होता है। कश्मीर से भी बढ़िया ऊन यारक़न्द का होता है, और लद्दाख़ होकर कश्मीर आता है और पश्म कहलाता है। कश्मीरी दूकानदार इसे सौदागरों से ख़रीद कर कातनेवाली स्त्रियों को बेच देते हैं। यह पश्म रुई के सदृश मुलायम होता और धुनकी से नहीं धुनका जाता, वरन् महीन और नम चावल के आटे की पुट देकर कंघी से साफ़ किया जाता है। फिर २२-२२ इंच लम्बे ३५ धागे फिरकी में लपेट कर ताने और बाने के रूप में दूकानदारों को बेचे जाते हैं। ऐसे दूकानदार श्रीनगर के प्रत्येक मुहल्ले में हैं। इस धंधे में स्त्री-पुरुष दोनों लगे रहते हैं। यह धंधा कश्मीर-निवासियों के लिये वैसा ही है, जैसा शेष भारतीयों के लिए कृषि का उद्यम।

दुशालों या अन्य उत्तम वस्त्रों के तैयार करने के लिए चतुर्गुण-सम्पन्न शिल्पकारों की आवश्यकता होती है:—एक ख़ाका या ढांचा बनानेवाला, दूसरा रंग देनेवाला, तीसरा बुनाई का प्रबन्ध-कर्ता, चौथा स्वयम् बुननेवाला। कश्मीरी शाल के बुनने में लगभग डेढ़ साल ख़र्च होता है। इन वस्त्रों की प्रायः पट्टियाँ बुनी जाती हैं, फिर वे इतनी कुशलता से जोड़ी जाती हैं कि जोड़ बिलकुल ही नहीं दिखाई पड़ता। यह बात किसी भी दूसरे देश में देखने में नहीं आती। स्त्रियां उन पर चित्ताकर्षक बेल-बूटे तैयार करती हैं। शाल का ताना बहुधा रेशम का होता है। बढ़िया बुनाई और सुई के सुन्दर काम के कारण शाल बहुत टिकाऊ और बड़ा चित्ताकर्षक होता है। पचास-साठ वर्ष के उपयोग के बाद भी वह नया सरीखा ही मालूम होता है। शाल और साड़ी दोनों पर इतना उत्तम पुश्ता काम होता है कि कभी-कभी पैरिस का काम फीका जंचता है। आजकल भी ऐसे थान बुने जाते हैं जिनकी चौड़ाई ६३ इंच होती, रेशम से अधिक मुलायम होते और अंगूठी के छेद से निकल जाते हैं। ख़ुदरंग, सफ़ेद व अलबान, ताफ़्ता; तूस, शाहतूस, शाल और उच्चकोटि के कोट का कपड़ा पश्म या तूस से तैयार होता है। सफ़ेद अलबान १२ गज़ लंबा ५० इंच चौड़ा, और ख़ुदरंग अलबान तथा ताफ़्ता ७ गज़ लंबा ५८ इंच चौड़ा होता है। तूस भूरा या तंबाकू के रंग का होता है। इसका ताना बटे हुये पश्म का होता है, और इकहरे बाने में सर्व श्रेष्ठ क़िस्म के तूस का मिश्रण रहता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आविष्कारों में एक यह भी ईजाद है कि वह दोहरे शाल को, जो देखने में बड़ा भला मालूम होता है, मिलाकर ओढ़ता है।

है, जिसके कारण तूस और चीज़ों से अधिक मुलायम होता है। शाहतूस ख़ालिस तूस से बनाया जाता है। ताना-बाना दोनों बटे होने के कारण दो सौ से पांच सौ रुपए तक बिकता है। इसका ७ गज़ का लंबा थान तौल में केवल तीन पाव होता है। पश्म का बना हुआ कोट आदि का कपड़ा बारीकी, उष्णता और दृढ़ता में विदेशी कपड़ों से कम नहीं होता।

पट्टू, ट्वीड और कम्बल तथा लोई मोटी ऊन से बनते हैं। कश्मीरी कारीगर पुरानी लोइयों को रफ़ू करके और मलीदा मिलाकर उनको नए कोटों के काम का बना देते हैं। आजकल कश्मीरी पट्टियों के कोट, प्रायः पुरानी और कभी-कभी नई लोइयों से बनाये हुये पट्टुओं से ही, बनाये जाते हैं। नए या पुराने वस्त्र को फुलाकर और धुलाकर कश्मीरी साबुन लगाते, फिर उसे कठौता-नुमा बर्तन में ख़ूब सौंदते हैं। ऊन जितना ही अधिक सौंदा जाता उतना ही अधिक मोटा होता जाता है जैसे, ५४ इंच वाले अर्ज़ के कपड़े को ४० इंच चौड़ा बनाने में ६ घंटे सौंदना पड़ता है। अधिक चमकदार और मुलायम पट्टू पुरानी लोइयों का ही बनता है। कश्मीरा आदि वस्त्र विदेशी होने पर भी कश्मीर के नाम से बिकते हैं।

इसके अतिरिक्त भारतवर्ष के देहातों में भी मोटी जाति के कम्बल बनाये जाते हैं। झांसी आदि शहरों में क़ालीन का काम अच्छा होता है।

बम्बई, कलकत्ता, कानपुर, अहमदाबाद आदि नगरों में बुनाई के बहुत से कारख़ाने हैं; जिनमें मशीनों के द्वारा सूती वस्त्र ख़ास तौर से तैयार होते हैं। कानपुर और धारीवाल आदि में ऊनी वस्त्र बुनने के बड़े-बड़े कारख़ाने हैं। उनमें भी उत्तम वस्त्र तैयार होते हैं। विदेशों से भी आवश्यकतानुसार वस्त्र आते हैं।

भारतवर्ष में रेशम के वस्त्रों का उपयोग बहुत पुराने समय से होता आया है। टसर, मूगा और इड़ी जाति के रेशम के कीड़े तो यहाँ मुद्दतों से हैं, किन्तु कुछ लोगों का मत है कि शहतूत पर परवरिश पाने वाला कीड़ा कदाचित् पुराने समय का नहीं हैं। वह ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा १७वीं शताब्दी में लाया गया और उन्नत हुआ। कीड़े पिल्लू कहलाते हैं और स्थान विशेषों के नाम से प्रसिद्ध हैं; जैसे,—विलायती, मदरासी, कनाड़ी, चीनी, अराकानी, और आसामी इत्यादि। इनमें चीनी, बूलू और बड़े पिल्लू का रेशम सर्वोत्तम होता है। ये कीड़े तितली की जाति के होते हैं। जब अंडा फूटता है, तो कीड़ा रेंगता है और बड़े पिल्लू के आकार का होता है। शहतूत की पत्तियों को वह बड़े चाव से खाता है। बड़ा होने पर पिल्लू कोश बनाकर उसके अन्दर घुसा रहता है, उस समय वह कोया कहलाता है। कोश के भीतर ही भीतर वह रेशम नामक तन्तु निकालता है। जब अवधि समाप्त हो जाती है, तो वह कोश काट कर उड़ जाता है। इस कारण पालनेवाले उसके कोश से निकलने के पहले कोयों को गर्म पानी में डालकर कीड़े को मार डालते हैं और ऊपर का रेशम निकाल लेते हैं। उसी से अनेक प्रकार के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्राट् के प्रोत्साहन देने से कश्मीर में शाल-बुनाई के उद्योग ने बहुत उन्नति प्राप्त की है। लाहौर में भी इसके एक हज़ार से ज्यादा कारख़ाने हैं। वहाँ के तन्तुवाय, रेशमी ताने और ऊनी बाने से शाल के समान एक वस्त्र तैयार करते हैं, जिसे **मायाँ** कहते हैं। इन दोनों से चीरा और पटुका आदि तैयार होते हैं।

लोगों की अधिक जानकारी के लिए इस विभाग का कुछ हाल निम्नस्थ तालिका में लिखता हूँ :—

सोने के काम किये हुये कपड़े।

नाम		मूल्य		
ज़रबफ़्त—मख़मल	यज़दी[१]	प्रति थान	१५ मोहर से	१५० मोहर तक
,,	फ़िरंगी[२]	,,	१० ,,	७० ,,
,,	गुजराती	,,	१० ,,	५० ,,
,,	काशी[३]	,,	१० ,,	४० ,,
,,	हिरवी[४]	,,	—	—
,,	लाहोरी	,,	१० ,,	४० ,,
,,	बरसा[५]	,,	३ ,,	७० ,,
मुतब्बक़[६]		,,	२ ,,	७० ,,
मीलक[७]		,,	३ ,,	७० ,,
ज़रबफ़्त[८]	गुजराती	,,	४ ,,	६० ,,

वस्त्र तैयार होते हैं। आजकल बनारस की ज़री के काम की करेबें प्रसिद्ध हैं। भागलपुर, आसाम आदि में रेशमी वस्त्र तैयार होते हैं। बहुत से विदेशी कपड़े भी भागलपुरी और काशी सिल्क के नाम से बिकते हैं।

१—यज़्द की बनी हुई। यज़्द ख़ुरासान प्रान्त के दक्षिण-ओर एक प्रसिद्ध नगर है।

२—यूरोप की बनी हुई।

३—काशान की बनी हुई। यह फ़ारस में है। यहां से रेशमी वस्त्र और गुलाब-जल बाहर को जाते हैं।

४—हिरात की बनी हुई।

५—इस स्थान का पता नहीं चलता। कदाचित् यह पोलैण्ड का वारसा हो, या उत्तरी इटली का वैरीज़ हो। पिछले स्थान में आजकल भी रेशम का अच्छा काम होता है।

६, ७—मुतब्बक़ और मीलक दोनों वस्त्र क्रमशः तुर्किस्तान के ख़ुल्लख़ और नौशाद से आते थे।

८—वह रेशमी कपड़ा, जिसकी बुनाई में सोने के तारों से या कलाबत्तू देकर बेल-बूटे बनाये जाते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सोने के काम किये हुये कपड़े (शेषांश)।

नाम		मूल्य		
तास[१]	गुजराती	प्रति थान	१ मोहर से	३५ मोहर तक
दाराई बाफ़[२]		,,	२ ,,	५० ,,
मुक़्क़ैश[३]		,,	१ ,,	२० ,,
शिरवानी		,,	६ ,,	१७ ,,
मुशज्जर[४] फ़िरंगी		प्रति गज़	१ ,,	४ ,,
देबा[५] फ़िरंगी		,,	१ ,,	४ ,,
देबा यज़दी		,,	१ ,,	१½ ,,
ख़ारा[६]		—	५ रुपए से	२ ,,
अतलस ख़ताई[७]		—		—
नवार ख़ताई		—		—
ख़ज़[८]		—		—
तफ़सीला जो कि मक्के से आता है		—	१५ रु० से	२० रुपए तक
कुर्तावार गुजराती		—	१ मोहर से	२० मोहर तक
मिंदील		—	१ ,,	१४ ,,

१—तास वह ज़रदोज़ी का वस्त्र है, जिसका ताना रेशम का और बाना बादले का होता है।

२—वह रेशमी वस्त्र जो ग्वारनट के सदृश होता है।

३—मुक़्क़ैश हिन्दी के केश शब्द का अरबी रूप है। मुक़्क़ैश से आशय उन सोने-चांदी के तारों से है, जो बारीक गुंधे हुये बालों के समान विशेष-रूप में काटे गये हों। ऐसे सुनहले और रुपहले तारों का बना हुआ वस्त्र। तमामी।

४—एक प्रकार का रेशमी वस्त्र, जिसमें वृत्त और पत्तियाँ बनी हुई हों।

५—एक प्रकार का बारीक रंगीन रेशमी कपड़ा।

६—ख़ारा या ख़ारह एक बारीक और धारीदार रेशमी वस्त्र, जिसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि धूप में रखने से वह टुकड़े-टुकड़े हो जाता है, जैसे कतान वस्त्र चंद्र-प्रकाश से—ग़यासुल्लुग़ात।

७—चीनी तातार।

८—फ़ारसी में इसका उच्चारण ख़ज़ भी होता है। एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। मूल-ग्रंथ में अतलस, नवार और ख़ज़ का मूल्य नहीं लिखा है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सोने के काम किये हुये कपड़े (शेषांश)।

नाम	मूल्य	
चीरा	$\frac{१}{२}$ मोहर से	८ मोहर तक
दुपट्टा	६ रुपए[१] से	८ रु० तक
फ़ौता	$\frac{१}{२}$ मोहर से	१२ मोहर तक
पलंग-पोश	१ ,,	२० ,,

रेशमी कपड़े।

नाम		मूल्य	
मख़मल फ़िरंगी	प्रति गज़	१ मोहर से	४ मोहर तक
,, काशी	प्रति थान	२ ,,	७ ,,
,, यज़्दी	,,	२ ,,	४ ,,
,, मशहदी[२]	,,	२ ,,	४ ,,
,, हिरवी	,,	१$\frac{१}{२}$,,	३ ,,
,, ख़ाफ़ी	,,	२ ,,	४ ,,
,, लाहोरी	,,	२ ,,	४ ,,
,, गुजराती	प्रति गज़	१ रुपए से	२ रुपए तक
,, क़तीफ़ा[३] पूर्बी	,,	१ ,,	१$\frac{१}{२}$,,
,, ताजा बाफ़	प्रति थान	२ मोहर से	३० मोहर तक
,, दाराई बाफ़	,,	२ ,,	३० ,,
,, मुतब्बक़	,,	१ ,,	३० ,,
,, शिरवानी	,,	१$\frac{१}{२}$,,	१० ,,
,, मीलक	,,	१ ,,	७ ,,
,, कमख़ाब विलायती[४]	,,	१ ,,	५ ,,

१—ब्लाक्मैन के भाषान्तर में ६ रुपए हैं, किन्तु मूलग्रंथ में 'शश' अर्थात् ६ पाठ है।

२—मशहद की बनी हुई।
३—एक प्रकार की मख़मल।
४—काबुल और फ़ारस से।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रेशमी कपड़े (शेषांश)।

नाम	मूल्य		
तवार[१]	प्रति थान	२ रुपए से	२ मोहर तक
ख़ूरी	,,	४ ,,	१० रुपए ,,
मुशज्जर फ़िरंगी	प्रति गज़	२ ,,	१ मोहर तक
,, यज्दी	प्रति थान	१ मोहर	२ ,,
अतलस फ़िरंगी	प्रति गज़	२ रुपए से	१ ,,
,, हिरवी	प्रति थान	५ ,,	२ ,,
ख़ारा	प्रति गज़	१ ,,	६ रुपए तक
सिहरंग[२]	प्रति थान	१ मोहर से	३ मोहर तक
क़ुतनी[३]	,,	१½ रुपए से	२ ,,
कतान[४] फ़िरंगी	प्रति गज़	½ ,,	१ रुपए तक
ताफ़्ता[५]	,,	¼ ,,	२ ,,
अंबरी[६]	,,	४ दाम से	½ ,,
दाराई	,,	⅕ रुपए से	२ ,,
सितीपुरी	प्रति थान	६ ,,	२ मोहर तक
क़बाबंद	,,	६ ,,	२ ,,
टाट बन्दपुरी	,,	२ ,,	१½ ,,
लाह	प्रति गज़	⅓ ,,	⅐ रुपए तक
मिस्री	प्रति थान	½ मोहर से	१ मोहर तक

१—एक प्रति में नवार या नेवार पाठ है।

२—रंग बदलने वाला रेशमी वस्त्र। तिरंगा।

३—ऐसा कपड़ा जिसका ताना रेशम का और बाना सूत का हो।

४—बहुत बारीक कपड़ा। अत्यधिक बारीकी के कारण चन्द्रमा के प्रकाश में यह फट जाता है। अलसी के डंठल से रेशे निकाल कर रेशम की तरह बारीक काता और बुना जाता है—ग़यासुल्लुग़ात।

५—बंटा हुआ एक प्रकार का रेशमी वस्त्र।

६—संस्कृत में अंबर वस्त्र को कहते हैं, अंबरी शब्द अंबर से ही बना है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रेशमी कपड़े (शेषांश)।

नाम	मूल्य			
सार	प्रति गज़	$\frac{१}{१०}$ रुपए से	$\frac{१}{५}$ रुपए तक	
टसर[१]	प्रति थान	$\frac{१}{३}$,,	२ ,,	
अतलस सादी कुर्तावार	प्रति गज़	$\frac{१}{२}$,,	१ ,,	
कपूरनूर, जो पहले कपूरधूर कहलाता था।	,,	$\frac{१}{८}$,,	१ ,,	
अल्चा	,,	$\frac{१}{५}$,,	२ ,,	
तफ़सीला	प्रति थान	८ ,,	१२ ,,	

१—इसके कीड़े, छोटा नागपुर, मयूरभंज, बालेश्वर, बीरभूम और मेदनीपुर आदि के जंगलों में, साखू, बहेड़ा, पियार, कुसुम और बेर इत्यादि के वृक्षों पर पलते हैं। इसका रेशम कड़ा और मोटा होता है। पालनेवाले कोश से निकले हुये कीड़ों को जंगल में छोड़ आते हैं। वहाँ मादा के सम्पर्क से उनकी वृद्धि होती है। मादा वृक्ष की पत्तियों पर सरसों के समान अंडे देती है, वे चौड़े होने के कारण पत्तियों में चिपक जाते हैं। दस-बारह दिन में ये सूंडी के आकार के होकर निकल आते, और पत्तियां चाट कर बढ़ने लगते हैं। पन्द्रह दिन में ये पूरे बढ़ कर बारह अंगुल तक लंबे होजाते हैं। ये भूरे, नीले, पीले और मटमैले अनेक रंगों के होते हैं। फिर ये अपने मुख की लार से कोश बनाते हैं। यही लार सूख कर सूत होजाती है। बड़ा कोश साढ़े छे अंगुल तक लम्बा अंडाकार होता है। पूरा कोश बन जाने पर कीड़ा उसी के अन्दर बन्द हो जाता है। कोश कुतर कर उड़ जाने के भय से कीड़े पालने वाले उड़ जाने के पहले ही उनको क्षार के साथ गर्म पानी में उबाल कर मार डालते हैं। बिना उबाले हुए कीड़ों का टसर ज़्यादा अच्छा होता है। एक कीड़ा तीन-चार दिन में ढाई सौ तक अंडे देता है। पालने वाले जंगल में इनको चीटियों और चिड़ियों से बचाते हैं। ब्लाक्मैन ने लिखा है कि आजकल टसर विशेषकर बरहामपुर और पटना में तैयार होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सूती कपड़े।

नाम	मूल्य		
ख़ासा	प्रति थान	३ रुपए से	१५ मोहर तक
चौतार[१]	,,	२ ,,	६ ,,
मलमल	,,	४ रुपए	
तनसुख	,,	४ रुपए से	५ मोहर तक
सिरीसाफ़[२]	,,	२ ,,	५ रुपए तक
गंगाजल[३]	,,	४ ,,	५ मोहर तक
भैरों[४]	,,	४ ,,	४ ,,
सहन[५]	,,	१ मोहर	३ ,,
झोना	,,	१ रुपए से	१ मोहर तक
अटान	,,	२½ ,,	१ ,,
असावली	,,	१ मोहर से	५ ,,
बाफ़्ता	,,	१½ रुपए से	५ ,,
महमूदी	,,	½ मोहर से	३ ,,
पंचतौलिया[६]	,,	१ ,,	३ ,,
झोला	,,	½ ,,	२½ ,,
सालू	,,	३ रुपए से	२ ,,
डोरिया	,,	६ ,,	२ ,,
बहादुरशाही	,,	६ ,,	२ ,,
गर्भ सूती	,,	१½ मोहर से	२ ,,

१—चौतार हवेली सहारनपुर में बुना जाता था।

२, ४—सिरीसाफ़ और भैरों धरनगांव, खानदेश में तैयार होते थे।

३—एक बारीक सफ़ेद कपड़ा, जिसकी पश्चिम में अब भी पगड़ी बांधी जाती है, घोड़ाघाट बंगाल में बुना जाता था।

५—एक बढ़िया रेशमी कपड़ा। गाढ़े की जाति का एक गफ़, चिकना सूती कपड़ा, जो मगहर में अच्छा तैयार होता है।

६—पंचतौलिया का उल्लेख द्वितीय ग्रंथ में मंसबदार नं० ३१९ ग़यासबेग के जीवन-चरित्र के प्रसंग में हुआ है। नूरजहां ने ओढ़नी के स्थान में पंचतौलिया का चलन चलाया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सूती कपड़े (शेषांश)।

नाम	मूल्य		
दक्खिनी शेला	प्रति थान	$\frac{१}{२}$ मोहर से	२ मोहर तक
मिहरकुल[१]	,,	३ रुपए से	२ ,,
मिन्दील	,,	$\frac{१}{२}$ मोहर से	२ ,,
सरबन्द	,,	$\frac{१०}{२}$,,	२ ,,
दुपट्टा	,,	१ रुपए से	१ ,,
कतानचा	,,	१ ,,	१ ,,
फ़ौता (पटुका)	,,	$\frac{१}{२}$,,	६ रुपए तक
गोश-पेच[२]	,,	१ ,,	२ ,,
छींट	प्रति गज़	२ दाम से	१ ,,
गज़ीना	,,	$\frac{१}{२}$ रुपए से	$१\frac{१}{२}$,,
सिलाहटी[३]	,,	२ दाम से	४ दाम तक

ऊनी कपड़े।

नाम	मूल्य		
सक़लात[४] रूमी, फ़िरंगी[५], पुर्तगाली	प्रति गज़	$२\frac{१}{२}$ रुपए से	४ मोहर तक
,, नागौरी, लाहोरी	प्रति थान	२ ,,	१ ,,
सूफ़ मुरब्बा	एक नग	४ मोहर से	१५ मोहर तक

१—मिहरकुल इलाहाबाद में बुना जाता था।

२—गोश-पेच एक कान का ज़ेवर भी है।

३—अकबर के समय में सूती कपड़े जिस रुई के बनते थे, उसके रेशों की लंबाई अनुमानतः $\frac{३}{४}$ इंच तक होती थी। किन्तु आज-कल विभिन्न देशों में वे $\frac{३}{४}$ इंच से $१\frac{१}{२}$ इंच तक पाये गये हैं। (१) सी आइलैण्ड-काटन (Sea Island-Cotton) के रेशे १ से $१\frac{१}{२}$ इंच तक लंबे होते हैं, और अमेरिका में चलती है। (२) मिस्री रुई (Egyptian-Cotton) का रेशा $१\frac{१}{२}$ इंच होता है? यह मिस्र में पैदा होती है। (३) पेरूवियन-काटन (Peruvian-Cotton) का रेशा $१\frac{१}{४}$ इंच होता और पैदायश पेरू में होती है। (४) अमेरिकन-काटन (American-Cotton) के रेशे १ इंच लंबे होते, और (५) भारतीय रुई (Indian-Cotton) के $\frac{३}{४}$ इंच।

४—बानात।

५—बदायूनी ने लिखा है कि जो चीज़ें यूरोप से इस देश में आती हैं, उनमें बानात, चित्र, कुछ अद्भुत वस्तुएँ और बाजे जैसे, नफ़ीरी आदि हैं। सन् १६०० ई० से तम्बाकू भी आने लगी। रूमी से आशय 'तुर्की का' है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऊनी कपड़े (शेषांश)।

नाम	मूल्य			
सूफ़ मुख़िर१	एक नग	३ रुपए से	१½ मोहर२ तक	
परम नर्म	,,	२ ,,	२०	,,
चीरा परम नर्म	,,	२ ,,	२५	,,
फ़ौता	,,	½ मोहर से	३	,,
जामावार परम नर्म	,,	½ ,,	४	,,
गोश-पेच	,,	१½ रुपए से	१½	,,
सर-पेच	,,	½ मोहर से	४	,,
अग़री	,,	७ रुपए से	२½	,,
परम गर्म	,,	३ ,,	२½	,,
कतास	,,	२½ ,,	१०	,,
फूक	,,	२½ ,,	१५ रुपए तक	
दुर्मा	,,	२ ,,	४ मोहर तक	
पट्टू (पट्टू)	,,	१ ,,	१० रुपए तक	
रेवकार	,,	२ ,,	१ मोहर तक	
मिस्री	,,	५ ,,	५० रुपए तक	
बुर्दे यमानी (यमन की)	,,	५ ,,	३५	,,
मांजी नमद	,,	२ ,,	१ मोहर तक	
कंपक नमद	,,	२ ,,	१	,,
तकिया नमद विलायती३	,,	×	×	

१—मूल ग्रंथ में इस शब्द के मजहज़, मुशजर, महजर, मुख़ैयर पाठान्तर हैं।

२—ब्लाक्मैन के अनुवाद में १½ मोहर है, जो अशुद्ध है।

३—काबुल और फ़ारस की।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऊनी कपड़े (शेषांश)।

नाम	मूल्य		
तकिया नमद हिन्दी (हिन्दुस्तान की बनी हुई)	एक नग	१½ रुपए से	५ रुपए तक
लोई	,,	१४ दाम	४ ,,
कम्बल	,,	१० ,,	२ ,,
कुलाह कश्मीरी	,,	२ ,,	१ ,,

आईन ३३।
रंगों की उत्पत्ति।

रंगों[१] में सफ़ेद रंग और काला रंग मूल माने जाते हैं तथा एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी समझे जाते हैं। शेष रंग इन्हीं के अवयवों से बनते हैं। जैसे, जब

१—विश्लेषण करने पर प्रकाश में अनेक रंग पाये गये हैं। न्यूटन (Sir, Isaac Newton, १६४२-१७२७) और उसके शिष्यों के मत में सात रंग मुख्य थे, जो गढ़े हुये शब्द विबग्योर (Vibgyor) के अन्तर्गत हैं, अर्थात् बैंजना, नील आसमानी, नीला लाली लिए हुए, हरा, पीला, नारंगी, लाल (Violet, Indigo, Blue, Green, Yellow, Orange and Red)। किन्तु स्काटलैण्ड के फ़ल्लास्फ़र ब्रिउस्टर (Sir David Brewster, १७८१—१८६३ ई०) ने रंगों का अनुसन्धान करके केवल तीन ही रंग रक्खे, अर्थात् पीला, लाल और नीला। यङ्ग हेल्महोल्ट्ज (Young Helmholtz) और क्लार्क मैक्सवेल (James Clerk Maxwell, १८३१-७८) ने इस सिद्धांत को संवर्द्धित किया। उक्त सिद्धांत के अनुसार रंग का ज्ञान कराने वाली रेटिना (Retina, प्रकाशग्राही आंख के पीछे का पर्दा) की सतह के प्रत्येक सूक्ष्म भाग के तीन हिस्से हैं, जो कि क्रमशः लंबी लाल, हरी और छोटी नीली तरंगों की ही शीघ्रग्राहिणी हैं। इससे सिद्ध है कि शुद्ध मूल रंग तीन ही हैं, लाल, हरा और बैंजनी नीला। शेष रंग इन्हीं के मिश्रण-स्वरूप हैं।

वैज्ञानिकों के मतानुसार रंग प्रकाश की किरणों में होता है। वस्तुओं में भिन्न-भिन्न रासायनिक गुण हैं, इसी से वस्तुओं में उनका अनुभव होता है। किसी वस्तु के ऊपर प्रकाश पड़ने पर उस प्रकाश तरंग

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अधिक सफ़ेद रंग कुछ काले रंग से मिलता है, पीला रंग उत्पन्न होता है। परन्तु जब सफ़ेद रंग और काला रंग समान अंशों में मिश्रित होता है तो लाल रंग प्रकट

या किरण के तीन भाग हो जाते हैं। पहला भाग परावर्तित हो जाता, दूसरा वर्तित हो जाता और तीसरा उसी वस्तु के द्वारा सोख लिया जाता है। हमें जो रंग दिखाई पड़ते हैं, वे इन्ही परावर्तित किरणों के होते हैं। जब सूर्य की रश्मियां किसी वृक्ष की पत्तियों पर पड़ती हैं, तो वे (पत्तियां) उनमें से हरे रंग की किरणों को छोड़ कर अन्य रंगों की किरणों को सोख लेती हैं, और हरे रंग की किरणें परावर्तित होकर मनुष्य के नेत्रों तक पहुँचती हैं। इससे पत्तियां हरी दिखलाई पड़ती हैं। कितने ही पदार्थों में ये गुण समान मात्रा में नहीं होते। कुछ पदार्थों में प्रकाश केवल वर्तित होता या सोख लिया जाता है। किन्तु परावर्तित नहीं होता, जैसे,—निर्मल जल। ऐसे पदार्थों में कोई रंग दिखलाई नहीं पड़ता। जिन पदार्थों पर प्रकाश पड़कर सबका-सब परावर्तित हो जाता है, वे सफ़ेद मालूम होते हैं; और जो वस्तुएँ पड़े हुए पूर्ण प्रकाश को सोख लेती हैं वे या तो काली होतीं या काली दिखाई देती हैं।

सब रंगों के मिलने पर सफ़ेद और सबके निकल जाने पर काला रंग दृष्टिगोचर होता है। यदि किसी चीज़ पर प्रकाश पड़े और उसमें लाल रंग की रश्मियों को छोड़कर शेष रंगों की उर्मियों को सोख लेने की शक्ति हो, तो स्वभावतः लाल रंग बच रहेगा, और वह पदार्थ लाल रंग का कहलायेगा। सारांश यह कि कोई भी पदार्थ उसी रंग का दिखलाई पड़ता है, जिस रंग की किरणों को वह परावर्तित तो कर सकता है किन्तु न वर्तित कर सकता और न सोख सकता है। यदि लाल रंग का प्रकाश हरे और पीले रंग के साथ पहुँचे तो सफ़ेद रंग दृष्टिगोचर होगा। अतएव लाल और हरे-पीले रंग एक दूसरे के परिपूरक हैं। बहुधा दो रंगों के मिश्रण से तीसरा रंग बनता है, जैसे लाल और पीले के मिलने से नारंगी रंग।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवरण प्रकाश-किरण-रंगों के सम्बन्ध में है, रंगाई के रंगों के सम्बन्ध में नहीं। यहाँ पर रंगाई वाले रंगों का उल्लेख किया जाता है। भारतवर्ष में रंगाई का प्रचार बहुत प्राचीनकाल से है। यहाँ रंगाई के काम में आनेवाले पदार्थों में नील, मंजिष्ट, हल्दी, कत्था, हर्रा, कसीस, आल, लाख, कुसुम, चन्दन, पतंग आदि हैं। रंगाई, छपाई और विशेषतया चित्रकारी के काम में आनेवाले दस भारतीय रंग थे, जिनका उल्लेख पर्सी-ब्राउन ने इण्डियन 'पेण्टिङ्ग' (Percy Brown, Indian Painting, 1927) में इस प्रकार किया है:—(१), सफ़ेद—रांगा, जो कि काशग़र से आता था। (२), काला—काजल से बनता था, और काजल जलते हुये दीपों पर मिट्टी के सकोरे या पारे अथवा सरकण्डे रखकर पारा जाता था। (३), लाल—कृमिजी और गेरू, दोनों ही जबलपुर में अत्यधिक मात्रा में पाये जाने वाले लोहे के भस्म (आक्साइड) हैं; दोनों ही बहुत उपयोगी हैं। (४), सेंदुर या ईंगुर—पारे का भस्म। (५), लाक्षावर्ण—लाख से बनाये जाने वाले रंग। (६), नीला—लाजवर्द या राजवर्त्तक पाषाण से जो जंगाली रंग का होता है तथा नील से बनाया जाता था। (७), पीला—हरताल, मुल्तानी मिट्टी,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

होता है। मिश्रण के समय यदि काला रंग सफ़ेद से अधिक परिमाण में होता है, तो नया रंग हरा बन जाता है। अन्य रंग इन्हीं रंगों के एक दूसरे के साथ मिलने पर

प्यूरी, ढाक के फूल, और नक़ली प्यूरी से बनाये जाने वाले रंग। (८), हरा—तूतिया या तांबे का कसाव; नील और हरताल; ज़ैतूनी; हरी मूंग का-सा रंग, तरबूज़ी; इनके बनाने में काजल, हरताल और नील विभिन्न अंशों में मिलाकर इस्तेमाल किये जाते हैं। बौद्ध चित्रकारी में प्रयुक्त उत्तम संग-सब्ज़ रंग। (९), बैंजना—सेंदुर और नील मिला हुआ गहरा बैंजना रंग—काजल और हुरमुज़ी (हिरमिजी) से मिलाकर बनाया जाता था। हुरमुज़ी फ़ारस की खाड़ी के हुरमुज़ द्वीप में पाई जाती है।

उपर्युक्त रंगों का व्यवसाय भारतवर्ष का अन्य देशों के साथ था। रोम के इतिहासकार वृद्ध प्लिनी (Pliny, 23—79 A. D.) ने इस विषय पर प्रकाश डाला है। उससे मालूम होता है कि अरबवालों ने रंग की कला भारतीयों से सीखी, उनसे फ़िनीशियनों ने और उनसे मिस्र वालों ने। ये जातियां भारत से रंग ख़रीदतीं और बेचती थीं। मिस्र के सुरक्षित शवों (Mummies) के वस्त्रों पर भी भारतीय नील और मंजिष्ट के चिह्न देखे गये हैं। रंग प्रयोग की कला मिस्र से यूनान गई और वहाँ से रोम पहुँची। चीन भारतवर्ष का पड़ोसी है। इसलिए वहाँ यूरोप के पहले से ही रंगाई का प्रचार था। पांचवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक यूरोप में गड़बड़ मचा रहा, जिससे अनेक शक्तियां उसमें फँसी रहीं; अतएव रंग तथा अन्य कलाओं के सम्बन्ध में वे उदासीन रहीं; किन्तु इटली के फ़्लारेन्स और वेनिस नगरों में इस कला का प्रचार होता रहा। इसी बीच में फ़्लारेन्स में शंख के आवरण से बैंजना रंग बनाया गया। इसका प्रसार यूरोप के कई देशों में हुआ। इंग्लैंड के सम्राट् एडवर्ड तृतीय (१३१२—७७ ई०) को उद्योग और कला-कौशल से बड़ा प्रेम था। उसने सबसे पहले वस्त्र बुनाई की नींव रक्खी, और अत्यधिक वेतन देकर फ़्लैण्डर्स (बेल्जियम) से रंगरेज़ों को बुलाया। १४७२ ई० में लण्डन में रंगरेज़ों की एक कम्पनी स्थापित हुई और इस व्यवसाय को आर्थिक सहायता मिली। १४२९ ई० में वेनिस से रंगाई की 'आर्ट डी टिण्टोरिया' (Art De Tintoria) नामक पहली पुस्तक निकली। इसी प्रकार १५१४ ई० में जर्मनी के स्ट्रैसबर्ग से और १५८३ ई० में लन्दन से उक्त कला पर एक-एक पुस्तक प्रकाशित हुई।

अभी तक विशेषकर रंग-द्रव्य भारतवर्ष से ही विदेशों को जाते थे। जब १४९२ ई० में क्रिस्टाफ़र कोलंबस ने अमेरिका खोजा, और १४९९ ई० में केप आफ़-गुडहोप (Cape of Good Hope) होकर वास्कोडागामा ने भारतवर्ष का रास्ता निकाला, तो अटलाण्टिक महासागर का महत्व अधिक बढ़ गया। इससे वेनिस का व्यापार बैठ गया, और स्पेन और पोर्चुगाल का व्यवसाय चमक गया। इधर भारतवर्ष का उद्योग क्षीण हो गया। इस बीच में स्पेन वालों ने अमेरिका से रंग के सहस्रों जहाज़ यूरोप भेजे। पोर्चुगीज़ों का सम्पर्क भारतीयों से होने के कारण उन्होंने रंग का पूर्ण ज्ञान यहां से प्राप्त किया, और उसे यूरोप वालों को सिखलाया। परिणाम-स्वरूप

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उत्पन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त ठंढक गीले पिण्ड को सफ़ेद कर देती है और सूखे को काला। उष्णता आर्द्र पदार्थ को श्याम बनाती है और शुष्क को श्वेत।

फ्रांस, जर्मनी और हालैण्ड आदि राष्ट्रों में रंग की खेती होने लगी।

१६३० ई० में डच रासायनिक डेबिल ने लाख के सदृश कोचीनियल (Cochineal, एक जाति के कीड़े, जो अमेरिका और जावा आदि में अगणित पाये जाते हैं। वे वर्ष में दो बार एकत्र किये जाते हैं, और मादा कीड़ों को सुखा कर रंग बनाया जाता है। एक पौण्ड रंग के लिये ७०००० कीड़ों की आवश्यकता होती है) से ऊन पर रंग चढ़ाना सिखलाया। इस रंग के प्रचार से भारतीय लाख का—जो कि संसार में आज दिन भी केवल भारतवर्ष में होती है—महत्व घट गया। इसके बाद यूरोप में रंगाई के आनुषंगिक द्रव्यों का भी व्यापार बढ़ा और लोगों का कृत्रिम रंगों के बनाने की ओर ध्यान गया।

१८५६ ई० में जर्मन गुरु के अंगरेज़ शिष्य पर्किन (Sir W. H. Perkin) ने कृत्रिम क्विनाइन (Quinine) बनाने की चेष्टा की। इसके लिए भभके द्वारा नील से ऐनलीन (Aniline) तेल तैयार किया। इस तेल से कृत्रिम कुनाइन तैयार करने के लिए दूसरी क्रिया की। इस क्रिया से कुनाइन तो नहीं बनी, किन्तु मॉव रंग (बैंजना) तैयार हो गया, जो पर्किन्स माव कहलाता है। १८५९ ई० में वर्मुइन (Vermuine) ने तारकोल से अबीर जैसा मैजेण्टा (Magenta) रंग तैयार किया। इसी वर्ष रासायनिक गीज (Geige) ने अज़ो (Azo) वर्ग के रंग तैयार किये। आजतक सबसे अधिक रंग इसी वर्ग के तैयार हुये हैं। १८८४ ई० में सूती कपड़े की लाल रंगाई के लिए काँगोरेड (Congo red) तैयार हुआ। काँगोरेड उतना पक्का रंग नहीं था, जितना कि मंजिष्ट; किन्तु मंजिष्ट की रंगाई में छे महीने लगते थे। शनैः शनैः रंग बनाने वालों को नैसर्गिक रंगों के मुक़ाबले के रंग बनाने की प्रबल इच्छा हुई। जर्मनी के दो रासायनिकों ग्रीव और प्रीबर्मन (Grieve and Priberman) ने १८६८ ई० में मंजिष्ट रंग का मूल द्रव्य ऐलिज़रीन (Alizarin) खोज निकाला। इस से लाल और गुल-अनार रङ्गों की पूर्ति हो गई। इसी प्रकार १८९७ में कृत्रिम नील भी तैयार होगया। बैंजना रंग जो कि पहले शंख या घोंघे के कवच से बनाया जाता था वह भी कृत्रिम बन गया। घोंघे के कवच का बैंजना रङ्ग १५००० रुपए प्रति सेर बिकता था, किन्तु कृत्रिम रंग १५ रु० सेर बिकने लगा। यह रङ्ग भी नील वर्ग का ही है। इसी वर्ग के और अनेक रंग, जो माट रंग के नाम से पुकारे जाते हैं, बनाये गये। ये रंग नील से उत्तम और टिकाऊ थे। इसी प्रकार अज़ो वर्ग के रंग बने हैं, जो पानी में नहीं घुलते; किन्तु उनसे दो मिनट में वस्त्र रंगा जा सकता है। ऊन और रेशम के लिए मजीठ वर्ग के ज़ामिन रंग या तेज़ाबी ज़ामिन रंग तैयार हैं।

रंग के विकास के साथ-साथ ऊन और रेशम आदि के अतिरिक्त अन्य कृत्रिम रेशे भी बनाये गये हैं। उनमें कुछ ऐसे भी हैं, जो साधारण प्रचलित रंगों से नहीं रंगे जा सकते। ऐसे रेशे ऐसिटेट सिल्क या सेलानीज़ (Acetate silk or Celanese) के नाम से पुकारे जाते हैं। इनकी रंगाई के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ये कारण (गर्मी और सर्दी) पिण्डों को उनके स्थानों पर ही रंग प्रदान करते हैं; क्योंकि पिण्ड, स्वभावत: उनको ग्रहण करने के पात्र होते हैं तथा नक्षत्रों के

लिए एस० आर० ए० आयोना अमाइन डिस्पर्सल, सेलाटीन, ड्योरेनोल, सेलसेट और सेलैन्थ्रीन (S. R. A. Ionamine, Dispersol, Celatine, Durenol, Cellacete & Celanthrene) बनाये गये हैं।

आजकल नैसर्गिक रंग विशेषकर अमेरिका, भारतवर्ष, इंग्लैण्ड, इटली, फ्रांस-हालैण्ड, चीन और जापान में पाये जाते हैं। लागउड, फ़स्टिक, कोचीनियल, रेडउड, ओक गाल्स, क्वेर सिट्रोन, फ़्लैवीन, आर्चिल (Log-wood, Fustic, Oak Galls, Quercitron, Flavine or Archil) अमेरिका के रंग हैं। वोड और वेल्ड (Woad & Weld) इंग्लैण्ड के हैं। मैडर और करमिस (Madder & Kermes) इटली, फ्रांस और हालैण्ड के रंग हैं। आजकल अमेरिका नैसर्गिक रंगों की खोज में लगा है।

पहले लकड़ी, फल, फूल, छाल और पत्तियों तथा खनिज द्रव्यों आदि से नैसर्गिक रङ्ग बनाये जाते थे। पर आजकल जो कृत्रिम रङ्ग प्रचलित हैं। वे तारकोल से तैयार किये जाते हैं। तारकोल कोयले से बनता है और कोयला लकड़ी से। अतः कृत्रिम रङ्गों का भी मूल-द्रव्य वनस्पति के अङ्गोपाङ्गों का रूपान्तर मात्र है। कृत्रिम रङ्ग बनाने के लिए कोलतार के तीन विशेष रूपान्तरों की आवश्यकता होती है, अर्थात्—बेनज़ीन, नप्थलीन, ऐन्थ्रसीन (Benzine, Napthalene and Anthracene); इन्हीं तीन पदार्थों का अन्य द्रव्यों से विशेष परिमाण में मिलान होने पर अनेक प्रकार के रङ्ग तैयार होते हैं। इन तीनों द्रव्यों में से बेनज़ीन से हल्दी आदि के समान कच्चे रङ्ग तैयार होते हैं। नप्थलीन से नील वर्ग के रङ्ग बनाये जाते और ऐन्थ्रसीन से मजीठ वर्ग के पक्के रङ्ग तैयार किये जाते हैं। सब कृत्रिम रंग लगभग दस भागों में विभाजित हैं:—

(१), डायरेक्ट (Direct) जो कि पक्के रङ्ग हैं, और जिनमें नमक डालकर सीधी रीति से सूती और रेशमी कपड़ा रङ्गा जा सकता है।

(२), बेज़िक (Basic) जो कि पदार्थ की भस्म से तैयार होते हैं। ये रङ्ग कच्चे होते हैं, किन्तु इनसे रङ्गा हुआ कपड़ा भड़कीला मालूम होता है। गहरा रङ्ग देने के लिए दूसरे मसालों की पुट देनी पड़ती है। रगड़ने से या धूप से ये रङ्ग उतर जाते हैं।

(३), सलफ़र या गंधकी (Sulphur) रंग से प्रायः सूत ही रंगा जाता है। यह रंग मामूली सोडा या साबुन से नहीं छूटता किन्तु धोबी की भट्टी पर छूट जाता है। यह रंग योंही नहीं घुल जाता, प्रत्युत, इसे घोलने के लिए एक विशेष प्रकार के मसाले की आवश्यकता होती है।

(४), मारडैंट (Mordant) या ज़ामिन रंग, जिनसे सीधे-सीधे रंगाई नहीं होती, वरन् उनसे रंगने के पहले रेशम या सूत को कुछ मसालों की पुट देनी पड़ती है। ये रंग प्रायः धुलाई और धूप तथा पसीने के लिए पक्के होते हैं; किन्तु कोई-कोई रंग रगड़ने से उड़ जाता है।

(५), वैट (Vat) या माट रंग, इनसे अधिकतर सूत रंगा जाता है। इनसे रेशम तो रंगा जा सकता है पर ऊन नहीं। इनसे अधिक पक्के रंग और कोई नहीं हैं। इसी वर्ग में इण्डिगो सोल (Indigosols)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रभाव से—जैसे सूर्य, जो उष्णता का मूल कर्ता है—प्रभावित होने के योग्य होते हैं।

आईन ३४।

लेखनकला और चित्रकला[१]।

आकृति (सूरत) आकृतिवान् को प्रकट करती है, और आकृतिवान् भाव (मअ्नी) को। इसी प्रकार लिपि (ख़त) अक्षर और शब्दों का बोध कराती

द्राव्य रंग हैं। ऊन इनसे रंगा जाता है। नील की रंगाई उसी पुराने तरीक़े से बनाये हुए माट के द्वारा होती है। ये रंग स्वयम् नहीं घुलते, वरन् पानी में इन्हें विशेष क्रिया द्वारा हल किया जाता है, इसलिए रंगों के हल करने की रीति को माट बनाना कहते हैं। सुप्राफ़िक्स या अद्राव्य रंग (Suprafix) भी इसी कोटि के अन्तर्गत हैं।

(६), नप्थाल (Napthol) रंग, धुलाई, धूप और पसीने के लिए बहुत दृढ़ होते हैं। ये धोबी की भट्टी में भी माट रंगों के समान पक्के रहते हैं। इसलिए इनसे रंगाई बहुत होती है। रैपिडफ़ास्ट ओर रैपिडोजन् (Rapid fast & Rapidogen) रंग इसी वर्ग के अन्तर्गत हैं।

इनके अतिरिक्त (७), एसिड (Acid) या तेज़ाबी रंग गंधकाम्ल की सहायता से ऊन और रेशम पर सीधे-सीधे रंगे जाते हैं, और रोशनी के लिए बहुत पुख़्ता होते हैं। इनसे सूत नहीं रंगा जाता। (८), एसिड मारडैण्ट (Acid Mordant) या तेज़ाबी ज़ामिन, ९), मिनरल (Mineral) या खनिज रंग और (१०), ऐनिलीन ब्लैक (Aniline Black) या पपड़ी का काला रंग है। इन दसों वर्गों के रंगों में से भविष्य में अधिकतर दो ही वर्गों के रंगों के प्रचार की सम्भावना है—सूत के लिए नप्थाल वर्ग के रंग, और ऊन तथा रेशम के लिए न्योलान (Neolan) रंग—क्योंकि इन रंगों से एक ही क्रिया द्वारा मंजिष्ठ की तरह पक्के रंग रंगे जा सकते हैं (I. M. Mathews, Application of Dyestuffs; C. E. Pelews, Dyes & Dyeing; Dr. Edmund Knecht, Manual of Dyeing & Printing; Dr. L. N. Joshi, Dyer Instruction आदि के आधार पर)।

यूरोपीय महासमर (१९१४-१८) के पहले कृत्रिम रंगों पर एक प्रकार से जर्मनी का अधिकार-सा था। युद्धकाल में तथा उसके बाद अन्य राष्ट्रों की भी आंखें खुलीं। अब संसार की सभी महाशक्तियां अपने-अपने लिए रंग बनाने में लगी हैं, कृत्रिम रंग सस्ते पड़ते हैं, और उनके रंगने में समय भी कम लगता है। इसलिए प्रायः सभी देश नैसर्गिक रंगों के स्थान में कृत्रिम रंगों के बनाने में ही प्रवृत्त हैं, जैसे—अमेरिका, स्वीज़रलैण्ड, जापान, इंग्लैण्ड, फ्रान्स, इटली, रूस आदि।

१—मूल आईन में 'आइने-तसवीर-ख़ाना' पाठ है, जिसका अर्थ 'चित्रशाला का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है, और अक्षर तथा शब्द भाव पर पहुँचाते हैं। यद्यपि लोग साधारण आलेख्यों में लौकिक मूर्तियों की आकृति बनाते हैं, पर यूरोप के चित्रकार बहुधा चित्रों में स्वाभाविक आन्तरिक भाव (यथा वीरता, क्रोध, उदारता) भी प्रदर्शित करते हैं जिनको देखकर स्थूलदर्शियों को भान होता है कि वे चित्र नहीं वरन् असली पदार्थ हैं। पर लिपि[१] में चित्र से यह विशेषता है कि उससे पूर्वजों के अनुभव ज्ञात होते हैं और वे बुद्धि-वृद्धि के साधन होते हैं।'

आईन' होता है। इस आईन में सुन्दर लिखावट या सुन्दर अक्षर लिखने की कला एवं चित्र-विद्या का वर्णन है। इसलिए लेखन-कला और चित्र-कला शीर्षक दिया गया है। 'ख़त' के लिए वर्ण, वर्ण-लिपि, अक्षर-लिपि लिखितवर्ण, लेख, सुलेख, आदि शब्द प्रयोग किये गये हैं।

१—प्राचीन भारतीय आर्य्यों के मतानुसार ब्राह्मीलिपि ब्रह्मा की बनाई हुई है। इसके प्रत्येक अक्षर से एक ही ध्वनि व्यक्त होती है तथा संसार की लिपियों में यही सबसे सरल है (आन्हिकतत्व और ज्योतिस्तत्व, नारदस्मृति, Sacred Books of the East, Vol. 23, p. 304)। चीनी यात्री ह्वेनसांग के विचार में "भारतीयों की वर्णमाला के अक्षरों को ब्रह्मा ने बनाया था, और उनके रूप आदि से चले आ रहे हैं" (S. Beal, Buddhist Records of the Western World, Vol. I, p. 77)। परन्तु यूरोप के कतिपय विद्वान् उपर्युक्त विचार को नहीं मानते। मैक्समूलर का कहना है कि पाणिनीय की परिभाषा में कोई ऐसा शब्द नहीं है, जिससे यह सिद्ध हो सके कि लेखन-कला पहले से प्रचलित थी (Maxmuller, History of Ancient Sanskrit Literature, p. 262)। मैक्समूलर पाणिनीय का समय ईसा से ४०० वर्ष पूर्व मानता है। बर्नेल के विचारानुसार भारतीयों ने फ़िनिशियनों से लिखना सीखा। फ़िनिशियन लिपि भारतवर्ष में ईसवी सन् के ५०० वर्ष पूर्व प्रविष्ट हुई (South Indian Palæography, p. 9)। बूलर के मत से ब्राह्मीलिपि की उत्पत्ति सेमिटिक से ५०० ई० पूर्व से १००० ई० पू० या इस से भी अधिक पहले हुई है (Buhler, Indian Palæography, English trans, p. 17)। आक्सफ़र्ड के प्रो० लैंगडन (S. Langdon) ने मोहेनजोदड़ो-कालीन-सभ्यता के २८८ लिपि-चिह्नों की एक विशेष सूची तैयार की है। उसका निश्चित मत है कि ब्राह्मी का जन्म सिन्ध की चित्र-लिपि से हुआ है (Indian Historical Quarterly, Vol. VIII, p. 135)। इस धारणा से ब्राह्मी की पैतृक शृङ्खला ई० सन् के ३५०० वर्ष पूर्व तक पहुँचती है।

भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य, विदेशियों के साहित्य, मिले हुये सिक्कों, ताम्रपत्रों, दानपत्रों, शिलालेखों तथा अनेक यूरोपीय विद्वानों के विचारों से मैक्समूलर आदि के मतों का खंडन होता है, और ब्राह्मीलिपि की उत्पति अनिश्चितकाल से इसी देश में स्वतन्त्ररूप से स्थिर होती है, जैसा कि निम्नलिखित विवरण से प्रकट होता है।

बड़ली (ज़िला अजमेर) और पिप्रावा (नैपाल की तराई) के शिलालेखों से, जो क्रमशः सन् ४४३ ई० पूर्व और ४८७ ई० पूर्व के हैं तथा जो अशोक के भी लेखों से पहले के हैं, सिद्ध होता है कि भारतीयों के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अतएव मैं पहले पुस्तकालय का हाल वर्णन करता हूँ, क्योंकि वह लेखन-कला का सर्वोत्तम भेद है। सम्राट् इस पर बहुत ध्यान देता है, और आकार

लिए उससे भी पहले से लिखना एक साधारण सी बात थी। इतना ही नहीं, ३२७ ई० पूर्व भारतवर्ष पर आक्रमण करने वाले सिकन्दर के एक सेनापति मियार्कस ने इस देश में लिखने के लिए रुई या रुई के गूदड़ों से काग़ज़ भी बनते देखा था (Max., History of Anc. Sans. Lit, p, 367; Buhler's Ind. palæ., p. 6) ३०६ ई० पूर्व के आस-पास सीरिया के बादशाह सिल्यूकस ने मैगेस्थनीज़ को अपना राजदूत बनाकर चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में भेजा था। उसने ५ वर्ष के लगभग पाटलिपुत्र में रहने के बाद अपनी 'इन्डिका' नामक पुस्तक में लिखा है कि भारतवर्ष में नव वर्षारम्भ के दिन भविष्य-फल (पंचांग) सुनाया जाता, जन्म-पत्र बनाने के लिए जन्म-समय लिखा जाता और न्याय स्मृति के अनुसार होता है। दस-दस सैडिया (१ सैडियस = ६०६ फुट ६ इंच) के अन्तर से सड़कों पर पाषाण गड़े हुये हैं (Indica of Megasthenese, pp. 91, 125-26)। बौद्धों के विनयपिटक के एक ग्रंथ 'महावग्ग' में विद्यार्थियों के लिए पाठ-शालाओं में जाकर पाटी पर लिखने, पहाड़े पढ़ने तथा हिसाब सीखने का उल्लेख मिलता है। 'ललितविस्तर' में बुद्ध का लिपिशाला में अध्यापक विश्वामित्र के पास जाकर सोने की लेखनी से चन्दन की पाटी पर लिखना सीखने का वृत्तान्त दिया हुआ है। इन प्रमाणों से सिद्ध है कि ईसवी सन् के पूर्व छठी शताब्दी में भारतीय बालक उसी प्रकार शिक्षा ग्रहण करते थे जैसे कि आज प्राप्त कर रहे हैं (ओझा, प्राचीन लिपिमाला, पृ० ६, १९१८ ई०)।

महाभारत (आदिपर्व १, ११२), वसिष्ठ-धर्मसूत्र, कौटिल्य-अर्थशास्त्र और कामसूत्र आदि ग्रन्थों में लिखने की तथा लिखित पुस्तकों की चर्चा आई है। पाणिनीय की अष्टाध्यायी में 'लिपि' और 'लिबि' शब्द आये हैं, जिनका अर्थ लिखना या अक्षर-लिपि होता है। अष्टाध्यायी के 'यवनानी' शब्द का अर्थ पातञ्जलि और कात्यायन ने यवनों की लिपि किया है। यवनानी और लिपि का शब्द बनाने की प्रक्रिया भी दी हुई हैं। 'स्वरित' के चिह्न तथा 'ग्रंथ' का भी उल्लेख हुआ है। अष्टाध्यायी से यह भी पाया जाता है कि उस समय चौपायों के कानों पर स्रुव तथा स्वस्तिक आदि के और पाँच तथा आठ के अंकों के चिन्ह भी बनाये जाते थे। इसके अतिरिक्त उसमें महाभारत ग्रंथ तथा शाकल्य, कात्यायन, स्फोटायन, गार्ग्य, शाकटायन, गालव, भारद्वाज, आदि वैयाकरणों के भी नाम आये हैं। पाणिनीय से पहले यास्क ने निरुक्त बनाया था, जिसमें औदुंबरायण, आग्रायण और कौत्स आदि अनेक निरुक्तकारों का उल्लेख हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि पाणिनीय और यास्क से पहले अनेक वैयाकरण और निरुक्तकार हो चुके हैं।

छांदोग्य उपनिषद् में 'अक्षर' शब्द आया है तथा 'ई', 'ऊ' और 'ए' स्वर ईकार, ऊकार और एकार शब्दों से सूचित किये गये हैं, और स्वरों का सम्बन्ध इन्द्र से, ऊष्मन् का प्रजापति से तथा स्पर्श वर्णों का मृत्यु से बतलाया गया है। ऐतरेय आरण्यक में ऊष्मन्, स्पर्श स्वर, अन्तस्थ व्यंजन, घोष

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(सूरत) तथा भाव पर गहरी निगाह डालता है। वास्तव में, वर्ण-लिपि सौन्दर्योपासकों की दृष्टि में अवरुद्ध-प्रकाश का एक रूप है, पर दूरदर्शियों की दृष्टि में वह

और सन्धि आदि का विवरण मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण में अकार, उकार और मकार के संयोग से ॐ अक्षर का बनना लिखा है। शतपथ ब्राह्मण में वचनों तथा लिंगों का विवेचन मिलता है। तैत्तिरीय संहिता में इन्द्र द्वारा वाणी का व्याकृत अर्थात् व्याकरण द्वारा नियमवद्ध किया जाना लिखा है।

व्याकरण का सबसे अधिक उपयोग वेदों के अध्ययन में होता आया है, क्योंकि उनका एक-एक अक्षर दृढ़ नियम में आबद्ध है। वेदों के अक्षर वर्णमाला की पूर्णता, धातुपाठ, प्रत्ययनियम, तीन लिङ्ग, तीन वचन, आठ विभक्ति, दश लकार सन्धि-कौशल और स्वरविज्ञान के कारण इधर से उधर नहीं हिल सकते। यदि कोई अर्थ करते समय अक्षरों को इधर-उधर करने की चेष्टा करता है तो घन, जटा और वल्ली आदि लगाकर पाठ करने वाले वैदिक तुरन्त अक्षर-अक्षर को स्पष्ट कर देते हैं। वैदिक व्याकरण के अन्तर्गत नियन्त्रित होने के कारण ही वेद आज तक हमारे सामने ज्यों के त्यों उपस्थित हैं।

व्याकरण का शुद्ध तथा सम्यक् ज्ञान बिना लिखना जाने नहीं हो सकता और बिना पूर्ण ज्ञान के अर्थ नहीं लग सकता। बिना अर्थ जाने वेद के अध्ययन से कोई लाभ नहीं। जैसा कि वेद में लिखा है—ऋचाएँ परम अविनाशी शब्दमय अक्षर में ठहरी हैं, जिनमें देव अधिष्ठित हैं, जो उस अक्षरार्थ को नहीं जानता वह ऋचाओं से क्या लाभ प्राप्त करेगा (ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्..यस्मिन्नवेद किमृचा करिष्यति.. ऋ० १, १६४, ३९)। अपने श्रम को सार्थक करने के लिए वैदिक समय के आर्य अर्थ सीखते थे। अर्थ समझने के लिए अनेक पारिभाषिक शब्द और वैदिक व्याकरण के नियमों का ज्ञान प्राप्त करते थे, और इन सब बातों के लिए वे लिखना सीखने पर बाध्य थे। क्योंकि वेदों में अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, जगती, वृहती आदि अनेक छन्द हैं, और वैदिक छन्द शास्त्र बड़ा ही जटिल है। बिना लिखना जाने उनके अक्षरों को गिनना, उनको छन्दों के अन्तर्गत करके उनका वर्गीकरण करना दुःसाध्य है।

वेदों में अंक विद्या है। यजुर्वेद (अ० १७, मंत्र २) में गणित-विद्या के प्रसंग में एक, दश, शत, सहस्र, अयुत (१००००), नियुत (१०००००) तथा परार्ध (१०००००००००००) आदि संख्यायों का उल्लेख मिलता है। इसी वेद (अ० ३०, मं० २०) में उद्यमियों के प्रसंग में गणक (गणित करने वाला, ज्योतिषी) शब्द आया है। शतपथ ब्राह्मण में समयविभाग के प्रसंग में रात-दिन ३० मुहूर्त का, १ मुहूर्त १५ क्षिप्र का, १ क्षिप्र १५ एतर्हि का, १ एतर्हि १५ इदानीं का और १ इदानीं १५ प्राण की बतलाई गई है। इस हिसाब से रात-दिन में १५१८७५० प्राण होते हैं, और १ प्राण १ सेकण्ड के लगभग $\frac{१}{१७}$ के बराबर होता है। बिना लिखना जाने कोई जाति अधिक संख्याएँ नहीं गिन सकती। अफ्रीकावाले लेखन-कला न जानने के समय तक केवल १०००० तक और रोमवाले १००० ही तक गिन सकते थे। वेदों की परार्ध तक की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विश्व-दर्शक-प्याला[1] है। वर्ण का चमत्कार, एक आध्यात्मिक रेखागणित है आविष्कार की लेखनी से लिखा हुआ, तथा एक आकाशीय-आलेख है भाग्य के हाथ का रचा हुआ। वह वार्ता के रहस्य को धारण करने वाला है। वह हाथ की जिह्वा है। वार्ता तो केवल उपस्थित व्यक्तियों के ही हृदय को शक्ति देती है, किन्तु अक्षर सुदूरवर्ती और निकटवर्ती दोनों को ज्ञान प्रदान करता है। यदि लिखित-वर्ण न होते तो वार्ता का जीवन भी स्थिर न रहता और हृदय को पूर्वजों की भेंट भी उपलब्ध न होती। स्थूलदर्शी लोग लिखित अक्षर को काजल का एक काला कलूटा आकार समझते हैं, परन्तु सूक्ष्मदर्शी उसको ज्ञान का दीपक मानते हैं। वर्ण एक अन्धकार है जिसमें सहस्रों ज्योति हैं, नहीं-नहीं वह एक आभा है जिस पर कुदृष्टि का प्रभाव न पड़ने के लिए यह काला तिल बनाया गया है। वह ज्ञान का बेल-बूटा है और विचार-साम्राज्य की पाण्डुलिपि। वह एक अंधेरी रात है भास्करोत्पादक, और एक काला बादल है बुद्धि-बरसाने वाला। वह

संख्या का गिनना बिना लिखना जाने संभव ही नहीं। ऋग्वेद में राजा सावर्णि द्वारा एक सहस्र अष्टकर्णी गौएं दान देने (सहस्रं मे ददतो अष्टकर्ण्यः—ऋ० १०, ६२, ७) का उल्लेख मिलता है। अष्टकर्णी से आशय उस गाय का है, जिसके कान पर ८ की संख्या का चिह्न हो। ऐसे चिह्नवाले पशुओं का अष्टाध्यायी में ज़िक्र है। 'कर्णो-वर्णं लक्षणात्' सूत्र की व्याख्या करते हुये काशिकाकार के विचार से प्रकट होता है कि पशु का स्वामी के साथ सम्बन्ध जतलाने के लिए उसके कान पर वर्ण या अंक का चिह्न लगाया जाता था। यदि वैदिक काल में आर्य लिखना न जानते होते तो गाय के कान पर आठ की संख्या का चिह्न कदापि नहीं बनाया जा सकता था।

कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने भी इन-विचारों की पुष्टि की है। बूलर लिखता है कि वैदिककाल में मौखिक शिक्षा के समय और दूसरे अवसरों पर लिखित पुस्तकों की सहायता ली जाती होगी, इस अनुमान के विरोध करने का कोई कारण नहीं है (Buhler, Palæography, p 4)। राथ के मतानुसार "भारतवर्ष में लिखने का प्रचार प्राचीनकाल से होना चाहिये। क्योंकि यदि वेदों के लिखित ग्रंथ विद्यमान न होते तो कोई भी मनुष्य प्रातिशाख्य (वे ग्रंथ, जिनमें वेदों की किसी शाखा के स्वर, पद, संहिता संयुक्त वर्ण और उच्चारणादि का निर्णय किया गया हो) न बना सकता।"

१—फ़ारसी की किताबों में लिखा है कि फ़ारस के बादशाह जमशेद ने सब से पहले एक ऐसा प्याला बनाया था, जिस से वह सप्त आकाशों का हाल जान लेता था। उस प्याले को जामे-जमशेद कहते हैं। इसी प्रकार अजम के बादशाह कैख़ुसरो ने एक बहुत बड़ा जाम बनाया था; उसमें रेखाएं और संख्याएं ऐसे ढंग से खुदी हुई थीं कि उनके द्वारा संसार के उत्पात तथा दूसरे प्रकार के समाचार मालूम होते थे। वह जामे-जहां-नुमा के नाम से प्रसिद्ध है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दृष्टि-कोष के लिए एक अद्भुत इन्द्रजाल है, जो यद्यपि है तो मूक, पर है बात करने वाला। वह अविचल होने पर भी गतिमान् है, और पड़ा होने पर भी उड़ाकू है।

ईश्वरीय ज्ञान-राशि का आभास, जब मनुष्य की आत्मा पर पड़ता है, तो मन उसको विचार-प्रदेश में—जो कि चेतनता और जड़ता का मध्यवर्ती स्थान है—पहुँचाता है, जिससे शुद्ध पदार्थ संश्लिष्ट हो जाता तथा स्वच्छन्दता—बद्ध हो हो जाती है। वहाँ से वह मिश्रित-आभास, जिह्वा की अट्टालिका पर पैर जमाकर, वायु की सहायता से दूसरे के कानों के गवाक्षों में प्रविष्ट होता है। फिर सीढ़ी-दर-सीढ़ी लगाव का बोझ कंधे से उतार कर शुद्ध आभास अपने स्थान (विचार-प्रदेश) को लौट जाता है। कभी-कभी यह गगन-यात्री अंगुलियों की पोरों की सहायता से चलता है, वहाँ से लेखनीरुपी महाद्वीप तथा स्याहीरुपी महासागर पार करके पृष्ठों के समृद्ध नगर में उतर पड़ता है और पाठक के विस्तीर्ण दृष्टि मार्ग से अपने आदिम निवास-स्थान को वापस चला जाता है।

यतः लिखित वर्ण अक्षर के भाव को प्रकट करता है। अतः लेखक के लिये यह आवश्यक है कि अक्षर-लिपि का कुछ हाल लिखे, और ज्ञान का दीपक जलाये।

अक्षर[1] (वर्ण की ध्वनि) एक विशेष अवस्था है वायु की स्थिति से सम्बन्ध रखनेवाली। जब कभी दो कठोर पदार्थ आपस में टकराते हैं तो उस ध्वनि को क़रअ् कहते हैं, और यदि वे कड़ाई के साथ एक दूसरे से पृथक् होते हैं तो उस ध्वनि का नाम क़लअ् होता है। इन दोनों में से प्रत्येक दशा में मध्यवर्ती वायु जल के समान तरंगित होने लगती है, जिससे एक विशेष अवस्था उत्पन्न होती है, जिसको **आवाज़** (शब्द) कहते हैं। कुछ तत्वविद् शब्द का कारण दूरी बतलाते हैं और कहते हैं कि स्वर वायु का लहरें मारना है। पर अनेक दार्शनिक उसका कारण निकटता मानते हैं और शब्द को दो वस्तुओं की टक्कर या टूटन की ध्वनि मानते हैं। परिस्थिति के अनुसार शब्द में और भी अवस्थाएँ अवस्थित होती हैं, जैसे अनुदात्त (नीचा स्वर), उदात्त (ऊँचा स्वर), अनुनासिक (नासिका स्वर)

१—संस्कृत के विद्वान् बहुत पहले शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रायः इसी प्रकार के विचार प्रकट कर चुके हैं :—

आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान्मनो युङ्क्ते विवक्षया।
मनः कायाग्नि मा हन्ति स प्रेरयति मारुतम्।
मारुतस्तूरसि चरन्मन्दं जनयति स्वरम्।

अर्थात्, आत्मा, बुद्धि से अर्थों की संगति करके कहने की इच्छा से मन को युक्त करता है। मन जठराग्नि को ताड़ता, जठराग्नि वायु को प्रेरित करती और वायु उरःस्थल में विचरती हुई मन्द स्वर को उत्पन्न करती है (पाणिनीय शिक्षा)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और कंठ्य (जिनका उच्चारण कंठ के रुंधने पर होता है। उच्चारण-स्थान के प्रवाहानुकूल तथा वायु-सम्बन्धी परमाणुओं के पृथक्करणानुसार शब्द में एक और अवस्था उस समय विद्यमान होती है, जब दो अनुदात्त, दो उदात्त, दो अनुनासिक और दो कंठ्य स्वर एक दूसरे से पृथक् होते हैं, इसी को **वर्ण**[1] (हर्फ़) कहते हैं। अबूअ़ली सीना का यही मत है। कुछ बुद्धिमान् शब्द की मौलिक अवस्था के रुपाँतर को वर्ण मानते हैं। परन्तु अनेक दूरदर्शी मिलनेवाले पदार्थ तथा मूल तत्व के संयोग को वर्ण कहते हैं। वास्तव में यही राय ठीक भी है।

हिन्दी-भाषा में वर्ण बावन हैं, यूनानी में अनिश्चित, और फ़ारसी[2] में अठारह। अरबी में उनकी संख्या अट्ठाइस है, पर उनके आकार[3] अठारह ही हैं। यदि हमज़ा को अलिफ़ से पृथक् न करें तो मिलावट में वे पन्दरह ही रह जाते हैं। अमिश्र वर्णों के अन्त में, लाम[4] और अलिफ़ (ला) मिलाकर इस लिए लिखते हैं कि साकिन वर्ण का किसी दूसरे वर्ण के साथ मिलावट का उदाहरण दिखलाना आवश्यक है। वर्णों में उदाहरण के लिए लाम को इसलिए चुना गया कि लाम अलिफ़ का दिल (बीच का अक्षर) और अलिफ़ लाम का दिल है।

पूर्वकाल में वर्णों पर स्वरों की मात्राओं के चिन्ह नहीं लगाये जाते थे, प्रत्युत् अक्षरों पर दूसरे रंग की कुछ बिन्दियाँ लगाकर उनका (मात्राओं का) परिचय कराया जाता था, जैसे ज़बर (अकार स्वर) की मात्रा के लिए वर्ण के ऊपर,

---

१—आकाश वायु प्रभवः शरीरात्समुच्चरन् वक्त्रमुपैति नादः। स्थानान्तरेषु प्रविभज्यमानो वर्णत्वमागच्छति यः स शब्दः (वेदाङ्ग प्रकाश)।

अर्थात् आकाश और वायु के संयोग से उत्पन्न होनेवाला नाभि के नीचे से ऊपर उठता हुआ जो मुख को प्राप्त होता है उसको नाद कहते हैं। वह कंठ आदि स्थानों में विभाजित होता हुआ वर्ण भाव को प्राप्त होता है, उसी को शब्द कहते हैं।

२—अबुलफ़ज़्ल ने फ़ारसी वर्णों की संख्या लिखने में भूल की है। उसने १८ वर्ण लिखे हैं; जो कि वास्तव में अक्षरों के आकार हैं, जैसे 'ते' 'से' 'हे' 'ख़े' 'ज़ाल' 'ज़े' 'शीन' 'ज़ोआद' 'तो' 'बे' 'जीम' 'दाल' 'रे' 'सीन' 'स्वाद' और 'ऐन' आदि की आकृतियाँ परस्पर मिलती हैं, यद्यपि उनमें थोड़ा बहुत हेरफेर है।

३—क्योंकि नून और याय तहतानी मिलने पर बाय मुवहदा के समान लिखे जायँगे और क़ाफ़ फ़े के सदृश।

४—मौ० अब्दुलवासी ने फ़ारसी के व्याकरण की पुस्तक रिसाले-अब्दुलवासी में लिखा है कि लाम अलिफ़ 'ला' का अर्थ 'नहीं' है। इसका आशय यह है कि संयुक्त लाम अलिफ़ (ला) न पढ़ना चाहिये, वरन् वर्ण-माला के पाठ के समय उस पर से दृष्टि हटा लेनी चाहिये। इसको साकिन वर्णों का उदाहरणमात्र समझना चाहिये (Bloch. Trans., p. 98, n. 2)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पेश (उकार स्वर की मात्रा) के लिए वर्ण के सामने और ज़ेर (इकार स्वर की मात्रा) के लिए वर्ण के नीचे एक लाल बिन्दी लगाते थे। ख़लील-बिन-अहमद अरूज़ी[१] ने सब से पहले स्वर की प्रत्येक मात्रा के लिए एक आकार नियत किया, जो कि इस समय प्रचलित हैं।

बुद्धिमानों से वह बात छिपी नहीं है[२] कि वर्ण तथा उसके अन्य अवयवों की सुन्दरता मनुष्यों की विभिन्न रुचियों पर निर्भर हुआ करती है। इसी लिए हर समुदाय इच्छानुसार अपनी एक पृथक् वर्णमाला एवं लिपि[३] रखता है। इस प्रकार

१—ख़लील का जन्म १०० हिजरी में बतलाया जाता है, और कहा जाता है कि उसकी मृत्यु १७५ या १६० हिजरी में बसरा में हुई थी। उसने लेखन-कला पर कई पुस्तकें लिखी थीं, और काव्य तथा कोष सम्बन्धी भी कई ग्रन्थ निर्मित किये थे।

२—'बर हुशियार दिल पोशीदा न बुअद', इस वाक्यांश का अनुवाद ब्लाक्मैन के भाषान्तर में नहीं है (Bloch. Trans., p. 99)।

३—प्राचीन लिपियाँ—अशोक के लेखों तथा सिक्कों की लिखावटों से प्रकट होता है कि ईसवी चौथी शताब्दी पूर्व से सन् ई० की तीसरी शताब्दी तक इस देश में दो प्रकार की लिपियों का प्रचार था। एक लिपि जो नागरी की तरह बाईं ओर से दाहिनी ओर को लिखी जाती थी, और दूसरी जो फ़ारसी की तरह दाहिनी तरफ़ से बाईं तरफ़ को। ब्राह्मणों के इस समय तक के प्राप्त ग्रन्थों में लिपियों के नाम नहीं हैं; परन्तु जैनियों के 'पन्नवणा सूत्र' और समवायांग सूत्र में निम्नलिखित अट्ठारह लिपियों के नाम हैं:—बंभी, जवणालि, दोसापुरिया, खरोट्टी, पुक्खरसारिया, भोगवइया, पहाराइया, उयअंतरिक्खिया, अक्खरपिट्ठिया, तेवणइया, णिराहत्तिया, अंकलिवि, गणितलिवि, गंधव्वलिवि, आदंसलिवि, माहेसरी, दामिली और पोलिंदी। भगवती सूत्र में ब्राह्मीलिपि को नमस्कार करके (नमो बंभीए लिविए) ग्रंथ आरम्भ किया गया है। बौद्धों के ललितविस्तार ग्रंथ में, जिसमें बुद्ध का जीवन-चरित्र है और जिसका चीनी-भाषान्तर ३०८ ई० में हुआ था, ६४ लिपियों का उल्लेख मिलता है—ब्राह्मी, खरोष्ठी, पुष्करसारी, अंग, वंग, मगध, मांगल्य, मनुष्य, अंगुलीय, शकारि, ब्रह्मबल्ली, द्राविड़, कनारि, दक्षिण, उग्र, संख्या, अनुलोम, ऊर्ध्वधनु, दरद, खास्य, चीन, हूण, मध्याक्षर विस्तर, पुष्प, देव, नाग, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, महोरग, असुर, गरुड़, मृगचक्र, चक्र, वायुमरु, भौमदेव, अन्तरिक्षदेव, उत्तरकुरुद्वीप, अपरगौडादि, पूर्व विदेह, उत्क्षेप, निक्षेप, विक्षेप, प्रक्षेप, सागर, वज्र, लेखप्रतिलेख, अनुद्रुत, शास्त्रावर्त, गणावर्त, उत्क्षेपावर्त, विक्षेपावर्त, पादलिखित, द्विरुत्तरपदसन्धिलिखित, दशोत्तरपदसन्धिलिखित, अध्याहारिणी, सर्वरुत्संग्रहणी, विद्यानुलोम, विमिश्रित, ऋषितपस्तप्त, धरणीप्रेक्षणा, सर्वौषधनिष्यन्द, सर्वसारसंग्रहणी और सर्व भुतरुद्ग्रहणी।

ब्राह्मीलिपि—६६८ ई० में चीनी विश्वकोश (फा युअन् चुलिन्) निर्मित हुआ। उसमें भी ललितविस्तर में बतलाई हुई ६४ लिपियों के नाम आये हैं। उक्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रंथ के अनुसार लिपिकला अन्वेषण दैवी-शक्ति-सम्पन्न तीन आचार्यों ने किया है। उनमें सबसे विख्यात ब्रह्मा है, जिसकी लिपि बाईं ओर से दाहनी ओर को पढ़ी जाती है। उससे उतरकर कि अ-लु-से-टो (खरोष्ठ) है, जिसकी लिपि दाहनी ओर से बाईं ओर को पढ़ी जाती है। सबसे न्यून श्रेणी का त्सं-की है, जिसकी लिपि चीनी है और जो ऊपर से नीचे को पढ़ी जाती है। ब्रह्मा और खरोष्ठ भारतवर्ष में हुये और त्सं-की चीन में। ब्रह्मा और खरोष्ठ को देवलोक से लिपियाँ प्राप्त हुईं, और त्सं-की ने पक्षियों के पैरों के चिन्हों से अपनी लिपि निर्मित की (Indian Antiquary, Vol. 34, p. 21)। इस ग्रंथ से यह सिद्ध होगया कि बाईं ओर से दाहनी ओर को लिखी जानेवाली लिपि ब्राह्मी और दाहनी ओर से बाईं ओर को लिखी जानेवाली खरोष्ठी लिपि है। ब्राह्मी लिपि सार्वदेशिक होने के कारण जैन और बौद्धों के भी ग्रंथ इसी लिपि में लिखे गये हैं। लिपियों के प्रसंग में उनके ग्रंथों में ब्राह्मी लिपि को ही सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। साथ ही उसका जन्म भी इसी देश में हुआ है।

परन्तु पाश्चात्य विद्वान् आफ़्रेडमूलर, प्रिन्सिप, सेनार्ट, विल्सन, कस्ट, सरविलियम जोन्स, स्टिविन्सन, बर्नेल, लेनोर्मेण्ट, डीके, आइज़कटेलर, बूलर और बार्नेट आदि ने ब्राह्मी लिपि (पाली, इण्डियनपाली, साउथअशोक और लाट-लिपि आदि यूरोपियनों द्वारा ब्राह्मी लिपि के रक्खे हुये नाम) की उत्पत्ति यूनानी लिपि से (सिकन्दर के आने पर), फ़िनिशियन लिपि से, कुछ अक्षर अरमइक अक्षरों से, कुछ अक्षर खरोष्ठी अक्षरों से, सेमिटिक से, मिस्र के अक्षरों से, फ़िनिशियन अक्षरों से उत्पन्न अ़रबी के हिमिअरेटिक वर्णों से, असीरिया की क्यूनीफ़ार्म लिपि से तथा सेबिअन लिपि से मानी है। और भी कुछ विद्वानों ने इसी प्रकार की अटकलें लगाई हैं। परन्तु ये अनुमान दृढ़ न होने के कारण कई पाश्चात्य विद्वानों ने ही उनका खंडन किया है। एडवर्ड टामस ने लिखा है कि "ब्राह्मी अक्षर भारतीयों के ही बनाये हुये हैं, और उनकी सरलता से उनकी बड़ी बुद्धिमानी प्रकट होती है" (Numismatic Chronicle, No 3. 1883)। प्रो० डासन का मत है, "विश्वास के साथ आग्रहपूर्वक कहा जा सकता है कि सब तर्क और अनुमान ब्राह्मी लिपि के स्वतन्त्र आविष्कृत होने के ही पक्ष में हैं" (Journal of the Royal Asiatic Society, p. 102, 1881; & Indian Antiquary Vol., 35, p. 253)। जनरल कनिंहम ने लिखा है "ब्राह्मी लिपि भारतीयों द्वारा ही निर्मित एक स्वतंत्र लिपि है" Cunningham, Coins of Ancient India, Vol. I, p. 52)। यदि ब्राह्मी और खरोष्ठी दोनों लिपियाँ फ़िनिशियन से—जिसकी उत्पत्ति ईसवी सन् पूर्व की दसवीं शताब्दी के आस-पास मानी जाती है, निकली होतीं तो ईसवी सन् पूर्व की तीसरी शताब्दी में, अर्थात् अशोक के समय, उनमें बहुत कुछ समानता होनी चाहिये थी, जैसी कि अशोक के समय ब्राह्मी से निकली हुई ईसवी सन् की पाँचवीं और छठी शताब्दी की गुप्त और तेलगू-कनडी के बीच पाई जाती है। परन्तु उन दोनों (ब्राह्मी और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पारसी (फ़ारसी), **रूमी, हिमीरी** (हिमिअरिटिक), **बर्बरी, अन्दुल्सी रुहानी** लिपियाँ हैं। इनके अतिरिक्त और भी वर्णमालाएँ हैं, जिनका कि उल्लेख

खरोष्ठी) में एक भी अक्षर की समानता का न होना भी यही सिद्ध करता है कि ये दोनों लिपियाँ एक ही मूल लिपि से सर्वथा नहीं निकलीं, अर्थात् खरोष्ठी सेमिटिक से निकली हुई है और ब्राह्मी सेमिटिक से नहीं' (ओझा, प्राचीन लिपिमाला, पृ० २६-२७)।

ब्राह्मीलिपि के न तो अक्षर फ़िनिशियन या किसी अन्य लिपि से निकले हैं, और न उसकी बाँई ओर से दाहनी ओर लिखने की प्रणाली किसी लिपि से बदल कर बनाई गई है। यह भारतवर्ष के आर्यों का अपनी खोज से उत्पन्न किया हुआ मौलिक आविष्कार है। इसकी प्राचीनता और सर्वाङ्गसुन्दरता से चाहे इसका कर्ता ब्रह्मा देवता माना जाकर इसका नाम ब्राह्मी पड़ा, चाहे साक्षर-समाज ब्राह्मणों की लिपि होने से यह ब्राह्मीलिपि कहलाई हो (वही, पृ० २८, २९)।

अभी तक, जो प्राचीन शिला-लेख मिले हैं, वे ईसवी सन् पूर्व की पाँचवीं शताब्दी के पहले के नहीं हैं। परन्तु साहित्य में प्रत्यक्ष या गौणरूप से जो हवाले मिले हैं वे बहुत प्राचीन समय तक जाते हैं। उन सब से सिद्ध होता है कि लेखन-कला सर्व-साधारण में प्रचलित एक पुरानी बात थी, जिसमें कोई अनोखापन न था। लेखन-कला अपनी प्रौढ़ावस्था में थी। उसके आरम्भिक विकास का पता नहीं चलता। ब्राह्मी लिपि अपनी प्रौढ़ अवस्था में और पूर्ण व्यवहार में आती हुई मिलती है और उसका किसी बाहरी स्रोत और प्रभाव से निकलना सिद्ध नहीं होता (वही, पृ० ३०)।

खरोष्ठी—यूरोपियनों ने इसके बाक्ट्रियन्, बाक्ट्रियन् पाली, आरिअनोपाली नार्थ, अशोक, काबुलियन्, गांधार आदि नाम रक्खे हैं। शहबाज़गढ़ी (पंजाब के युसुफ़ज़ई ज़िले में) और मान्सेरा (ज़िला हज़ारा) में चट्टानों पर खरोष्ठी लिपि में खुदे हुये, जो लेख मिले हैं, उन से प्रकट होता है कि उक्त लिपि ईसवी पूर्व की तीसरी शताब्दी में पंजाब के उत्तर पश्चिम गाँधार प्रदेश में प्रचलित थी। ईरानियों के चाँदी के अनेक मोटे सिक्कों पर ब्राह्मी या खरोष्ठी लिपि में एक-एक अक्षर ठप्पा किया हुआ मिला है, जिससे अनुमान होता है कि ईरानियों के ये सिक्के कदाचित् सिकन्दर से पहले के, ई० पू० की चौथी शताब्दी के हैं। बाक्ट्रियन् ग्रीक, शक, क्षत्रप, पार्थियन, कुछ कुशन वंशी तथा ओदुम्बरादि वंशी राजाओं के सिक्कों के दूसरी तरफ़ के प्राकृत लेख खरोष्ठी लिपि में ही लिखे हुये हैं, जो अशोक के पीछे के हैं। इसी प्रकार पीछे के ही कुछ ताम्र-पत्र और शिला-लेख भी पंजाब तथा अफ़ग़ानिस्तान में मिले हैं।

हिन्दुस्तान का ईरान के साथ बहुत प्राचीन काल से सम्बन्ध रहा है। ईरान के हखामनी वंश के बादशाह साइरस (५५८-५३० ई० पू०) ने क़न्धार देश जीता था। उसके बाद दारा ने सिन्धु तक का प्रदेश अपने अधीन किया और वह ३३१ ई० पूर्व तक उसके हाथ में बना रहा। गागमेला (अरबैला, जो कि मोसल और बग़दाद के के बीच में है) के युद्ध में सिकन्दर ने दारा (तृतीय) को पराजित किया। किन्तु ईरानियों का अधिकार किसी प्रकार कुछ समय तक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्राचीन ग्रंथों में है। कुछ पद्यों[५] में, इबरी वर्ण-माला, आदम हफ़्तहज़ारी[६] की आविष्कृत बतलाई गई है। अनेक व्यक्ति उसे इदरीस[७] की ईजाद बतलाते हैं।

उक्त प्रदेश पर बना रहा। उधर असीरिया और बाबीलोनियाँ में यद्यपि क्यूनीफ़ार्म लिपि का प्रचार था, तथापि व्यापार में वहाँ अरमइक् लिपि काम में आती थी। अफ़ग़ास्तान और पंजाब में ईरानियों का अधिकार होने पर वहाँ भी शनैः शनैः अरमइक लिपि का प्रवेश हुआ। कदाचित् इसी लिपि से खरोष्ठी लिपि का जन्म हुआ हो।

"अरमइक् लिपि में केवल २२ अक्षर होने तथा स्वरों की अपूर्णता और उनमें ह्रस्व दीर्घ का भेद न होने एवं स्वरों की मात्राओं का सर्वथा अभाव होने से वह यहाँ की भाषा के लिए सर्वथा उपयुक्त न थी। तो भी राजकीय लिपि होने के कारण यहाँ वालों में से किसी ने ईसवी सन् पूर्व की पाँचवीं शताब्दी के आसपास उसके अक्षरों की संख्या बढ़ाकर, कितने एक को आवश्यकता के अनुसार बदल तथा स्वरों की मात्राओं की योजना कर उस पर से पढ़े लिखे लोगों, व्यापारियों तथा अहल्कारों के लिए काम चलाऊ खरोष्ठी लिपि बना ली हो। संभव है कि इसका निर्माता चीन वालों के लेखानुसार खरोष्ठ नामक आचार्य (ब्राह्मण) हो, जिसके नाम पर से इसका नाम खरोष्ठी हुआ, और यह भी संभव है कि तक्षशिला जैसे गांधार के किसी प्राचीन विद्यालय में इसका प्रादुर्भाव हुआ हो (प्रा०, लि० पृ० ३५)। खरोष्ठी लिपि के ११ अक्षर—काफ़ (क), ज़ाइन (ज), दालेथ (द), नून (न), बेथ (ब), योध (य), रेश (र), वाव (व), शेन (ष), त्साधे (स) और हे (ह)—अरमइक् अक्षरों से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। दूसरे यह दाहिनी ओर से बाईं ओर को लिखी जाती है। इस से यह स्पष्ट है कि यह लिपि सेमिटिक वर्ग (फ़िनिशियन्, हेब्रू, सीरिअक्, अरमइक्, इथिओपिक् और अरबी आदि पश्चिमी एशिया एवं आफ्रिका खंड की भाषाएँ तथा लिपियाँ, जो कि प्रसिद्ध नूह के पुत्र शेम की भाषाएँ और लिपियाँ कहलाती हैं) की है।

पंजाब में ईसवी सन् की तीसरी शताब्दी के आस-पास तक इसका कुछ-कुछ प्रचार बना रहा। फिर ब्राह्मी ने इसका स्थान ले लिया। हिन्दूकुश पर्वत के उत्तरी देशों तथा चीनी तुर्किस्तान में यह एक शताब्दी पीछे तक प्रचलित रही। फिर यह अस्त होगई।

ब्राह्मीलिपि की पुत्रियाँ—५०० ई० पूर्व आसपास से ३५० ई० के इधर-उधर की खरोष्ठी को छोड़कर भारतवर्ष की समस्त लिपियां ब्राह्मी कहलाती हैं। इसके पश्चात् ब्राह्मी के दो प्रवाह हो गये, एक उत्तरी शैली की लिपियां, दूसरी दक्षिणी की। पहले उत्तरी शैली की लिपियों का वर्णन किया जाता है:—

गुप्त-लिपि—उत्तरी भारत में गुप्त वंशी राजाओं के लेखों में ईसवी सन् की चोथी-पाँचवीं शताब्दी में विशेष-रूप से व्यवहृत होने के कारण इसका नाम गुप्त-लिपि रक्खा गया है।

कुटिल लिपि—इसके अक्षरों तथा स्वरों की मात्राएँ कुटिल होने के कारण इसका नाम कुटिल पड़ा। इसवी की छठी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कुछ लोग कहते हैं कि इदरीस ने मअक़ली वर्ण-माला की पूर्ति की। अनेक व्यक्तियों का कथन है कि अमीरुलमोमनीन अली ने मअक़ली लिपि से कूफ़ी लिपि का निर्माण किया था।

शताब्दी से नवीं शताब्दी तक यह प्रचलित रही। इसका जन्म गुप्त-लिपि से हुआ। नागरी और शारदा (काश्मीरी) इसकी (कुटिल की) पुत्रियां हैं।

नागरी—उत्तर भारत में इसके प्रचार का पता ई० नवीं शताब्दी के अन्त में लगता है। परन्तु दक्षिण में आठवीं शताब्दी में ही। दक्षिण में इसको 'नंदिनागरी' कहते हैं। बँगला का जन्म प्राचीन नागरी की पूर्वी शाखा से हुआ। कैथी, महाजनी, राजस्थानी और गुजराती की उत्पत्ति भी नागरी से ही हुई।

शारदा—८०० ई० तक पंजाब और कश्मीर में कुटिल-लिपि का प्रचार था। उसके बाद उसी से शारदा लिपि बनी और शारदा से वर्तमान कश्मीरी और टाकरी लिपियां निकलीं। गुरुमुखी के अनेक अक्षर भी इसी से बने हैं।

बँगला—यह लिपि ई० दसवीं शताब्दी के लगभग नागरी लिपि से निकली। बँगला से वर्तमान बँगला, मैथिल, उड़िया और ११वीं शताब्दी के बाद की नैपाली लिपि बनी।

दक्षिणी शैली की लिपियों का विवरण:—

पश्चिमी—ई० की पाँचवीं शताब्दी से नवीं शताब्दी तक इस लिपि का चलन गुजरात, काठियावाड़, नासिक, खानदेश, सतारा, हैदराबाद के कुछ हिस्सों में, कोंकण में और कुछ मैसोर राज्य में था। ई० की पाँचवीं शताब्दी में राजपूताना और मध्य-भारत में भी इसका कुछ-कुछ प्रचार हुआ। इस पर उत्तरी लिपि का बहुत कुछ प्रभाव पड़ा है।

मध्यप्रदेशी—ई० की ५वीं श० से ८वीं श० तक इसके प्रचार का पता मध्य प्रदेश, हैदराबाद राज्य के उत्तरी भाग तथा बुँदेलखंड के कुछ हिस्सों में चलता है। इसके अक्षर चौखुंटे प्रायः सन्दूक़ की आकृति के होते हैं। उनमें गोलाई नहीं होती।

तेलगू-कनडी—यह लिपि महाराष्ट्र प्रदेश, शोलापुर, बीजापुर, बेलगांव, धारवाड़, हैदराबाद राज्य के दक्षिणी भाग, मैसोर राज्य विज़िगापट्टम, गोदावरी, कृष्णा, कर्नूल, बिलारी, अनन्तपुर, कड़ापा और नीलोर आदि ज़िलों में पाई जाती है। ५वीं श० से १४वीं श० तक इसके कई रूपान्तर हुये। उन्हीं रूपान्तरों से वर्तमान तेलगू और कनडी लिपियाँ निकली हैं।

ग्रंथ लिपि—यह लिपि मद्रास अहाते के उत्तरी और दक्षिणी अरकाट, सलेम, त्रिचनापल्ली, मदुरा और तिनेवली ज़िलों में पाई जाती है। ईसवी सन् की ७वीं श० से १५वीं श० तक इसके रूप बदलते-बदलते वर्तमान ग्रंथ-लिपि बन गई और उसी से वर्तमान मलालयम् और तुल लिपियां निकलीं।

कलिंग-लिपि—यह लिपि ७वीं श० से ११वीं श० तक के गंगावंशी राजाओं के दान-पत्रों में चिकाकोल और गंजाम के प्रदेश में पाई जाती है। इसके अक्षर सन्दूक़ की आकृति के होते हैं, परन्तु पिछले ताम्र-पत्रों में वे गोलाई लिये हुये हैं और उनमें तेलगू-कनडी, नागरी और ग्रंथ-लिपि का मिश्रण पाया जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्णों में सतह[१] और दौर से भिन्नता हुआ करती है; जैसे कूफ़ी वर्ण में १ दांग ($\frac{१}{६}$ भाग) दौर और शेष $\frac{५}{६}$ भाग सतह होती है। मअ़क़ली वर्ण में सब सतह होती है। पुरानी इमारतों के लेख (किताबः) अधिकतर इसी लिपि में लिखे हुये हैं। सर्वोत्तम लिखावट वह है जिसमें स्याही और सफ़ेदी भले प्रकार से पृथक् पृथक् हों और पढ़ने में कोई भ्रम उत्पन्न न हो।

इस समय ईरान, तूरान, रूम (तुर्की) और हिन्दुस्तान में सुलेखनकला की आठ रीतियाँ प्रचलित हैं, जिन में से प्रत्येक समुदाय एक-एक लिपि का अनुरक्त है। इनमें से निम्नलिखित छे लिपियों को इब्ने मक़ला ने सन् ३१० हिजरी में, मअ़क़ली और कूफ़ी वर्णों से आविष्कृत किया :—**सुल्स, तौक़ीअ़, मुहक़्क़क़, नस्ख़, रैहाँ, रिक़ाअ़**। एक वर्ग **ग़ुबार** ख़त को भी इन्हीं में सम्मिलित करता है

तामिल-लिपि—मद्रास अहाते के उन हिस्सों में, जिनमें प्राचीन ग्रंथ लिपि का पहले से प्रचार था, उनमें तथा मलाबार प्रदेश के ७वीं श० से ११वीं श० तक के तामिल-भाषा के लेखों में यह लिपि बराबर मिलती है। इसके और ग्रंथ-लिपि के अक्षरों में अधिकतर समता है। वर्तमान तामिल लिपि इसी का रूपान्तर है।

वट्टेलत्त—यह घसीट लिखी जानेवाली तामिल-लिपि कही जा सकती है। ई० सन् की ७वीं श० से १४वीं श० तक के चोल और पाण्ड्य आदि वंशों के राजाओं के शिलालेखों और दान-पत्रों में यह पाई जाती है। इधर कुछ समय से इसका चलन बिल्कुल उठ गया है। (लिपि-सम्बन्धी दोनों नोटों में रा० ब० पं० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा की "भारतीय प्राचीन लिपि-माला" से विशेष सहायता ली गई है)।

४—नूह के एक पौत्र का नाम क़िब्त था। मिस्र में जो क़िब्ती बादशाह फ़रऊन (मूसा का समकालीन) के सेवक थे, वे उसी के वंशज थे। उनकी लिपि क़िब्ती कहलाती है।

५—'आईन' में 'अशआ़र .इबरी' पाठ है; परन्तु सैयद अहमद ने आईन की टिप्पणी में एक मूल प्रति के आधार पर 'इस्फ़ार इ़बरी' पाठ माना है, जिसका अर्थ 'इ़बरी या इ़बरानी भाषा के ग्रंथ, होता है (सैयद अहमद, आईन, पृ० ७४, नोट १२)।

६—आदम हफ़्तहज़ारी इसलिए कहलाता है कि अनेक मुसलमानों के विश्वासानुसार उसकी मृत्यु के समय तक भूलोकवासियों की संख्या ७००० तक पहुँच चुकी थी। मुल्ला अब्दुलक़ादिर बदायुनी के मत में उस (मुल्ला) के समय तक आदम को ७००० वर्ष हो चुके थे। अबुलफ़ज़्ल से भी पहले ज़ियाउद्दीन बर्नी ने 'तारीख़ फीरोज़-शाही' की भूमिका में लिखा था कि ख़लीफ़ा उमर आदम के ७००० वर्ष पीछे हुआ।

७—एक पैग़म्बर, जो अपने जीवन में ही स्वर्ग (जन्नत) पहुँच गया था।

१—सतह को कशिश या मद (सरल रेखा) कहते हैं, और दौर दायरे (वर्तुलाकार रेखा) का नाम है। जैसे बे, पे (ب پ) में सतह है और सीन तथा नून (س ن) में दौर।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और उसके आविष्कृत सात ख़त मानता है। कुछ लोग नस्ख़ लिपि को याक़ूत मुस्तअ़्समी[१] की निर्मित समझते हैं। सुल्स और नस्ख़ ख़त में दौर एक तिहाई और सतह दो तिहाई होती है। पहले (सुल्स) का नाम जली[२] और पिछले (नस्ख़) का ख़फ़ी है। तौक़ीअ़ और रिक़ाअ़ में तीन चौथाई दायरे और शेष सतहें होती हैं। पूर्व रीत्यनुसार ये दोनों भी क्रमशः जली और ख़फ़ी कहलाते हैं। मोहक़्क़क़ और रैहाँ में तीन चौथाई सतह होती है। उसी प्रकार से मोहक़्क़क़ जली और रैहाँ ख़फ़ी कहलाता है।

सुलेखाचार्यों में, अ़ली इब्न हिलाल ने, जो कि इब्नेबव्वाब[३] के नाम से विख्यात है, छे ख़तों को अच्छा लिखा, परन्तु याक़ूत ने उनको पूर्णता को पहुँचाया। याक़ूत

१—ख़लीफ़ा मुस्तअ़्सम बिल्ला बग़दाद का अंतिम ख़लीफ़ा था, जिसने १२४२ ई० से १२५८ ई० तक शासन किया। ६५६ हिजरी में तातारी और मुग़ल बग़दाद पहुँचे। चंगेज़ख़ां का पोता हलागू उनका सरदार था। सेना ने लूटमार की। मुस्तअ़्सम का वज़ीर इब्न अलक़मी विश्वास-घातक था। वह गुप्तरूप से हलागू से मिला हुआ था। उसने ख़लीफ़ा की सेना इधर-उधर भेज दी, और जो बची वह थोड़ी होने के कारण हार गई। ख़लीफ़ा दो महीने तक घेरे में रहा। वज़ीर ने फिर चाल चली। सन्धि कराने की चर्चा करते हुये उसने कहा कि "आप सब सरदारों के साथ चलिये। हलागू आपकी ताजपोशी करेगा, और अपनी पुत्री का विवाह आपके पुत्र अबू-बकर से करेगा।" ख़लीफ़ा उसकी बातों में आकर सरदारों के साथ हलागू के ख़ेमे में गया। उसने उन सबको क़त्ल कर डाला। इस दुर्घटना में कई लाख आदमी मारे गये। बग़दाद पर से अब्बासियों का अधिकार उठ गया। ख़लीफ़ा सुशिक्षित था।

२—स्पष्ट। कातिबों के प्रयोग में वह अक्षर जो मोटे हों और स्याही से भरी हुई पूरी क़लम से लिखे गये हों (ग़यासुल्लुग़ात) ख़फ़ी, जली का उलटा।

३—विभिन्न इतिहासों से पता चलता है कि इब्न मक़ला, इब्न बव्वाब और याक़ूत सबसे पुराने ख़ुशनवीस हैं, जिनका संक्षिप्त वृत्तान्त नीचे दिया जाता है:—

इब्न-मक़ला का पूरा नाम अबूअ़ली मोहम्मद इब्नअ़ली इब्नहसन इब्न मक़ला था। वह बग़दाद के तीन ख़लीफ़ों मुक़्तदिर बिल्लाह, अलक़ाहिर बिल्लाह और अर्राज़ी बिल्लाह, का (जिन्होंने सन् ६०७ ई० से ६४० ई० तक शासन किया) मन्त्री रहा। अंतिम ख़लीफ़ा ने, इब्न मक़ला का दाहना हाथ कटवा डाला था। ६३८—६३६ ई० में जेलख़ाने के अन्दर उसका शरीरपात हो गया।

इब्न बव्वाब का दूसरा नाम अबुल-हसन अ़ली इब्नहिलाल था। यह बग़दाद के पच्चीसवें ख़लीफ़ा अलक़ादिर बिल्लाह (६६२—१०३० ई०) के अधिकार में रहा। १०२५ ई० में इसका शरीरांत हो गया।

याक़ूत का नाम शेख़ जमालुद्दीन था। वह बग़दाद में पैदा हुआ और वहां के सैंतीसवें और अन्तिम ख़लीफ़ा मुस्तअ़्सम बिल्लाह का पुस्तकाध्यक्ष रहा। ख़लीफ़ा ने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के छे शिष्य ख्यातनामा हुये :— (१) शेख़ अहमद जोकि शेख़ज़ादा सुहरवर्दी के नाम से प्रसिद्ध है; (२) अरग़ून काबुली; (३) मौलाना यूसुफ़शाह मुशहदी; (४) मौ० मुबारकशाह ज़रीं क़लम; (५) हैदर गुंदानवीस (जली-लेखक); (६) मीर एहिया। इनके अतिरिक्त सूफ़ी नसरुल्ला, जोकि सद्रे-इराक़ी भी कहलाता है; अरक़ून अब्दुल्ला ख़्वाजा अब्दुल्ला सैरफ़ी; हाजी मोहम्मद; मौ० अब्दुल्ला आशपज़; मौ० मुही शीराज़ी; मुईनुद्दीन तनूरी; शमसुद्दीन ख़ताई; अब्दुर्रहीम ख़लूली; अब्दुलहई; मौ० जाफ़र तबरेज़ी[१]; मौ० शाह मशहदी; मौ० मारुफ़ बग़दादी[२]; मौ० शमसुद्दीन बायसनग़री; मुईनुद्दीन फ़राही; अब्दुल हक़ सब्ज़वारी; मौ० नेमतुल्ला बब्बाब; ख़्वाजगी मोमिने-मरवारीद, जो काग़ज़ को तरह-तरह के रँगों का बनाने तथा उन पर छिड़की जानेवाली बुकनी का आविष्कारक है मिर्ज़ा शाहरुख़ का पुत्र सुल्तान इब्राहीम; मौ० मौहम्मद हकीम हाफ़िज़; मौ० महमूद सियाउश; मौ० जमालुद्दीन हुसेन; मौ० पीरमोहम्मद और मीर फ़ज़लुलहक़ क़ज़वीनी ने भी उपर्युक्त छहों ख़तों को बढ़िया लिखा।

सातवाँ ख़त, **तालीक़** है। यह रिक़ाअ् और तौक़ीअ् से निकाला गया है। इसमें सतह बहुत कम होती है। ख़्वाजा ताज सल्मानी[३] ने—जो कि उपर्युक्त छे ख़तों का भी सुलेखक था—इस ख़त को उत्तमता को पहुँचाया। कुछ लोग कहते हैं कि तालीक़ ख़त उसी का आविष्कृत है। वर्तमानकाल के ख़ुशनवीसों में सुल्तान् अबूसईद मिर्ज़ा के मुंशी मौ० अब्दुल हई[४] ने इस ख़त को बहुत सुन्दर लिखा है। मौ० दर्वेश[५], अमीर मंसूर, मौ० इब्राहीम अस्तराबादी, ख़्वाजा

उसको कुछ काल के लिए जेल भेज दिया, क्योंकि उसके विचार शिया मत के थे। वह १२५८ ई० में हलागू ख़ां के क़त्ल आम में बच गया था। १२९७ ई० में १२० वर्ष की अवस्था में उसका शरीर छूट गया। (मिरातुलआलम के आधार पर)।

१—वह १५वीं शताब्दी के आरम्भ में मिर्ज़ा शाहरुख़ (१४०४—१४४७ ई०) के समय में मौजूद था।

२—वह सावह के प्रसिद्ध शायर सल्मान (मृत्यु सन् ७६९ ई०) का समकालीन और प्रतिद्वन्द्वी था। मालूम होता है कि कर्ख़ (बग़दाद का एक हिस्सा) के फ़क़ीर मारूफ़ के समय से बग़दाद में 'मारूफ़' नाम का प्रचार हो चला था।

३—'मक्तूबात' और आईन की कुछ प्रतियों के अनुसार सुलैमानी।

४—ब्लाक्मैन और सैयद अहमद दोनों की सम्पादित की हुई मूल पुस्तकों में 'अब्दुल हई व मुंशी सुल्तान अबूसईद मिर्ज़ा' पाठ है, जो अशुद्ध है। 'वाव' अर्थात् और नहीं चाहिये (Blochmann's trans., p. 101, n. 3)।

५—मौ० दर्वेश मोहम्मद ख़ुरासान के बादशाह सुल्तान हुसेन मिर्ज़ा (१४७०—१५०५ ई०) के वज़ीर अमीरअ़ली शेर का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अख़्तियार[१], मुंशी जमालुद्दीन, मोहम्मद क़ज़वीनी, मौ० इदरीस और ख़्वाजा मोहम्मदहुसेन मुंशी भी तालीक़ लेखकों में शिरोमणि होगये हैं। सम्राट् के मीर मुंशी अशरफ़ख़ाँ[२] ने इस ख़त को ऊँचे दर्जे पर पहुँचाया।

आठवाँ ख़त **नस्तालीक़** है। इसमें सब दायरे ही होते हैं। साहबे-क़िरान (तैमूर) के समय में ख़्वाजा मीरअ़ली तबरेज़ी ने नस्ख़ और तालीक़ ख़तों से इसे निकाला था। पर इस बात पर विश्वास नहीं होता; क्योंकि नस्तालीक़ ख़त में लिखी हुई ऐसी किताबें दृष्टिगोचर हुयी हैं, जो तैमूर के समय से पूर्व की लिखी हुई थीं। मीरअली के शिष्यों में से दो[३] व्यक्ति आगे बढ़ गये, एक तो मौलाना जाफ़र तबरेज़ी और दूसरा मौ० अज़हर। इनके अतिरिक्त इस ख़त के सुलेखकों में मौ० मोहम्मद औबही[४] है। लेखन-कला में उसके समकक्ष विरले ही निकलेंगे। एक और उत्तम लेखक मौ० बारी हिरवी है। इन सब से बढ़कर मौ० सुल्तान अ़ली[५] मशहदी है। यद्यपि इसने मौ० अज़हर से शिक्षा ग्रहण नहीं की तथापि उसकी कृतियों से बहुत ज्ञान प्राप्त किया। मौ० सुल्तान-अ़ली के छे शिष्य प्रसिद्ध हैं:—सुल्तान मोहम्मद ख़ंदां[६], सुल्तान मोहम्मद नूर,

---

मित्र था। वह जामी कवि का संरक्षक था। उसने पीछे से फ़ारस के शाह जुनैद सफ़वी (१४९९—१५२५ ई०) के यहां नौकरी कर ली थी (मआ़सिर रहीमी)।

१—यह सुल्तान हुसेन मिर्ज़ा का मीर मुंशी था। प्रथमोक्त ख़ुशनवीस का समकालीन और प्रतिद्वन्द्वी था।

२—मशहद के या 'तबक़ाते-अकबरी' के अनुसार, अ़रबशाही के मोहम्मद असग़र नामक एक सेयद की यह उपाधि थी। उसने हुमायूं के पास, मीर मुंशी, मीर अर्ज़ी और मीर माली के पदों पर रहकर, सेवा की थी। तरदीबेग के दिल्ली से भागने पर वह उसके साथ गया था। फिर बैरम द्वारा क़ैद किये जाने के बाद वह मक्का गया। जब ९६८ हिजरी में बैरम का प्रभुत्व नष्ट हो गया तो वह अकबर के दरबार में फिर उपस्थित हुआ और अशरफ़ख़ाँ की उपाधि प्राप्त की। इस के पश्चात् वह मुनइमख़ां की अध्यक्षता में बंगाल में रहा। ९७३ हि० में वह मर गया। अबुलफ़ज़्ल ने उसको मंसबदारों की सूची में दो हज़ारी लिखा है। बदायुनी ने उसका ज़िक्र शायरों में किया है (देखिये द्वितीय ग्रंथ में मंसबदार ७४ का जीवन चरित्र)।

३—'मिरात' में मीरअ़ली के एक तीसरे शिष्य मौ० ख़्वाजा मोहम्मद का भी नाम आया है, और लिखा है कि वह अपनी कृतियों में अपने उस्ताद का नाम देता था, किन्तु वह असन्तुष्ट नहीं होता था।

४—औबहनिवासी, औबह हिरात के निकट है।

५—वह ख़ुरासान के बादशाह सुल्तान हुसेन मिर्ज़ा (१४७०—१५०५ ई०) के वज़ीर अमीरअ़ली शेर का मित्र था। ९१० हि० में उसका परलोकवास हो गया।

६—सदा प्रसन्न रहने के कारण वह ख़ंदां कहलाता था। वह भी अ़मीरअ़ली

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मौ० अलाउद्दीन[१] हिरवी, मौ० ज़ैनुद्दीन, मौ० अबदी नीशापुरी, मोहम्मद क़ासिम शादीशाह इन में से प्रत्येक ने उक्त ख़त को एक विशेष रीति से लिखा। इस प्रकार मनमोहक शैली-लेखकों का एक समुदाय होगया। मौ० सुल्तान अ़ली क़ायिनी[२] मौ० सुल्तान अ़ली[३] मशहदी आर मौ० हिजरानी[४] ने भी इस ख़त के लिखने में योग्यता प्राप्त की है। इन लोगों के बाद ख़ुशनवीसों का सरदार मौ० मीरअ़ली हिरवी[५] है। यद्यपि प्रत्यक्षरूप से उसने मौ० ज़ैनुद्दीन की शागिर्दी की, परन्तु मौ० सुल्तान अ़ली की कृतियों को देख कर तथा उनकी अनुकृति (नक़ल) करके इस कला का विशेषज्ञ हुआ। उसने अपने बुद्धि-विकास से लेखन-कला-प्रणाली में परिवर्तन करके नई परिपाटी स्थापित की; और स्मारक-स्वरूप अपनी अनेक उत्कृष्ट कृतियाँ छोड़ीं। किसी व्यक्ति ने उससे पूछा "तुम्हारी और मौलाना की लिखावट में क्या अंतर है ?" उत्तर में उसने कहा, "मैंने भी नस्तालीक़ ख़त को पराकाष्ठा को पहुँचाया है, परन्तु उसकी लिखावट की लावण्यता ही कुछ और है।"

इन सुलेखकों के अतिरिक्त शाह महमूद[६] नीशापुरी, महमूद इस्हाक़, शमसुद्दीन किरमानी, मौ० जमशेद मोअम्माई (घुमाव-फिराव की इबारत लिखने वाला), सुल्तान हुसेन ख़ज़िंदी, मौ० एशी, ग़यासुद्दीन मुज़हिब (मुलम्मा करनेवाला), मौ० अब्दुस्समद, मौ० मालिक, मौ० अब्दुल करीम, मौ० अब्दुर्रहीम ख़्वारज़मी,

---

शेर का मित्र था। "मिरआतुलआलम" के अनुसार ९१५ हि० में उसकी मृत्यु हो गई। परन्तु दिल्ली के, जो हस्तलिखित ग्रंथ गवर्नमेण्ट आफ़ इण्डिया के अधिकार में हैं, उनमें ९२० हि० की खंदां की लिखी हुई 'तज़किरतुलऔलिया' की एक प्रति भी है। इससे उसकी मृत्यु का वर्ष अनिश्चित है (Blochmann's trans., p. 617, n.)।

१—'मकतूबात' में अलाउद्दीन मोहम्मद हिरवी।

२—वह सुल्तान हुसेन मिर्ज़ा के बच्चों का शिक्षक था। ख़ुरासान के दक्षिण-पूर्व की ओर अफ़ग़ानिस्तान की सीमा के निकट एक नगर क़ाइन या ग़ायान है, वह वहीं का रहनेवाला था। ९१४ हि० में उसका देहांत हो गया।

३—'मकतूबात', के अनुसार सुल्तान अ़ली शेर मशहदी।

४—अमीर अ़ली शेर का मित्र और कवि। ९२१ हि० में संसार-त्याग किया।

५—मीर अ़ली सैयद वंश का था। पद्य-रचना में वह दख़्ल (प्रवेश, बुद्धिमत्ता के साथ दूसरे कवि की रचना का कोई अंश अपनी रचना में खपाना) का उस्ताद था। दिल्ली के मीर ख़ुसरो के पुत्र मीरअहमद तथा बैरमख़ां ख़ानख़ाना के साथ उसका कवियों में ज़िक्र आया है। उसकी मृत्यु ९२४ हि० में हुई।

६—'मकतूबात' और 'मिरआत' में शाह मोहम्मद नीशापुरी। उक्त दोनों पुस्तकों में मीर सैयद अहमद नामक एक और ख़ुशनवीस का उल्लेख मिलता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मौ० शेख़मोहम्मद, मौ० शाह महमूद ज़र्रीक़लम, मौ० मोहम्मद हुसेन तबरेज़ी[१], मौ० हसनअ़ली मशहदी[२], मीर मुइज़्ज़ काशी (काशान निवासी), मिर्ज़ा इब्राहीम अस्फ़हानी तथा कुछ अन्य व्यक्तियों ने भी इस कला में अपना बहुमूल्य जीवन लगाया है।

सम्राट् के गुण-ग्राही तथा कला-प्रेमी होने के कारण तरह-तरह के ख़तों[३] ने बहुत उन्नति की और विचित्र काम करने वाले गुणियों की बहुत वृद्धि होगई

१—वह 'मिरआत' उल्लिखित प्रसिद्ध ख़ुशनवीस इमाद का उस्ताद था।

२—१०२० हि० में वह मर गया।

३—सुलेखन-कला का स्थान भारतवर्ष, फ़ारस और चीन में सदा से बहुत उच्च रहा है। मुग़ल-काल में चित्र-कला से इसका विशेष सम्बन्ध रहा है। किसी हस्तलिखित ग्रंथ का लिपि-कौशल चित्रों की अपेक्षा अधिक मूल्यवान् और महत्वपूर्ण समझा जाता था (Edwardes & Garrett, Mughal Rule in India, p. 327, 1930)। मुग़ल-कालीन चित्रकार परम्परागत कलाकार मात्र समझे जाते थे, जो कि बहुत समय तक शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् शनैः शनैः पक्के चित्रकार हो पाते थे, किन्तु ख़ुशनवीस उस दैवीगुण के भाग्यवान् अधिकारी के रूप में लोक-दृष्टि में स्थान पाते थे, जो कि शिक्षा और अभ्यास द्वारा कदापि प्राप्त नहीं हो सकता था (Percy Brown, Indian Painting under the Mughals, p. 21)। १९वीं शताब्दी के आरम्भ में फ़ारस में ख़ुशनवीसी की ओर लोगों की अभिरुचि बनी हुई थी। जानमल्कम् के शब्दों में लेखन-कला पटु दर्वेशमजीद की केवल चार पंक्तियों के लिए एक गुणज्ञ ने ७ पौण्ड दिये थे। यद्यपि उक्त सुलेखन-कला विशारद कई साल पहले ही मर चुका था (Malcolm, History of Persia, 1829, Vol. II, p. 421, n.)।

मुग़ल-काल में चित्रकारी और सुलेखन-कला साथ-साथ चलती थी, अर्थात् मुसव्विर और ख़ुशनवीस बहुधा साथ-साथ काम करते थे। अनेक चित्रों के पृष्ठ भाग पर बड़े सुन्दर अक्षरों में किसी लिपि-कला-विशारद की लेखनी से कुछ शेर या इबारत लिखी रहती थी। उस इबारत का चित्र से कुछ भी सम्बन्ध न होता था। उस पर ख़ुशनवीस अपने हस्ताक्षर करता था और लिखने की तारीख़ भी लिखता था, जिसके कारण वह एशिया भर में चित्रकार से अधिक ख्यातनामा हो जाता था। इसी से मुग़लकालीन चित्र-कला के सम्बन्ध में फ़्रेञ्च लेखक एम० हुअर्ट को लिखना पड़ा कि पौर्वात्य देशों में मुसलमानों की चित्रकारी सुलेखनकला की चेरी है (M. Huart, Les Calligraphes et les Miniaturistes de l' Orient Musulman, Paris, 1908)।

कहा जाता है कि १५०४ ई० में बाबर ने 'बाबरी' नामक लेखन-शैली का प्रचार किया (N. N. Law, Promotion of Learning in India, p. 123)। परन्तु बाबर और हुमायूं दोनों के समय में लेखन-कला-सम्बन्धी कोई विशेष बात ज्ञात नहीं होती। वास्तव में वह अकबर है जिसने प्रत्येक कला को चमकाया। उनमें एक लेखन-कला भी है। फ़रिश्ता के अनुसार अकबर ने 'दास्ताने-अमीर हमज़ा' को सुन्दर अक्षरों में लिखने की आज्ञा दी थी (Ibid., p. 142)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। विशेषकर नस्तालीक़ ख़त का चलन बहुत ज़्यादा होगया है। एक उत्तम लेखक, जिसको राज-सिंहासन की छाया में, इस चित्ताकर्षक लिखावट का आचार्य कह सकते हैं, मोहम्मद हुसेन कश्मीरी है। वह लोक में ज़रीं क़लम के नाम से प्रसिद्ध है। वह मौ० अब्दुल अज़ीज़ का शिष्य है, पर लेखन-कला में वह उससे भी आगे निकल गया है। उसका मदें और दायरे परस्पर एक दूसरे के अनुरूप होते हैं। लेखन-कला विशारद उसको मुल्ला मीरअ़ली के जोड़ का मानते हैं। वर्तमानकाल के और ख़ुशनवीसों में प्रसिद्ध मुल्ला मीरअ़ली का पुत्र मौ० बाक़र, मोहम्मद अमीन मशहदी, मीर हुसेन कुलंगी, मौलाना अब्दुल हई, मौलाना दौरी[1], मौलाना अब्दुर्रहीम, मीर अब्दुल्ला, निज़ामी क़ज़वीनी, अलीचमन कश्मीरी और नूरुल्ला क़ासिम अरसलां भी इसी प्रतापी राज्य के विकास से ख्यातनामा होगये हैं।

सम्राट् ने अपने ज्ञान के प्रकाश से पुस्तकालय[2] को कई भागों में विभाजित किया है। कुछ भाग राजप्रासाद के अन्दर हैं और कुछ बाहर। फिर प्रत्येक भाग

उसने सुलेखाचार्यों को हर प्रकार से प्रोत्साहन दिया। अकबर के समय की अनेक लिखित वस्तुएं इस बात की साक्षी दे रही हैं। उसके सिक्कों को तैयार कराने के लिये एक कवि, एक सुलेखाचार्य, एक भास्कर और एक तक्षक की आवश्यकता होती थी। इमारतों पर की इबारत केवल ज्ञान-ज्योति ही परिवर्द्धित नहीं करती, वरन् लेखन-कला की उत्कृष्टता भी प्रदर्शित करती है। जहांगीर ने भी सुलेखन-कला को जारी रक्खा, और सुलिपि-लेखकों को अच्छे ग्रंथ लिखने में वह बहुत पारिश्रमिक देता रहा। शाहजहां के समय में चित्रकार मीरहाशिम ने ख़ुशनवीस की हैसियत से बड़ी ख्याति प्राप्त की थी। औरंगज़ेब अपने पुस्तकाध्यक्ष जवाहरे-रक़म पर बड़ी कृपा करता था। वास्तव में लेखन-कला में वह बड़ा ही निपुण था। औरंगज़ेब स्वतः बड़ा उत्तम लेखक था। उसके लिए यह प्रसिद्ध है कि वह अपने वैयक्तिक व्यय का एक अंश 'क़ुरान' को अपने हाथ से लिखकर पूरा करता था (J. N. Sarkar, Anecdotes of Aurangzib p. 52)।

मुग़ल-काल में सुलेखन-कला का उपयोग कई प्रकार से होता था—क़िता लिखने में, मोहरें और छापें खोदने में, उत्तम वाक्य या क़ुरान की आयतें लिखकर इमारतों को सजाने में।

भारतवर्ष में सुलेखन-कला की अभिरुचि आज भी नष्ट नहीं हुई है, किन्तु लाभप्रद न होने के कारण उसका चलन कम हो गया है (Smith, Akbar the Great Moghul, p. 426, 1927)।

१—सुल्तान बायज़ीद हिरवी का कविता-सम्बन्धी नाम दौरी था। अकबर ने उसको कातिबुलमुल्क (साम्राज्य-लेखक) की उपाधि दी थी। उसका शागिर्द ख़्वाजा मुहम्मद हुसेन अहदी था (Badaoni, II, p. 394)।

२—'आइने-अकबरी' में टाइप या टाइप से छपी हुई पुस्तकों का बिल्कुल उल्लेख नहीं पाया जाता। भारतवर्ष में सबसे पहले छपाई का काम ईसाई पादरियों ने गोआ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कई उपभागों में बंटा हुआ है। विद्या-विद्या और विषय-विषय की पुस्तकों की, मूल्य के अनुसार श्रेणियां नियत हैं। पद्य, गद्य, हिन्दी, फ़ारसी, यूनानी, कश्मीरी और अरबी के ग्रंथ[1] पृथक्-पृथक् क्रमबद्ध किये गये हैं। सम्राट् उनका अध्ययन इस प्रकार करता है। अनुभवी बुद्धिमान् नित्यप्रति सम्राट् की सेवा में उपस्थित होकर उनको सुनाते हैं। वह प्रत्येक ग्रंथ को आदि से अन्त तक सुनता है। नित्य-प्रति जहाँ तक पुस्तक सुनाई जा चुकती है, सम्राट् अपनी मोती बरसाने

और रायचोल में १६वीं शताब्दी के मध्य में आरम्भ किया था। (Smith, Akbar, p. 424-25)। सबसे पहली मुद्रित पुस्तक गनसाल्वेज़ की 'डाक्ट्रिना क्रिश्चियाना' (Giovanni Gonsalves, Doctrina Christiana) है, उसीने १५७७ ई० में तामिल के अक्षर तैयार किये। १५७८ ई० में 'फ़्लास सैंक्टोरम' (Flos Sanctorum) नामक पुस्तक निकली। १६७९ ई० में कोचीन के अम्बलकट्टा में 'तामुलिक डिक्शनरी' (by Father Antonio de Proenza) प्रकाशित हुई। फिर डेनमार्क के मिशनरियों ने ट्रेंकोबर में बहुत-सी पुस्तकें छापीं (Blochmann's trans, p. 99-100)। लगभग १८वीं शताब्दी के अन्त तक—जब कि कुछ बंगला भाषा की पुस्तकें यूरोपियनों की देखरेख में मुद्रित हुई थीं—किसी भी हिन्दुस्तानी राज्य या किसी व्यक्ति ने टाइप की मुद्रण-कला का उपयोग नहीं किया था। अकबर को टाइप की छपी हुई पुस्तकों की अपेक्षा हस्त-लिखित पुस्तकों से अधिक प्रेम था। पादरियों ने उसको उत्तमोत्तम पुस्तकें भेंट भी की थीं, परन्तु उसने उनको उपेक्षा की दृष्टि से देखकर उनसे अपना पिंड छुड़ाया। कारण स्पष्ट है, उस समय की लिखाई छपाई की अपेक्षा ज़्यादा अच्छी थी। फिर नस्तालीक़ ख़त का सर्वोत्कृष्ट टाइप तो इस बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक नहीं तैयार हो सका। उसकी हस्त-लिखित पुस्तकों का छपी पुस्तकें मुक़ाबिला नहीं कर सकतीं थीं।

अकबर के पुस्तकालय में सब हस्त-लिखित ग्रंथ थे। वह पुस्तकालय उस समय संसार में सबसे बड़ा पुस्तकालय था, कदाचित् उससे पहले भी कोई उतना बड़ा ग्रंथालय न था (Smith, ibid, p. 424)। जब अक्टोबर १६०५ ई० में उसकी मृत्यु के बाद आगरा दुर्ग में उसके सुरक्षित कोषों की सूची तैयार की गई थी तो वे ग्रंथ, जो कि महान् पुरुषों और अधिकतर बहुत प्राचीन एवं गंभीर लेखकों द्वारा लिखे गये थे तथा जिनमें अत्यधिक मूल्यवाली जिल्दें चढ़ी हुई थीं और जिनमें से अनेक अत्युत्कृष्ट कलाकारों के बहुमूल्य चित्रों से विभूषित थे, संख्या में २४००० थे और उनका मूल्य लगभग ६४,६३,७३१ रुपए था। हर पुस्तक का औसत मूल्य २७ पौण्ड से ३० पौण्ड तक था। १५९५ ई० में फ़ैज़ी के स्वर्गवास के पश्चात् उसके पुस्तकालय के ४३०० चुने हुये ग्रंथ भी अकबर के ग्रंथालय में संग्रहीत हो गये थे (Smith, ibid)। ये अंक सरकारी रजिस्टरों से दो यूरोपियन लेखकों—मैनरिक और डीलाइट (Manrique & Delaet) ने लिये थे (J. R. A. S., April 1915)।

१—'देखिये! अरबी की पुस्तकें अन्त में रक्खी गई हैं' (Blochmann's trans, p. 103, n.)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाली क़लम से वहाँ पर स्वयम् निशान[१] लगा देता है, और पठित पृष्ठों की संख्या के अनुसार पाठक को रुपयों और अशर्फ़ियों से पुरस्कृत करता है। प्रसिद्ध पुस्तकों में विरली ही होंगी, जो सम्राट् की सभा में न सुनाई गई हों। पूर्वजों

१—यह आश्चर्य की बात है कि जो सम्राट् इतना विद्वान्, प्रखर बुद्धि और सुयोग्य था वह लिखना पढ़ना जानता था यह बात अभी तक निश्चय नहीं हो पाई है। उसकी शिक्षा-सम्बन्धी जानकारी की बातें नीचे दी जाती हैं। नवम्बर १५४७ ई० में जब वह लगभग ५ बरस (Smith Akbar, p. 22; ४ वर्ष, ४ मास, ४ दिन, जक़ाउल्ला, इक़बालनामा अकबरी पृ० ११) का हुआ तो कुल की पद्धति के अनुसार हुमायूं ने उसकी प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध किया। मुहूर्त के समय अकबर कहीं छिप रहा, ढूंढे जाने पर भी नहीं मिला। पहले मुल्लाज़ादा असामुद्दीन उसका शिक्षक नियत हुआ। वह स्वयं कबूतरबाज़ था, उसने शिष्य को अक्षराभ्यास कराने के स्थान में कबूतरबाज़ी सिखलाई। इसलिए वह हटाया गया, और बायज़ीद को पढ़ाने का कार्य सौंपा गया। उसके असफल होने पर मुल्लाओं के नाम पर पांसे डाले गये। मौ० अब्दुलक़ादिर का नाम निकलने पर वह शिक्षक नियत हुआ। इसी प्रकार एक और शिक्षक नियत हुआ। हुमायूं उन दिनों एक स्थान पर स्थिर नहीं रह पाता था, इसलिए उसकी देखरेख का भार दूसरों पर अवलंबित था। लगभग दस वर्ष का होने पर भी वह पढ़ने में ध्यान नहीं देता था। उसे घोड़ों, ऊटों, कुत्तों, कबूतरों, सवारी-शिकारी, निशानाबाज़ी, खेल-कूद आदि का बड़ा शौक़ था। परिणामस्वरूप इन बातों में वह दक्ष भी हो गया। शिक्षा की ओर से उसकी उपेक्षा देखकर एक व्यक्ति ने इसके पहले ही हुमायूं से शिकायत भी की थी, जिस पर हुमायूं ने अकबर को चेतावनी देते हुये एक महत्वपूर्ण पत्र भी लिखा था जिसके प्रमुख स्थान पर 'निज़ामी' शायर का यह शेर लिखा था:—'ग़ाफ़िल मनशीं न वक़्त बाज़ी अस्त, वक़्त हुनरस्तो कारसाज़ी अस्त।' अर्थात् असावधान मत बैठ, यह समय खेलने का नहीं है, समय गुण-प्राप्ति का है और काम बनाने का। पर अकबर ने इस पर भी उचित ध्यान नहीं दिया। २४ जनवरी १५५६ ई० को हुमायूं की मृत्यु के बाद अकबर की शिक्षा का भार उसके संरक्षक पर आ पड़ा। अक्टोबर १५५८ ई० में जब वह आगरा आया तो फ़ारस का एक शरणार्थी अब्दुल-लतीफ़ उसका शिक्षक नियत हुआ। बदायूनी ने उसको 'बड़प्पन का आदर्श' माना है। वह पहला व्यक्ति था, जिसने अकबर को 'सुलह कुल' (सबसे मेल, विश्व-प्रेम) का सिद्धान्त सिखलाया। परन्तु अपने पूर्ववर्तियों के समान वह आदर्श भी असफल हुआ। हां, अकबर ने मीर सैयदअ़ली और ख़्वाजा अ़ब्दुस्समद की देखरेख में साधारण चित्रकारी का अभ्यास किया, किन्तु लिखने पढ़ने पर ध्यान नहीं दिया, वरन् उम्मी (कुपढ़) ही रहा (Smith, ibid, p. 41)। उसने दूसरे लोगों को पुस्तकें सुनाने के लिए नौकर रक्खा। वह कुशाग्र-बुद्धि था। उसमें धारणा शक्ति ग़ज़ब की थी। जो सुनता था, वह उसके हृदय पर जम जाता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का कोई इतिहास, विद्याओं से सम्बन्ध रखनेवाली कोई अद्भुत बात और दर्शन शास्त्र का कोई भी अनोखा विषय ऐसा न होगा, जो इस न्यायप्रिय बुद्धिमानों के नेता को स्मरण न हो। वह पुस्तक को बारम्बार सुनने से नहीं ऊबता, वरन् उसे और अधिक चाव से सुनता है। अख़लाक़े-नासिरी, कीमियाए-सआ़दत, क़ाबूसनामा, मक्तूबाते-शर्फ़मुनैरी, गुलिस्तां, हदीक़ा, मसनवीए-मआ़नवी, जामे-जम, बोस्तां, शाहनामा, ख़मसए-शेख़निज़ामी, कुल्लियात ख़ुसरो व मौलाना जामी, दीवाने-ख़ाक़ानी व अनवरी तथा अन्य ऐतिहासिक ग्रंथ सम्राट् के सम्मुख निरन्तर पढ़े जाते हैं। भाषा-विशेषज्ञों को आज्ञा देकर,

---

था। साधारण लोगों का जो काम आंखों से चलता है। वह उसको अपने कानों से लेता था। आजकल भी भारतवर्ष में ब्रिटिश सरकार के कितने ही अधिकारी प्रान्तीय भाषाओं को न ठीक लिख सकते हैं और न पढ़ सकते हैं। पुलीस आदि की लंबी रिपोर्टें तथा दूसरे काग़ज़-पत्रों को रीडर उनके सामने फ़र्राटे से पढ़ते हैं, और वे उनको सुनकर अधिक काम करते हैं। प्रसिद्ध शासक हैदरअ़ली और रणजीत-सिंह पढ़ना लिखना नहीं जानते थे (Smith, ibid)। अकबर को किताबें सुनने का चाव छोटपन से ही था। उसने उसी अवस्था में स्वेच्छा से हाफ़िज़ और जलालुद्दीन रूमी जैसे सूफ़ी कवियों के बड़े-बड़े ग्रंथ—'दीवान हाफ़िज़' और 'मसनवीए मौलाना रूम'—कंठाग्र कर लिये। "बाल्यकाल की इस शिक्षा ने एक बुद्धिविषयक आधार स्थापित कर दिया, जो अकबर की वृद्धावस्था के धार्मिक विषयों के संबंध में विभिन्न मतों की उदार बातों के चयन करने में उपयोगी सिद्ध हुआ" (Smith, Akbar, pp. 22-23)। अबुलफ़ज़्ल ने लिखा है कि उसका शुद्ध हृदय और पवित्र आत्मा कभी वाह्य शिक्षा की ओर प्रवृत्त नहीं हुआ, वरन् अपनी ही ईश्वर-प्रदत्त प्रकृति से उसने योग्यता प्राप्त की (Akbarnama, Beveridge's trans. 1. 589)। उपर्युक्त विवरण से यह बात समझ में नहीं आती कि जिस विचक्षण बालक की शिक्षा का इतना प्रयत्न हो वह मुंशी न हो यह हो सकता है, किन्तु वर्णमाला न जाने और हस्ताक्षर तक न कर सके! बात यह हुई कि पादरी मांसेरेट (Father Monserrate) अकबर, के दरबार में दो बरस रहा, उसने उसको कभी पढ़ते और लिखते नहीं देखा था। उसकी इसी ढंग की सूचना पर वर्तमान काल के कुछ ऐतिहासिक उसको निरक्षर मान बैठे हैं (Edwardes & Garrett, Mughal Rule in India, p. 226)। इस पर भी जो व्यक्ति बाबर और हुमायूं जैसे सांस्कृतिक साहित्यानुरागियों का वंशज हो, जिसने स्वभावतः नितान्त असाधारण ज्ञान और अद्भुत स्मरणशक्ति पाई हो तथा जिसके शिक्षक एक को छोड़कर क्रमशः सुयोग्य और विद्वान् रहे हों, वह बिल्कुल पढ़ना न जानता और अपने हस्ताक्षर तक करने के अयोग्य रहता, यह बात सन्देहात्मक मालूम होती है (N. N. Law, Promotion of Learning in India during Muhammedan Rule, pp. 207—12; F.E. Keay, Ancient Indian Education, p. 121)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिन्दी, यूनानी, अरबी, फ़ारसी तथा अन्य भाषाओं की पुस्तकें दूसरी भाषाओं में भाषान्तर कराई जाती हैं। जैसे फ़तहउल्ला शीराज़ी की अध्यक्षता में एक्बाल-नामा (आईने-अकबरी) के लेखक के व्याख्यानुसार, किशन जोशी, गंगाधर, महेश महानन्द ने, ज़ैच-जदीद मीरज़ाई[१] के कुछ अंश का हिन्दी (संस्कृत) से फ़ारसी में उल्था किया। महाभारत की पोथी, जो भारतवर्ष के प्राचीन ग्रन्थों में से है, शेख़ सुल्तान थानेसुरी, मौलाना अब्दुलक़ादिर बदायूनी[२] और

१—ज़ैजों का सविस्तर वर्णन तृतीय ग्रंथ के पहले आईन में है। ज्योतिषियों की वह पुस्तक, जिसमें ग्रहों और नक्षत्रों की गति आदि का वर्णन कोष्टों में लिखा होता है, ज़ैज कहलाती है। पहले वेधशालाएँ बनाकर उनसे हालात मालूम करके पुस्तकों में लिख लेते थे। उन पुस्तकों को ज़ैच या ज़ैज कहते थे। यह फ़ारसी के ज़ैक शब्द का अरबी रूप है। ज़ैक उन धागों को कहते हैं, जिनके सहारे पर नक़्शबन्द कपड़ों में बेलबूटे बुनते हैं। ज्योतिषी ज़ैज के सहारे ग्रहों की गति मालूम करते हैं। ज़ैज से जन्तरी या पत्रा बनाये जाते हैं।

२—मुल्ला अब्दुलक़ादिर बदायूनी सन् ९४७ हिजरी में बदायूं (रुहेलखंड में) नगर में पैदा हुआ था। वह अकबर से दो वर्ष बड़ा था। उसके पिता को लोग मुलूक-शाह कहते थे। वह संभल के शेख़ पंजू फ़क़ीर का शिष्य था (J. A. S. B., p., 118, 1869)। ९६९ हिजरी में मुलूकशाह का शरीर-पात हुआ। मुल्ला अब्दुलक़ादिर ने अपने समय के अनेक विद्वानों से विभिन्न विषयों में शिक्षा प्राप्त की थी। इन विद्वानों का वर्णन उसने अपनी 'मुन्तख़िबुत्तवारीख़' में किया है। उसने, इतिहास, संगीत और गणित ज्योतिष में विशेष योग्यता प्राप्त की थी। कंठ मधुर होने के कारण बुधवार के लिए वह दरबार का इमाम नियत हुआ था। जलालख़ाँ क़ोरची ने उसको अकबर के दरबार में प्रविष्ट कराया था। बदायूनी फ़ैज़ी और अबुलफ़ज़्ल के साथ चालीस वर्ष तक रहा, परन्तु उसकी उनसे हार्दिक मित्रता कभी नहीं हुई; क्योंकि बदायूनी उनको काफ़िर ख़्याल करता था।

अकबर की आज्ञा से उसने 'रामायण' के २४००० श्लोकों का संस्कृत से फ़ारसी में अनुवाद किया, और उसके उपलक्ष में उसको १५० अशरफ़ी और १०००० तंगा (अधन्ना) पुरस्कार मिला था। इसके अतिरिक्त उसने 'महाभारत' के कुछ भागों 'तवारीख़ रशीदी' और 'बहरुल-असमार' नामक ग्रंथों के भी अनुवाद किये और टीका टिप्पणियां लिखीं। 'नजातुर्रशीद' भी उसी का लिखा हुआ है। उसके प्रसिद्ध ग्रंथों में 'मुन्तख़िबुत्तवारीख़' है। अकबर के धार्मिक विचारों पर इसमें विशेष-रूप से प्रकाश डाला गया है। साथ ही उसके समय के प्रसिद्ध पुरुषों एवं कवियों के जीवन-चरित्र भी दिये गये हैं। इस इतिहास में अकबर की मृत्यु के ११ वर्ष पूर्व (१००४ हिजरी) तक का हाल है। इसमें अकबर के चरित्र का जैसा चित्रण है, 'अकबरनामा', 'तबक़ातअकबरी' या 'मआसिररहीमी' में वैसा नहीं मिलता। संभवतः १००४ हिजरी के बाद बदायूनी की मृत्यु हो गई, पर शायद इतिहास छिपाकर रक्खा गया। 'मिरातुलआलम' के अनुसार वह जहाँगीर के शासन-काल में प्रकाशित किया गया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नक़ीबख़ाँ के निरीक्षण में हिन्दी (संस्कृत) से फ़ारसी में अनूदित की गयी। इसमें लगभग एक लाख श्लोक हैं। सम्राट् ने इस प्राचीन कथा का नाम रज़्मनामा[1] रक्खा है। इसी मंडली ने रामायण[2] का संस्कृत से फ़ारसी में

परन्तु उस (जहाँगीर) ने बदायूनी के पुत्रों के इस कथन पर रोष प्रकट किया कि उनको स्वयम् ग्रंथ के अस्तित्व की ख़बर नहीं थी। 'तुज़्कजहांगीरी' में भी इस घटना का कहीं उल्लेख नहीं है। १०२५ हिजरी (जहांगीरी शासन के दसवें वर्ष) में भी उक्त इतिहास का कहीं पता नहीं था क्योंकि 'मआसिररहीमी' उसी साल लिखी गई थी। उसके लेखक ने 'तबक़ात' और 'अकबरनामा' के अतिरिक्त एक और इतिहास की आवश्यकता के सम्बन्ध में शिकायत की है।

पद्यों में यह अपना नाम 'क़ादिरी' रखता था। परन्तु अकबर के समय में एक और 'क़ादिरी' था जो बहुत विद्वान् था। पाठक दोनों की कृतियों को एक न समझें।

बदायूनी की लेखन-शैली के सम्बन्ध में ब्लाक्मन का मत है कि "मिरातुल-आलम' के रचयिता बख़्तावरखां और 'आलमगीरनामा' के लेखक मोहम्मद काज़िम से उसकी लेखन-शैली बहुत गई बीती थी; पर हां, 'तबक़ात' के लेखक उसके मित्र मिर्ज़ा निज़ामुद्दीन अहमद हिरवी तथा 'बादशाहनामा' के निर्माता अब्दुल हमीद लाहोरी से कुछ अच्छी थी" (Blochmann's trans. p. 104, n. 2)। विन्सेण्ट स्मिथ की राय में "बदायूनी की भाषा अधिक कठिन है। उसकी रचना साहित्यिक अनुपात से नितान्त रहित है" (Smith, Akbar, p. 415)।

१—'महाभारत' के अनुवाद के संबन्ध में मुल्ला अब्दुलक़ादिर ने लिखा है कि "दो रात तक सम्राट् ने स्वयम् महाभारत के कुछ अंश का अनुवाद किया और नक़ीबख़ाँ से कहा कि उसका अर्थ साधारण फ़ारसी में कर दे। तीन-चार मास के बाद 'बेहूदा' और 'व्यर्थ' १८ पर्वों में से दो सम्राट् के सम्मुख उपस्थित किये गये। सम्राट् मेरे अनुवाद में छिद्रान्वेषण करने लगा, और मुझे 'हरामख़ोर' और 'शलग़मख़ोर' बतलाया। मानो, मूल पुस्तक के निर्माण में भी मेरा हाथ रहा हो। पीछे से दूसरा भाग नक़ीबख़ां और मुल्ला शेरी ने समाप्त किया तथा एक और भाग का सुल्तान हाजी थानेश्वरी ने उल्था किया। इसके बाद शेख़ फ़ैज़ी नियत किया गया जिसने गद्य और पद्य में दो और भाग लिखे। फिर शेख़ हाजी ने दो और पर्वों की टीका की और जो अंश छूट गया था उसका शाब्दिक अनुवाद करके जोड़ दिया। पर सुल्तान हाजी शीघ्र ही दरबार से हटा दिया गया। अब वह भक्खर में है। दूसरे अनुवादक और व्याख्याता कौरव और पाण्डवों का संग्राम जारी रक्खे हुये हैं। ईश्वर उनकी रक्षा करे जो इस अनुवाद के झमेले में नहीं पड़े हैं। वह उनके पश्चात्ताप को स्वीकार करे और ऐसे प्रत्येक व्यक्ति की प्रार्थना को सुने; जो हृदय की ग्लानि को गुप्त नहीं रख सकता एवं जिसका हृदय इस्लाम धर्म पर स्थिर है। वह तोबा करने पर मनुष्यों को अपने पास बुलाता है। 'रज़्मनामा' (महाभारत) चित्रों आदि से अलंकृत हो गया और उसकी अनुकृतियां की गईं। राज्य के प्रमुख स्तम्भ भी इस कार्य पर लगाये गये। अबुलफ़ज़्ल ने इसकी दो जुज़ की भूमिका लिखी है।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाषान्तर किया। यह ग्रंथ प्राचीन कृतियों में से है। इसमें रामचन्द्र का चरित्र विस्तार के साथ वर्णित है, साथ ही ज्ञान-विज्ञान और नीति-संबन्धी विलक्षण बातें भरी पड़ीं हैं। अथरबन[३] की पुस्तक (अथर्ववेद) का—जो कि हिन्दुओं के विश्वासानुसार ईश्वरीय-ज्ञान के चार ग्रंन्थों में से एक है—फ़ारसी अनुवाद हाजी इब्राहीम सरहिन्दी ने किया। लीलावती[४], जो कि हिन्दुस्तानी गणितज्ञों द्वारा निर्मित पुस्तकों में एक प्रभावशाली ग्रंथ है, मेरे बड़े भाई शेख़ अबुलफ़ैज़ फ़ैज़ी ने संस्कृत का पर्दा हटा कर फ़ारसी की चादर उसके कंधों पर डाल दी। ताजक[५] का, जो कि गणित-ज्योतिष का एक प्रामाणिक ग्रंथ है, सम्राट्

(Badaoni, II, p. 302)। इस अनुवाद की एक प्रति दो जिल्दों में, जिसमें १८ फ़न (पर्व) हैं, एशियाटिक सोसायिटी बंगाल की लायब्रेरी में है। उसका नंबर १३२६ है (Blochmann, ibid, p. 105, n. 1)। 'महाभारत' का अनुवाद १५८२ ई० से १५८४ ई० तक हुआ। इसमें ४०,००० पौण्ड व्यय हुआ था। आजकल यह स्टेट लायब्रेरी जयपुर का अत्यन्त मूल्यवान् संग्रह है, और संसार के उत्कृष्टतम ग्रंथों में से एक है (N. C. Mehta, Catalogue of Pictures exhibited at the All-India Arts Exhibition Lucknow, Foreword, p. 15, 1925)।

२—१९७ हि० में सम्राट् ने आज्ञा दी कि 'रामायण' का तर्जुमा अब्दुलक़ादिर करे। "मैंने चार साल में उसे समाप्त किया और उसकी पाण्डुलिपि सम्राट् को भेंट की और उसके अन्त में यह शेर लिख दिया :—मा क़िस्सा नविश्तेम बसुल्तां कि रसानद ; जां सोख्ता करदेम ब-जानां कि रसानद। अर्थात् मैंने कथा लिख दी, कोई सम्राट् तक पहुँचा दे ; मैंने जान गला दी, कोई प्रियतम तक पहुँचा दे। सम्राट् ने इस शेर को बहुत पसंद किया। सम्राट् ने कहा कि लेखकों की भांति इस ग्रंथ की भूमिका भी लिखो। मैंने उससे आंख छिपाने की चेष्टा की। क्योंकि कुफ़्र की नक़्ल कुफ़्र नहीं होता। मैंने सम्राट् की आज्ञा से अनुवाद किया, यद्यपि मुझे उससे अरुचि थी और जिसके कारण मुझे विश्वास है, कि धिक्कारा जाऊंगा। मैं उसके लिए तोबा करता हूँ। ईश्वर उसे स्वीकार करे।"

३—सन् १५७५ ई० में बदायूनी को 'अथर्ववेद' का अनुवाद करने की आज्ञा मिली। सहायता के लिए शेख़ भावन (जो दक्षिणी ब्राह्मण था और पीछे से मुसलमान हो गया था) नियत हुआ। पर वह वेद के भाव स्पष्ट न कर सका। सम्राट् को सूचना मिलने पर शेख़ फ़ैज़ी तैनात किया गया, फिर हाजी इब्राहीम सरहिन्दी पर काम छोड़ा गया। किन्तु पिछला तत्पर होने पर भी इच्छानुसार अनुवाद न कर सका और वह अंश शेष ही रह गया (Badaoni, II, p. 212)।

४—'लीलावती' को प्रसिद्ध ज्योतिर्विद भास्कराचार्य की पत्नी ने अपने नाम से बनाया था। पीछे से भास्कराचार्य ने भी एक ग्रंथ इसी नाम का इसी विषय पर निर्मित किया था (श० सा०)।

५—ज्योतिष का एक ग्रंथ जो यवनाचार्य-कृत प्रसिद्ध है। यह पहले अरबी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की आज्ञा से मुकम्मलख़ाँ गुजराती ने फ़ारसी में अनुवाद किया। वाक़याते बाबरी[1] का जो कि व्यावहारिक ज्ञान का नीति-ग्रन्थ है, मिर्ज़ा अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना (वर्तमान सेनापति) ने तुर्की भाषा से फ़ारसी में उल्था किया। कश्मीर के इतिहास[2] का, जिसमें उस देश का चार हज़ार वर्ष का वृत्तान्त है, मौलाना शाहमोहम्मद शाहाबादी ने कश्मीरी भाषा से फ़ारसी में रूपान्तर किया। मोअ्जमुलबलदां ग्रंथ—जो देशों और नगरों के वृत्तान्तों का अद्भुत संग्रह है—कई भाषा-विशेषज्ञों जैसे मुल्ला अहमद ठट्ठा, क़ासिम बेग, शेख़ मुनव्वर तथा कुछ और व्यक्तियों ने अरबी से फ़ारसी में उल्था किया। हरिवंस, जिसमें कृष्ण का चरित्र है, मौलाना शेरी ने फ़ारसी में अनूदित किया। कलेलादमना व्यावहारिक ज्ञान का एक अनूठा साहित्यिक ग्रंथ है। यद्यपि नसरुल्ला मुस्तौफ़ी और मौलाना हुसेनवायज़ इसका फ़ारसी में अनुवाद कर चुके थे, परन्तु उसमें अलङ्कार और कठिन शब्द भरे पड़े थे, इस कारण सम्राट् की आज्ञा से इस ग्रंथ के लेखक (अबुलफ़ज़्ल) ने उसको फ़ारसी की नई पोशाक पहनाई और अयारे-दानिश के नाम से वह ग्रंथ विख्यात हुआ। नल-दमन[3] की प्रेम-कहानी

और फ़ारसी में था; राजा समरसिंह, नीलकंठ आदि ने इसे संस्कृत में किया। इसमें बारह राशियों के अनेक विभाग करके फलाफल निश्चित करने की रीतियां बतलाई गई हैं। जैसे मेष, सिंह और धन, का पित्त स्वभाव और क्षत्रिय वर्ण; कर्क, वृश्चिक और मीन का कफ़ स्वभाव और ब्राह्मण वर्ण इत्यादि। इस ग्रंथ में जो संज्ञाएं आई हैं, वे अधिकांश अरबी और फ़ारसी की हैं; जैसे इक़बाल योग, इंतिहा योग, इत्थशाल योग, इशराक़ योग, ग़ैर क़बूल योग इत्यादि। (श० सा०)

१—'वाक़याते-तैमूर' का फ़ारसी अनुवाद शाहजहां के राजत्वकाल में मीर-अबूतालिब तुर्बती ने किया था (Padshah-namah II, p. 288, edit. Bibl. Indica)।

२—"सन् ६६६ हि० या १५६०—६१ ई० में सम्राट् ने मुझे आज्ञा दी कि मैं कश्मीर के उस इतिहास को सरल फ़ारसी में फिर से लिखूँ, जिसका अनुवाद विद्वद्वर शाह मोहम्मद शाहाबादी ने कश्मीरी भाषा से फ़ारसी में किया था। मैंने इस कार्य को दो मास में समाप्त किया। सम्राट् ने मेरी भेंट को स्वीकार करके राजकीय पुस्तकालय में उसे स्थान दिया। अब वह और पुस्तकों की भांति अपनी बारी पर पढ़ी जाती है" (Badaoni, II, p. 374)।

३—बदायूनी लिखता है कि १००३ हि० में सम्राट् ने फ़ैज़ी को आज्ञा दी कि वह 'पंजगंज' लिखे। पांच महीने के अर्से में 'नल-दमन' की प्रेम-कहानी, जो कि भारतवर्ष में प्रसिद्ध है, उसने ४२०० पद्यों में लिखी और उसको कुछ मोहरों के सहित सम्राट् को भेंट किया। सम्राट् को वह कृति बहुत पसन्द आई। उसकी प्रतिलिपि करने एवं चित्र लगाये जाने की आज्ञा हुई। वह दरबार के पुस्तकालय में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को, जो कि हिन्दी (संस्कृत) भाषा के प्रेमी पाठकों के हृदयों को द्रवित कर देती है, शेख़ फ़ैज़ी फ़ैयाज़ी ने 'लैला मजनूँ', की ध्वनि में पद्य का रूप दिया और उसने नल-दमन के नाम से प्रसिद्धि पाई। जब सम्राट् को नक़्ल के ख़ज़ाने[1] का ज्ञान हुआ तो उसने अभिज्ञ इतिहासवेत्ताओं को आज्ञा[2] दी कि सप्त भूखण्डों

रक्खी गई। नक़ीबख़ां को आज्ञा दी गई कि वह सम्राट् को पढ़कर सुनाया करे। सत्य यह है कि तीन सौ बरस से शीरीं ख़ुसरो के बाद किसी ने भारतवर्ष में ऐसी मसनवी नहीं लिखी (Badaoni, II. p, 396)।

१—ब्लाक्मैन ने 'ख़ज़ानए-नक़्ल' का अनुवाद इतिहास-कोष (Treasure of history) किया है (Blochmann's trans. p. 106); किन्तु शब्दार्थ तथा प्रसंग दोनों के अनुसार अनुवाद-कोष अर्थात् अनूदित ग्रंथों का संग्रह होना चाहिये।

२—जब सन् हिजरी के १००० साल व्यतीत होने को आये, तो सम्राट् ने आज्ञा दी कि एक ऐसा इतिहास लिखा जाय जिसमें १००० वर्ष पूर्व से आज तक के इस्लामी राजाओं का हाल इस रीति से वर्णित हो कि जिससे और इतिहासों की सचाई-झुठाई का पता चल सके, और उसका नाम 'तारीख़-अलफ़ी' (एक हज़ार साल का इतिहास) रखा जाय तथा सनों में हिजरत के स्थान पर रोहलत लिखा जाय। उसमें मोहम्मद साहब की मृत्यु से लेकर आज तक के संसार के हालात निम्नलिखित सात आदमी लिखें:—नक़ीबख़ां फ़तहउल्ला, हकीम हमाम, हकीम अ़ली, हाजी इब्राहीम सरहिन्दी, निज़ामुद्दीन और अब्दुलक़ादिर। दूसरे सप्ताह में पैंतीस साल का वृत्तान्त तैयार हुआ। फिर छत्तीसवें साल का हाल मुल्ला अहमद को लिखने का हुक्म हुआ। उसने धर्मान्धता-वश जैसा जी में आया वैसा लिखा। परन्तु चंगेज़ख़ां तक के वृत्त को लिपिबद्ध कर दिया। इतने ही में उसको मिर्ज़ा फ़ौलाद बर्लास ने मार डाला। शेष हाल ९९७ हि० तक आसफ़ख़ां ने समाप्त किया। १००० हि० में अब्दुलक़ादिर को लाहोर में आज्ञा मिली कि उस इतिहास को नए सिरे से मिलाकर शुद्ध करे और सनों को क्रमबद्ध करे। एक साल तक उसने दो भागों का मिलान किया। शेष दो को आसफ़ख़ां को सौंप दिया। सारांश यह कि इस इतिहास के पहले दो ग्रंथ मुल्ला अहमद ने लिखे, तीसरा आसफ़ख़ां ने, और उनका संशोधन एवं मिलान लाहोर के कातिब मुस्तफ़ी के साथ मुल्ला अब्दुलक़ादिर ने किया (मोहम्मद ज़काउल्ला, तारीख़ हिन्दोस्तान, पृ०६५४)।

"१००० हि० (१५९१-९२ ई०) में मुसलमानों में यह बात फैली हुई थी कि इस्लाम और संसार का ख़ातमा होने जा रहा है। इस लिए बहुत से लोग उठ खड़े हुये और अपने को इमाम मेहदी घोषित करने लगे। मेहदी, ईसा के पुनरागमन से पहले आने वाला था। अकबर के शिष्यों ने इन किंवदन्तियों को दीन इलाही के प्रचार का शुभ लक्षण जाना। 'तारीख़अलफ़ी' भी इसी कल्पना को महत्व देनेवाली मालूम होती है। विशेष विवरण के लिए बदायूनी भाग २ देखना चाहिये। 'तारीख़अलफ़ी' की एक प्रति एशियाटिक सोसायिटी बंगाल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में पिछले एक हज़ार वर्ष के अन्दर जो घटनाएं घटी हैं उनको संग्रह किया जाय। पहले नक़ीबख़ाँ तथा एक दूसरी टोली ने वृत्तान्त-रचना का कार्य आरम्भ किया और ठट्ठा के मौलाना अहमद ने उसका बड़ा भाग तैयार कर दिया। फिर जाफ़रबेग आसफ़ख़ाँ ने उसे समाप्त किया। उसकी भूमिका एक़बाल-नामा के लेखक (अबुलफ़ज़्ल) ने लिखी और उसका नाम तारीख़-अलफ़ी रक्खा[१]।

के पुस्तकालय में है, जिसकी पुस्तक-क्रम-संख्या १६ है। उसमें भूमिका नहीं है। पैग़म्बर मोहम्मद साहब की मृत्यु (८ जून ६३२ ई०) के बाद उमर इब्ने-अब्दुल मलिक (६६ हिजरी, या ७१७-१८ ई०) के शासन तक, जो घटनाएं घटी हैं, उनका इसमें उल्लेख हुआ है। उसमें सनों का हिसाब पैग़म्बर साहब की मृत्यु से लगाया गया है, हिजरत के साल से नहीं। (Blochmann's, trans., p. 106-7, n. 5)।

१—'आईन' में कथित ग्रंथों के अतिरिक्त निम्नलिखित पुस्तकें भी अकबर के सकाश से तैयार की हुई बतलाई जाती हैं, जिनका उल्लेख विभिन्न पुस्तकों में पाया जाता है :—

सिंहासन-बत्तीसी—इसका अनुवाद बदायूनी ने किया था, और 'नामै-ख़िरद-अफ़ज़ा' नाम रक्खा था।

हैवातुलहैवान—अबुलफ़ज़्ल ने इसका भाषान्तर अरबी से फ़ारसी में किया।

किताबुल्-अहादीस—जहाद और तीरन्दाज़ी के पुण्यों के सम्बन्ध में मुल्ला अब्दुलक़ादिर ने यह पुस्तक लिखी थी।

जामे-रशीदी—अरबी के इस बृहद् ग्रंथ में बग़दाद और मिस्र के ख़लीफ़ों की वंशावलियाँ तथा नबियों और पैग़म्बरों के चरित्र हैं, जिनकी शृङ्खला आदम तक पहुँचती है। सम्राट् की आज्ञा से और अबुलफ़ज़्ल के परामर्श से बदायूनी ने फ़ारसी में भाषान्तर किया था।

नजातुलरशीद—निज़ामुद्दीन बख़्शी की आज्ञा से बदायूनी ने यह पुस्तक लिखी थी।

तक़्क़ाते-अकबर शाही—अकबरी शासन-काल की सन् १००० हि० तक की प्रायः सभी आवश्यक घटनाओं का समावेश इस ग्रंथ में हो गया है। इसे निज़ामुद्दीन अहमद ने लिखा है।

सवात उल-इल्हाम—यह फ़ैज़ी की लिखी क़ुरान की ऐसी तफ़सीर (टीका) है, जिसके किसी शब्द में बिन्दी वाला अक्षर नहीं आने पाया है।

मवारिद-उल-कलम—इस ग्रंथ को भी फ़ैज़ी ने ही बेनुक़्त (बिना बिन्दी वाले अक्षरों का) तैयार किया था।

बहरुलइस्मा—यह एक बड़ा ग्रंथ था। इसमें एक लंबी हिन्दुस्तानी कहानी है। पहले कश्मीर के बादशाह ज़ैनुल आबिदीन ने इसका अनुवाद कराया था। फिर अब्दुलक़ादिर ने इसका संशोधन किया।

मरकज़अदवार—इसमें फ़ैज़ी के नल दमन पंचक की एक कहानी है। अबुलफ़ज़्ल ने इसे क्रमबद्ध किया था।

अकबरनामा—इसके तीन भाग हैं। पहले में तैमूर का वंश वर्णन, और दूसरे में अकबर के ४६ वर्ष का शासन-वृत्तान्त है। तीसरा भाग 'आईने-अकबरी' है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्रकारी[1]—शबीहकशी को प्रचलित भाषा में तसवीर कहते हैं। यतः यह कला श्रम और विनोद दोनों का साधन है, इस लिए सम्राट् अपनी युवावस्था

इसका लेखक अबुलफ़ज़्ल अल्लामी है। फ़ैज़ी सरहिंदी का भी एक 'अकबरनामा' है।

कशकोल—उच्च कोटि के ग्रंथों को पढ़ते समय अबुलफ़ज़्ल ने, जो बातें नोट कर ली थीं, उनके संग्रह का नाम कशकोल है।

ज्योतिष—अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना ने ज्योतिष की एक ऐसी पुस्तक लिखी, जिसके प्रत्येक पद्य का एक चरण संस्कृत का और एक फ़ारसी का है।

समरतुलफ़लास्फ़—इसके लेखक अब्दुस्सत्तार ने लिखा है कि मैंने पादरी शोयर से छे महीने यूनानी भाषा सीखी थी। फिर उक्त ग्रंथ का फ़ारसी में अनुवाद किया। इसमें पहले रोम साम्राज्य का प्राचीन इतिहास है और फिर वहां के प्रसिद्ध पुरुषों का जीवन-चरित्र है। इसकी लेखन-शैली अबुलफ़ज़्ल की शैली से मिलती-जुलती है। इसकी एक प्रति 'दरबारे-अकबरी' के लेखक मोहम्मद हुसेन 'आज़ाद' ने पटियाले के मंत्री सैयद मोहम्मद हसन के पुस्तकालय में देखी थी।

ख़ैरुलबयान—इसे पीरतारीकी ने लिखा था। यही व्यक्ति पीछे से पीर-रोशनाई के नाम से प्रसिद्ध हो गया। पेशावर के पहाड़ी प्रदेश के बहावी इसी के अनुयायी हैं।

मआसिररहीमी—अब्दुर्रहीम ख़ानख़ानां की संरक्षता में लिखी गई थी।

१—भारतवर्ष में चित्रकारी का आरम्भ कब हुआ, यह निश्चित नहीं है। पर पुराने ग्रंथों के वर्णनों तथा गुफाओं में पाये गये चित्रों से स्पष्ट है कि यह विद्या यहाँ बहुत प्राचीनकाल से है। इस कला के साहित्य और गुफाओं के भित्ति-चित्रों दोनों पर क्रमशः विचार किया जाता है।

साहित्य—एक पौराणिक कथा से मालूम होता है कि इस विद्या को ब्रह्मा ने एक राजा को उस समय सिखलाया था, जब कि एक ब्राह्मण के पुत्र के मर जाने पर उसके जीवन-दान की आवश्यकता पड़ी थी। प्रार्थना करने पर भी यम ने उसे नहीं छोड़ा था, तब ब्रह्मा ने उसका तद्रूप चित्र निर्मित कर उसे जीवन प्रदान किया था। 'हरिवंश' और 'श्रीमद्भागवत' में लिखा है कि जब बाण-पुत्री उषा श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध के लिए अधीर हुई, तो चितेरिन चित्रलेखा ने कहा था "मैं तुम्हारे प्रियतम का कुल, शील, वर्ण, और निवास कुछ नहीं जानती हूँ, फिर भी बुद्धिबल से मैं प्रभावशाली, कुलीन, शीलवान, रूपवान्, गुणी, और विख्यात देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, मनुष्य, आदि के चित्र बनाऊँगी, तुम उनमें से अपने प्रियतम को पहचान लेना। वह जब सात दिन के बाद चित्र बनाकर लाई, और उषा से कहा, मैंने सबको अविकल चित्रित किया है। तुमने जिसको स्वप्न योग में देखा हो, उसे पहचान लो। उषा ने अनिरुद्ध के चित्र को पहचान लिया। चित्रलेखा उस चित्र के द्वारा अनिरुद्ध को द्वारका से बुला लाई, और उषा की आशा को पूर्ण किया। बौद्धों का 'विनयपिटक' ग्रंथ तीसरी-चौथी शताब्दी ई० पू० का है। उसमें एक राजा के 'चित्रागार' का वर्णन है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के आरम्भ से ही इस पर ध्यान देने लगा, और इसकी उन्नति तथा प्रचार की अभिलाषा करने लगा। फलतः इस अद्भुत कार्य ने समृद्धि प्राप्त की

'बाल्मीकि' रामायण का मूल ग्रंथ भी प्राचीन है, उसमें चित्र, चित्रकारों और चित्रित कमरों का उल्लेख है। भारतीय प्राकृतिक दृश्य-अंकन में कितने निपुण थे, इसका कुछ आभास भवभूति के 'उत्तर-रामचरित' के उस स्थल से मिलता है, जिसमें लक्ष्मण-द्वारा सीता को एक चित्र के दिये जाने का वर्णन है। उसमें बनवास से लेकर अग्नि-परीक्षा तक के चित्रों को स्वाभाविक रूप में अवलोकन कर सीता चकित रह जाती है। 'विश्व-कर्मीय शिल्प-शास्त्र' में लिखा है कि स्थापक, तक्षक और शिल्पी आदि में से शिल्पी को ही चित्र बनाना चाहिये। यद्यपि चित्र-विद्या पर अब प्राचीन ग्रंथ प्रचुर संख्या में नहीं मिलते हैं, परन्तु मध्य-काल में वे अवश्य थे। काश्मीर के राजा जयादित्य की सभा के कवि दामोदर गुप्त ने आज से ११०० वर्ष पूर्व अपने 'कुट्ट-नीमत' ग्रंथ में चित्र-विद्या-विषयक 'चित्र-सूत्र' नामक एक पुस्तक का उल्लेख भी किया है। ईसा की दूसरी शताब्दी में गुणाढ्य ने एक मनोरंजक कथा द्वारा चित्र-कला पर अच्छा प्रकाश डाला है।

'वात्स्यायन' (ईसा की तीसरी शताब्दी) ने अपने से पूर्व के अनेक ग्रंथों के आधार पर अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'कामसूत्र' में चित्रकला के षडङ्गों का इस प्रकार वर्णन किया है :—१. रूपभेद, २. प्रमाणम्, (नाप, गठन और डील-डौल का शुद्ध बोध), ३. भाव, ४. लावण्य योजनम्, ५. सादृश्यम्, ६. वर्णिकाभंग। भारतीय चित्रकारी के इन छहों अंगों के अन्तर्गत प्रायः अन्य सब बातें आ जाती हैं। तिब्बत के इतिहासकार तारानाथ ने सातवीं शताब्दी में अपने ग्रंथ में बौद्धों से सम्बन्ध रखनेवाली चित्रकारी की शैली के विषय में लिखा है कि उक्त चित्र देव, यक्ष और नाग तीन शैलियों के हैं। छठी शताब्दी ई० पू० से तीसरी शताब्दी ई० पू० तक मगध (विहार) में देवशैली के चित्रों का चलन रहा। तारानाथ के मत से देव वे मनुष्य थे जिनको चमत्कारी शक्ति प्राप्त थी। 'विनयागम' तथा अन्य ग्रंथों में लिखा है कि इस वर्ग के दीवारों आदि पर बनाये हुये चित्र इतने सुन्दर थे कि उनके अवलोकन से मूल पदार्थों का धोखा होता था। देवों के आधे गुणों तथा चमत्कारी शक्ति से सम्पन्न व्यक्ति यक्ष कहलाते थे। ये अशोक के समय तीसरी शताब्दी ई० पू० में विद्यमान थे। इनकी कृतियां चमत्कार शक्ति और मानव-चित्रों से परे हैं। नाग-शैली का प्रचार ईसा की तीसरी शताब्दी के आरम्भ में बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन के समय में था। सर्पों के संरक्षण में रहनेवाले लोग नाग कहलाते थे। इन तीनों वर्गों की कृतियों का वर्णन करते हुये उक्त इतिहासकार ने लिखा है कि 'देवों, यक्षों और नागों की कृतियों की मौलिकता के कारण मनुष्य बहुत दिनों तक धोखा खाते रहे।' उक्त विवरण से प्रकट होता है कि उन दिनों चित्र-कला पराकाष्ठा को पहुँच चुकी थी और उसमें 'कामसूत्र' में बतलाये हुये षडङ्गों का समावेश हो चुका था। चीन के पूर्वकालीन कलाकारों ने भी उक्त प्रकार के षडङ्गों का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और चित्रकारों का एक वर्ग विख्यात हो गया। दारोगे और बितक्ची (मोहर्रिर) प्रति सप्ताह चित्रकारों के कामों को सम्राट् के समक्ष लाते हैं। कार्यों की उत्तमता के अनुसार उनको पुरस्कार दिया जाता अथवा वेतन वृद्धि की जाती है। चित्रों की सामग्री पर विशेष ध्यान दिया गया और उनका मूल्य भी

उपयोग किया था, जैसा कि छठी शताब्दी के एक लेखक हसीहृहो (Hsieh Ho) के उल्लेख से पाया जाता है (Percy Brown, Indian Painting, p. 23, 1927)। एक प्राचीन ग्रंथ 'चित्र-लक्षण' है, जिसमें बहुत ही प्राचीन काल की कला के नियमों का निर्देश मिलता है। उसमें चित्र-विद्या धार्मिक-रूप में निरूपण की गई है और बतलाया गया है कि देवताओं और राजाओं की वृहत्काय और ठोस मूर्तियों के चित्र जनता में प्रदर्शित करने के लिए अधिक साधारण नाप के बनाये जायँ। मनुष्यों की उँचाई राजाओं से भी अधिक कम दिखलाई जाय। मुखाकृति चतुष्कोण बनाई जाय और देदीप्यमान् तथा भड़कीले गुणों से सुन्दरता के साथ परिष्कृत की जाय। चित्र त्रिकोण, कुटिल, अंडाकार अथवा गोल न बनाया जाय। देवताओं और राजाओं के शिर के केश कुंचित और उत्तम बनाये जायँ तथा दिव्य नीले रँग से रँगे जायँ। स्त्रियों के चित्र सुडौल और सुघड़ बनाये जायँ, जिससे वे शीलवती और सदाचारिणी जान पड़ें; उनके अङ्गोपाङ्ग एक दूसरे के अनुरूप हों; उनके शरीर युवावस्था के दिखलाई पड़ें। और वे खड़ी दशा के हों। इस ग्रंथ में चित्र-कला-संबन्धी और भी अनेक सूक्ष्म बातों का वर्णन है। उपर्युक्त ग्रंथों के विवरणों से ज्ञात होता है कि उक्त कला पर उच्चकोटि के अनेक ग्रंथ थे, उनमें सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों के चित्रण के नियम थे और चित्रांकन में उनका पालन करना आवश्यक था।

इतिहास और उदाहरण—शैली और कला की दृष्टि से भारतीय चित्रकारी छे भागों में विभाजित हो सकती है—प्रारम्भिक, बौद्धकालीन, मध्यकालीन, मुग़लशैली की, राजपूतशैली की, और नवीन या वर्तमान शैली की।

प्रारम्भिक—इस देश में चित्रविद्या अनिश्चित काल से है, परन्तु इतिहास-काल से पूर्व की चित्रकारी के उदाहरण बहुत कम हैं। मध्यभारत की कैमूर पर्वत-श्रेणी की गुफाओं की दीवारों पर शिकार-सम्बन्धी कुछ टेढ़े-मेढ़े दृश्य हैं। इसी प्रकार विन्ध्याचल की गिरि-माला में भी चित्रकारी के नमूने मिले हैं। मध्यप्रदेश के रायगढ़ राज्यान्तर्गत सिंहनपुर गांव के समीप बलुआ पत्थर की चट्टानों की गुफाओं में, जो लाल रँग के चित्र मिले हैं, वे बहुत ही प्राचीन काल के मालूम होते हैं। उनमें मनुष्यों और जीवधारी पशुओं के आलेख्य हैं, जो अनुमान से मिस्र की चित्रलिपि के द्योतक प्रतीत होते हैं। एक हाथी, एक बारहसिंगे और एक शशक का चित्रण कलापूर्ण है और उनके कार्यों में अद्भुत जीवन है। आखेट के एक दृश्य में मनुष्यों की एक टोली एक जंगली भैंसे पर झपट रही है और उसे घायल कर रही है। उसी दीवार के एक और चित्र में एक भैंसा बर्छों की मार से घायल होकर पीड़ा के कारण सिसक रहा है। शिकारी उसे घेरे हुये प्रसन्न हो रहे हैं। इन चट्टानों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नियत हो गया। रँग-भराई ने नवीन विलक्षणता प्राप्त की और सफ़ाई में नई छटा प्रदर्शित होगई। ऐसे उत्तमोत्तम गुणवान् चित्रकार पैदा होगये हैं, जिनके काम जगद्विख्यात बेहज़ाद के अद्भुत आलेख्यों तथा यूरोपियनों के विलक्षण चित्रों की बराबरी करते हैं। कार्य-लालित्य, चित्र की सफ़ाई,

---

की तराई में पत्थरों के औज़ार भी पाये गये हैं, जिनको देखकर अन्वेषकों ने अनुमान लगाया है कि वे चित्र पाषाण-युग के हैं। मिर्ज़ापुर ज़िले की गुहावली में भी मृगया-चित्र हैं। गैंडा और साँभर आदि का अहेर के लिए पीछा किये जाने का चित्रण नितान्त मौलिकता से हुआ है। पर्सीब्राउन के मतानुसार मिर्ज़ापुर और रायगढ़ की गुहावलियों के चित्रों का अभी ठीक-ठीक अनुसंधान नहीं हो सका है। इनके अन्वेषण होजाने पर भारतवर्ष की केवल आलेख्य-कला की प्राचीनता का ही पता नहीं लगेगा, प्रत्युत् प्राच्य दिशा में मानव-जाति के प्रारम्भिक इतिहास पर भी प्रकाश पड़ेगा (Ibid, pp. 15-16)।

जिन चित्रों का समय निर्णीत हो चुका है, उनमें सब से प्राचीन मध्य-प्रदेश के सरगुजा राज्य के अन्तर्गत रामगढ़ पहाड़ी की जोगीमारा गुफा की दीवारों के चित्र हैं। वे ईसवी सन् के पूर्व पहली शताब्दी के अनुमान किये जाते हैं। चित्रों में स्थापत्य, पशु और आकृतियों का अंकन हुआ है। यद्यपि उनमें से कुछ चित्र ख़राब होगये हैं तथापि वे अपने समय के अन्य चित्रों के अनुरूप मालूम होते हैं। जिस घटना या कल्पना से इन चित्रों का सम्बन्ध है उसके विषय का स्पष्टीकरण अभी तक नहीं होसका है। इस गुहावली की अन्य कन्दराओं में भी चित्र रहे होंगे, किन्तु भारतीय जल-वायु के प्रभाव के कारण वे नष्ट होगये हैं (Ibid, p. 17)।

बौद्धकालीन—अक्षरों की अपेक्षा चित्रों का प्रभाव मनुष्य के हृदय पर शीघ्र पड़ता है। इसलिए बौद्ध-धर्म के शीघ्र प्रचार के लिए धर्म-सम्बन्धी चित्रों से बढ़कर उन दिनों और कौन साधन हो सकता था। अतः धर्मेच्छु चीन सम्राट् मिंगती के निमन्त्रण पर सन् ६७ ई० में जब बौद्ध धर्माचार्य कश्यपमदुंग वहाँ गया तो भारतीयकला-संबन्धी और वस्तुओं के साथ-साथ चित्र भी ले गया। उसने वहाँ की राज-सभा में धार्मिक शिक्षा दी और चित्रों का महत्व भी बतलाया। परिणामस्वरूप उस समय से वहाँ इस कला का प्रचार हुआ। फिर शनैः शनैः यह कला धर्म के प्रचार के साथ-साथ बौद्ध भिक्षुओं द्वारा जावा, स्याम, बर्मा, नेपाल आदि में पहुँची। जापान में बौद्ध-धर्म का प्रवेश, कोरिया होकर, छठी शताब्दी में हुआ। तिब्बत में यह धर्म सातवीं शताब्दी के लगभग फैला। इन सब स्थानों में धर्म के साथ-साथ यह कला भी फैलती गई। जैसे चीन इस दिशा में भारत का ऋणी है, उसी प्रकार ईरानी चित्रकला चीनी सभ्यता की ऋणी है। ईरानी चित्रकला का कोई भी चित्र १२७६ ई० से पहले का नहीं मिला है (Mehta, Cat. of A. I. F. A. Ex. Lucknow, 1925, p. 4)। परन्तु चीनी तुर्किस्तान के खुतन प्रदेश, दनदनयूलिक और मीरन स्थानों में दीवारों, काष्ठफलकों और रेशम आदि पर जो चित्र मिले हैं, वे चौथी से ग्यारहवीं शताब्दी के आसपास के अनुमान किये जा सकते हैं। ये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हाथ की स्थिरता तथा अन्य गुणों ने अलौकिकता का पद प्राप्त किया है और प्राणहीन पदार्थ जीवधारी मालूम होने लगे हैं। सौ से अधिक चित्रकार इस कला में अग्रगण्यता के पद पर पहुँच चुके हैं और उनके नामों की बहुत ख्याति हो चुकी है। वे लोग जो अपनी मंज़िल के नज़दीक पहुँच चुके

चित्र भी भारत के, बौद्धकालीन चित्रों से मिलते हैं। इस प्रकार भारतवर्ष ने एक बार लगभग समस्त एशिया को इस कला की शिक्षा दी थी। उसी शिक्षक देश की कला के बचे-खुचे उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:—

सन् ५० ई० से ७०० ई० तक, अजंटा (हैदराबाद राज्यान्तर्गत औरंगाबाद ज़िले के फ़र्दापुर गांव से दक्षिण-पश्चिम दिशा में ४ मील की दूरी पर), सिगरिया (लंका में) और बाघ (ग्वालियर राज्य के अमझेरा ज़िले में) में पहाड़ काट कर और गुफ़ाएं बनाकर उनकी दीवारों, भीतरी छतों और खंभों पर जो चित्र बनाये गये हैं, बौद्धकालीन चित्रकारी के अन्तर्गत माने जाते हैं।

अजण्टा की गुफाएं सेकड़ों वर्ष पर्यन्त विकट जंगल और पर्वतों में छिपी रहीं। १८१९ ई० में अकस्मात् यूरोपियनों को उनका पता लगा। १८७९ ई० में कन्दराओं की संख्या २९ थी और उनमें से १६ में थोड़ी-बहुत चित्रकारी थी। औरों में भी ऐसे चिन्ह अवशिष्ट थे, जिनसे अनुमान होता था कि वे भी पहले उसी प्रकार चित्रित थीं। समय के फेर से १९१० ई० में केवल ६ गुफाएं ही ठीक-ठीक चित्रित पाई गईं और वे पहली, दूसरी, नवीं, दसवीं, सोलहवीं और सत्तरहवीं गुफाएं हैं। यद्यपि अजण्टा के चित्रों की प्रत्येक शाखा का ठीक-ठीक निर्णय अभी नहीं हो पाया है तथापि अनेक विद्वानों के मतानुसार उनके बनने का क्रम और समय इस प्रकार माना गया है:—नवीं और दसवीं गुफा—लगभग पहली शताब्दी में, दसवीं गुफा के खम्भे—लगभग ३५० ई० या उसके बाद; सोलहवीं और सत्तरहवीं गुफा—लगभग ५०० ई०; पहली और दूसरी गुफा—लगभग ६२६ से ६२८ ई० तक (P. Brown, Indian painting, pp. 29-30)।

इन कन्दराओं में लगभग २४ विहार या मठ और ५ चैत्य या स्तूपवाले विशाल भवन बने हैं, जिनमें से तेरह की दीवारों आदि पर चित्र हैं। चित्र-लेखन के पहले दीवारों पर प्लास्टर लगाकर चूने जैसे किसी पदार्थ की घुटाई की गई है। ओझा, म. भा. सं., पृ० १८४)। चित्रों में गौतम बुद्ध के जीवन की घटनाएं, मातृपोषक जातक, विश्वांतर जातक और महाहंस जातक आदि बारह जातकों में वर्णित बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाएं, धर्म-सम्बन्धी ऐतिहासिक घटनाएं, युद्ध के दृश्य, राजकीय तथा लौकिक चित्र, बन, उपबन, रथ, राज-दरबार, घोड़े, हाथी, हरिण आदि पशु, हंस आदि पक्षी और कमल आदि पुष्प हैं। इन सबको देखने से दर्शक की आंखों के सामने एक ऐसे नाटक का सा दृश्य उपस्थित हो जाता है, जिसमें जंगलों, शहरों, बग़ीचों और राजमहलों आदि स्थानों में राजा, वीर पुरुष, तपस्वी, प्रत्येक स्थिति के स्त्री-पुरुष और स्वर्गीय दूत, गंधर्व, अप्सरा और किन्नर आदि पात्र-रूप से हैं (वही)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और वे जो आधी यात्रा समाप्त कर चुके हैं, बहुत ज्यादा हैं। हिन्दुस्तान के लिए मैं क्या कहूँ, जैसी चित्रकारी यहाँ होती है, उसका चित्र भी कभी ध्यान में नहीं आया था; वास्तव में संसार के महाद्वीपों में से विरले ही चित्र-कला में उसकी बराबरी कर सकते हैं।

इन चित्रों का काल-निर्णय इस प्रकार से किया गया है। इतिहासकार तबरी ने लिखा है कि ईरान के बादशाह ख़ुसरोपरवेज़ द्वितीय के छत्तीसवें (६२६ ई०) वर्ष में उसका दूत राजा पुलकेशी के पास पत्र और भेंट लेकर आया, और पुलकेशी का दूत पत्र और उपहार लेकर ख़ुसरो के पास गया (P. Brown, ibid, p. 35)। इस घटना का चित्रण पहली गुफा में इस प्रकार से हुआ है:— राजा सिंहासन पर तकिए के सहारे बैठा हुआ है। सिंहासन के आगे चौकियों पर पानदान आदि पात्र रक्खे हैं, और एक ओर पीकदान पड़ा हुआ है। राजा के शिर पर मुकुट, गले में बड़े-बड़े मोती और माणिकों की एक लड़ की कंठी और उसके नीचे जड़ाऊ कंठा है। दोनों हाथों में बाज़ूबन्द और कड़े हैं। यज्ञोपवीत के स्थान पर पचलड़ी मोतियों की माला है। उसमें ग्रंथि के स्थान पर पाँच बड़े मोती हैं। कमर में रत्न-जटित मेखला है। कपड़ों में आधी जाँघ तक की कछनी है शेष शरीर नग्न है। उसके आस-पास पंखा और चँवर करने वाले पुरुष और स्त्रियाँ हैं। राजा के सम्मुख बाईं ओर तीन पुरुष और एक लड़का मोतियों के आभूषण पहने हुये बैठे हैं। दरबारियों के शरीर पर आधी जांघ तक की कछनी को छोड़कर कोई अन्य वस्त्र नहीं है। किसी के दाढ़ी-मूँछ भी नहीं है। स्त्रियों का शरीर केवल कमर से आधी जांघ या उससे नीचे तक का हिस्सा कपड़े से ढ़का हुआ है। शेष अंग नग्न है। किसी-किसी के स्तनों पर पट्टी बँधी हुई है। ईरानी राजदूत कई लड़ वाली मोतियों की माला, राजा के सम्मुख खड़ा होकर, भेंट कर रहा है और राजा उससे कुछ कह रहा है। उसके पीछे दूसरा ईरानी बोतल जैसी कोई चीज़ लिये हुये और उसके पीछे तीसरा ईरानी तोहफ़े की चीज़ों की कश्ती लिये हुये खड़ा है। इसी प्रकार ईरानियों और घोड़ों के भी चित्र हैं। ईरानियों के शिर पर ऊँची ईरानी टोपी, कमर तक अँगरखा, चुस्त पायजामा और किसी-किसी के पैर में मोज़े हैं; पर दाढ़ी मूँछ सब के हैं। ईरानी राजदूत के गले आदि में मोतियों के आभूषण हैं। अन्य ईरानी बिना ज़ेवर के हैं। फ़र्श पर सब जगह फूल बिखरे हुये हैं (J. Griffiths, Paintings of Ajanta, plate no. 5, 1897)। इससे सिद्ध है कि ये चित्र ६२६ ई० के बाद के हैं।

अजंटा के चित्र वास्तव में आलेखन-कला मर्मज्ञों के बनाये हुये हैं क्योंकि उनमें अंगोपांगों की अनुरूपता, उनका विन्यास, चेहरों का रंग और कटाव, केश-पाश, छबि, मुख-मुद्रा वस्त्राभरण, भावभंगी आदि का चित्रण नितान्त स्वाभाविक ढंग का हुआ है। कई चित्र तो मानसिक दशा तक को प्रकट कर रहे हैं। मृत्यु-शैय्या पर पड़ी हुई एक रानी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस विद्या के राजमार्ग के अग्रसरों में निम्नलिखित व्यक्ति हैं :— १. मीर सैयदअ़ली तबरेज़ी—उसने इस कला की कुछ शिक्षा अपने पिता से प्राप्त

उसकी दशा पर शोकातुर कुटुम्बी एवं व्यग्र तथा चिंतातुर दासियों के चित्र की प्रशंसा करते हुये मि० ग्रिफ़िथ ने लिखा है कि करुणारस और अपना भाव ठीक-ठीक प्रदर्शित करने में, चित्र-कला के इतिहास में, इससे बढ़कर कोई चित्र नहीं मिल सकता।

अजंटा की नवीं और दसवीं गुफ़ाओं के चित्रों को देखने से अनुमान होता है कि उनके बनाने वालों ने अमरावती, सांची, और भरहुत के स्तूपों की शिलाओं पर अंकित जातकों एवं गांधार शैली के तक्षणकला के नमूनों को ध्यान से अध्ययन किया होगा, क्योंकि उनमें और इनमें कला-सम्बन्धी बहुत कुछ साम्य पाया जाता है (P. Brown, ibid, p. 32)।

सिगरिया (सीलोन) के भित्ति-चित्र कश्यप प्रथम (४७९ ई०—९७ ई०) के राजत्वकाल के निर्मित समझे जाते हैं। इनमें और अजंटा की सोलहवीं और सत्तरहवीं गुफा के कुछ चित्रों में साधारण सादृश्य भी है। चित्र अव्यवस्थित ढंग से कटी हुई दो चट्टानों के कमरों की दीवारों पर हैं। इनमें बीस स्त्रियां हैं, जिनके मोटी जाँघ से ऊपर के भाग का अर्थात् तीन-चौथाई शरीर का प्रदर्शन हुआ है। बौद्धों के मतानुसार ये चित्र कश्यप की रानियों के हैं। कोई-कोई चित्र अकेले हैं और कोई-कोई दो-दो। दो वालों में एक चित्र स्वामिनी का और दूसरा सेविका का मालूम होता है। ये चित्र किसी धार्मिक बात को प्रदर्शित नहीं करते।

बाघ (ग्वालियर) अजण्टा से १५० मील की दूरी पर है। देखने से मालूम होता है कि ९० वर्ग फीट के कमरे की भीतरी छतों, खम्भों और दीवारों पर चित्र थे, किन्तु अब वे बिगड़ी दशा में शेष रह गये हैं। ये चित्र विशेषतर लौकिक बातों के द्योतक हैं। एक चित्र में एक संगीत-सम्बन्धी नाटक का दृश्य है, जो कि बड़ी स्वतन्त्रता के साथ खेला जा रहा है।

कुछ दिन हुये जब एक और मन्दिर की चित्रकारी का पता लगा है। ये चित्र पड्डूकोटा से ९ मील पश्चिमोत्तर दिशा में सित्तननवासल में पहाड़ काटकर बनाये हुये एक मन्दिर की छतों, स्तम्भों और किनारों पर चित्रित मिले हैं। वे सातवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल के पल्लव शासक राजा महेन्द्रवर्मा (प्रथम) के समय के अनुमान किये जाते हैं। मुख्य चित्र बरामदे की छत में है। उसमें कमलों से भरा हुआ एक सरोवर है, जिसमें फूलों के बीच में मछलियां, हंस, भैंसे और हाथी हैं तथा कमलों को हाथ में लिये हुये तीन साधु हैं। उन साधुओं की अंगानुरूपता, रंग और मुख-मधुरता देखते ही बनती है। अर्द्धनारीश्वर, गंधर्वों तथा अप्सराओं के भी चित्र हैं (ओझा, वही)।

इनके अतिरिक्त फ़ाहियान ने ४०० ई० के लगभग कपिलवस्तु के एक महल में उत्तम चित्र देखा था, जिसमें बुद्ध सफ़ेद हाथी पर सवार होकर अपनी माता की ओर जा रहा था। इसी प्रकार पश्चिमोत्तर भारत के एक विहार को देखकर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की थी। जब से उसको सम्राट् के दरबार में प्रवेश होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, सम्राट् की कृपा-कांति से द्युतिमान् होकर अपने उद्योग में ख्यातनामा

ह्वेनसाँग (६२९—६४५ ई०) चौंक उठा था, क्योंकि उसके दरवाज़े, खिड़कियां और भित्ति-पटल सब के सब उत्तम चित्रों से परिष्कृत थे। अब इन चित्रों का पता नहीं है। कदाचित् ऐसे ही और भी स्थानों में चित्र रहे होंगे, जिनका अब कोई चिन्ह शेष नहीं है।

इतिहासकार तारानाथ के उद्गारों से प्रतीत होता है कि तीसरी शताब्दी से पहले की भारतीय चित्रकला और भी अधिक उत्कृष्ट थी। उसके पश्चात् तीन शैलियों की तीन चित्रशालाएं बन गईं; एक मध्य भारतीय, दूसरी पश्चिमीय और तीसरी पूर्वीय। मध्य भारतीय चित्रशाला वर्तमान युक्तप्रान्त में ही रही होगी। उसका संस्थापक मगध-जन्मा बिम्बसार था, जो कि चित्रकार और मूर्तिकार दोनों था। वह लगभग पाँचवीं-छठी शताब्दी के शासक राजा बुद्धपक्ष के समय में था। तारानाथ के लेखानुसार इस चित्रशाला के चित्रकार बहुत थे और इनकी कृतियाँ पूर्वकालीन देव निर्मित चित्रों के सदृश थीं। इससे सिद्ध है कि बिम्बसार ने अपने से दस शताब्दी पूर्व की पुरानी कला को जीवित किया। अनुमानतः पश्चिमीय चित्रशाला राजपूताना में थी। उसका प्रधान कार्यकर्ता मारवाड़-जन्मः श्रङ्गधर था जो उदयपुर के शासक शीलादित्य गुहिल (७वीं शताब्दी) के समय में विद्यमान था। इस चित्रशाला के चित्र यक्षशैली से बहुतांश में मिलते हैं। पूर्वी चित्रशाला के मुख्य कलाकार धीमान और उसका पुत्र बितपालो थे, जो वारेन्द्र (बंगाल) के राजा धर्मपाल और देवपाल (नवीं शताब्दी) की अध्यक्षता में काम करते थे। इस चित्रशाला की शैली नागशैली के अनुरूप थी। धीमान और वीतपाल भास्कर-शिल्प और धातु-क्रिया में भी निपुण थे। छठी से दसवीं शताब्दी तक कश्मीर, नैपाल, बर्मा और दक्षिण भारत में भी सहायक चित्रशालाएं स्थापित हुई थीं, परन्तु तारानाथ के मत से वे शालाएं उपर्युक्त तीनों चित्रशालाओं की कृतियों से ही प्रेरित हुई थीं (P. Brown, ibid, p. 41)।

मध्यकालीन—७०० ई० से १६०० ई० तक की चित्रकारी का वर्णन इसके अन्तर्गत है। ६४८ ई० में हर्ष की मृत्यु के पश्चात् अकबर के राजत्वकाल में १५७० ई० तक, भारतीय चित्रकला की शृङ्खला, कुछ टूटी-फूटी दशा में प्राप्त होती है। इस १००० वर्ष के अन्तर के भी कुछ नमूने हमारे सामने हैं, जिनमें बारहवीं शताब्दी के आस-पास बंगाल के ताड़-पत्रों पर बनाये हुये चित्र, बारहवीं शताब्दी में निर्मित ब्राह्मणशैली के इलोरा के चित्र, १५वीं शताब्दी के जैन-पुस्तकों के चित्र, और कुछ विभिन्न नमूने हैं। वास्तव में इस दीर्घकाल में बड़े-बड़े राजनैतिक और धार्मिक परिवर्तन हुये, जिनके कारण देश में हलचल मची रही। हिन्दू शासकों के सामने राज्य-रक्षा का प्रश्न मुख्य था और कलाओं का संरक्षण और उनकी उन्नति इत्यादि का प्रश्न गौण रूप में था। धार्मिक रोक के कारण अकबर से पूर्ववर्ती मुसलमान शासकों को इस कला में कोई विशेष अभिरुचि नहीं थी। इसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होगया और विशेष सफलता प्राप्त की। २. ख़्वाजा अब्दुस्समद शीरींक़लम—वह शीराज़ का रहने वाला है। यद्यपि वह इस विद्या को नौकर होने के

लिए कदाचित् चित्र कम बन सके। उक्त बातों के होते हुये भी यदि चित्र बने हों तो वायु-जल के दोष से वे मिट गये होंगे अथवा विरोधी मतावलम्बियों ने नष्ट कर दिये होंगे (Ibid, pp. 43-44)। उस समय के भास्कर-शिल्प के उत्तमोत्तम नमूने एलीफ़ैन्टा, इलोरा, जावा के बोरोबदूर तथा इण्डोचीन के अङ्गकोरवाट के मन्दिरों में आज भी देखे जा सकते हैं।

इस बीच में भारतीय सभ्यता और चित्रकारी बाहर फैली। चीनी तुर्किस्तान का खुतन प्रदेश एक समय सम्पन्न था और भारतवर्ष के अधीन था। पहली शताब्दी में वह ग्रीक (यूनानी), भारतीय, ईरानी और चीनी सभ्यता सम्मेलन का केन्द्र था। जल-धाराओं के सूख जाने के कारण यह प्रदेश रहने के योग्य नहीं रहा। वर्षों से पड़े हुये यारक़न्द और तरीम के इस बेसिन की खुदाई ग्रूएनवेडेल, स्टीन और लेकाग (Gruenwedel, Stein and Lecog) की देख-रेख में हुई। उस बालुकार्णव के अन्दर से कला की जो बची खुची वस्तुएँ निकली हैं, उनमें भित्ति-चित्र, सचित्र हस्तलिखित ग्रंथ, चित्रांकित झंडे, रेशम पर बनी हुई रंगीन चित्रकारी, और कटे हुये फूस तथा चूना मिले हुये वनस्पति तन्तुओं एवं संगमर्मर के चूरे, पत्थर और लकड़ी की बनी हुई मूर्तियाँ मिली हैं। यह सामग्री ८वीं से ११वीं शताब्दी तक की अनुमान की जाती है। उक्त वस्तुओं के अवलोकन से उन पर हिन्दू, यूनानी, चीनी और सासानी सभ्यताओं का प्रभाव जान पड़ता है, परन्तु औरों की अपेक्षा उनमें अजण्टा के चित्रों में अधिक साम्य है। ११वीं शताब्दी में मगध और तिब्बत में विशेष धार्मिक सम्बन्ध था। इसलिए दोनों देश चित्रकला में प्रायः एक ही शैली का उपयोग करते थे। इसके अतिरिक्त तिब्बत में बौद्धधर्म का प्रचार ७वीं शताब्दी में ही हो चुका था। इसलिए वहां उक्त धर्म-सम्बन्धी साहित्य और कला अनुकूल वातावरण पाकर ख़ूब फैली। तिब्बत के चैत्य और विहार अजण्टा की दीवारों आदि के चित्रों के समान चित्रित हैं। उनमें कुछ चित्र पुरानी शैली के भी हैं। वहाँ की ध्वजाओं में भी साम्य है।

१२वीं शताब्दी की उल्लेखनीय कला में इलोरा के चित्र हैं, जो घटनामूलक और वीरतासूचक हैं। चित्रों में सिपाही कच्छी घोड़ों पर सवार हैं और कुछ सैनिक पैदल भी हैं। उनकी बड़ी-बड़ी मूँछें हैं, और ऊपर चढ़ी हुई दाढ़ी हैं। सैनिक लंबे-लंबे डग रखते हुये आगे बढ़ रहे हैं। शत्रु-सेना के सिपाही बिना दाढ़ी के हैं, जो पराजित होने पर युद्ध बन्द करने को कह रहे हैं। प्रमार राजा, जो पहले हाथी के ऊपर से लड़ रहा था, पालकी पर आता है। उसके सामने योद्धा पंक्ति बाँधकर चलते हैं। एक ओर एक दूसरी सेना स्थित है, और रास्ते में महिलाएँ मंगल-सामग्री लिये खड़ी हैं। पराजित शत्रु भी उपस्थित है। सब चित्र रंगीन हैं। इनकी शैली अजण्टा और राजपूत-मुग़ल शैली के बीच की कड़ी मालूम होती है (Ann. Re. Arche. Dept. of H. E. H. the Nizam's Dominion, 1337 F., 1927-28, Plates D. E.)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पहले से जानता था तथापि राजकीय दृष्टि-रसायन से उसकी योग्यता का पद उच्च हो गया। उसकी कृत्रिमता वास्तविकता में परिणत होगई और

चित्रों में जीवन है, और वे भाव-पूर्ण हैं। वीर सैनिक भीमकाय हैं। उनके चेहरे भरे हैं। वे कवच और गोल ढालें धारण किये हुये हैं। उनके शरीर से प्रचण्डता प्रदर्शित हो रही है। घोड़े मानों उड़ा चाहते हैं। हाथी और घोड़े लड़ाई में व्यस्त हैं। पराजित राजा घबराया हुआ है। ये चित्र राजा उदयादित्य की विजय से सम्बन्ध रखते हैं। ११३८ ई० में जब मालवा का राजा भोज वीरगति को प्राप्त हुआ तो उसके भतीजे उदयादित्य ने अपने चचा के शत्रुओं को अधीन करके "दक्षिणवालों को पराजित किया और अर्वली (अर्बुदाचल) पहाड़ तक अपना राज्य स्थापित किया। मेरी समझ में इसी विजय की यादगार में कुछ चित्र इन्होंने इलोरा के गुहा-मंदिरों में बनवाये, जिनमें राजा के चित्र के ऊपर 'प्रमार' लिखा हुआ है।" (जायसवाल 'द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ' में)। चित्र की पूरी इबारत "स्वस्ती स्रि प्रमारराज" (स्वस्ति श्री प्रमारराज) है। भोजराज प्रमार वंश के थे, उपर्युक्त पंक्ति उन्हीं के पूर्वज के नाम से तत्कालीन विजेता राजा को सूचित कर रही है।

इसके पश्चात् इस्लामी राज्य स्थापित होने के बाद से ३०० वर्ष तक के कोई विशेष चित्र नहीं पाये जाते।

मुग़लकालीन—मुग़लों से पहले के मुसलमान शासकों ने धार्मिक निषेध के कारण चित्रकला को नितान्त प्रोत्साहन नहीं दिया। १४वीं शताब्दी में फ़ीरोज़ तुग़लक़ ने अपने महल की दीवारों पर तक चित्र बनाने की मनाही कर दी थी। इसके विरुद्ध मुग़ल शासक आरम्भ से ही इस कला के प्रेमी रहे हैं। तैमूर के पुत्र शाहरूख़ मिर्ज़ा, उसके वंशज बायसंग़र मिर्ज़ा एवं हिरात के हुसेन बायक़रा को इस कला में अभिरुचि थी। पिछले शासक के दरबार में ही प्रसिद्ध चित्रकार बेहज़ाद (१४८७-१५२४ ई०) था। चीनी और ईरानी शैली ने उसके हृदय में सम्मिश्रण का अच्छा स्थान पाया था (Ishwari Prasad, History of Muslim Rule in India, p. 764, 1930)।

बाबर कला और सौन्दर्य का उपासक था। उसे उमड़ते हुये सोतों, बहते हुये झरनों तथा खिले हुये फूलों को देखकर अपूर्व आनन्द प्राप्त होता था। मालूम नहीं होता कि उसने चित्रकला की उन्नति के लिए कोई यत्न किया था, किन्तु अलवर की 'तुज़ुकबाबरी' की हस्तलिखित पुस्तक से प्रकट होता है कि पूर्वजों के समान उस (बाबर) के संरक्षण में भी चित्रकार कार्य करते थे। उक्त ग्रंथ के चित्रों से उसके शासन की प्रचलित चित्र-शैली का भी अनुमान किया जा सकता है (L. Binyon, Court Painters of the Grand Moghals, Intro. p. 14)। बाबर कला-पारखी भी था। उसने उस समय के प्रसिद्ध चित्रकार कमालुद्दीन बेहज़ाद की कला की आलोचना करते हुये लिखा था कि "चित्रकारों या नक़्क़ाशों में उस्ताद बेहज़ाद था। वह बहुत ही सुन्दर चित्रकार था, किन्तु नए दाढ़ीरहित चेहरे अच्छे नहीं खींच पाता था। गर्दन बहुत बड़ी बनाता था। दाढ़ी वाले चेहरों का चित्रण बहुत ही अच्छा करता था।"

हुमायूँ को भी इस कला में अनुरक्ति थी। परन्तु उसकी सारी उम्र चढ़ाइयों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसकी शिक्षा से उसके शिष्य दक्ष होगये। ३. दसवंथ—यह एक कहार का पुत्र है। यह लड़का इस कारख़ाने में लगा रहता था और चित्रकारी

और धावों में बीती, इससे वह किसी स्थान पर स्थित नहीं हो सका और इस कला के सम्बन्ध में कोई विशेष उन्नति नहीं कर सका। उसने ख़ुरासान के सब बाग़-बाग़ीचों को घूम-घूम कर देखा था। साथ ही फ़ारस के संगीत और काव्य का भी ज्ञान प्राप्त किया था। उन्हीं दिनों उसने शाह तहमास्प के उदार संरक्षण में स्थापित चित्र शालाओं तथा शिक्षणालयों का निरीक्षण किया था, और शीराज़ में मीर सैयदअ़ली तबरेज़ी (इसका उपनाम जुदाई था। द्वितीय ग्रंथ में कवियों के प्रकरण में २५वें नम्बर पर इसकी कविता का नमूना दिया हुआ है) और ख़्वाजा अ़ब्दुस्समद से उसकी भेंट हुई थी। १५५० ई० में उसने दोनों चित्रकारों को अपने काबुल के दरबार में बुला लिया। यहां उसने तथा उसके अल्पवयस्क पुत्र अकबर ने उपर्युक्त दोनों चित्रकारों से आलेखन-कला-सम्बन्धी शिक्षा ग्रहण की। यहीं उसने मीर सैयदअ़ली को 'दास्ताने-अमीरहमज़ा' के चित्र बनाने की आज्ञा दी। इस कार्य को मीर सैयदअ़ली और ख़्वाजा अ़ब्दुस्समद तथा कई ईरानी और हिन्दुस्तानी चित्रकारों ने कई वर्ष में समाप्त कर पाया था। भारतवर्ष में मुग़लकालीन चित्रकारी का श्रीगणेश यहीं से होता है और इसी ने आगे चलकर अकबर के समय में ख्याति प्राप्त की (Edwardes & Garrett, Mughal Rule in India, p. 315)।

अकबर अपने जीवन के पहले भाग में तो अन्तःपुरीय संरक्षण से मुक्त होने और उज़बेग अमीरों से छुटकारा पाने तथा अपनी शक्ति को दृढ़ करने में लगा रहा। इधर मीर सैयदअ़ली 'अमीरहमज़ा' के चित्र बनाने में संलग्न रहा। जब वह मक्का जाने लगा तो उक्त कार्य का दायित्व ख़्वाजा अ़ब्दुस्समद को सौंप गया। सुलेखाचार्य होने के कारण उसको 'शीरींक़लम' (मधुरलेखनी) की उपाधि मिली थी (द्वितीय ग्रंथ में मंसबदार नं० २६६ का जीवन चरित्र देखिये)। जहांगीर के शब्दों में 'उन दिनों उसके जोड़ का कोई चित्रकार नहीं था।' 'अमीरहमज़ा' के चित्र तबरेज़ के प्रचलित चित्रों के सदृश थे। उनमें भारतीयता की झलक नहीं थी। परन्तु १५६२ ई० में संगीत-सम्राट् तानसेन के आने पर, जो चित्र खींचा गया था, उससे प्रकट होता है कि उस समय हिन्दू और मुग़ल-शैलियों का निर्दिष्ट मिश्रण प्रदर्शित होना आरम्भ हो गया था (P. Brown, Indian Painting under Mughals, p. 61)। परन्तु जब भारतवर्ष के एक विशेष भाग पर अकबर का अधिकार हो गया, और उसके उत्तराधिकारी सलीम का जन्म भी हो चुका तो उसने शाहज़ादे के जन्मोपलक्ष में १५६९ ई० में फ़तहपुर-सीकरी का निर्माण-कार्य आरम्भ कराया; उसी मिती से मुग़लशैली की कला का जड़ जमना शुरू हुआ। शाही इमारतों के चित्राङ्कन के लिए उक्त ख़्वाजा की अध्यक्षता में सौ से अधिक ईरानी और हिन्दुस्तानी चित्रकार नियत किये गये। दोनों स्थानों के चित्रकार पृथक्-पृथक् कार्य करते थे, परन्तु १५७० ई० से १५८५ ई० तक दीवारों के आलेखन में पारस्परिक सम्बन्ध

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सीखने की लालसा से दीवारों पर चित्र बनाया एवं आकृतियाँ खींचा करता था। एक दिन सम्राट् की दूर दृष्टि उस पर पड़ी। उसने उसमें उस्तादी

तथा पूछगछ ने इण्डो-पर्शियन (हिन्दु-स्तानी-ईरानी) नामक एक नवीन शैली को जन्म दिया (Ibid)।

अकबर के १७ प्रधान चित्रकारों में १३ हिन्दू थे। मुसलमानों में ख़्वाजा के बाद फ़रुख़ क़लमाक़ था, जो १५८५ ई० में दरबार में प्रविष्ट हुआ था। ख़ुसरो क़ुली, जमशेद तथा पांच अन्य चित्रकार कश्मीर के थे। हिन्दुओं में बसावन, लाल, और दसवंथ (मृत्यु १५८४ ई०) मुख्य थे। केशव, मुकुन्द, हरिवंश आदि अधिकतर कायस्थ, चितेरा, सिलावट और खाती जाति के थे। प्रधान चित्रकार ढाँचा बना देता था, फिर जो चित्रकार जिस भाग के बनाने में पटु होता था, वही उसके बनाने पर तैनात किया जाता था। 'रज़्म-नामा' के चित्रों के बनाने में इस नियम का पालन किया गया था। पहले उक्त कार्य दसवंथ, बसावन और लाल को सौंपा गया। उन्होंने अपना काम पूरा करके स्पष्ट अवयवों की रचना का कार्य अपने साथियों से करवाया था। चित्रशाला के अन्तर्गत एक अलंकृत करने वाला विभाग था, जिसमें मुलम्मासाज़ और नक़्क़ाश आदि भी थे। चित्रशाला पर सम्राट् का सीधा अधिकार था। चित्र-कारों को सैनिक पद प्राप्त थे। शाला का प्रधान अधिकारी ख़्वाजा अब्दुस्समद चार-सदी मंसबदार था। इस प्रकार चित्र-शाला एक उत्तम सैनिक संगठन के ढंग पर थी (L. Binyon, Court etc., pp. 45-46, P. Brown, Ibid, pp. 120-3; Smith, Akbar, p. 429-30)।

चित्रकारी की सामग्री के सम्बन्ध में भी उन्नति हुई। चित्र बनाने का उत्तम काग़ज़ उन दिनों फ़ारस से आता था। पीछे वैसा ही काग़ज़ भारतवर्ष के पुराने कारख़ानों में भी तैयार होने लगा था। इस दिशा में मुग़ल सम्राटों ने विशेष ध्यान दिया। रँगों का वर्णन पृष्ठ २६२ के नोट में हो चुका है। चित्र बनाने की क़लम या कूंची में भी सुधार किया गया था।

अकबर के समय की सचित्र पुस्तकों में 'रज़्मनामा' जयपुर में, 'बाबरनामा' लन्दन के ब्रिटिश म्यूज़ियम में, और 'अकबरनामा' लन्दन के विक्टोरिया और अल्बर्ट म्यूज़ियमों में विद्यमान हैं। 'बाबरनामा' में पशु, पक्षी और वृक्षादिकों के भी चित्र हैं। ये चित्र ईरानी शैली के हैं, और प्राकृतिक से हैं। इनमें भारतीयता की झलक कम है। उनमें कुछ चित्र मंसूर नक़्क़ाश के भी बनाये हुये हैं, जिसने अकबर के समय की अपेक्षा जहांगीरी शासन में अधिक ख्याति पाई थी। उक्त ग्रंथ में एक सर्वांग सुन्दर चित्र मोर का है, जो जगन्नाथ का बनाया हुआ है। अबुल-फ़ज़्ल ने जिन चित्रकारों का विशेष रूप में उल्लेख किया है, जगन्नाथ उनसे पूर्व के विख्यात चित्रकारों में था। दुर्भाग्य से सम्राट् अकबर की चित्रावली में अब विरला ही चित्र बचा होगा, परन्तु ब्रिटिश म्यूज़ियम में बाबर के पिता उमरशेख़ मिर्ज़ा का शिकार-सम्बन्धी जो चित्र मौजूद है, यदि वह अकबर के राजत्वकाल का है, तो उससे भारतीय और ईरानी कला के मधुर और आनन्दप्रद मिश्रण की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के गुण देखकर उसे ख़्वाजा अब्दुस्समद को सौंप दिया। थोड़े ही दिनों में वह सब चित्रकारों से आगे बढ़ गया और अपने समय का अग्रगण्य होगया।

कल्पना की जा सकती है, साथ ही उससे राजकीय संग्रहालय में संग्रहीत चित्रों की कला का विश्लेषण हो सकता है (Edwardes etc., ibid, p. 320)। स्मिथ ने लिखा है कि 'आईन' में उल्लिखित सभी चित्रकारों के नमूने लन्दन में मौजूद हैं। केवल हरिवंश की कलाकारिता का उदाहरण मेरी दृष्टि में नहीं आ सका। पर उसके भी नमूने हो सकते हैं, जो मेरी दृष्टि से बच गये होंगे (Smith, ibid, p. 428)। भित्ति-चित्रों में फ़तहपुर सीकरी की दीवारों पर के बचे-खुचे और अंग-भंग चित्र हैं। उनमें सर्व श्रेष्ठ चित्र अकबर के शयनागार की उत्तरी दीवार पर है, जो 'नाव पर आठ मनुष्य' के नाम से पुकारा जाता है। यह इमारत लगभग १५७०—७१ ई० की है (Ibid, p. 431)।

यद्यपि अकबर के चित्रकार गुजरात, पंजाब, कश्मीर, फ़ारस और तुर्किस्तान आदि विभिन्न स्थानों तथा अनेक जातियों और भिन्न-भिन्न मतों के थे तथापि उन कलाकारों का समूह एक शाला के रूप में परिणत होकर फला फूला। फला फूला इसलिए कि उसको एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रोत्साहन मिला था, जिसका लक्ष्य यह था कि ऐसा उत्कृष्ट काम तैयार हो, जो उसके उत्तरदायी सूत्रधार के उत्कृष्ट मस्तिष्क की स्वीकृति प्राप्त कर सके (P. Brown, ibid, pp. 123-24)।

जहांगीर प्रकृति और सौंदर्य का बड़ा उपासक था। बाबर की तरह बाग़-बग़ीचों, फूलों और प्राकृतिक दृश्यों के देखने में उसे बड़ा आनन्द आता था। इसीलिए जहांगीर तेरह बार कश्मीर गया था। जब वहां वह किसी उत्तम फूल या वृक्ष को देखता था, तो अपने चित्रकारों को तुरन्त उसका चित्रण करने की आज्ञा देता था। लारेन्स बिन्यान के शब्दों में वह एक उत्तम चित्र-संग्रहकर्ता, उत्कृष्ट कृति का गुणग्राहक, श्रेष्ठ कला-पारखी, अपने कलाकारों की कुशलता पर अभिमान करने वाला, और पसन्द आने वाले चित्र का अधिक मूल्य देने वाला था (L. Binyon, Court etc., p. 50)। 'तुज़ुकजहांगीरी' में वह कहता है, "चित्रों को पसन्द करने तथा उनके निर्णय करने का मेरा अभ्यास इस सीमा तक पहुँच चुका है कि यदि कोई भी कृति मेरे समक्ष लाई जाय, चाहे वह कृति मृतक चित्रकार की हो अथवा जीवित की, और मुझे उन चित्रकारों के नाम न बतलाये जायँ, मैं तत्क्षण बतला दूँगा कि यह कृति अमुक व्यक्ति की है। यदि एक ही चित्र में कई आलेख्य हों और प्रत्येक चेहरा एक भिन्न कलाकार का निर्माण किया हुआ हो, तो भी मैं पहचान सकता हूँ कि कौन चेहरा किसका बनाया हुआ है। यदि कोई दूसरा व्यक्ति किसी चेहरे की आँखें और भौंहें बनावे तो मैं मालूम कर सकता हूँ कि मूल मुखमण्डल किसका बनाया है और उसमें नेत्र और भृकुटी का चित्रण किसने किया है (Rogers & Beveridge, Memoirs of Jahangir, vol. 1, p. 20, 1909)।" यद्यपि इन शब्दों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh